इमाम-उल-हिन्द

शताब्दी स्मारक ग्रंथावली

खंड ३

मौलाना आज़ाद की प्रमुख कृतियाँ

Portrait by M.F. Husain in the collection of the NGMA, New Delhi.

इमाम-उल-हिन्द

अबुल कलाम आजाद

संपादक

सैयदा सैयदैन हमीद
प्रोफेसर मुजीब रिज़वी
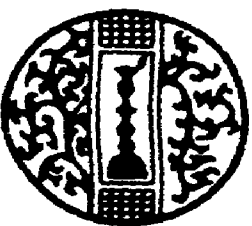
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद
एवं विकास प्रकाशन गृह प्रा० लिमिटेड

© 1990, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण : 1990

प्रकाशक : वीणा सीकरी, महानिदेशक,
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आज़ाद भवन, इन्द्रप्रस्थ स्टेट, नई दिल्ली- 110002
तथा
विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा० लिमिटेड
576, मस्जिद रोड, जंगपुरा, नई दिल्ली- 110014

जैकेट सज्जाकार : प्रेम नायर

अन्तर्राष्ट्रीय मानक पुस्तक क्रम संख्या :
81-85434-00-X (Set)
81-85434-03-4 (Vol-III)

भारत में मुद्रण : न्यू-टेक फोटोलिथोग्राफर, शाहदरा, देहली

आभार

मैं उन सभी मित्रों और सहयोगियों का हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने इस ग्रंथावली की प्रस्तुति में मेरा मार्गदर्शन किया है और मुझे सहायता प्रदान की है।

श्री सैयद मुज़फ़्फ़र हुसैन बरनी, अल्पसंख्यक आयोग अध्यक्ष की कृतज्ञ हूँ जिन्होंने ग्रंथावली के समस्त खण्डों में अपने परामर्श और सहयोग से मेरी सहायता की है। चिंतक और लेखक श्री मालिकराम तथा मकतबा जामिया के प्रमुख प्रबंधक श्री शाहिद अली खाँ ने उर्दू खण्ड की प्रस्तुति में विशेष रूप से अपना बहुमूल्य समय दिया है और अपने परामर्श द्वारा मेरी सहायता की है। मैं उनके प्रति आभार प्रकट करती हूँ। मैं खण्ड तीन (हिन्दी) और खण्ड चार (उर्दू) का सहसंपादक होना स्वीकार करने के लिए क्रमशः प्रोफ़ेसर मुजीब रिज़वी और डॉ० सुग़रा मेंहदी की हृदय से आभारी हूँ।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् में मुझे सुयोग्य व्यक्तियों के साथ कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनकी संख्या इतनी अधिक है कि प्रत्येक को धन्यवाद देना असंभव है। परन्तु मैं भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् की महानिदेशिका वीना सीकरी के प्रति विशेषरूप से आभारी हूँ जिनके सक्रिय सहयोग के बिना यह परियोजना पूर्ण ही नहीं हो सकती थी। श्री अशोक श्रीनिवासन ने इस परियोजना के प्रारम्भ से इसके अंत तक जिस प्रकार प्रोत्साहन दिया है और मेरी सहायता की है और पाण्डुलिपि को अन्तिम रूप देने में श्री ओ०पी० मदान ने जिस तत्परता से मेरी मदद की है उसके लिए मैं इन दोनों व्यक्तियों की अत्यधिक आभारी हूँ। पुस्तकालय-कर्मियों का आभार शब्दों में व्यक्त करना कठिन है क्योंकि इन लोगों ने आज़ाद भवन पुस्तकालय में कार्य करने के लिए ऐसा अनुकूल वातावरण उत्पन्न किया जो मेरे लिए अत्यन्त सुखद रहा और अनुसंधान संबंधी जो भी सुविधा मैंने चाही वह इन्होंने तुरन्त उपलब्ध कराई। मैं मुख्य पुस्तकालय प्रबंधक गुलज़ार नक़वी और उनके सहकर्मियों पाकीज़ा सुल्तान और ख्वाज़ा मुनीर अहमद के प्रति हृदय से आभार प्रकट करती हूँ। अमरजीत कौर ने अत्यन्त ज़िम्मेदारी से, प्रफुल्लमन से जो सहायता इस कार्य में प्रदान की है उसके लिए मैं विशेष रूप से उनकी आभारी हूँ।

प्रारंभ में जो फ़ोटो प्रकाशित है वह भारती सांस्कृतिक संबंध परिषद् में संग्रहित के०के० हेबर के चित्र से लिया गया है।

अन्त में अपने स्वर्गीय पति सैयद मुहम्मद अब्दुल हमीद का जिन्होंने इस विशाल परियोजना की पूर्ति में हर प्रकार का नैतिक मनोबल प्रदान किया और स्वर्गीय डॉ० ख्वाजा गुलाम सैयदैन का स्मरण किए बिना नहीं रह सकती जिन्होंने मेरे मन में मौलाना के प्रति जिज्ञासा और सम्मान मेरे बालजीवन में जाग्रत किया। तीन दशाब्दियों पश्चात् मैं अपनी उन भावनाओं को रूपायित कर सकी और इस महान परियोजना को परिपूर्ण करने में अपनी समस्त योग्यता समर्पित कर सकी।

— संपादक

संपादक मंडल

एच० वाई० शारदा प्रसाद (अध्यक्ष)

मुहम्मद यूनुस

के० एस० मूर्ति

कपिला वात्स्यायन

के० के० नायर

वीणा सीकरी, महानिदेशक,

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्

सैयदा सैयदैन (संपादक)

राष्ट्रपति
भारत गणतंत्र

राष्ट्रपति का संदेश

यह अत्यन्त शोधनीय कार्य है कि मौलाना आज़ाद की जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में उनके भाषणों और कृतियों का संकलन उर्दू, हिन्दी और अंग्रेजी में प्रकाशित किया जा रहा है और उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की जा रही है तथा उनका मूल्यांकन किया जा रहा है। मुझे विश्वास है कि १९वीं-२०वीं शताब्दी के हमारे स्वतन्त्रता आन्दोलन से इन संकलनों द्वारा दिलचस्पी बढ़ेगी।

गाँधी जी के नेतृत्व में अनेक महापुरुष स्वतंत्रता आन्दोलन में कूद पड़े थे। इनमें से हर एक ने अपने मूल्यवान व्यक्तित्व और प्रतिभा का योगदान दिया है। किसी ने अपनी संघटन क्षमता समर्पित की है तो दूसरे ने अपनी प्रखर बुद्धि का योगदान दिया है तथा अन्य ने अपनी श्रद्धा और निष्ठा से इस उद्देश्य की सेवा की है। परन्तु मौलाना साहब ने बुद्धि और हृदय के अद्भुत मिश्रण द्वारा इस उद्देश्य की सेवा की है। उनके द्वारा दी गयी प्रेरणा बौद्धिक भी थी और भावनात्मक भी। उनकी श्रद्धा ऐसी थी जो बुद्धिपरक भी थी और साथ ही साथ जो चेतना द्वारा उत्तेजित भी।

मौलाना साहब हृदय से भारतवर्ष के भविष्य के प्रति आस्था रखते थे-न केवल एक राष्ट्र के रूप में बल्कि एक संस्कृति के रूप में भी। इतिहास-ज्ञान ने उन्हें एक दृष्टि दी थी। धर्म ग्रंथों के ज्ञान ने उन्हें विवेक प्रदान किया था। दृष्टि और विवेक में उद्देश्य के प्रति आस्था जुड़ गयी थी। यह मिश्रण अमोघ हो गया था, यही रचनात्मक भी था।

बाल्यावस्था में ही वे असाधारण रूप से अध्ययनशील थे और अपने प्रारम्भिक युवावस्था में ही उन्होंने उर्दू में विचारपूर्ण लेखों के लेखक के रूप में ख्याति प्राप्त कर ली थी। सोलह वर्ष की आयु होते होते भावी मौलाना उच्च इस्लामी शिक्षा के परम्परागत पाठ्यक्रम में पारंगत हो चुके थे।

ईश्वर में आस्था और अपने देश पर गर्व ने युवा मौलाना की संवेदना का मन्थन करके शुद्ध देशभक्ति को जन्म दिया। आज्ञाभंग आन्दोलन और बहिष्कार द्वारा विरोध की पद्धति ने उन्हें प्रेरित करना आरम्भ किया। अपने मुसलमान भाईयों की चेतना जाग्रत करने के लिए उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण साप्ताहिक **"अल-हिलाल"** के नाम से १९१२ में निकाला। संकीर्ण लोगों ने अखिल भारतीय राष्ट्रीयता के उनके विचार का विरोध किया। परन्तु दूरदर्शी लोगों ने उनका समर्थन किया।

"अल-हिलाल" ने एक साथ दो संदेश प्रसारित किये एक संदेश था इस्लाम का, और दूसरा भारतीय स्वतंत्रता का। मुसलमानों के लिए देश भक्ति को एक धार्मिक कर्त्तव्य बताते हुए मौलाना साहब ने संस्कृत की एक शाश्वत कहावत को चरितार्थ किया है।

"जननी जन्मभूमिश्च
स्वर्गादपि गरीयसी"
(माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी श्रेष्ठ हैं)

राष्ट्र ने जितना मौलाना साहब के साहस पर ध्यान दिया और उसकी सराहना की उतना ही उनके उत्साहवर्धक और प्रांजल भाषण की भी प्रशंसा की और उनकी यह ख्याति समस्त घेरों को तोड़कर प्रसारित हुई। मौलाना साहब के विख्यात समकालीन आचार्य कृपलानी ने उनके योगदान को निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया है।

"वे महान धर्मात्मा थे और यदि उन्होंने केवल अपने समुदाय की आध्यात्मिक थाती तक ही अपने को सीमित रखा होता तो उन्हें इस क्षेत्र में प्राथमिकता प्राप्त हुई होती। वे एक महान वक्ता थे और यदि वे केवल वक्ता मात्र ही रहे होते तो देश उनकी गणना महान वक्ताओं में करता। वे एक महान विद्वान थे और यदि उन्होंने विद्या को अपना जीवन अर्पित किया होता तो वे इस क्षेत्र के नेता हुए होते........ परन्तु उनकी महत्ता इस बात में है कि उन्होंने समस्त विद्या, धर्म और दर्शन के समस्त ज्ञान, अपने समस्त ऐतिहासिक बोध को तुच्छ समझा यदि देश स्वतंत्र न हो, और उन्होंने अपनी प्रतिभा और अपने समय को स्वतंत्रता-आन्दोलन की सेवा में अर्पित कर दिया। परन्तु स्वतंत्रता-प्राप्ति से आगे भी उनकी दृष्टि थी। वे देख रहे थे कि देर या सबेर स्वाधीनता तो प्राप्त होगी ही, किन्तु इसके पश्चात् स्वाधीनता आन्दोलन की भावना को भी घनीभूत होना चाहिए। वे अपने हृदय की गहराई से समझते थे कि स्वाधीनता से अधिक लाभ नहीं होगा यदि वह देशवासियों में एकता उत्पन्न नहीं कर पाती। मौलाना साहब ने एक दफा कहा था,

"यदि तुम ईश्वर-भक्त हो तो तुम बुराई से मुक्त होओ और यदि तुम ईश्वर को प्रसन्न करना चाहते हो तो तुम्हें शैतान को अप्रसन्न करने से हिचकिचाना नहीं चाहिए।"

मौलाना आजाद के मन में भारत के कल्याण का जो चित्र था उसमें समन्वित संस्कृति की महान परम्परा और एक आधुनिक तथा प्रगतिशील राष्ट्र के रूप में उसके भावी उत्थान की कल्पना अंकित थी। मौलाना साहब जिस बात को अशुभ समझते थे वह भारत के मुख्य समुदायों में अनेकता थी।

बारम्बार जेल-यात्रा, नाना प्रकार के कष्टों और प्रतिबंधों ने मौलाना साहब के राष्ट्रीय महत्त्व और जनता में उनकी प्रतिष्ठा को बढ़ाने में सहायता ही की।

गाँधी जी में मनुष्य के सामर्थ्य का पता लगा लेने की अद्भुत क्षमता थी और उन्होंने मौलाना आजाद की इस क्षमता को पहचान लिया कि वो स्वाधीनता के उद्देश्य के लिए असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। मौलाना साहब ने भी समय की चुनौती का महान उत्तर गाँधी जी के रूप में पा लिया। महात्मा गाँधी का सहयोगी बनने के पश्चात् मौलाना ने इस सम्बन्ध पर पुनः विचार कभी नहीं किया। एक के पश्चात् दूसरे अभियान चले और एक के पश्चात् दूसरे कदम उठाये गये और हर एक में महात्मा और मौलाना कन्धे से कन्धा मिलाए खड़े थे। उनका मिलन एक महामिलन था, गंगा की शक्ति और सिन्धु नदी की धारा का महान संगम था, इसमें गीता की गहराई और कुरान की शक्ति थी।

कांग्रेस अध्यक्ष पद का भार जब मौलाना के युवा कन्धों पर पड़ा तो उस समय उनकी आयु लगभग पैंतीस वर्ष की थी और यह इस बात की स्वीकृति थी कि भारतीय समाज के प्रत्येक अंग का विश्वास उन्हें प्राप्त है। हमारे वैविध्यपूर्ण समाज ने उन्हें भारत के समन्वित विवेक, उसकी उदार दृष्टि की परम्परा और दूसरों की आस्था धार्मिक कर्मकाण्डों के प्रति पारस्परिक सम्मान का प्रमाणित स्वर जाना।

मौलाना साहब इंडियन नेशनल कांग्रेस के रूप में राष्ट्रीय उत्थान के प्रतीक थे। वे युद्ध के संकटपूर्ण काल में और भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान कांग्रेस के अध्यक्ष थे।

गाँधी जी ऐतिहासिक भारत छोड़ो आन्दोलन के पश्चात् गिरफ्तार करके पूना ले जाये गये। कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना साहब और सम्पूर्ण कार्यकारिणी समिति को बंदी बना लिया गया और उन्हें अहमद नगर दुर्ग में नज़र बन्द कर दिया गया। वहां की अंधेरी कोठरी में उनके क्रान्तिकारी प्रकाश ने उनकी विद्वत्ता का दीपक प्रकाशित किया। मौलाना साहब ने कारावास की अवधि में निरन्तर पढ़ा और लिखा। जवाहरलाल जी उसी स्थान पर बंदी थे और उस महान साहित्यिक उपलब्धि की पाण्डुलिपि लिखने में व्यस्त थे जो **"भारत की खोज"** के नाम से प्रसिद्ध है। जवाहरलाल जी ने अपने इस कार्य में मौलाना साहब से विस्तार से परामर्श किया था और अपनी कृति के उस भाग पर विशेष रूप से विचार विनिमय किया था जिसका सम्बन्ध मुगल इतिहास से है।

इसी दौरान मौलाना साहब की पत्नी बेगम जुलेखा भयानक रूप से रुग्ण हो गयीं। जेल के अधीक्षक ने एक दिन उन्हें एक तार दिया। इससे सूचना मिली की उनकी जीवन संगिनी सदा के लिए उन्हें छोड़कर चली गयीं। उन्होंने लिखा कि "यद्यपि मेरा निश्चय अटल रहा किन्तु ऐसा लगा जैसे मेरे पांव डगमगा गये हों।" इसके पश्चात् मौलाना साहब एक वर्ष तक और जेल में रहे। मुक्त होकर कलकत्ता आने पर विशाल जन-समूह ने उनका स्वागत किया। उनके प्रशंसकों से सड़कें भरी पड़ीं थीं और उनकी कार इंच-इंच आगे बढ़ रही थी। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है–

"जब हावड़ा पुल से मेरी कार गुजरने लगी तो मेरे मन में अपनी पत्नी की याद उभरने लगी–मेरी पत्नी घर के द्वार तक मुझे विदा करने आयी थीं। अब मैं तीन वर्ष के पश्चात् लौट रहा था, किन्तु वह अब अपनी कब्र में थीं और मेरा घर खाली था। मैंने अपने साथियों से कार मोड़ने के लिए कहा क्योंकि घर जाने से पहले मैं उनकी कब्र पर जाना चाहता था। मेरी कार फूलों के हारों से भरी पड़ी थी। मैंने उनकी कब्र पर एक हार चढ़ाया और मन ही मन फ़ातिहा पढ़ी।"

यह अनुच्छेद शाहजहाँ की संवेदनशील काव्यात्मकता और बहादुरशाह जफ़र की कविता के समतुल्य है।

मौलाना साहब मो० अली जिन्ना के राजनैतिक सिद्धान्त और देश-विभाजन के कट्टर विरोधी थे और हिन्दू-मुस्लिम एकता तथा धर्म निरपेक्ष भारत में सहअस्तित्व के उद्देश्य के अग्रणी समर्थक थे। मौलाना साहब भारत के विभाजन को पराजय समझते थे और उन्होंने देश की स्वतन्त्रता को स्थगित कर देना इसके बदले में अधिक उचित समझा होता। उन्होंने १४ जून १९४७ को कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति की उस बैठक में केवल इतना ही कहा था जिसमें विभाजन के पक्ष में प्रस्ताव पारित हुआ था। उन्होंने कहा था कि यदि राजनैतिक पराजय स्वीकार ही करनी है तो "हमें इस बात को निश्चित करने का प्रयत्न इसी के साथ करना चाहिए कि हमारी संस्कृति विभाजित न हो।" गाँधी जी के समान आजाद भी देश के विभाजन से स्वयं को कभी सहमत नहीं कर पाये, किन्तु फिर भी स्वतन्त्रता के पश्चात् उन्होंने न तो जिन्ना की और न ही अपने साथियों की निन्दा की बल्कि जो कुछ सम्भाव्य था उसके सम्मुख सम्मानपूर्वक नतमस्तक हुए।

उन्होंने कहा,

"जो कुछ न घटना चाहिए था वह घट गया। हमें तो अब भविष्य के सम्बन्ध में सोचना है।" जिस समय स्वतन्त्र भारत का शासन चलाने का कर्त्तव्य जवाहर लाल नेहरू के कन्धों पर डाला गया उस समय मौलाना साहब उनके साथ थे। आज़ाद नये राष्ट्र की राजकीय प्रगतिशील नीतियों को रूपायित और कार्यान्वित करने में जवाहरलाल जी के विश्वसनीय सहयोगी थे। मौलाना साहब को शिक्षा मंत्रालय का भार सौंपा गया था और १९५८ में अपनी मृत्यु तक वे इस मंत्रालय का मार्ग-दर्शन करते रहे। शिक्षा मंत्रालय में उनकी कार्यावधि एक से अधिक कारणों से महत्वपूर्ण है। इसी अवधि में शिक्षा को केवल पुस्तकीय ज्ञान देने के स्थान पर कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण बात समझा जाने लगा। वैज्ञानिक तथा प्राविधिक शिक्षा, अध्यापक-प्रशिक्षण, भाषा प्रशिक्षण, जन जातियों, अनुसूचित जन जातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिए छात्रवृत्तियों की रूपरेखा इन्हीं वर्षों में निर्धारित हुई। मौलाना आज़ाद ने यद्यपि इन शब्दों का उपयोग कभी नहीं किया किन्तु सत्य यह है कि शिक्षा मंत्रालय के उनके निर्देशन काल में ही सर्वप्रथम भारत सरकार ने शिक्षा को मानवसंसाधन में लगायी पूँजी के रूप में स्वीकार किया।

शिक्षा मंत्रालय में मौलाना साहब के कार्य काल को वे सब लोग अत्यन्त प्रेमपूर्वक याद करते हैं जिन्हें इसे देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इस काल में उनका बौद्धिक क्षितिज विस्तृत रहा। उन्होंने अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षण परिषद् को स्वीकृति प्रदान की और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की। एक दूसरे अध्यापक डॉ० राधाकृष्णन और जवाहरलाल नेहरू के सहयोग से उन्होंने संगीत, साहित्य और कला के लिए हमारी तीन उत्कृष्ट अकादमियों की कल्पना को साकार किया। उन्हीं की प्रेरणा से साहित्य अकादमी, संगीत नाटक अकादमी और ललित कला अकादमी का जन्म हुआ। मौलाना साहब चाहते थे कि उभरते हुए भारत में स्फूर्ति उत्पन्न हो और उत्थान के मार्ग पर चलते हुए वह स्वयं को परिपूर्ण करें।

उदारता के अपने प्रारम्भिक प्रशिक्षण ने उन्हें अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और विश्वशांति का शक्तिशाली समर्थक बनाया। सांस्कृतिक सम्बन्धों का भारतीय परिषद् जिसके वे जनक और प्रथम अध्यक्ष थे, उनके विश्वदृष्टिकोण का ज्वलंत प्रमाण है।

२२ फरवरी १९५८ को जब मौलाना साहब इस संसार में नहीं रहे तब डॉ० राधाकृष्णन ने कहा था,

"वे जिस बात के पोषक थे उसे मस्तिष्क की स्वतन्त्रता कहा जा सकता है, यह मस्तिष्क की ऐसी स्थिति है जो नस्ल या भाषा, प्रांत या बोली, धर्म या जाति के संकीर्ण भेद-भावों से मुक्त है। मौलाना के रूप में हमें एक सभ्य मस्तिष्क उपलब्ध था—निश्चय ही उन जैसा दूसरा नहीं मिलेगा, वे महामानव, एक वैभवशाली, अटल साहसी और निर्भीक मनुष्य थे। इन्हीं सब बातों का नाम 'मौलाना' था।"

जन्म शताब्दी की ये स्मारिकाएं मौलाना साहब के जीवन की विविधता को सजीव बनाएं और वे हमारे लिए एक समाज, एक राष्ट्र और उनके पदचिह्नों पर चलने की परम्परा के रूप में हमारे लिए प्रेरणा के स्रोत बनें।

R. Venkataraman

अप्रैल २६, १९८९. आर वेंकटरामन

विषय सूची

प्रस्तावना

ऐसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की रचनाओं का चयन करना अत्यन्त दुष्कर है जिनके लेखन और भाषण ने इतिहास की संरचना की हो। स्वतन्त्रता संग्राम में मौलाना को एक केन्द्रीय स्थान प्राप्त था। उनके लेखन और भाषण जो अत्यन्त धारदार और संतुलित थे और उन्होंने उस बंधन को तोड़ डाला जो राष्ट्र को पराधीन बनाये हुए थे। अपने समकालीन बुद्धिजीवियों की तुलना में मौलाना की रचनाएं बहुत कम है। संख्या में वे कम हैं किन्तु उनके लेखन में ज्ञान, दूरदर्शिता और देश का सूक्ष्म समन्वय दृष्टिगोचर होता है। कम से कम शब्दों में पूर्ण बात कहने में मौलाना समर्थ हैं। वे संक्षेप में अधिक से अधिक बातें कहने का गुण जानते थे।

उनकी रचनाओं का चयन करते समय हमारे सम्मुख यह समस्या थी कि हम इनमें से क्या लें और क्या छोड़ें। एक ओर हमें अपने अल्प ज्ञान का अभाव चिन्तित किये हुए था तो दूसरी ओर यह बात व्याकुल किए हुए था कि इस महत्त्वपूर्ण दायित्व का निर्वाह किस प्रकार उचित रूप से किया जाए। मौलाना की रचनाओं का एक ऐसा चयन प्रस्तुत करना जो लगभग ३०० पृष्ठों का हो और वो भी इस प्रकार कि उसमें मौलाना की समस्त रचओं का सार आ जाये, ऐसा ही था जैसे सागर को गागर में समाहित करने का प्रयास। इस अवसर पर हमारा निर्देशन स्वयं मौलाना के इन शब्दों में हुआ कि "तुम्हारे पास एक ऐसी ज्वलंत चिनगारी विद्यमान है कि यदि ठीक से हवा दो तो हजारों अग्निकुंड प्रज्ज्वलित हो सकते है।" इसलिए हमने सोचा कि यही क्या कम है कि हम मौलाना की कुछ चयनित रचनाओं का अनुवाद करके उनके विचारों को संसार भर में दूर-दूर तक पहुंचाएं।

मौलाना के लेखन और भाषण के इस चयन के संबंध में हम तीन बातों की चर्चा करना चाहते हैं। एक तो उन कठिनाइयों का जिनका मौलाना की रचनाओं की अंग्रेजी और हिन्दी अनुवाद करते समय हमें सामना करना पड़ा। दूसरे इस बात पर प्रकाश डालना चाहते हैं कि हमने इस चयन में सम्मिलित रचनाओं का ही क्यों चयन किया। तीसरे इन लेखों के लेखक के उस परिवेश का उल्लेख करना चाहते हैं जिसमें रह कर और प्रशिक्षित होकर वह इन रचनाओं को जन्म दे सकता है।

मौलाना की रचनाओं को अंग्रेजी में रूपायित करना एक चुनौती था। उन लेखों के जो अनुवाद उपलब्ध हैं वे विशेषरूप से सैयद अब्दुल लतीफ और मुहम्मद मुजीब के अनुवादों को छोड़ कर त्रुटिपूर्ण हैं और आवश्यकता है कि इनमें संशोधन किया जाये। इसके अंतर्गत कांग्रेस के अधिवेशनों में दिए गए अभिभाषणों, साहित्यिक निबंध, राजनैतिक लेख और धार्मिक अर्थापन भी आते हैं। "अल-हिलाल" की उत्तेजक और पत्रकारिता के अनुसार लिखे गये लेखों

---

१. "उर्दू अदब और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद" शीर्षक से मई-अल-कादरी की पुस्तक, **मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, एक अध्ययमें संकलित लेख से उद्धृत।**

का भी कोई अनुवाद नहीं हुआ। मौलाना के अध्येताओं ने इधर-उधर से कुछ अनुच्छेदों का अनुवाद करके उनकी प्रारंभिक रचना-शैली के नमूने प्रस्तुत किये हैं। इस ग्रंथावली में मौलाना की रचनाओं का आधुनिक रूप प्रस्तुत किया गया है और उनका चयन और प्रस्तुति इस रूप में सर्वप्रथम हो रही है। इस संबंध में हमें इस समस्या का सामना करना पड़ा कि मौलाना की प्रारंभिक रचनाओं के जो अनुवाद मिले उन्हें असावधानीपूर्वक उर्दू से अग्रेजी में रूपायित कर दिया गया। जिन पर उर्दू शैली और अभिव्यक्ति की माध्यमों की पूर्ण प्रतिच्छाया है। हमारे लिए ऐसा अनुवाद करना अत्यधिक दुष्कर था कि रचना का प्रवाह और उसकी प्रांजलता सुरक्षित रहे। हमने इस संबंध में इस शताब्दी के श्रेष्ठ अनुवादकों में से एक सैयद हुसैन के इन शब्दों को अपना मार्गदर्शक बनाया कि अनुवाद एक कला भी है और एक शिल्प भी। उन्होंने लिखा है कि "इसको शिल्प भी कह सकते हैं क्योंकि इसमें भी निर्धारित नियमों का निर्वाह करना पड़ता है। अनुवाद के ऐसे कोई निर्धारित नियम नहीं होते। अनुवादक को अपनी चिन्तन का अधिक उपयोग करना पड़ता है, सोचना पड़ता है, चयन करना पड़ता है, किसी साहित्यिक रचना का अनुवाद करना न्यूनाधिक एक रचना-प्रक्रिया ही है। ईमानदारी इस बात में है कि अनुवाद शाब्दिक हो किन्तु शब्दतः न हो। 'फाउस्ट' के मेरे अनुवाद की सराहना करते हुए डॉ० इकबाल ने कहा था कि "बहुत अच्छा है मगर आप नाम बदल देते तो बहुत अच्छा होता।" मैंने उत्तर दिया कि "मैं नहीं समझता कि नाम बदलना उचित होता क्योंकि यह नाम विश्वविख्यात है। यह नाम एक विशिष्ट संस्कृति और नैतिकता का प्रतीक बन गया है। " मौलाना की रचनाओं का अनुवाद करते समय हमें निरंतर इस बात का ध्यान रखना पड़ा कि अनुवाद में मौलाना की शैली का सौन्दर्य लुप्त न होने पाये। उदाहरणतया "गुबार-ए-खातिर" इस संदर्भ को ले लीजिए जिसमें मौलाना ने अपना जीवन मार्ग निश्चित करने में अपनी अत्यधिक वैयक्तिकता की चर्चा की है : "धर्म में, साहित्य में, राजनीति में, चिन्तन-मनन के साधारण मार्गों में जिस तरफ भी निकलना पड़ा अकेले ही निकलना पड़ा, किसी मार्ग में भी काल के कारवां का साथ न दे सका। जिस राह में भी कदम उठाया, समय की मंजिलों से इतना दूर होता गया कि जब मुड़ कर देखा तो धूल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखाई देता था और यह धूल अपनी तेज गति की उड़ाई हुई थी।"[3] इसकी तुलना अंग्रेजी अनुवाद से कीजिए :

In religion, in literature, in politics, wherever I had to go, I went alone. I could not bring myself to walk along the caravans on time that flored along any of these paths. Whichever direction, took, I went so far ahead of the times, that when, turned back, I saw nothing but the dust of the road, the dust raised by the speed of my own passage.

इसमें कुछ प्रबलता और प्रभाव की कमी महसूस होती है जो मौलाना की उर्दू शैली का गुण है।

हिन्दी में अनुवाद की समस्या अन्य प्रकार की है। हिन्दी और उर्दू क्योंकि एक ही भाषाई परंपरा का अंग है इसलिए इन्हें एक-दूसरे में रूपायित करना सरल है, परन्तु हिन्दी में तर्जुमा करने वालों को कठिनाई का अनुभव इसलिए करना पड़ता है कि मौलाना अपनी उर्दू शैली में

२. हयात-ए-आबिद, डॉ० सैयद आबिद हुसैन, संकलनकर्त्ता डॉ० सुहरा मेहदी.

३. "गुबार-ए-खातिर", पृ० १२५.

अरबी और फारसी के शब्दों और समासों का अत्यधिक उपयोग करते हैं और अरबी तथा फारसी शब्दों के पर्याय ढूंढने में अत्यन्त कठिनाई होती है। इन अनुवादकों को इस बात का भी ध्यान रखना पड़ता है कि अनुवाद सही हो और उर्दू की जो विशिष्ट शैली है वो भी सुरक्षित रहे। हम अनुवाद की गुत्थियों से जब चिन्ताग्रस्त हुए तो फिर एक बार मौलाना के इन शब्दों ने हमारा मार्गदर्शन किया जो सत्ताईस मार्च १९४० में उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू को एक पत्र में लिखे थे : "एक दृष्टिकोण से अनुवाद करना रचना प्रक्रिया से अधिक कठिन कार्य है। यह कोई सरल कार्य नहीं है कि साथ ही साथ वास्तविक रचना से अनुवाद मिलता भी हो और रचनाकार की साहित्यिक शैली भी सुरक्षित रहे। यह दुष्कर कार्य वही मनुष्य कर सकता है जिसको दोनों भाषाओं पर समानाधिकार प्राप्त हो।"[४] इसी पत्र में मौलाना उस अनुवादक की जो नेहरू स्वयं हैं, इस प्रकार सराहना करते हैं कि "तुमने मेरी उर्दू की शैली को इतनी सुन्दरता से अंग्रेजी में रूपायित किया है कि मुझे आश्चर्य नहीं होगा यदि पाठकगण ये समझे कि वस्तुतः यह अभिभाषण उर्दू में नहीं, अंग्रेजी में लिखा गया है।" मौलाना की रचनाओं के अनुवादक होने के रूप में हम लोगों की इच्छा यही थी कि इस मापदण्ड पर पूरे उतरें।

तीसरी बात अब यह है कि हमने किस आधार पर मौलाना की रचनाओं का चयन किया है। पहले तो हमने उनकी समस्त रचनाओं का अध्ययन किया जिनमें उनके भाषण भी सम्मिलित है, और फिर हमने इन कृतियों को तीन मुख्य भागों में विभाजित किया। पहले भाग का शीर्षक हमने "भव्य प्रारंभ" रखा है, इसमें १८९९ में जब उन्होंने अपना पहला अखबार 'नये रंग-ए-आलम' निकाला था और १९१६ में 'अल-हिलाल' प्रेस के जब्त होने तक वो सारी कृतियां हैं जो मौलाना ने एक पत्रकार के रूप में लिखे हैं। इसमें कुछ राजनैतिक, दार्शनिक और साहित्यिक लेख भी हैं। इस अवधि में मौलाना ने अनेकानेक 'पत्रिकाओं' का संपादन भी किया, जिनमें 'अल-हिलाल' अत्यधिक विख्यात है।

दूसरे भाग का शीर्षक "उन्नति का शिखर" है। इसमें धर्म संबंधी राजनैतिक और साहित्यिक रचनाओं का संकलन किया गया है यह तीन दसाब्दियों तक फैली हुई है। मौलाना जब रांची में नज़रबंद थे और स्वतन्त्रता प्राप्ति तक अर्थात् १९१६ से १९४७ तक की धार्मिक और साहित्यिक रचनाएं इसमें सम्मिलित हैं। तीसरे भाग का शीर्षक है "उपसंहार" जिसमें स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् से लेकर उनके जीवन की अंतिम दशाब्दी तक की रचनाएं संकलित हैं, जिनमें उनके सरकारी अभिभाषण भी सम्मिलित हैं। इन अभिभाषणों का रूप सरकारी अवश्य है किन्तु इनमें अधिकांशतः ऐसे हैं जो शिक्षा, विज्ञान और संस्कृति के विषयों पर युग-प्रवर्तक दृष्टिकोण के परिचायक हैं। इसी प्रकार इस अवधि में संसद में जो भाषण मौलाना ने दिए हैं वह नीति और राजनैतिक दर्शन पर प्रभावशाली वक्तव्य हैं।

उन तीन मुख्य भागों के अतिरिक्त जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। हमने इस पुस्तक में तीन अन्य भाग भी जोड़े हैं जिनमें मौलाना के कुछ विशिष्ट लेखों और प्रत्यक्ष रूप से संबंधित सामग्री के कुछ अंश सम्मिलित हैं। भाग चार का शीर्षक "पत्रावली" है जिसमें मौलाना आज़ाद द्वारा महात्मा गांधी तथा जवाहरलाल नेहरू को लिखे गए पत्र एवं भेजे गए तार और इन दोनों के द्वारा मौलाना को भेजे गए पत्र एवं तार संकलित हैं। इनके अतिरिक्त इस भाग में ऐसे विविध ज्ञापन,

---

४. अप्रकाशित पत्र, जवाहरलाल नेहरू संग्रहालय और पुस्तकालय, नई दिल्ली।

५. खेद है कि मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की रचनाओं की कोई पूर्णरूपेण प्रकाशित ग्रंथावली नहीं है।

प्रेस-वक्तव्य भी इसमें शामिल हैं जिनसे मौलाना के व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण और रोचक पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है। पांचवें भाग में उनके जीवन की घटनाओं की अनुक्रमणिका है और छठे भाग में पूर्ण एवं सटीक पुस्तक सूची है। इसमें उन पुस्तकों और लेखों को भी संग्रहित किया गया है जो मौलाना पर विभिन्न भाषाओं में लिखे गए हैं। इससे पूर्व विवरण सहित कोई भी पुस्तक सूची आज़ाद के संबंध में प्रकाशित नहीं हुई।

इन रचनाओं को राजनैतिक, धार्मिक साहित्यिक और दार्शनिक शीर्षकों के अंतर्गत निर्धारित करने में संपादकीय आवश्यकताओं के कारण हमने कहीं-कहीं नियमों का उल्लंघन भी किया है। इसका कारण यह था कि मौलाना की रचनाओं को किसी एक विशिष्ट शीर्षक के अंतर्गत रखने में कुछ कठिनाइयां थीं। उदाहरणतया उनका एक लेख "स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष" के शीर्षक से "अल-हिलाल" में प्रकाशित हुआ था। इसको धार्मिक भी कहा जा सकता है, राजनैतिक और साहित्यिक भी। एक दूसरी रचना मूलतया धार्मिक है किन्तु साथ ही साथ एक प्रमाणिक साहित्यिक रचना भी है। यह तर्जुमान-उल-कुरान है। इसके दूसरे संस्करण के प्रस्तावना के अंक में मौलाना ने एक फारसी शेर उद्धृत किया है, जिसमें समर्पण के मार्ग से निष्ठाप्राप्ति का संकेत मिलता है।

"मैंने उत्तंग लहरों में जितना अधिक हाथ-पांव मारे, उतना ही दुःखी और व्याकुल मुझे होना पड़ा परन्तु जब मैंने संघर्ष करना छोड़ दिया और निश्चेत हो गया तो लहरों ने स्वतः अपनी इच्छा के बीच धारे से उठाकर तट पर लाकर डाल दिया।"

इसको धार्मिक रचना कहें अथवा राजनैतिक या फिर दोनों का मिश्रण? इस संबंध में केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि मौलाना की नाना प्रकार के अभिव्यक्ति के माध्यमों को उनकी सर्जनात्मकता के अलग-अलग खानों नहीं बांटा जा सकता।

उन्होंने संसद के सम्मुख अनुदान मांग के प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए अपने भाषणों में कविता का आश्रय लिया है और उसके द्वारा अपने दृष्टिकोण को रूपायित किया है:

"लालायित है तू मदिरा के लिए?
जो केवल बढ़िया ही न हो, हो तेज भी,
किन्तु हो मात्रा में अत्यधिक?
भूल न इस बात को कि पिलाने वाला कलार (मदिरा का व्यापारी)है।
स्वर्ग की शाकी वाला नहीं।"

"मैं सदन से निवेदन करूंगा कि वह शिक्षा मंत्रालय से जो भी मांग करना चाहे उसे स्वतन्त्रतापूर्वक मांग ले। मैं सारी मांगों का स्वागत करूंगा। परन्तु एक बात याद रखी जाए कि केवल मैं एक शिक्षामंत्री हूं, स्वर्ग का प्रबंधक नहीं।"

मौलाना की कृतियों के संदर्भ में इन समस्याओं को देखते हुए हमने जिस रचना में जिस गुण को अधिक मात्रा में पाया, उसको उसी शीर्षक के अंतर्गत रख दिया। इससे भी अधिक कठिन प्रश्न यह था कि हम मौलाना के किन कृतियों का चयन करें। मौलाना की प्रत्येक शैली की रचना का चयन करना सरल कार्य नहीं था। उनकी समस्त रचनाएं गद्य में हैं। यद्यपि उन्होंने अपनी प्रारंभिक आयु में कविताएं भी लिखी हैं। परन्तु मौलाना काव्य-रचना को अल्पायु का

६. आम बजट, मांगों की सूची १९५३.

अपना शौक कहते थे और उसे कोई महत्त्व नहीं देते थे। कुछ कृतियां इस चयन में केवल इसलिए सम्मिलित की गई हैं कि वे अमर हैं और हर युग में समानरूपेण सार्थक हैं। उदाहरणतया "निर्णायात्मक निर्णय" (कौल-ए-फैसल) को ले लीजिए। यह वह लिखित वक्तव्य है जिसे मौलाना ने १९२२ में कलकत्ता न्यायालय में प्रस्तुत किया था। या इंडियन नेशनल कांग्रेस के तिरपनवें वार्षिक अधिवेशन में इनके अध्यक्षीय अभिभाषण को ले लीजिए। जो रामगढ़ भाषण के नाम से विख्यात है या उनकी उन कृतियों को ले लीजिए जो उन्होंने अपनी पत्नी की मृत्यु पर १९४२ में अहमद नगर दुर्ग में बंदी होने की अवधि में लिखी थी। इनमें से मौलाना की प्रत्येक रचना साहित्यिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक और दार्शनिक महत्त्व रखती है। इनमें से सभी रचनाओं से लोग और विशेष रूप से उर्दू प्रेमी भली भांति परिचित हैं। कुछ हिन्दी और अंग्रेजी में अनुवाद भी हो चुका है। परन्तु अभी बहुत-सी ऐसी रचनाएं हैं जिनको केवल सीमित संख्या में ही लोग पढ़ सकते हैं।

यह चयन मौलाना आज़ाद की जन्म-शताब्दी के अवसर पर प्रस्तुत किया जा रहा है। इसलिए हमने पूर्ण प्रयत्न किया है कि इस ग्रंथ में उनकी विख्यात और प्रतिनिधि रचनाएं अधिक से अधिक मात्रा में संकलित हो जाएं। कहीं-कहीं हमने यह भी किया है कि किसी लंबी रचना में से कुछ उद्धरण ले लिए हैं और उसको पाद-टिप्पणी सहित इस चयन में सम्मिलित कर लिया है ताकि इस विशिष्ट विषय पर मौलाना के विचार ज्ञात हो सकें। उदाहरणतया "गुबार-ए-खातिर" से हमने एक संदर्भ लिया है जो देखने में तो असंबद्ध वस्तुओं के बारे में है—चाय और बंदी जीवन—किन्तु मौलाना ने "खुशी" के माध्यम से इन दोनों में संबंध स्थापित कर दिया है क्योंकि इन दोनों से उन्हें प्रसन्नता प्राप्त हो रही थी। इससे मौलाना के असाधारण व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। शेक्सपियर के नाटक "जूलियस सीजर" में मार्क अन्टुनी अपने भाषण में उस वक्त यह बात कहता है जब ब्रूट्स मर चुका है कि "वह एक भला मानुष था और उसमें विभिन्न प्रकार के तत्व इस प्रकार एकत्रित हो गए थे कि प्रकृति उसके सम्मुख खड़े होकर पूरी दुनिया से यह कह सकती है कि देखो मनुष्य यह था।"

यही बात मौलाना पर चरितार्थ होती है। जहां तक पहले गुण भलमनसाहत का संबंध हैं, उसका संबंध उनके व्यक्तित्व से है और विभिन्न तत्वों के एक स्थान पर एकत्रित होने का संबंध उनके लेखन और भाषण से है। इन्हीं विभिन्न शैलियों को हमने इस चयन में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इनमें से तीन निबंध वो हैं जो उनकी अल्पायु के लेखन का प्रतिनिधित्व करते हैं और जिनमें उत्कृष्ट गद्य का नमूना प्राप्त होता है। इनमें अरबी और फारसी शब्दों का अत्यधिक मिश्रण है। इन लेखों का उद्देश्य लोगों के उनके सामुदायिक कर्त्तव्यों की ओर आकृष्ट करना और इनकी पूर्ति के लिए उनको उकसाना है। यह कर्त्तव्य मौलाना की दृष्टि में राष्ट्रीय कर्त्तव्यों के साथ-साथ धार्मिक कर्त्तव्य थे। "अल-हिलाल के उद्देश्य", "स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष", "इस्लाम और राष्ट्रीयता", में भी उपर्युक्त विशेषताएं परिलक्षित होती हैं।

दूसरे अंश में राजनैतिक और धार्मिक चिन्तन की बहुत-सी महत्त्वपूर्ण रचनाएं समाहित हैं। इसी काल में उन्होंने कुरान की विद्वतापूर्ण और चिन्तनपूर्ण अनुवाद भी किया था जो उनकी इस काल की रचनाओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। मौलाना ने इस कार्य को पूर्ण करने में अपने जीवन के पन्द्रह वर्ष लगाए थे। यह वह काल था जिसमें एक देशप्रेमी विद्वान को कड़ी परीक्षाओं का सामना करना पड़ा था। उसको एक साथ वह दोनों कार्य संपन्न करने थे जिनमें से एक के

लिए शांति और एकांतवास की आवश्यकता थी और दूसरे के लिए रणक्षेत्र के हंगामे की जरूरत थी। ७ मौलाना ने कुरान से संबद्ध तीन पुस्तकें लिखने की योजना बनाई थी। पहली पुस्तक में वो कुरान का अनुवाद और उसका ऐसा भाष्य प्रस्तुत करना चाहते थे जिसे वे किसी अन्य के हस्तक्षेप के बिना स्वयं पढ़ एवं समझ सकें। दूसरी पुस्तक में वह कुरान का तर्कपूर्ण और विस्तारपूर्ण भाष्य लिखना चाहते थे। तीसरी पुस्तक में वह अपने भाष्य की प्रस्तावना प्रस्तुत करना चाहते थे जिसमें वह कुरान के उद्देश्यों और सिद्धांतों का विवेचन करना चाहते थे। परन्तु खेद है कि यह पुस्तकें अलग-अलग लिखने का अवसर न मिल सका। १९३० में 'तर्जमान-अल-कुरान' के नाम से उनकी एक पुस्तक प्रकाशित हुई जिनमें उपर्युक्त तीनों पुस्तकों का सार प्रस्तुत किया गया। इसके उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए मौलाना लिखते हैं कि "अब यदि आप चाहते हैं कि कुरान को उसके वास्तविक रूप में और उसकी गुणात्मकता में उसे देखें तो आवश्यक है कि पहले वह सारे पर्दे हटाएं जो विभिन्न युगों और विभिन्न क्षेत्रों के बाह्य प्रभावों में उसके मुखमंडल पर डाल दिए हैं और आगे बढ़ें तथा कुरान की वास्तविकता की खोज स्वयं कुरान के पृष्ठों में करें।"

मौलाना अपनी समस्त कृतियों में सबसे अधिक महत्त्व सूरः फातिहा (प्रारंभ) के भाष्य को देते थे। कुरान का प्रारंभ इसी सूरः से होता है। इसें सात वाक्य हैं और यह समस्त इस्लामी मान्यताओं का सार है। इसलिए हमने सूरः फातिहा की प्रस्तावना को भी इस चयन में सम्मिलित किया है। इसे प्रारंभ में ही स्थान दिया गया है। "अल-हम" के भाष्य और सुरः फातिहा के भाष्य का अंतिम भाग भी संकलित किया गया है। इसके अतिरिक्त तर्जमान-अल-कुरान के प्रथम संस्करण की प्रस्तावना भी इस चयन में सम्मिलित की गई है। कुरान का अनुवाद करते समय मौलाना को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा उनके विवरण को पढ़कर मौलाना की प्रमाणित जीवनियों से कहीं अधिक उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है।

इसके पश्चात् का काल मूलतया राजनैतिक भाषणों पर आधृत है। इसके अंतर्गत हमने सबसे पहला उद्धरण "कौल-ए-फैसल" (निर्णायक निर्णय) से लिया है। इसकी प्रशंसा महात्मा गांधी ने २३ फरवरी १९२२ के "यंग इंडिया" में इन शब्दों में की, "यह एक भावोत्तेजक अभिभाषण है जिसके द्वारा मौलाना ने खिलाफत और राष्ट्रीयता से संबद्ध अपने विचार अभिव्यक्त किए हैं, यह ऐसा अभिभाषण है जिसको प्रस्तुत करने के अभियोग में इन्हें आजीवन कारावास का दण्ड मिलना ही चाहिए।"

मौलाना अपने विरुद्ध चलाए गए इस अभियोग की कार्यवाही में स्वयं भाग नहीं ले सके थे किन्तु अपने स्वाभावानुकूल उन्होंने एक वक्तव्य प्रस्तुत किया जो तीस टंकित पृष्ठों का है। इस वक्तव्य के अंत में मौलाना ने मजिस्ट्रेट को प्रत्यक्ष रूप से संबोधित करते हुए कहा था कि "मिस्टर मजिस्ट्रेट ! अब न्यायालय का अधिक समय नहीं लूंगा। यह इतिहास का रोचक और शिक्षाप्रद अध्याय है जिसको रूप देने में हम दोनों समान रूपेण व्यस्त हैं। मेरे भाग्य में अपराधियों का यह कटहरा है, तुम्हारे भाग्य में मजिस्ट्रेट की वह कुर्सी है। मैं स्वीकार करता हूं कि

७ हुमायूं कबीर, द्वारा संपादित मौलाना अबुल कलाम आज़ाद स्मारिका ग्रंथ में संकलित "एक अपूर्ण महान कृति" के शीर्षक से सैयद अब्दुल लतीफ के लेख से उद्धृत।

८. यह तर्जमान-अल-कुरान के सैयद अब्दुल लतीफ द्वारा अंग्रेजी अनुवाद के प्रथम संस्करण की प्रस्तावना।

९. महादेव देसाई, "मौलाना अबुल कलाम आज़ाद", १९४०.

इस कार्य के लिए यह कुर्सी भी उतनी ही जरूरी है जितना कि यह कटहरा। आओ आख्यान बनने वाले उस कार्य को शीघ्रता से समाप्त कर दें। इतिहासकार हमारी प्रतीक्षा में हैं, भविष्य न जाने कब से हमारी राह तक रहा है। हमें जल्दी-जल्दी यहां आने दो और तुम भी जल्दी-जल्दी निर्णय लिखते रहो। अभी कुछ दिनों तक यह कार्य चलता रहेगा, यहां तक कि एक-दूसरे न्यायालय का द्वार खुल जाएगा, यह विधाता के विधि का न्यायालय है, समय इसका निर्णायक है। यह निर्णय वह लिखेगा और उसी का निर्णय अंतिम निर्णय होगा।"

इस चयन के दूसरे भाग में मौलाना के तीन विख्यात भाषण सम्मिलित हैं जो मौलाना ने कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में उसके सार्वजनिक अधिवेशनों में दिए थे। एक अभिभाषण १९२३ में दिल्ली के अधिवेशन में दिया गया था और दूसरा १९४० में रामगढ़ के अधिवेशन में। तीसरा वह भाषण है जो मौलाना ने जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर मुसलमानों के सम्मुख सन् १९४७ में दिया था। इस काल के मौलाना के अभिभाषण वाग्वैदिग्धता के श्रेष्ठ नमूने हैं। इन अभिभाषणों में उन्होंने अपने देशवासियों—हिन्दू और मुसलमा दोनों से अपने समान शक्ति के विरूद्ध एकता के सूत्र में बंध जाने की मांग की थी। दिल्ली और रामगढ़ के अभिभाषण मौलाना के उस संघर्ष के श्रेष्ठतम उदाहरण हैं जो **वह** आजीवन करते रहे हैं। इसके विपरीत जामा मस्जिद पर दिए गए अभिभाषण में उनकी निराशा और उनका असंतोष झलकता है जो समय के परिवर्तन ने उत्पन्न कर दिया था। फिर भी इस अभिभाषण में उन्होंने अपने वैयक्तिक दुःख, नैराश्य और अविश्वास की भावनाओं पर नियन्त्रण प्राप्त करके उन सैकड़ों-हजारों निःसहाय लोगों का साहस बंधाया जो अकस्मात अपनी राजनैतिक पहचान खो बैठे थे। उन्होंने कहा था कि "अभी कुछ अधिक समय नहीं बीता कि जब मैंने तुमसे कहा था कि दो राष्ट्रों का सिद्धांत वास्तविक जीवन के लिए मृत्यु तुल्य रोग है, इसको छोड़ दो। यह खंभ जिन पर तुमने आश्रय लिया है अत्यन्त तीव्र गति से टूट रहे हैं। तुमने सुनी-अनसुनी कर दी और यह न सोचा कि काल और उसकी तीव्र गति रुकी नहीं। तुम देख रहे हो कि जिन सहारों पर तुम्हें विश्वास था वो तुम्हें निराश्रय छोड़ कर भाग्य के हवाले कर गये। यह वह भाग्य है जिसका तुम्हारी मानसिकता की शब्दावली से भिन्न अर्थ है। उनके लिए यह भाग साहसहीनता का नाम है।"

मौलाना के इस काल के लेखन और भाषण में एक लघु लेख भी है। वस्तुतः यह "महात्मा गांधी की अट्ठारहवीं वर्षगांठ" पर मौलाना की एक वार्ता है जो १९४७ में आल इंडिया रेडियो से प्रसारित हुई थी। यह प्रथम बार प्रकाशित हो रही है और टेप सुन कर इसे लिपिबद्ध किया गया है। इस अवसर पर उनके स्वर में जो अवषाद् और पीड़ा है उसने इसे और भी अधिक प्रभावशाली बना दिया है। उनकी दीर्घाकार अभिभाषणों को भी यदि इसी प्रकार रेकार्ड कर लिया जाता तो उनके व्यक्तित्व के न जाने कितने पक्ष हमारे सम्मुख आते। निम्नलिखित अवतरण में जो कटुता है वह मौलाना के अंतिम काल के भाषणों और लेखनों की विशेषता है :

पंजाब में पांच दरिया पानी के हजारों वर्ष से बह रहे थे। अब एक छठा दरिया इंसान के गर्म-गर्म खून का भी बहने लगा है। पानी के दरियाओं पर हमने ईंट, पत्थर, और लोहे के पुल बना दिये हैं, छठे दरिया का पुल अब मनुष्य के शवों से चुना जा रहा है।"[११]

---

१०. "कौल-ए-फैसले" मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, सं० अर्श मर्सयानी.

११. आकाशवाणी संन् १९४७ में प्रसारित वार्ता, आज़ाद भवन पुस्तकालय, नई दिल्ली।

मौलाना की साहित्यिक रचनाओं में अन्य उनकी चार कृतियों का चयन किया गया है। तीन "गुबार-ए-खातिर" से और एक "तज़किरा" से। "गुबार-ए-खातिर" उर्दू में साहित्यिक गद्य का चमत्कार माना जाता है। यह वह कोश है जिसमें साहित्यिक रत्न छिपे हुए हैं। इसमें भाषाई और साहित्यिक सौंदर्य के दर्शन होते हैं तथा विभिन्न शैलियों में मनोभाव को अभिव्यक्त किया गया है। इस ग्रंथ से तीन उद्धरण इस चयन में संकलित किए गए हैं। इनमें से एक वह है जो मौलाना ने अपनी पत्नी की रुग्णावस्था और उनके मृत्यु पर लिखा है। दूसरा निबंध "संगीत पर" है और "चाय का आनंद और कारावास जीवन" तीसरा निबंध है जिसका चयन किया गया है। पहले निबंध से मौलाना की संवेदनशीलता और अपने वैयक्तिक दुःख की अभिव्यक्ति में उनकी संतुलित मनोभावना का परिचय प्राप्त होता है। वह लिखते हैं कि "इस प्रकार हमारा छत्तीस वर्षीय दांपत्य जीवन समाप्त हो गया है और मृत्यु की दीवार हम दोनों के बीच खड़ी हो गई है। हम अब भी एक-दूसरे को देख सकते हैं किन्तु इसी दीवार की ओट से।"[१२]

दूसरे निबंध में मौलाना ने संगीत से अपने गहरे लगाव और उसके अभ्यास के संबंध में लिखा है। वह अपने पिता से छुप कर मसीता खां से विधिवत संगीत की शिक्षा प्राप्त करते थे। यह व्यक्ति उनके पिता द्वारा दीक्षित था। इसके अतिरिक्त नित नवीन और अनोखे स्थानों पर अपने सितार बजाने का उल्लेख मौलाना ने इस लेख में किया है। ताजमहल में अपने सितार बजाने के आनंद को उन्होंने जिस प्रकार प्रस्तुत किया है वह उनके सौंदर्य-बोध का सुंदर उदाहरण है। उन्होंने लिखा है:

"प्रकाश और अंधकार के मिले-जुले उस वातावरण में अकस्मात सितार का सुर निःशब्द स्वरमाधुर्य में फूट पड़ता और हवा की लहरों पर बेरोक तैरने लगता। आसमान से तारे झड़ रहे थे और मेरी घायल उंगलियों से ताल और सुर।"[१३]

मौलाना ने "गुबार-ए-खातिर" कारावास में अत्यन्त कष्टदायक परिस्थितियों में लिखा था। बंदी जीवन के दुख, जीवनसाथी की पृथकता, राजनैतिक संकट, अनेकानेक नेताओं को कारावास, बंद किया जाना, ये वे परिस्थितियां **थीं** जिसमें निराशा का आ जाना स्वाभाविक है। परन्तु मौलाना की इस रचना में इन सब बातों के होते हुए भी आशा और साहस का तत्व महत्त्वपूर्ण है। उन्नीस सौ चालीस के प्रारंभ की मौलाना की रचनाओं की तुलना जब हम उन्नीस सौ चालीस के अंत की कृतियों से करते हैं तो वह हमें किसी अन्य युग की रचनाएं प्रतीत होती हैं। इस पुस्तक में उन्होंने कदम-कदम पर हर्षोल्लास के महत्त्व पर प्रकाश डाला है और कहा है कि परिस्थितियां चाहे कितनी भी प्रतिकूल क्यों न हो मनुष्य को प्रत्येक स्थिति में प्रसन्नचित्त रहना चाहिए:

"शुष्क उदास मुखाकृति बना कर हम उस चित्रशाला में नहीं खप सकते जो चित्रकार ने प्रकृति के क़लम से यहां चित्र बनाए हैं। जिस चित्रशाला में सूर्य के मस्तक का प्रताप हो, चांद का हंसता हुआ मुखड़ा हो, नक्षत्रों की क्रीड़ा हो, वृक्षों का नृत्य हो, पक्षियों का गान हो, प्रवाहित जल का संगीत हो और फूलों की रंगीन हाव-भाव अपना चमत्कार दिखा रहे हों तो उसमें एक बुझे हुए मन और सूखे हुए मुखड़े के साथ स्थान पाने के हम निश्चय ही पात्र नहीं हो सकते।"[१४]

---

१२ गुबार-ए-खातिर, पृ० २८१, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

१३. वही, पृ० २५९, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

१४. "गुबार-ए-खातिर", पृष्ठ २२६, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

हमने पाठकों की अभिरुचि का ध्यान रखते हुए एक अन्य निबंध का भी चयन किया है। पक्षियों से मौलाना के लगाव को सभी लोग जानते हैं। उन्होंने अपने दो पत्रों "चिड़े-चिड़िया की कहानी" में इसका उल्लेख विस्तार से किया है। हमने इन पत्रों को इस चयन में सम्मिलित नहीं किया है। इनका अंग्रेजी में श्रेष्ठ अनुवाद उपलब्ध है।"[१५]

परन्तु भारत में भूतपूर्व ब्रिटिश महाआयुक्त मैलकाम मैकडोनेल्ड की एक टिप्पणी को यहाँ उद्धृत कर रहे हैं जो उन्होंने पक्षियों के प्रति मौलाना के प्रेम के संबंध में लिखा है : "वह राजनैतिक कार्यों से अपना समय बचा कर प्रकृति का अध्ययन किया करते थे। अहमद नगर दुर्ग में निष्प्राण बंदी बन कर पड़े रहने के स्थान पर वह आनंदपूर्वक चिड़ियों को देखा करते थे।"[१६]

तज़किरा से जिस अंश का चयन किया गया है उसका महत्त्व साहित्यिक है और यह एक स्वलिखित जीवनी है। परन्तु इसको धार्मिक रचना भी कहा जा सकता है क्योंकि इसमें जीवन का वृत्तांत तो इसके अंतिम भाग में लिखा गया है। बिल्कुल अंत में मौलाना ने इस पुस्तक के लिखे जाने के उद्देश्य की चर्चा की है :

"यह अव्यवस्थित पृष्ठ मित्रवर श्री फज़्लुद्दीन अहमद के अत्यधिक आग्रह पर लिखे गए थे।" हमें फज़्लुद्दीन अहमद साहब का आभारी होना चाहिए कि उनके कारण यह अत्यन्त असाधारण आत्मकथा लिखी गई। वह इंजीनियर थे और "विख्यात व्यक्तियों के पूजक भी। निष्ठावानों की निष्ठा-प्रदर्शन से सभी महान व्यक्ति घबराते और उलझते हैं।" उन्होंने सबसे पहले मौलाना से इस विषय पर बात की तो उन्होंने इसे हंसी में उड़ा दिया। "बहुत-से महान व्यक्तित्व ऐसे हैं जिन्होंने अत्यन्त महान कार्य किये हैं किन्तु किसी ने भी उनकी जीवनचर्या नहीं लिखी। इन व्यक्तियों की उपेक्षा करके स्वयं अपने बारे में लिखना मौलाना को हास्यास्पद लगता था।" प्रो० मुजीब के कथनानुसार "हम आभारी हैं कि फज़्लुद्दीन अहमद ने हास्य-विनोद को समझने की चिन्ता न की। वह मौलाना से आग्रह करते रहे और यहां तक कि मौलाना को वचनबद्ध होना पड़ा कि वह प्रत्येक सप्ताह अपने जीवन के संबंध में लिख कर कुछ भेजा करेंगे।"

संकलनकर्त्ता के सम्मुख समस्या यह थी कि न्यूनाधिक तीन सौ पृष्ठों से किस अंश का चयन करें। यह बात तो निश्चित है कि जब तक "तज़किरा" के अंतिम भाग को न पढ़ा जाए तब तक कुछ समझ में नहीं आ सकता कि मौलाना ने अपने संबंध में क्या लिखा। यद्यपि उन्होंने अपनी जीवन की कथा को बिना किसी कृत्रिमता के प्रस्तुत किया है किन्तु घटनाओं को अत्यन्त अलंकृत भाषा और काव्यात्मक प्रतीकों के द्वारा प्रकाशित किया है। अपनी आध्यात्म यात्रा पर उन्होंने अत्यधिक बल दिया है। और इसके कारण अनावश्यक विवरण इसमें समाहित हो गये हैं। "तज़किरा" में एक साथ दो भिन्न प्रकार की शैलियां परिलक्षित होती हैं। फज़्लुद्दीन अहमद ने जब इच्छा प्रकट की थी कि मौलाना केवल अपनी जीवन-चर्या के संबंध में लिखें तो उन्होंने उत्तर दिया कि मेरी मनःस्थिति में बाधा उत्पन्न न करो, जो कुछ अनायास लेखनी से निकल जाता है उसे एकत्रित करते जाओ। इससे लाभ-ही-लाभ होगा।"[१७]

तीसरे और स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् के काल की मौलाना की उन कृतियों, वक्तव्यों और पत्रों का चयन किया गया है जो उन्होंने १९४७ से लेकर १९५८ तक अपनी मृत्यु के समय तक शिक्षामंत्री के रूप में लिखे थे।

---

१५. इलस्ट्रेड वीकली में प्रकाशित खुशवंत सिंह द्वारा 'चिड़े-चिड़िया की कहानी" का अनुवाद।

१६. मौलाना अबुल कलाम आज़ाद स्मारिका, संकलनकर्त्ता हुमायूं कबीर, मैलकाम मैकडोनाल्ड का एक निबंध "मौलाना आज़ाद और चिड़िया"।

१७. "तज़किरा", पृ० १८, फज़्लुद्दीन अहमद द्वारा लिखित प्रस्तावना, संपादक, मालिकराम।

कठिन समस्या यह थी कि इनके इस प्रकार के लेखन को सहज रूप से राजनैतिक, धार्मिक, दार्शनिक और साहित्यिक शीर्षकों के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता था। यह रचनाएं उस काल की हैं जब स्वाधीनता संग्राम समाप्त हो चुका था। और उसके तत्पश्चात् देश में उथल-पुथल मची हुई थी। उस समय कोई ऐसा नहीं दिखाई पड़ता था कि जनसमूह का नेतृत्व कर सके। अंतिम काल की कृतियाँ अधिकांशतः इसी बात से संबद्ध हैं। मौलाना ने विभिन्न विषयों पर भाषण दिए हैं और इन पर लिखा भी हैं क्योंकि ऐसा करना शिक्षा, प्राकृतिक संसाधन और वैज्ञानिक अनुसंधान के मंत्री के रूप में यह जरूरी था। वो जब भी बोलते थे तो चुभते हुए वाक्यों, भाषागत लालित्य और गहरे विचारों से उच्च पदाधिकारियों को झिंझोड़ कर रख देते थे। इस काल के अधिकांशतः भाषण जो उपलब्ध हैं वो अंग्रेजी में हैं और भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने अनूदित करा के प्रकाशित किया है। इस दौरान मौलाना की भाषा पर फारसी और अरबी का प्रभाव अत्यधिक कम है और उन्होंने ऐसी उर्दू लिखी है जो साधारणतया समझी जाती है। फिर भी उनकी अभिव्यक्ति की विशेषताएं और उसकी छाप इन भाषणों में परिलक्षित होती है। स्वतन्त्रता के उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वयं को समर्पित कर देने का संकल्प और उस भाव के उत्तेजनापूर्ण अभिव्यक्ति की धारा अब नवस्थापित सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों की सुदृढ़ता और दृढ़संकल्पता के साथ व्याख्या की ओर मुड़ गई थी। आकाशवाणी में उनकी आवाज का टेप अब भी सुरक्षित है जिसमें युवावस्था के उनके भाषणों का जोश और जनता को उत्तेजित करने वाली विशेषताएं विद्यमान हैं। इस चयन में उनका वह अभिभाषण सम्मिलित है जो उन्होंने १९४८ में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड के सम्मुख दिया था। इसकी विशेषता यह है कि यह उनके अपने हाथों का लिखा हुआ है और जिसका सरकारी अनुवाद अंग्रेजी में किया गया है। इसमें उन्होंने शिक्षा-नीति निर्धारित करने के दो अत्यन्त सूक्ष्म समस्याओं पर प्रकाश डाला, एक स्कूलों में धार्मिक शिक्षा की समस्या और दूसरी हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद पर आसीन करने की समस्या। १९५६ में उन्होंने यूनेस्को के नवें इजलास से संबोधन किया था जो देहली में प्रथम बार आयोजित हो रहा था। श्री मोहम्मद यूनुस जो उस समय इस जलसे में एक नवयुवक प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित थे, उनका कहना है कि मौलाना ने अपना यह अभिभाषण अत्यन्त प्रांजल उर्दू में बिना किसी नोट के सहायता के पढ़ा था। अंग्रेजी में लिखा हुआ अभिभाषण प्रतिनिधियों के हाथों में था। जो मौलाना के भाषण के साथ-साथ उसके पृष्ठ पलटते जा रहे थे। "इस जलसे के अंत में पंडित नेहरू ने मुझसे कहा कि इस व्यक्ति की स्मरणशक्ति इतनी प्रबल है कि एक शब्द भी लिखित अभिभाषण से हटा हुआ नहीं है।" [१८]

मौलाना की सांस्कृतिक दृष्टि और उनके सौंदर्य-बोध के प्रमाण साहित्य अकादमी, संगीत नाटक अकादमी और ललित कला अकादमी हैं और इन्हीं की प्रेरणा से राष्ट्रीय सीमाओं को तोड़कर सांस्कृतिक संबंध के भारतीय परिषद् की स्थापना हुई। इन तीनों अकादमियों के उद्घाटन समारोहों में जो भाषण मौलाना ने दिए हैं उनके उद्धरण इस चयन में सम्मिलित हैं ताकि मौलाना के व्यक्तित्व का यह असाधारण पक्ष भी लोगों के सामने आ जाए जिससे उनकी विद्वत्ता और प्रशासनिक योग्यता के साथ-साथ उनके सौंदर्य-बोध और ललित कलाओं के प्रति उनका आदरभाव व्यक्त होता है। उन्होंने इस आवश्यकता को महसूस किया कि राष्ट्रीय स्तर पर ललित कलाओं को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। अंग्रेजी राज्य के डेढ सौ वर्षों की अवधि में

---

१८. श्री मोहम्मद यूनुस ने एक भेंट में ये घटना मुझे सुनाई थी।

इस प्रकार के प्रोत्साहन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। और देश इससे नितांत वंचित था।

मौलाना के संसदीय भाषणों में से वह ऐतिहासिक वाद-विवाद इस चयन में सम्मिलित किया गया है जो १९ मार्च १९३४ को शिक्षामंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और पुरुषोत्तम दास टंडन तथा सेठ गोविन्द दास के बीच हुआ था। "इंडियन एक्सप्रेस" के विशेष संवाददाता ने लिखा है कि "मौलाना ने जब अपने मंत्रालय पर की गई आलोचना के उत्तर में भाषण दिया तो १९३० और १९४० का समय याद आ गया जब कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में मौलाना ने अपने उत्कृष्ट अभिभाषण दिये थे और अपनी वाग्वैदिग्धता से हजारों लोगों को मोहित कर दिया था। अतिथियों की गैलरी में बैठे हुए लोगों ने देखा कि आपत्तियां उठाने वालों की हालत बुरी थी। मौलाना के इन शब्दों ने लोगों को मुग्ध कर दिया और सबसे अधिक उत्तेजक क्षण वो थे जब मौलाना के कहा था कि:

"मैंने चालीस वर्ष पहले अपने जीवन का कार्यक्रम देशसेवा का बनाया था और उस समय मेरी आयु १९ वर्ष से अधिक न थी। उस समय से लेकर आज तक मेरा जीवन एक खुली पुस्तक है जो दुनिया के सामने है। कोई इच्छा अब मेरे अंदर नहीं है। जीवन का बहुत बड़ा भाग समाप्त हो गया, जो थोड़ा शेष है, जाने कब वह भी समाप्त हो जाए... जब कोई व्यक्ति तमाम वैयक्तिक स्वार्थों से मुक्त हो जाता है तो वह असीम हो जाता है अथाह हो जाता है।"[१९]

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षामंत्री के रूप में मौलाना ने कई दीक्षांत समारोहों में अभिभाषपा दिए हैं। हमने इन दीक्षांत समारोहों के भाषणों में से उसका चयन किया है जो मंत्रीपद स्वीकार करने के तुरंत पश्चात् उन्होंने दिया था और जिसका शीर्षक है, "राष्ट्रीयता और अलीगढ़"। इस अभिभाषण की महत्ता यह है कि इसमें पहली बार मौलाना ने सर सैयद अहमद खां से अपने मतभेदों का उल्लेख स्पष्ट शब्दों में किया है। पहले तो उनके प्रति अपनी निष्ठा की चर्चा की है और उसके पश्चात् उस निराशा का उल्लेख किया है जो सर सैयद से उन्हें हुई थी। मौलाना और सर सैयद के मतभेद के संबंध में विभिन्न संप्रदायों में नाना प्रकार की बातें होती रही हैं। इस अभिभाषण में जो कुछ कहा गया है, उससे उस सारे वाद-विवाद का अंत हो जाता है। ये अभिभाषण केवल अंग्रेजी में उपलब्ध हैं। स्पष्ट है कि इसका अनुवाद अंग्रेजी से हिन्दी में करना पड़ा। यह स्थिति मौलाना के उस "प्राक्कथन" की है जो उन्होंने राधाकृष्ण की पुस्तक 'दर्शन के इतिहास' पर लिखा था और जिसे १९५२ में एलाइन एंड ऐनून ने प्रकाशित किया था। इस "प्राक्कथन" से मौलाना की विद्वत्ता और उनके दार्शनिक चिंतन का अनुमान लगाया जा सकता है। इससे सिद्ध होता है कि उन्होंने विभिन्न दर्शनों का कितनी गहराई से तुलनात्मक अध्ययन किया था। यह अंग्रेजी में है किन्तु मौलाना की शैली की छाप इसमें स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इसका प्रारंभिक अंश देखिए:

"एक फारसी कवि ने सृष्टि की तुलना उस प्राचीन पांडुलिपि से की है जिसका प्रथम और अंतिम पृष्ठ खो गया हो। इसलिए यह कहना असंभव है कि इसका आरंभ कैसे हुआ और न ही हम यह जानते हैं कि इसका अंत कैसे होने जा रहा है।

मज़ आगज़-ओ-ज़े अंजाम-ए-जहां बेख़बेरम
अव्वल-ओ-आख़िर ईं इक कुहना किताब उफ़्तदस्त
(मैं सृष्टि के आदि और अंत से अनभिज्ञ हूं
इस प्राचीन ग्रंथ का आरंभ और अंत खो गया है।)

---

१९. अनुदान भाग, १९५४, लोकसभा संग्रहालय, नई दिल्ली।

मौलाना की अंतिम रचना "हमारी आजादी" उनके देहावसान के पश्चात् सर्वप्रथम जनवरी, १९५९ में प्रकाशित हुई थी। एकमात्र पुस्तक यही है जो अंग्रेजी में मौलाना के नाम से प्रकाशित हुई है। इसको "हमारी आजादी" के नाम से प्रो० मुहम्मद मुजीब ने अंग्रेजी से उर्दू में रूपांतरित किया है। ये एक ऐसी पुस्तक है जो मौलाना ने लिखी नहीं है, बल्कि वह जो कुछ उर्दू में बोलते जाते थे, हुमायूं कबीर उसे अंग्रेजी में लिखते जाते थे। उन विवादाग्रस्त तीस पृष्ठों के अतिरिक्त जिन्हें दुर्भाग्यवश मौलाना की जन्म-शताब्दी में सबसे अधिक ख्याति मिली। इस पुस्तक में उस काल के इतिहास के अनेक पृष्ठ जुड़े हुए हैं। संपूर्ण पुस्तक की रचना-शैली के विषय में हमारा यह तुच्छ मत है कि उर्दू और हिन्दी भाषाओं में जो भेद है उन्हें दृष्टि में रखते हुए इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि यह पुस्तक लिखी नहीं गई है बल्कि बोल कर लिखवाई गई है। यही कारण है कि मौलाना की अन्य रचनाओं "तज़किरा", तर्जमान-अल-कुरान" और "गुबार-ए-खातिर" की शैली से इस पुस्तक की शैली मेल नहीं खाती है। मौलाना ने डाक्टर राधाकृष्णन की पुस्तक "दर्शन का इतिहास" पर जो प्राक्कथन लिखा था और जो अंग्रेजी में उपलब्ध है, जैसे कि पहले कहा जा चुका है, इससे भी मौलाना की चिन्तन-पद्धति का आभास होता है और इस पर उनकी दार्शनिक और साहित्यिक, रचना-शैली की छाप है। वास्तविकता यह है कि "इंडिया विंस फ्रीडम", मौलाना और हुमायूं कबीर के बीच जो बात हुई है उसको जिस ढंग से इस पुस्तक में लिपिबद्ध किया गया है वह पद्धति रिपोर्ट की जैसी है और यह मौलाना की तुलना में हुमायूं कबीर की रचना-शैली से कहीं अधिक निकट है। इस संबंध में यह रोचक बात याद आती है कि फज़लुद्दीन अहमद साहब जिन्होंने अत्यन्त प्रयत्न और श्रम से मौलाना की जीवनी उनसे लिखवाई है, वह मौलाना के जीवन और तिथि क्रमानुसार घटनाओं से संबद्ध पन्द्रह प्रश्न लेकर मौलाना के पास रांची गए। मौलाना ने इनमें से एक भी प्रश्न का उत्तर प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिया था और फज़लुद्दीन अहमद ने उनके उत्तर को वैसे का वैसा ही लिख दिया था। इसलिए "तज़किरा प्रत्यक्ष सुंदर रचना-शैली के कारण एक साधारण स्वरचित जीवनी बन गया। दूसर्री ओर हुमायूं कबीर ने "इंडिया विंस फ्रीडम" में घटनाचक्र को प्रस्तुत करते समय मौलाना को तिथियों पर ध्यान देने को विवश किया। इस पुस्तक का एक रोचक अध्याय "भारत छोड़ो" है। इसे इस चयन में सम्मिलित किया गया है।

मौलाना की गणना उत्कृष्ट पत्र लेखकों में होती है। उनके अत्यधिक विख्यात पत्रों का संकलन 'गुबार-ए-खातिर" है। ये पत्र उन्होंने अपने मित्र सद्र यारगंज को लिखे थे। इन पत्रों में मौलाना ने अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण किया है और अपने दृष्टिकोण की व्याख्या की है। कारावास में ये पत्र लिख-लिख कर मौलाना इन्हें एकत्रित करते रहे हैं और जिसे ये पत्र लिखे गये थे उसे यह उस समय पहुंचे जब जून १९४५ ईस्वी में मौलाना जेल से छूटे। कुछ और भी पत्र हैं, जिन्हें "मकातीब अबुल कलाम" के नाम से अबु सलमान शाहजहांपुरी ने संकलित करके प्रकाशित कराया है। अन्य पत्र ऐसे हैं जो छपे नहीं हैं और पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं। मौलाना के सैकड़ों पत्रों में से हमने उन पत्रों को ही चुना है जो उन्होंने उन दो महानुभावों को लिखे हैं जिनका उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इनमें एक उनके मार्गदर्शक गांधी जी हैं और दूसरे उनके दीर्घकालीन मित्र जवाहरलाल नेहरू हैं। इन पत्रों में उस आदर और सम्मान की सीधी-सादी अभिव्यक्ति मिलती है जो इन लोगों के मन में एक-दूसरे के लिए थी। २७ जून १९४६ ई० को मौलाना ने गांधी जी को एक अत्यन्त ज्वलंत समस्या पर उस समय पत्र लिखा था, जब महात्मा गांधी के पुत्र हरिलाल ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था। उन्होंने लिखा था

कि : "आपने मुझसे पूछा है कि क्या इस प्रकार का धर्म परिवर्तन इस्लाम में मान्य है? क्या यह इस्लाम के प्रचार-प्रसार का उचित ढंग है? और क्या इसे चलते रहना देना चाहिए? इस्लाम में धर्म का संबंध केवल आत्मा और मन से है। कोई भी उस समय तक उचित रूप से इस्लाम स्वीकार नहीं कर सकता जब तक उसमें किसी सांसारिक स्वार्थ का लेशमात्र भी अंश शेष है। इस्लाम के पैगंबर ने यह सिखाया है कि मनुष्य के कर्मों का आधार इस बात पर है कि उसकी नियति क्या है? और ईश्वर केवल शब्दों और दिखावे कामों को नहीं देखता वह तो मन और उस नियति को देखता है जिससे वे कार्य किए गए हैं?"[२०] इस संकलन में वे पत्र, तार, और वे विज्ञप्तियां सम्मिलित की गई हैं जिनमें गांधी जी, पंडित जी और मौलाना ने अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार-विनिमय किया है।

इस संकलन में सम्मिलित सामग्री का इस प्रस्तावना में विवेचन करने के पश्चात् अब इस बात की आवश्यकता है कि हम उस प्रशिक्षण पृष्ठभूमि का सिंहावलोकन करें जिसके कारण लेखक ने उत्कृष्ट रचनाएं प्रस्तुत कीं। फातिमा बेगम मौलाना आजाद की बड़ी बहन थीं। और उन्होंने ख्वाजा अहमद फारुकी को मौलाना के बचपन के संबंध में बताया था कि "स्वर्गीय मौलाना आज़ाद मुझसे चार साल छोटे थे। हम दोनों का जन्म मक्का में हुआ था। जब आज़ाद की आयु १० वर्ष की थी तो हमारे पिता हमें कलकत्ता ले आये जहां उनके बहुत से शिष्य रहते थे। मेरे भाई का नाम मोहिउद्दीन अहमद था और आज़ाद उनका उपनाम था। इनकी शिक्षा-दीक्षा पिता की देख-रेख में हुई थी। आज़ाद उच्चकोटि की कविता लिखते थे। जब वह १४ वर्ष के थे तो उन्होंने एक शेर लिखा था जो मुझे अभी तक याद है :

> आज़ाद बेखुदी के नशेबोफ्रोज़ देख,
> पूछी ज़मीन की तो कही आसमान की।[२१]

मौलाना के पूर्वजों में से एक जमालुद्दीन इलियास "शेख बहलोल" मुगल सम्राट अकबर के समकालीन थे। यह उन धर्माचार्यों में से थे जिन्होंने इस वक्तव्य पर हस्ताक्षर करना अस्वीकार कर दिया था जिसमें कहा गया था कि बादशाह किसी नए धर्म का प्रवर्त्तक हो सकता है। जमालुद्दीन के बेटे शेख मुहम्मद अपने पिता के पदचिह्नों के पदों पर चलते हुए ग्वालियर के नरेश के सम्मुख उसकी अधीनता अस्वीकार कर दी थी और इस अपराध में उन्हें बंदी बना लिया गया था। "तज़किरा" में मौलाना ने शेख जमालुद्दीन के जीवन पर प्रकाश डालते हुए इस बात पर अत्यन्त संतोष प्रकट किया है कि उनके पूर्वज सांसारिकता को घृणा की दृष्टि से देखते थे : "यह शहादत देख.कर मन को कितना संतोष हुआ कह नहीं सकता। इस विचार ने मन को प्रसन्न और मस्तिष्क को आनंदित किया कि हमारे पूर्वज सदैव ही विद्याअर्जन, हदीस (वचनावली) एवं सुन्नह (आचरण) की सेवा में संलग्न रहे और प्रारंभ से ही सम्मान प्राप्ति हमें इस कारण से होती रही कि हमने दारिद्रय को आत्मसात किया, फर्श पर बैठना स्वीकार किया और सांसारिक सफलता से दूर रहे। इसीलिए लोग हम लोगों के बारे में आदरपूर्वक चर्चा करते हैं और सुन्नह का अनुसरण करने में हमें निष्ठावान बताते हैं। क्योंकि सांसारिक लालसाओं से विमुख होकर हम इस मार्ग पर चलते रहे।"[२२]

---

२०. महात्मा गांधी के नाम मौलाना आजाद का अप्रकाशित पत्र, गांधी स्मारक निधि, नई दिल्ली।

२१. "आजकल", सितंबर १९६७, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद नामक अपने लेख मे अर्श मलसियानी द्वारा उद्धृत।

२२. "तज़किरा", संपादक, मालिकराम, पृष्ठ ३०२.

मौलाना मनुव्वरुद्दीन आज़ाद के परदादा थे जो १८५५ में भारत की तत्कालीन स्थितियों से विचलित होकर हिज़ाज़ चले गये थे। उन्हें बंबई जाना था। वह जाते हुए भोपाल से गुज़रे। उस समय भोपाल नवाब सिकंदर बेगम के शासन में था जिन्होंने आग्रह करके मौलाना मुनुव्वरुद्दीन को भोपाल में रोक लिया। परन्तु अंततोगत्वा मौलाना मुनुव्वरुद्दीन बंबई पहुंचे जहां उनके मुरीदों ने उन्हें रोक लिया और वहीं १८५८ या १८५९ में उनका देहान्ह हो गया। मुनुव्वरुद्दीन के पोते (मौलाना आज़ाद के पिता) खैरुद्दीन ने इस यात्रा को जारी रखा और अकेले ही हिज़ाज पहुंच गये। यहां उन्हें धर्माचार्यों और सूफियों के संपर्क में आने का अवसर मिला। १८७० या १८७१ में उन्होंने एक अरब महिला से विवाह कर लिया जो उनके एक गुरु शेख मोहम्मद ज़ाहिद वली की भांजी थी। मौलाना खैरुद्दीन के पांच बच्चे हुए। इनमें से तीन बेटियां थीं जिनके नाम ज़ैनब, फातिमा और हनीफा हैं और दो बेटे थे जिनका नाम अबूनस गुलाम यासीन और अबुल कलाम मोहीउद्दीन अहमद है। बड़े बहन के अतिरिक्त ये सारे बच्चे कविता करते थे। इनमें दोनों लड़कियों का उपनाम आरज़ू और आबरू है और दोनों भाईयों का उपनाम 'आह' और 'आजाद' है।

आज़ाद का जन्म मक्के में 'जिलहिद' १३०५ हिज़री ईस्वी सन् के अनुसार नौ अगस्त या ६ सितंबर १८८८ को हुआ था। हुमायूं कबीर ने मौलाना के स्मारिका ग्रंथ में उनकी जन्मतिथि ११ नवंबर १९८८ लिखी है। किन्तु इस तिथि के ठीक होने का साक्ष्य अन्य किसी स्रोत से नहीं होता। इनके पिता ने इनका तारीखी नाम **फिरोज़ बख्त** रखा था। १८९८ में मौलाना खैरुद्दीन सपरिवार कलकत्ते आ गए। यहां १५ साल की आयु में आज़ाद ने निज़ामी पाठ्यक्रम समाप्त कर लिया। इस पाठ्यक्रम की पूर्ति इससे अधिक आयु में भी कम ही शिक्षार्थी कर पाते हैं। केवल यही वह अवधि है जिसमें आज़ाद की विधिवत शिक्षा-दीक्षा हुई। यह मान्यता ठीक नहीं है कि आज़ाद की शिक्षा काहिरा के जामियां-उल-अज़हर में हुई है। यह भ्रांति महादेव देसाई के 'मौलाना अबुल कलाम आज़ाद' नामक मौलाना की जीवनी द्वारा प्रसारित हुई है। पं० जवाहरलाल नेहरू ने मौलाना आज़ाद के देहावसान के एक दिन पश्चात् संसद में जो भाषण दिया था उससे इस भ्रांति की पुष्टि हुई है। मौलाना ने तो जामिया-उल-अज़हर की शिक्षा पद्धति की कटु आलोचना की है। उन्होंने **गुबार-ए-खातिर** में लिखा है कि "बौद्धिक शास्त्रों की अत्यधिक आधुनिक भारतीय पुस्तकों का पढ़ाया जाना अल-अजहर में निषिद्ध है। जमालुद्दीन अफगानी को अपने भाषण के लिए वहां पुस्तकें उपलब्ध न हो सकीं और **अबदू** निराश होकर विश्वविद्यालय छोड़ कर चले गये।"[२३] आज़ाद के पिता उनकी शिक्षा-दीक्षा पर कड़ा नियंत्रण रखते थे। मौलाना खैरुद्दीन बहुत सख्त आदमी थे। आज़ाद ने इस बात का उल्लेख "गुबार-ए-खातिर" में किया है। मौलाना आज़ाद को जो पाठ पढ़ाया जाता था वो प्रथम बार में ही उसे याद कर लेते थे। इनकी स्मरणशक्ति इतनी अच्छी थी कि एक बार जो कुछ पढ़ लेते थे वह उन्हें तुरंत याद हो जाता था। इनके पिता प्रतिदिन प्रातः काल अपने दोनों बेटों को पढ़ाते थे। किन्तु इनको पाठ के दौरान प्रश्न करने की अनुमति नहीं थी। परन्तु इनके पढ़ाने की पद्धति इतनी पूर्ण थी कि पाठ के अंत में किसी प्रकार के प्रश्न की आवश्यकता नहीं होती। अब्दुल रज्ज़ाक मलीहाबादी ने स्वयं मौलाना के माध्यम से उनकी असाधारण स्मरणशक्ति और हर बात को समझ लेने की उनकी क्षमता के संबंध में लिखा है कि "मैंने अपने मस्तिष्क में खाने बना रखे हैं, सैकड़ों हजारों खाने। यह खाना विधि का है, यह अंतर्राष्ट्रीय राजनीति का है, यह इतिहास

२३. आयान हेण्डरसन डग्लस द्वारा उद्धृत · मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : एक बौद्धिक एव धार्मिक जीवनी, पृ० ४०.

का है, यह गणित का है और यह सेना का है। मैं अपने ज्ञान को एक निपुण 'स्टोर कीपर' के समान सुघड़ता से पूरे अनुशासन सहित अलग-अलग खाने में एकत्रित करता हूं और जिस समय जिस प्रकार की आवश्यकता पड़ती है वही खाना खोल देता हूं और शेष खाने बंद रखता हूं।"[२४]

इस वक्तव्य को भली भांति समझे बिना डोग्लस ने यह टिप्पणी की है कि मौलाना का प्रशिक्षण अपूर्ण था और उसने लिखा है कि :

"उनका प्रशिक्षण वस्तुतः ऐसा हुआ था जिससे ज्ञान-भंडार के एकीकरण के मार्ग में अवरोध उत्पन्न होता था और एक शास्त्र का ज्ञान दूसरे क्षेत्र के ज्ञान से संबद्ध नहीं था। निश्चय ही आज़ाद की बौद्धिकता कुछ सीमा तक अपने इस प्रारंभिक प्रशिक्षण के प्रभाव पर नियंत्रण करने में सफल हो सकी।"[२५]

आज़ाद की तीव्र इच्छा होती थी कि उन्होंने जो कुछ पढ़ा है उसके संबंध में किसी से वार्तालाप करें। बाल्यावस्था में इनके यहां की दिनचर्या यह थी कि इनकी बैठक में पचास-साठ लोग एकत्रित होते थे और संध्या समय की नमाज़ के पश्चात् वह आज़ाद से विभिन्न विषयों पर प्रश्न करते थे। उस समय उनकी आयु दस-ग्यारह वर्ष से अधिक न थी। यह लोग उनको वीर-पुत्र कहते थे और इनकी बातों को अत्यंत ध्यान से सुनते थे, इनके एक-एक शब्द की प्रशंसा करते थे। मौलाना अपने इस बातचीत को "मूर्खता" कहते थे जो बाल्यावस्था में अपने पिता के मुरीदों से किया करते थे।

आज़ाद ने शीघ्र ही स्वयं को इस सैनिक अनुशासन से निकाल कर जिज्ञासु जीवन के स्वतन्त्र वातावरण में ला खड़ा किया और यह उन अनेक बाह्य प्रभावों का फल था जो उन पर उस समय पड़ रहे थे। इनके पिता इन्हें जब व्याकरण लिखवाते तो वह चुपके-चुपके उर्दू साहित्य का अध्ययन करते रहते। उससे इनके मानस क्षितिज का विस्तार हुआ। इसी अवधि में संगीत के प्रति इनमें अभिरुचि उत्पन्न हुई और इन्होंने सितार बजाना आरंभ कर दिया। एकांत में वे अपने पिता से उस असहिष्णुता के संबंध में बहस करते जो उनके पिता वहाहिबों के प्रति रखते थे। मौलाना आज़ाद को अपने पिता के मुरीदों की विनम्रता और चाटुकारिता बुरी लगने लगी। और वह लोग जब उनके प्रति उसी प्रकार व्यवहार करते थे तो इन्हें अच्छा नहीं लगता था :

"अधिक से अधिक आयु मेरी तेरह वर्ष की थी कि मेरा मन अकस्मात् अपनी तात्कालिक स्थिति और परिवेश से उचाट हो गया। तथा ऐसा लगने लगा कि मैं किसी अच्छी स्थिति में नहीं हूं... यहां तक कि मुझे उन सारी बातों से जो लोगों की दृष्टि में अत्यन्त आदर और सम्मान की बातें थीं, एक प्रकार से घृणा हो गई... जो लोग अब मेरा हाथ-पांव चूमते तो मुझे ऐसा लगता कि जैसे कोई बहुत बुरा काम हो रहा है।"[२६] केवल इतना ही नहीं, उनके मन में उन अवधारणाओं के संबंध में भी आशंकाएं उत्पन्न होने लगीं जिनमें उन्होंने आंख खोली थी और जो केवल प्राचीन रीति-रिवाजों के प्रति मोह और पिता पितामह की जीवन-पद्धति के अनुकरण का फल थी। वास्तविकता को प्राप्त करने की इच्छा और जिज्ञासा तेरह वर्ष की आयु में आरंभ हुई थी। बहुत दिनों के पश्चात् उन्होंने तर्जमा-उल-कुरान लिखते समय अपनी इस व्यथा का उल्लेख किया है :

२४. अबुर रज़्ज़ाक मलीहाबादी **ज़िक्र-ए-आज़ाद** : आयन एण्डरन डोग्लास द्वारा उद्धृत, **मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : एक बौद्धिक और धार्मिक जीवनी**, पृ० ४१.

२५ श्री डग्लस, पृ० ४१.

२६. श्री डग्लस, पृ० ५०.

"मेरे मन का कोई विश्वास ऐसा नहीं है जिसमें संदेह के कंटक न चुभ चुके हों और मेरी आत्मा की कोई अवधारणा ऐसी नहीं है जो अस्वीकृत की समस्त परीक्षा से निकली हो। मैंने विष की घूंट भी प्रत्येक प्याले से पीये हैं और विष को उतारने के प्रत्येक चिकित्सालय के नुस्खे का भी मैंने सेवन किया है। मैं जब प्यासा था तो मेरी तृष्णा दूसरों के समान न थी और जब मैं तृप्त हुआ तो मेरी तृप्ति का स्रोत भी सहज मार्ग पर न था।"[२७]

इस ग्रंथ में मौलाना की जो रचनाएं संकलित हैं उन्हें मौलाना के प्रारंभिककालीन परिवेश को सम्मुख रख कर पढ़ना चाहिए। इनकी तैयारी उन्होंने बाल्यकाल से ही आरंभ कर दी थी। इनकी बाल्यावस्था के संबंध में आश्चर्य प्रकट करते हुए इनकी बड़ी बहन ने कहा है कि आज़ाद सचमुच कभी बच्चा थे। उन्होंने लिखा है कि "इसके ही उन नन्हे-मुन्ने कंधों पर एक प्रौढ़ मस्तिष्क था।" मौलाना की समकालीन सरोजनी नायडू के कथनानुसार जब मौलाना का जन्म हुआ तो उनकी आयु पचास वर्ष थी। इंदिरा गांधी के नाम लिखे गये अपने एक पत्र में नेहरू ने भी ऐसे विचार व्यक्त किये हैं:

"संभवतः वह बहुत जल्दी बड़े हो गये। समय से पूर्व उनमें प्रौढ़ों जैसी प्रतिभा है, वह अब भी किसी प्रकार बूढ़े नहीं लगते। वह सर्वदा ऐसे ही पक्के और प्रौढ़ रहे हैं। और उनके संबंध में यह सोचना कठिन है कि वो कभी सरफिरे और उत्तेजनायुक्त युवक रहे होंगे।"[२८]

मौलाना ने "गुबार-ए-खातिर" में अपने बाल्यकाल की जो घटना उल्लिखित की है उससे भी इस विचार की पुष्टि होती है:

"लोग लड़कपन का समय खेलकूद में बिताते हैं। परन्तु बारह-तेरह वर्ष की आयु में मेरी स्थिति यह थी कि पुस्तक लेकर किसी कोने में जा बैठता और प्रयत्न करता था कि लोगों की आंखों से ओझल रहें। कलकत्ता में आपने "डलहौजी स्क्वायर" अवश्य देखा होगा। बड़े डाकखाने के सम्मुख स्थित है, इसे साधारणतया लाल डिग्गी कहा करते थे। इसमें वृक्षों का एक झुण्ड ऐसा था कि बाहर से देखिए तो पेड़ ही पेड़ किन्तु इसके अंदर पर्याप्त खुली जगह है और इसमें एक बेंच पड़ी हुई है। जब मैं सैर के लिए निकलता तो पुस्तक साथ ले जाता और वृक्षों के झुण्ड में बैठकर अध्ययन में तल्लीन हो जाता। स्वर्गीय पिता जी के विशेष सेवक स्वर्गीय हाफिज़ वली उल्लाह साथ हुआ करते। वो बाहर टहलते रहते और झुंझला-झुंझला कर कहते—"यदि तुझे पुस्तक ही पढ़नी थी तो घर से क्यों निकला?"[२९]

यह विचार प्रमाणित है परन्तु मौलाना के जीवन का एक पक्ष और भी है जिस पर उनके किसी समकालीन ने प्रकाश नहीं डाला। इसका कारण संभवतः यही हो कि वो लोग इनके सहचर नहीं थे। इस बात को विशेष रूप से स्वीकार कर लिया गया है कि उनकी युवावस्था भी उत्तेजनापूर्ण और दीवानी नहीं थी, क्योंकि उनकी बाल्यावस्था साधारण बच्चों जैसा न था। मौलाना ने इसका उल्लेख स्वयं किया है किन्तु यह सांकेतिक और अलंकृत भाषा में है "तज़किरा" का अंतिम अध्याय उनके इस जीवन का परिचायक है जिससे लोग कम परिचित हैं:

"मस्ती और विस्मृति के इन्द्रजाल में घिर गया। मादकता से प्याला भर गया। जवानी के

२७ 'तरजाम-उल-कुरान', प्रथम सस्करण की प्रस्तावना, साहित्य अकादमी, पृष्ठ ५२.

२८ "जवाहरलाल नेहरू की कृतियों का संकलन", एस. गोपाल, पृ० ३९.

२९. गुबार-ए-खातिर, साहित्य अकादमी, पृ० ८०-८१.

सरफिरेपन ने मुझे वशीभूत कर लिया। तृष्णा और लालसा ने मन पर अधिकार जमा कर उसने इनकी पूर्ति की ओर अग्रसर किया। बुद्धि और ज्ञान ने पहले तो इस पर आश्चर्य प्रकट किया तत्पश्चात् उन्होंने भी अनुमति दे दी कि यही निश्चय ही उचित मार्ग है और जीवन का आनंद लेने का यही उचित संबंध है। एक कवि ने कहा है:

ऐ साकी बुरा न मान
मेरे आचरण का,
यह तो मेरे यौवन का काल है।

इसके पश्चात् जवानी के बीते दिनों को याद करते हुए मौलाना ने 'गुबार-ए-ख़ातिर'' में लिखा है:

''चौबीस वर्ष की आयु मे जब लोग यौवन और ऐश्वर्य की मादकता की यात्रा आरंभ करते हैं तो मैं यात्रा समाप्त करके अपने तलवों के कांटे चुन रहा था। इस संबंध में भी अपनी चाल दूसरों से उल्टी रही। लोग जीवन के जिस मोड़ पर कमर बांध रहे थे, मैं खोल रहा था।''.

पाठकों को इस पुस्तक में संकलित सामग्री के लिए मानसिक रूप से तत्पर करने के लिए मौलाना आज़ाद के जीवन के संबंध में और भी लिखा जा सकता है किन्तु हम इस चर्चा को मीर के इस शेर पर समाप्त करते हैं जो मौलाना को बहुत पसंद था:

काम थे इश्क में बहुत पर **मीर**
हम फारिग़[1] हुए शताबी[2] से

हमने इस प्रस्तावना में अनुवाद की समस्याओं पर प्रकाश डाला है और इस बात की व्याख्या की है कि इस चयन में सम्मिलित रचनाएं किस कारण से संकलित की गई हैं। मौलाना की जीवन-वृत्तांत का भी हमने संक्षिप्त वर्णन किया है इससे अधिक विस्तार में जानने की इच्छा जिन पाठकों को हो उनसे निवेदन है कि वह इसके लिए अनुक्रमणिका और मौलाना की जीवन की घटनाओं की तिथिबद्ध तालिका देखें जो इस चयन में सन्निहित किया जा रहा है।

मौलाना आज़ाद की कृतियों की संक्षेप में प्रस्तुति तिलिस्मी कार्य है क्योंकि ये रचनाएं ऐसा लघु ब्रह्मांड हैं जिनमें बीसवीं शताब्दी के पहले अर्द्धशतक की विस्तृत और महत्त्वपूर्ण घटनाओं का सार निहित है। मौलाना की जन्म-शताब्दी वर्ष में उनकी साहित्यिक व बौद्धिक परंपरा को इस स्मारिका ग्रंथ में संकलित करके अंग्रेजी, हिन्दी एवं उर्दू में इस दृष्टि से प्रस्तुत किया जा रहा है कि भारतवासी और संसार के अन्य भागों के लोग शताब्दी के एक उत्कृष्ट मनीषी से परिचित हो सकें। मौलाना आज़ाद क्या इस संकलन को पसंद करेंगे जो इक़बाल की कविता ''शाकीनामा'' के इस शेर के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है:

यही कुछ है साकी मताए[3] फकीर
इसी से फकीरी में हूँ मैं अमीर।

---

१. फारिग़—मुक्त होना, २. शताबी—शीघ्रता से, ३. मताए—धन-सम्पत्ति

३०. वही, पृ० १०३.

भाग १

प्रतिभाशाली प्रारंभ : १८९९–१९१६

प्रयोगात्मक पत्रकारिता

लिसान-उल-सिद्क़

(सत्यवाणी)

"समुदाय को असत्य से बचाना और सत्य की ओर उसे अग्रसर करना लिसान-उल-सिद्क़ का दायित्व और कर्तव्य है।"

लिसान-उल-सिदक़ *

उद्देश्य और कार्य

"सत्य मुक्त करता है और असत्य मारता है।" लिसान-उल-सिदक का दायित्व और कर्तव्य असत्य के विरुद्ध राष्ट्र की रक्षा करना है और उसे सत्य-पथ पर ले चलना है।

क्योंकि इसे सत्य के अतिरिक्त और कुछ न बोलने का कर्तव्य सौंपा गया है इसलिए राष्ट्र को इससे पंचम स्वर के संगीत की आशा नहीं करनी चाहिए। सत्य सदैव ही कड़वा होता है। 'सत्य की भाषा' मीठी हो ही नहीं सकती। यह कर्कश शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति करती है और तीक्ष्ण कटाक्ष करती है जो सदैव रुचिकर नहीं होती,बहुधा अत्यन्त अरुचिकर ही होती है। वह समय दूर नहीं जब 'सत्य द्वारा मुक्ति' और 'असत्य द्वारा मृत्यु' का रहस्य आपके सम्मुख प्रकाशित हो जायेगा।

इस पत्रिका के उद्देश्य और कार्य निम्नलिखित हैं :

१. समाज-सुधार अर्थात् मुस्लिम समाज और उसके आचार-व्यवहार में सुधार।
२. उर्दू का प्रचार-प्रसार अर्थात् उर्दू भाषा में विद्याश्रित साहित्य का क्षेत्रविस्तार।
३. साहित्यिक अभिरुचि पर विचार, विशेष रूप से बंगला साहित्य।
४. आलोचना अर्थात् उर्दू प्रकाशनों का वस्तुनिष्ठ विवेचन।

उद्देश्यों का स्पष्टीकरण

समाज-सुधार

यह मूर्खतापूर्ण रीतियां हमारी मनोवृत्ति क्यों बन गई हैं। धर्माचार्यों की उपेक्षा के फलस्वरूप साधारण जन समझने लगे कि यह धर्म का अंग हैं और प्रत्येक मुसलमान के लिए इनका पालन करना अनिवार्य है। कुछ रीतियां ऐसी हैं जिनसे धर्माचार्यों को आर्थिक लाभ मिलता है और इसी कारण से वे किसी प्रकार के परिवर्तन में बाधा उत्पन्न करते हैं। जब किसी प्रकार के सुधार नहीं किए गए और दीर्घकाल तक यह रीतियां प्रचलित रहीं तो ये उनके दैनिक-जीवन का अटूट भाग बन गईं।

अपने अंतिम चरण में मुस्लिम-साम्राज्य पतनावस्था को प्राप्त हो गया और व्यर्थ के ऐश्वर्य में तल्लीन हो गया। जीवन-पद्धति के इस पतन में लखनऊ ने नई रीतियों को जन्म

---

* १९०३ मे १५ वर्ष की आयु मे आजाद ने एक पाक्षिक पत्रिका 'लिसान-उल-सिदृक' (सत्यवाणी) के नाम से निकाली थी। अपनी पत्रिका निकालने का उनका यह प्रथम प्रयास था। इसके दिनाक २० नवंबर, १९०३ के अक में छपे इस लेख में 'लिसान-उल-सिदृक' के उद्देश्यो और कार्यो का उल्लेख है। उपरोक्त सकलित भाग समाज-सुधार के कार्यों का विवरण है। १५ वर्ष की आयु मे मौलाना के लेख मे सामाजिक जागृति, विश्लेषणात्मक प्रतिभा और उद्देश्य की स्पष्टता का आभास होता है। लेखन-शैली और वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इसकी तुलना उस शैली से करना रुचिकर है जो नौ वर्ष पश्चात् अल-हिलाल की अत्यन्त नवीन पत्रकारिता के रूप मे विद्यमान हुई।

दिया जाता है वह यह है कि हमारे जन-साधारण रीति-रिवाजों को महत्त्व देते हैं इसलिए इन्हें मिटाने का कोई भी प्रयास उनके मन में सुधारकों के प्रति घृणा उत्पन्न करेगा और संभावना है कि अन्य समस्त सुधारों की प्रगति भी रुक जाए। परन्तु यह सर्वज्ञात तथ्य है कि सुधार लागू करने के समस्त प्रयासों का सदैव ही विरोध होता है। अंग्रेज़ी भाषा के सीखने को लोकप्रिय बनाने में जो चेष्टाएं हमने कीं उसके फलस्वरूप हमें अपशब्द सुनने पड़े और उसके बदले में हमें घृणा प्राप्त हुई। यह ऐसा अपमान है जिसे हम संभवतः भुला नहीं सकते। यदि उन लोगों को सुधारने की चेष्टा की जाए जो दीर्घकाल से अज्ञान के गर्त में पड़े हुए हैं तो चाहे सुधार की रूपरेखा अथवा उसका माध्यम कुछ ही क्यों न हो, यह निश्चय ही लोगों का आक्रोश भड़काएगी। ऐसे महत्त्वपूर्ण सुधारों की उपेक्षा करना, जिनका रीति-रिवाजों से संबंध है, एक भयंकर गलती है।

दूसरे पक्ष की यह आशा कि शिक्षा जब सार्वजनिक हो जाएगी तो लोग सुधारों को आत्मसात कर लेंगे, अत्यन्त भ्रामक है। अनुभव बताता है कि वे रीति-रिवाज जो एक पीढ़ी को दूसरी पीढ़ी से थाती के रूप में प्राप्त होते रहते हैं शिक्षा द्वारा समाप्त नहीं होते। समाज और पारिवारिक संस्कार बहुधा शिक्षा के प्रभावों को क्षीण कर देते हैं। एक शिक्षित व्यक्ति जब घर की चारदीवारी से बाहर होता है तो वह स्वच्छंद और सभ्य प्रतीत होता है, किन्तु घर में घुसते ही वह पुरातन रीतियों के चंगुल में फंस जाता है। शिक्षा का जो प्रभाव उसे घर के बाहर सभ्य और स्वच्छंद बनाता है वह रीति-रिवाजों के बोझ के नीचे दब कर प्रभावहीन हो जाता है। शिक्षा निश्चय ही कुछ भाव उत्पन्न करती है किन्तु उन्हें सुस्थिर रखने के लिए शक्तिशाली आंदोलन की आवश्यकता है। आंदोलन जब तक उस ओर बढ़ने की सशक्त प्रेरण नहीं देता तब तक व्यक्ति इन रीति-रिवाजों को छोड़ने पर सहमत नहीं होता। इस आंदोलन का नाम सुधार है और इसकी उपलब्धि की चेष्टा करने का समय आ गया है, व्यर्थ की बातें करने और उद्देश्यहीन विचार-विनिमय का अब समय नही है। हमें जो कुछ प्राप्त करना है उसके लिए तुरन्त चल पड़ना चाहिए।

यह प्रसन्नता की बात है कि मोहम्मडन शैक्षणिक कांफ्रेंस और नदवतुल आलेमा ने अपनी चेष्टाएं सांस्कृतिक सुधारों पर केन्द्रित कर दी है। इस समय नदवतुल आलेमा (पांडुलिपि पृ० ७ पर देखिए) की गतिविधि के संबंध में तर्क-वितर्क करना व्यर्थ है। कांफ्रेंस ने अपने दिल्ली अधिवेशन के पश्चात् ऐसा शैक्षणिक कार्य प्रारंभ किया है जिस पर हमें पूर्ण ध्यान देना चाहिए। आशा की जाती है कि इन प्रयत्नों से विश्वसनीय परिणाम सामने आएंगे।

कांफ्रेंस ने सांस्कृतिक सुधार का पृथक् विभाग स्थापित किया है। अलीगढ़ कालेज के एक विख्यात भूतपूर्व विद्यार्थी श्री ख्वाजा गुलाम-उल्-सकलैन इसके सचिव नियुक्त हुए हैं। उनकी इस पद पर नियुक्ति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ख्वाजा साहब ने **अस्त्र-ए-जदीद** नाम से एक पत्रिका निकाली है और इस तरह ऐसे सदस्य बनाने का एक ढंग निकाला है जिनसे किसी रीति-रिवाज का पालन न करने का प्रण लेने को कहा जाएगा। हम ख्वाजा साहब के इन प्रयत्नों को सराहते हैं और आशा करते हैं कि जब बंबई की कांफ्रेंस में इनके महत्त्वपूर्ण कार्य का विवरण प्रस्तुत किया जाएगा तो कांफ्रेंस में सम्मिलित सभी लोग इसे सराहेंगे। इस प्रगति की महत्ता के कारण सांस्कृतिक सुधार लिसान-उल्-सिद्क के उद्देश्यों में सम्मिलित कर लिया गया है। परन्तु अधिकाशं हानिकारक रीति-रिवाजों का संबंध समाज से है। इसलिए यह पत्रिका सामाजिक-सुधारों को अधिक प्राथमिकता देती रहेगी।

दिया। निस्संदेह, इनमें से कई घृणित रीतियों का संबंध हर्षोल्लास और अवसाद के क्षणों से है किन्तु ये उत्पन्न हुई हैं लखनऊ की दरबारी और स्वच्छंद जीवन-पद्धति से। हिन्दुस्तान ने जब नए चरण में पदार्पण किया (एक सुसभ्य जाति द्वारा पराधीन किए जाने के पश्चात्) तो पुरातन रीति-नीति पर चलते रहना कठिन हो गया। वस्तुओं का उत्पादन और विद्यार्जन प्राथमिक आवश्यकता बन गए, परन्तु इसके विपरीत इन रीतियों का उपयोग चलता रहा। प्रत्येक अवसर के लिए एक विशेष रीति थी और प्रत्येक व्यक्ति ने उसका पालन किया। क्योंकि आर्थिक स्थिति पहले जैसी नहीं रह गई थी इसलिए इन रीति-रिवाजों का अनुसरण और प्रचलन सैकड़ों परिवारों के लिए घातक सिद्ध हुआ। सहस्रों त्यौहारों के उपलक्ष्य में धन का अपव्यय किया जाता था। यह सामाजिक दबाव ऐसा था कि चले आ रहे रिवाजों से विमुख होने का साहस कोई नहीं कर सकता था।

हिन्दुस्तानी सामाजिक स्थिति के विषय में हमारे एक तुर्क मित्र ने हमें बताया कि हिन्दुस्तान की दरिद्रता का प्रमुख कारण उसके रीति-रिवाज हैं जो सामाजिक दबाव के अंतर्गत लोगों को धन लुटाने पर विवश करते हैं। लखनऊ में आपको बहुधा ऐसे उदाहरण मिल जायेंगे कि 'बब्बन मियाँ' के विवाह के लिए पांच हज़ार रुपये ऋण लिए गए या 'छुट्टन मियाँ' के ख़तने के समारोह के लिए दो घर गिरवी रख दिये गये। वे परिवार, जिनकी आजीविका का कोई अन्य साधन नहीं है, भूखों मरते हैं। यदि ऐसे रीति-रिवाजों को सादगी से मनाया जाए तो ये दो परिवार भिखारी बनने से बच सकते हैं।

रीति-रिवाजों के प्रति श्रद्धा ने हिन्दुस्तान में कई बुराइयां उत्पन्न कर दी हैं किन्तु खेद है कि आज तक किसी ने भी इन्हें समाप्त करने की चेष्टा नहीं की और यह घुन समुदाय को खाता जा रहा है। कुछ लोगों का कहना है कि अन्य प्रकार के सुधारों की इनसे कहीं अधिक आवश्यकता है। वे महसूस करते हैं कि यदि समाज-सुधारों की ओर समाज विरोधी भाव रखने लगेगा और उनकी नीयतों पर संदेह करने लगेगा तो समाज-सुधार के उनके प्रयास निष्फल हो जाएंगे। इसका परिणाम यह है कि अन्य और अधिक आवश्यक सुधार कभी नहीं हो पाते।

कुछ व्यक्तियों का विचार है कि जब शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो जाएगा और आधुनिक विचार समाज के वर्गों को अपने प्रभावाधीन कर लेंगे तो लोग स्वतः ही सुधारों के संबंध में सोचने लगेंगे। अतः इस समय उन्हें लागू करने का उचित समय नहीं है। ये विचार इन महत्त्वपूर्ण सुधारों के मार्ग में बाधक हैं। चिकित्सक के मौन-धारण और रोगी के अज्ञान के कारण दुर्भाग्यवश रोग असाध्य हो जाएगा। अगर हम इस दृष्टिकोण का आग्रह करते रहे तो प्रत्येक प्रकार के उपचार को विफल कर देंगे और श्रेष्ठतम वैद्य भी इसको ठीक न कर पाएंगे।

प्रथम पक्ष जिसे 'बहुसंख्यक' कहा जाता है अनेकानेक सुधारों में संलग्न हैं। ये ऐसे सुधार हैं जो निश्चय ही राष्ट्र के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। परन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि रीति-रिवाजों का सुधार एक ऐसा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है जिस पर अन्य समस्त सुधार निर्भर हैं। मुसलमानों में शिक्षा का अभाव मूलतः रीति-रिवाजों के प्रति आग्रह के कारण है। बहुत-से परिवारों में अंग्रेज़ी भाषा का सीखना निषिद्ध है क्योंकि वे एक परंपरागत पाठ्यक्रम को अपनाए हुए हैं जिसे रीति-रिवाज ने प्रचारित किया है। माता-पिता कहते हैं कि "यदि बच्चों को अंग्रेज़ी पढ़ाई गई तो उनके पास परंपरागत शिक्षा प्राप्त करने का समय नहीं रहेगा।" यह मान्यता सामाजिक सुधारों की अवहेलना होगी। इन घिसी-पिटी रीतियों के पालन के कारण सुधारों के मार्ग में अनेक बाधाएं उत्पन्न हो गई हैं जिन्हें केवल सुधारों के द्वारा खत्म किया जा सकता है। दूसरे सुधारों को महत्ता प्रदान करना और इन सुधारों को द्वितीय स्थान देना भूल है। इस संबंध में जो दूसरा तर्क

'अल-हिलाल' *

उद्देश्य और राजनैतिक शिक्षा

अल-हिलाल के मक़ासिद और पोलीटिकल तालीम

"स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए हर प्रकार की चेष्टा करना मुसलमानों का कर्तव्य होना चाहिए और उनके धार्मिक विश्वासों के अनुसार उन्हें उस समय तक निश्चिन्त नहीं होना चाहिए जब तक वह सांसदीय सरकार स्थापित न कर लें।"

'अल-हिलाल' *

उद्देश्य और राजनैतिक शिक्षा

हमारी इच्छा थी कि इस सप्ताह इस विषय पर कुछ लिखेंगे। परन्तु एक घनिष्ठ मित्र की टिप्पणी ने इस बात को और अधिक आवश्यक बना दिया। वे लिखते हैं कि "... इन सात अंकों को बिना एक अक्षर छोड़े हुए पढ़ लेने के पश्चात् भी स्पष्टतया ज्ञात नहीं होता कि आप कौम को किस प्रकार की राजनैतिक शिक्षा देना चाहते हैं ? एक बहुत बड़ा मौलिक सिद्धांत जो आपका ज्ञात होता है और उसी ने आपके लिए अत्यधिक निष्ठा मेरे मन में उत्पन्न कर दी है, वह यह है कि आप मुसलमानों के समस्त रोगों का उपचार धर्म और क़ुरान को समझते हैं, और चाहते हैं कि इनमें इस्लाम की वास्तविकता की, न कि रीति-रिवाज की, आत्मा उत्पन्न की जाय। इस सिद्धांत की चर्चा और भी बहुत-से लोग करते हैं और इसे जानते हैं। किन्तु सत्य यह है कि आपसे बढ़कर इसे अन्य कोई व्यवहार में नहीं ला सकता। अभी थोड़े से ही लेख आपके प्रकाशित हुए हैं, किन्तु उन्हीं से प्रमाणित होता है कि आपकी दृष्टि क़ुरान और उसके सत्य अथवा उसके ज्ञान के संबंध में कितनी व्यापक और गहरी है। परन्तु क्षमा कीजिएगा, आप अपने धार्मिक रंग में राजनीति को भी रंग देते हैं और दोनों को इस प्रकार मिला देते हैं कि दोनों की पहचान कठिन हो जाती है। मैं समझता हूं कि मेरी तरह 'अल-हिलाल' के सैकड़ों पाठकों को भी इसी कठिनाई का अनुभव करना पड़ता होगा। अतः आपको चाहिए कि सर्वप्रथम आप अपनी नीति का स्पष्टीकरण कर दें और कम-से-कम राजनैतिक शिक्षा को धार्मिक शिक्षा से पृथक् करके स्पष्टतः बतला दें कि आप क़ौम को किस मार्ग पर ले जाना चाहते हैं? एक बात तो वह है जिस पर आज तक हम चलते रहे, दूसरा मार्ग मध्यमार्गी हिन्दुओं का है जो अंग्रेज साम्राज्य के तत्वावधान में अपने अधिकारों की मांग करते है। तीसरा दल उन हिन्दू अराजकतावादियों का है जो बम के गोले और पिस्तौल चलाकर भारतमाता को विदेशियों से स्वतंत्र कराना चाहते हैं। कृपया बतला दें कि आप किस दल में हैं और किसके साथ हमको खड़ा करना चाहते हैं? उस समय हम या तो आपका साथ देंगे और या केवल आपकी धार्मिक शिक्षा को आत्मसात करेंगे और जीवन के अन्य दूसरे पहलुओं से संबंध-विच्छेद कर लेंगे। मेरा अभिप्राय यह है कि आपने न जाने कितनी यातनाएं सहकर एक ऐसा बड़ा कार्य आरंभ किया है ...आपकी सच्चाई और निःस्वार्थ भाव में भी संदेह नहीं और आपकी विद्वत्ता तथा विशेष रूप से धार्मिक ज्ञान की जितनी भी प्रशंसा करूं, वो कम है। ये बातें सर्वदा हमारी दुर्भाग्यग्रस्त जाति को उपलब्ध नहीं रहीं। "ऐसा न हो कि ये संपूर्ण शक्तियां विनष्ट हो जाएं और क़ौम आपकी योग्यता से वंचित हो जाए..."

हमारी इच्छा थी कि सबसे पहले 'अल-हिलाल' के उद्देश्यों पर एक विस्तृत लेखमाला

---

* 'अल-हिलाल' ८ सितम्बर, १९१२। इसका प्रथम अंक १३ जुलाई, १९१२ ई० को प्रकाशित हुआ था। यह एक सचित्र साप्ताहिक पत्रिका थी। प्रथम अंक में आजाद के तीन पथ-प्रदर्शकों अल-सैयद जमालउद्दीन अफ़गानी, शैख़ मुहम्मद अब्दूह और अल-सैयद मुहम्मद रशीद रज़ा के चित्र छपे थे। यह लेख खंड १, अंक ८ में प्रकाशित हुआ था।

प्रारंभ करें और सुव्यवस्थित रूप से बता दूं कि हमारी यात्रा की सीमाएं और उद्देश्य क्या हैं ? परन्तु बीच में कुछ समस्याएं ऐसी उत्पन्न हो गयीं कि जिन पर विवश होकर लिखना पड़ गया और प्रस्तावना के पूर्व ही मूल पुस्तक का लेखन आरंभ कर देना पड़ा। परन्तु हम अपने मित्र के आभारी हैं कि उन्होंने इस आवश्यक प्रश्न को उठाया।

उन्होंने जिन शब्दों में मेरे धार्मिक चिन्तन और लेखों की प्रशंसा की है वो उनके बड़प्पन का द्योतक है। अन्यथा लेशमात्र विनम्रता का प्रदर्शन किए बिना निवेदन करता हूं कि मैं किसी प्रकार भी इस प्रशंसा के योग्य नहीं हूं। संभव है कि थोड़ी-बहुत धार्मिक बातें मुझे ज्ञात हों किन्तु क़ुरान के रहस्य तो इतने सस्ते नहीं जिन्हें मैं अपना अक्षर-ज्ञान देकर क्रय कर सकूं। मैं तो उनके पत्र में अपने प्रति ऐसे प्रशंसात्मक शब्द पढ़कर अकस्मात कांप उठा। यदि इसकी सत्यता और रहस्य को समझने के लिए अरबी भाषाविद् होने की आवश्यकता होती तो मैं उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता, यदि भाष्यों के अध्ययन की आवश्यकता होती तो पुस्तकों की मेरे पास कमी न थी। परन्तु इसके लिए ये समस्त बातें व्यर्थ है। इसके लिए प्रथम आवश्यकता है आत्मा की पवित्रता और हृदय की शुद्धता की, और समस्त विडंबना यही है कि इन दोनों से वंचित हूं। एक हृदय जो पवित्रता की संपदा से वंचित है और सांसारिक सुखों का बंदी है वो एक क्षण के लिए भी क़ुरान के सत्य और उसके रहस्य से प्रकाशमान नहीं हो सकता। ज्ञान-विज्ञान इसके लिए नितांत व्यर्थ हैं और प्रतिभा और बुद्धि को यहां कोई नहीं पूछता।

विश्वास कीजिए कि जो कुछ निवेदन कर रहा हूं वो नितांत सत्य हैं। क़ुरान के रहस्यों और उसके बोध में उस व्यक्ति का कोई भाग्य नहीं है जो आत्म-शुद्धता से विहीन हो, चाहे वो कितना भी बड़ा ज्ञानी क्यों न हो। न्याय कीजिए कि जब स्थिति यह हो तो फिर मैं किस गिनती में हूं।

इनके पत्र में कई बातें विचारणीय हैं :

१. राजनैतिक वाद-विवाद धार्मिक शिक्षा से पृथक होने चाहिए?
२. हिन्दोस्तान में इस समय जो राजनैतिक दल हैं उनमें से 'अल-हिलाल' किसका साथ देता है?

प्रथम प्रश्न के संबंध में तो निवेदन यह है कि आपने यहां उस मौलिक सिद्धांत को छेड़ दिया है जिस पर हम 'अल-हिलाल' का संपूर्ण भवन निर्मित करना चाहते हैं। आप कहें कि मेहराब सुंदर नहीं है तो संभव है कि हम उसे बदल दें, किन्तु यदि आपकी इच्छा हो कि नींव का पत्थर बदल दिया जाए तो क्षमा कीजिए, इसके पालन में हम अक्षम हैं। मानवीय कर्मों की चाहे कोई भी शाखा हो हम तो उसे धार्मिक दृष्टि से ही देखते हैं। हमारे पास यदि कुछ है तो क़ुरान ही है जिसके अतिरिक्त हम कुछ और नहीं जानते। सारी दुनिया की ओर से हमारी आंखें बंद हैं और समस्त आवाज़ों के सुनने से हमारे कान बहरे हैं। यदि देखने के लिए प्रकाश की आवश्यकता है तो विश्वास कीजिए कि हमारे पास तो 'ज्योतिपुंज दीपक' द्वारा प्रदत्त एक ही प्रकाश है जिसे हटा दीजिएगा तो हम बिलकुल अंधे हो जाएंगे। क़ुरान एक ऐसी पुस्तक है जिसका अवतरण इसलिए हुआ है कि मानव को अंधकार से निकाले और ज्योति की ओर ले जाये।

आप कहते हैं कि राजनैतिक वाद-विवाद को धर्म से पृथक् कर दूं, किन्तु यदि अलग कर दूं तो हमारे पास शेष क्या रह जाता है ? हमने तो अपने राजनैतिक विचार भी धर्म से प्राप्त किए हैं। वो धार्मिक रंग में ही रंगे हुए नहीं हैं बल्कि धर्म द्वारा उत्पन्न हैं। हम उन्हें धर्म से कैसे अलग कर सकते हैं ? मेरे धर्ममत से कोई विचार कुरान के अतिरिक्त किसी स्रोत से प्राप्त किया हुआ पूर्णतया ईशनिन्दात्मक है, इससे मैं राजनीति को समाविष्ट करता हूँ।

हमारे पंथ में तो प्रत्येक विचार जो क़ुरान के अतिरिक्त अन्य किसी और शिक्षालय से प्राप्त किया गया हो, स्पष्टतया धर्म-विरोधी है और राजनीति को भी मैं इसमें सम्मिलित करता हूं। दुःख की बात है कि आप जैसे महानुभावों ने इस्लाम को कभी भी उस वास्तविक महानता के परिवेश में नहीं देखा अन्यथा राजनीति के लिए न तो सरकार के द्वार पर झुकना पड़ता और न ही हिन्दुओं का अनुसरण करने की आवश्यकता होती। उसी से सब कुछ सीखते, जिसके द्वारा समस्त संसार को आपने सब कुछ सिखलाया था। इस्लाम मनुष्य के लिए एक व्यापक और आदर्श नियमावली लेकर आया और मानवीय कर्मों का कोई भी अंश ऐसा नहीं है, जिसका नियम क़ुरान में न हो। इस्लाम अद्वैत के अपने सिद्धांत के संबंध में अत्यंत कट्टर है और कभी नहीं चाहता कि उसकी चौखट पर झुकने वाले किसी अन्य द्वार के भिखारी बनें। मुसलमानों का जीवन नीतिनिष्ठ जीवन हो अथवा ज्ञाननिष्ठ, राजनैतिक हो अथवा सामाजिक, धार्मिक हो या सांसारिक, राष्ट्रीय हो अथवा प्रजा के रूप में हो, वो हर प्रकार के जीवन के लिए एक संपूर्ण विधान अपने अंदर रखता है, यदि ऐसा न होता तो वह संसार का अंतिम और विश्वव्यापी धर्म न होता। वो ईश्वर का स्वर है और उसका विद्यालय है। जिसने ईश्वर के हाथ पर हाथ रख दिया तो उसे फिर किसी मनुष्य की सहायता की आवश्यकता नहीं।

क़ुरान में बहुधा कहा गया है कि वह एक ज्योति-स्तंभ है, और जब प्रकाश होता है तो हर प्रकार का अंधकार गुम हो जाता है चाहे वो धार्मिक भ्रष्टता का अंधकार हो, चाहे राजनैतिक तिमिर हो। "निश्चय ही, तुम्हारे पास विधाता की ओर से ज्योति-पुंज और हर बात को प्रकाशित करने वाली पुस्तक आई है। विधाता इसके द्वारा शांति और सुरक्षा के मार्गों का निर्देश करता है। जो उस पर निर्भर करता है उसे विधाता प्रत्येक प्रकार के कुमार्गगमन के अंधकार से निकाल कर सद्मार्गगमन के प्रकाश में लाता है और उस मार्ग पर चलाता है जो सत्य का मार्ग है।" (८५:१५)

संसार में कौन-सा ग्रंथ है जिसने स्वयं अपनी वाणी से अपने संबंध में इस प्रकार के उच्च दावे किये हों? इस आयत में स्पष्टतया बता दिया गया है कि क़ुरान ज्योति है और वह यदि प्रकाश है तो समस्त मानवीय कर्मों का अंधकार केवल उसी से दूर हो सकता है। फिर कहा गया है कि यह हर बात को स्पष्टतया बता देने वाली पुस्तक है और मानवीय कर्मों की कोई भी शाखा ऐसी नहीं है जिसका निरूपण उसके अंदर न हो। इसी बात का समर्थन अन्य स्थान पर यह कहकर किया गया है कि "निश्चय ही हमने उनको ग्रंथ दिया है जिसमें हमने ज्ञान का सविस्तार उल्लेख कर दिया है और जो सद्मार्गगमन का निर्देशक है और निष्ठावानों के लिए वरदान है। इसके उपरान्त पहली आयत में क़ुरान को शांति एवं सुरक्षा के मार्ग का पथ-प्रदर्शक बताया गया है क्योंकि वह पूर्ण शिवत्व और कल्याण के मार्गों की ओर निर्देशन करता है और यदि आपके सम्मुख राजनैतिक कर्मों का भी कोई मार्ग है तो कोई कारण नहीं कि उसका कल्याणात्मक निर्देश आपको क़ुरान से न मिले। फिर कहा गया है कि क़ुरान मनुष्य को समस्त भ्रांतियों के अंधकार से निकाल कर सद्मार्गगमन के प्रकाश में लाता है और हम देख रहे हैं कि हमारी राजनैतिक पथ-भ्रष्टता इसलिए है कि हमने क़ुरान को पथ-प्रदर्शक समझ कर स्वयं को उस पर अर्पित नहीं किया अन्यथा अंधकार के स्थान पर आज हमारे चारों ओर प्रकाश होता। अंत में क़ुरान ने कह दिया है कि वह 'अग्नेय सुपथा' पेर ले जाने वाला ग्रंथ है और 'आग्नेय सुपथा' की परिभाषा क़ुरान की शब्दावली में इतना व्यापक अर्थ रखती है कि उसके अंदर समस्त संसार को व्याप्त समझिए।

खेद है कि सविस्तार निरूपण का यहां अवसर नहीं है। परन्तु इस बात की चर्चा ने सैकड़ों आयतों का मुझे स्मरण करा दिया है। एक स्थान पर कहा गया है:

"ऐ पैगंबर ! मैंने आपको एक पुस्तक का वरदान दिया है जो प्रत्येक बात को स्पष्टतया बता देने वाली है और जो सद्मार्गगमन की निर्देशिका है तथा निष्ठावानों के लिए वरदान है।"

सुरः यूसुफ़ की अंतिम आयत में कहा गया है:

"क़ुरान में कोई मनगढ़ंत बात नहीं है बल्कि जो सच्चाइयां उसके पूर्व विद्यमान थीं उनको वह प्रमाणित करता है। और इसमें निष्ठावानों के लिए हर बात का विस्तृत विवरण है तथा यह पथ-प्रदर्शक और ईश्वरीय वरदान है।"

एक अन्य स्थान पर कहा गया है:

"**मनुष्यों को समझाने के लिए इस क़ुरान में प्रत्येक प्रकार के दृष्टांत प्रस्तुत कर दिए** गए हैं ताकि लोग इससे लाभान्वित हो सकें।"

इन आयतों में क़ुरान की अवधारणा नितांत स्पष्ट है। वह प्रत्येक प्रकार की शिक्षा के लिए स्वयं को पूर्वशिक्षकों की बातों को प्रमाणित करने वाला बताता है। फिर इसका ज्ञान स्पष्ट और भ्रमरहित है, यदि उस पर विवेक द्वारा विचार किया जाए:

"समस्त स्तुतियां उस ईश्वर के लिए हैं जिसने अपने भक्तों पर क़ुरान उतारा और उसमें किसी प्रकार की दुरूहता न रखी।" (१८ : १)

अतः यह कैसे संभव है कि क़ुरान के अनुयायी अपने जीवन के आवश्यक विभाग अर्थात् राजनैतिक कर्मों के लिए अन्य स्रोतों का आश्रय लें जब कि स्वयं क़ुरान उनके पास एक आदेश और एक प्रकट पथ-प्रदर्शक के रूप में उपस्थित है।

"और हर वस्तु को हमने इस स्पष्टीकृत ग्रंथ (क़ुरान) में एकत्रित कर दिया है।"

दूसरे स्थान पर क़ुरान को समस्त समस्याओं के निवारण का अंतिम वाक्य कहा गया है:

"निःसंदेह यह क़ुरान एक अंतिम वाक्य है जिसमें तमाम मतभेदों और कर्मों के लिए अन्य कोई निरर्थक और व्यर्थ बात नहीं है।" (८७ : १३)

मानव के समस्त दुःख केवल इसी भ्रम का परिणाम हैं कि उन्होंने ईश्वरीय शिक्षालय को छोड़ दिया और समझने लगे कि केवल पूजा-कथा-व्रत से संबंधित प्रश्नों पर क़ुरान से निर्देशन प्राप्त करने की आवश्यकता है अन्यथा इनके शैक्षणिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यापारों से उसे क्या लेना-देना ? परन्तु वो जितना क़ुरान से दूर होते गए उतना ही समस्त संसार इनसे दूर होता गया तथा जिस मार्ग में उन्होंने कदम उठाया उन्हें पथ-भ्रष्टता के अंधकार का सामना करना पड़ा। इस स्थिति की भविष्यवाणी पहले ही कर दी गई थी:

"प्रलय के दिन पैगंबर निवेदन करेंगे कि ऐ ईश्वर मेरे पंथ के अनुयायियों ने इस क़ुरान **को निरर्थक समझा और इस पर वह नहीं चले।**" (२५ : ३०)

मेरे विचार में क़ुरान के अवतरण के समय मक्का के बहुदेववादियों ने, जिन्होंने क़ुरान के संदेश को नहीं सुनना चाहा और उसकी अवहेलना की, इतना बड़ा पाप नहीं किया जितना बड़ा पाप दुनिया भर के मुसलमान शताब्दियों से करते आ रहे हैं जिसमें धर्मसत्ता के विधायक और **सांसारिक सिंहासन पर आरूढ़ व्यक्ति, दोनों सम्मिलित हैं। मक्का के बहुदेववादी यदि क़ुरान का** पाठ किए जाने के समय कानों में उंगलियां डाल लेते थे या काबे के अंदर हुल्लड़ मचाते और तालियां पीटते थे कि क़ुरान का संदेश कोई सुन न सके तो आज स्वयं मुसलमान कानों के स्थान पर हृदयों को बंद किये हुए हैं और हुल्लड़ मचाने के स्थान पर मौन धारण किए हुए हैं। परन्तु

मायाजाल के अधीन होकर उन्होंने ऐसा हुल्लड़ मचा दिया है कि ईश्वर का स्वर किसी के कान में नहीं पड़ता। क़ुरान में कहा गया है कि :

"ऐ पैगम्बर !जिस समय तुम क़ुरान का पाठ करते हो, हम तुममें और उन व्यक्तियों के बीच में जिन्हें कयामत के दिन पर विश्वास नहीं है, एक आवरण डाल देते हैं तथा उनके हृदयों पर लिहाफ़ ओढ़ा देते हैं ताकि वे क़ुरान न समझ सकें और उनके कानों के लिए ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देते हैं ताकि वे सुन न सकें।" (१७ : ४६)

अतः यदि आपकी चिंता का कारण यह है तो खेद है कि हम इसे दूर नहीं कर सकते। यदि हमको सविस्तार अपने उद्देश्यों को प्रस्तुत करने का अवकाश नहीं मिला तो कोई बात नहीं है, वो तो अत्यंत संक्षिप्त शब्दों में भी आज सुनाये जा सकते हैं। हम संक्षेप में निवेदन करते हैं कि 'अल-हिलाल' का वास्तविक उद्देश्य इसके अतिरिक्त कुछ और नहीं है कि वह मुसलमानों को यह संदेश पहुंचाये कि उनके समस्त कर्म और उनकी समस्त निष्ठाएं ईश्वर द्वारा प्रदत्त **एकमात्र पुस्तक पर आधारित हों और उनका आचरण पैग़म्बर के आचरणों के अनुकूल हो।** 'अल-हिलाल' हर क्षेत्र में मुसलमानों को मुसलमान देखना चाहता है, चाहे वह क्षेत्र शिक्षा का हो या सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं का हो। 'अल-हिलाल' का संदेश केवल यही है कि "उस ईश्वरीय पुस्तक की ओर आओ, जिसके प्रति हम और तुम दोनों समानरूपेण श्रद्धा रखते हैं और जिसे सिद्धांततः कोई भी अस्वीकार नहीं करता।" (३ : ५७) परन्तु आचरण की स्थिति यह है कि "इन्होंने मुख से तो कह दिया कि हम निष्ठावान बन गये किंतु उनके हृदयों में निष्ठा नहीं है।" (५ : ४५)

ईश्वर तुमको गर्वोन्नत करता है तो फिर तुम क़ुरान से विमुख होकर मनुष्यों के सम्मुख निरादरपूर्ण सर क्यों झुकाते हो ? इसके अतिरिक्त 'अल-हिलाल' के संदेश का अन्य कोई उद्देश्य नहीं है :

"और इससे अधिक कल्याणकारी कौन-सी बात हो सकती थी जो ईश्वर की ओर तुम्हें बुलाये और शुद्ध आचरण का आह्वान करे और कहे कि मैं मुसलमान हूं।" (३२ : ३१)

आपका दूसरा प्रश्न यह है कि हिन्दोस्तान में तीन राजनैतिक विचारधाराएं विद्यमान हैं। 'अल-हिलाल' क़ौम को किस मार्ग पर चलाना चाहता है ? फिर आपने उनको गिना भी दिया है, किन्तु खेद है कि आप एक चौथे मार्ग को नितांत विस्मृत कर गये। ये तीन मार्ग तो आज आपके सम्मुख हैं। परन्तु चौथा मार्ग तो वह पुरातन मार्ग है जिस पर चलकर हज़ारों व्यक्ति ध्येय की पूर्ति कर चुके हैं। आकाश और धरती के स्रष्टा ने जिस समय इन मनुष्यों को देखने के लिए आंखें प्रदान कीं उसी समय उनके सम्मुख यह मार्ग भी खोल दिया। आदम इस पर चले और ओलों की वृष्टि ने नूह में इसका संदेश सुनाया, इब्राहिम ने इसी की लीकों को सुदृढ़ बनाने के लिए अग्निकुण्ड में प्रवेश किया और इस्माइल ने इसके लिए ईंटें चुनीं, **यूसुफ़** से मिस्र के बंदीगृह में एक साथी ने पूछा तो उन्होंने यही मार्ग उसे दिखाया, और मूसा जब **सिना** की घाटी में ज्योति के लिए उत्कंठित हुए तो इसी मार्ग का प्रकाश उन्हें एक हरे-भरे वृक्ष के रूप में दिखाई दिया, **गलीली** का इस्राइली प्रचारक जब यरोशलम के निकट एक पहाड़ पर चढ़ा तो उसकी दृष्टि इसी मार्ग पर थी और जब ईश्वरीय ज्योति फ़ारान की पहाड़ी की चोटियों पर दीप्तिमान हुई तो वही मार्ग था जिसकी ओर उसने दुनिया को बुलाया :

"ईश्वर ने तुम्हारे पंथ का वही मार्ग निश्चित किया है जिस पर चलने का उसने नूह को आदेश दिया था, और ऐ पैगम्बर, वही मार्ग तुम्हारे लिए अवतरित किया गया है तथा इसी का

हमने इब्राहिम, मूसा, तथा ईसा को आदेश दिया था कि इस पंथ के मार्ग को सुस्थिर रखे और उसे छिन्न-भिन्न न होने दे।"

यही वह मार्ग है जिसके संबंध में सत्यभाषी यूसुफ़ ने मिस्र के बंदीगृह में यह कह कर अपना प्रवचन समाप्त किया था:

"यही सीधा मार्ग है किन्तु बहुत ऐसे हैं जो नहीं जानते।" (१२ : ४०)

यही वह मार्ग है जिसके संबंध में इस्लाम के प्रवर्तक को यह कहने का आदेश मिला था:

"मेरा मार्ग यह है, तुम सबको ईश्वर की ओर बुलाता हूं, मैं और मेरे दो साथी मेरे अनुयायी हैं। सभी बुद्धि और विवेक-सहित इसी धर्म-पंथ के अनुगामी हैं।" (१२ : १०८)

धन्य भाग्य कि हम 'अनुयायियों' की श्रेणी में हैं और इसीलिए आपके द्वारा निर्दिष्ट उन तीनों मानवीय मार्गों से कोई संबंध नहीं रखते, बल्कि चौथे ईश्वरीय मार्ग की ओर बुलाते हैं। यह क़ुरान का बताया हुआ 'आग्नेय सुपथा' है और हमारा विश्वास है कि जो मुसलमान अपने किसी कर्म तथा निष्ठा के लिए भी इस पुस्तक के अतिरिक्त किसी अन्य दल या अन्य शिक्षा को अपना पथप्रदर्शक बनाए वह मुस्लिम नहीं है क्योंकि वह क़ुरान के विकल्प को आश्रय देता है, जो उस कोटि का बहुदेववाद है जैसा कि ईश्वर के विकल्पों पर विश्वास करना।

मुसलमानों की अपनी राजनैतिक विचारधारा

आप पूछते हैं कि "आजकल हिन्दुओं के जो राजनैतिक दल विद्यमान हैं, हम उनमें से किसके साथ हैं?" निवेदन है कि हम किसी के साथ नहीं हैं बल्कि केवल ईश्वर के साथ हैं। इस्लाम की गरिमा इस बात की अनुमति नहीं देती कि उसके अनुयायियों को अपनी राजनैतिक नीति के निर्धारण के लिए हिन्दुओं का अनुसरण करना पड़े। मुसलमानों के लिए इससे बढ़कर लज्जाजनक बात नहीं हो सकती कि वह दूसरों की राजनैतिक अवधारणाओं के सम्मुख झुककर अपना मार्ग प्रशस्त करें। उनको किसी दल में सम्मिलित होने की आवश्यकता नहीं है। वह तो स्वयं दुनिया को अपने दल में सम्मिलित करने वाले और अपने मार्ग पर चलाने वाले हैं और शताब्दियों तक चला चुके हैं। वे ईश्वर के सम्मुख खड़े हो जाएं तो सारी दुनिया उनके आगे खड़ी हो जायगी। उनका अपना मार्ग विद्यमान है, मार्ग की खोज में फिर वह क्यों दूसरों के द्वारों पर भटकते फिरें? ईश्वर उनको भालोन्नत करता है तो वे क्यों अपने सिरों को झुकाते हैं? वह ईश्वर का दल हैं और ईश्वर की मर्यादा इस बात को सहन नहीं कर सकती कि उसकी चौखट पर झुकने वालों के सिर दूसरों के सम्मुख झुकें।

यह मार्ग किस ओर ले जाता है?

'अल-हिलाल' का संदेश जीवन के अन्य क्षेत्रों के समान ही राजनीति के क्षेत्र में भी यही है कि सरकार के प्रति श्रद्धावान मत बनो और न ही हिन्दुओं की अवधारणाओं को आत्मसात करो। केवल 'आग्नेय सुपथा' पर चलो जिसका मार्गदर्शन इस्लाम ने किया है।

१. इस्लाम का मूलभूत सिद्धांत अद्वैत है। वह सिखलाता है कि केवल परमसत्ता के प्रति ही आस्था रखो और उसी के आगे झुको। उसी से सहायता की याचना करनी चाहिए और उसकी सामर्थ्य पर विश्वास करना चाहिए। जिस प्रकार ईश्वर को तत्त्व रूप में एक मानना अद्वैत है, उसी प्रकार उसके गुणों में किसी दूसरे अस्तित्व को सम्मिलित न करना अद्वैत का अंश है।

अतः ईश्वर के अतिरिक्त कोई नहीं, जिसका आदेश अंतिम हो, कोई नहीं जो नमन करने के योग्य हो, और उस बात का अधिकारी हो जिसके सम्मुख अपनी हीनता को प्रदर्शित किया जाए, कोई नहीं जिसकी सत्ता और महत्ता के ऊपर प्रश्नचिह्न लगाने की किसी को क्षमता प्राप्त हो और कोई नहीं जो डरने और भयभीत होने के योग्य हो।

२. ईश्वर ने मुसलमानों को **खैर-उल-उम्मम** (मानवमात्र का कल्याणकर्ता) बनाया है और उन्हें संसार में अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया है; उन्हें सत्तासंचालन का वरदान दिया है। अतः प्रत्येक मुसलमान को चाहिए कि वह अपने महत्त्व को महसूस करे और नैराश्य, साहसहीनता और भय के स्थान पर अपने अंदर विचारों की उच्चता, आत्मसम्मान, शक्ति और दृढ़ता उत्पन्न करे।

३. ईश्वर ने मुसलमानों को न्याय की एक शक्ति घोषित किया है और कहा है कि उनके समस्त कार्य न्याय पर आधारित और संतुलित होंगे। अतः प्रत्येक अवसर पर मुसलमानों को मध्यम मार्ग का अनुगमन करना चाहिए और संतुलन को बनाये रखना चाहिए।

४. मुसलमान संसार में शांति के संदेशवाहक हैं। उन्होंने तलवार भी उठाई है तो शांति के हित मे। अतः लड़ाई-झगडा यदि दूसरों के लिए अनुचित और अपराध है तो उनके लिए महापाप हैं और ईश्वरीय आदेशों का उल्लंघन हैं। संसार में जिन समुदायों ने प्रपंच का मार्ग अपनाया वह ईश्वरीय प्रकोप से बच न सके।

५. कुरान उनको सिखलाता है कि "एक-दूसरे की सहायता करो, अच्छे कार्यों में; और पापों से बचने में, पापाचार और दंगों के लिए नहीं।" वह दुनिया में इस बात के लिए ईश्वर के प्रति उत्तरदायी हैं कि अच्छाई की रक्षा करें और बुराई को रोकें। अतः हर अच्छी बात करने वाले के सहायक हों, चाहे वह सरकार हो या कोई अन्य समुदाय।

६. कुरान सांसारिक व्यवस्था के लिए आवश्यक समझता है कि व्यक्तिगत सत्ता और नियंत्रण का विरोध हो। उसकी शिक्षा यह है कि ईश्वर के अतिरिक्त कोई नहीं है जो मनुष्यों को केवल अपने मतानुसार और इच्छानुसार बनाये हुए आदेशों के पालन पर विवश करने का अधिकारी हो।

"यह अधिकार किसी भी व्यक्ति को प्राप्त नहीं है जिसे ईश्वर ने पुस्तक, बुद्धि, संहिता और रसूल का वरदान दिया हो कि वह लोगों से कहे कि ईश्वर से विमुख होकर मेरी वंदना करो।"

किसी भी सांसारिक सत्ता या सरकार को वह अधिकार और सामर्थ्य प्राप्त नहीं हो सकता जो पैग़म्बरों को भी नहीं दिया गया। ईश्वर ने बताया है कि उसका अपना विवेक समुदायों और दलों के विवेक में निहित है। उसने कहा है कि "जन-समूह को उसका संरक्षण प्राप्त होता है।" अतः उसके निकट वही सरकार औचित्यपूर्ण हो सकती है जो वैयक्तिक न हो और किसी समुदाय और जाति के हाथ में हो। इसी आधार पर उसने विचार-विमर्श करने का आदेश दिया है:

'उनको आदेश दिया गया कि पारस्परिक विचार-विमर्श करके समस्त कार्य संपन्न करें। ऐ पैग़म्बर! समस्त कार्य-व्यापारों को विचार-विमर्श द्वारा संपन्न किया करो।' अतः मुसलमानों का कर्तव्य होना चाहिए कि वह स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्रयत्न करें और संसदीय प्रणाली की सरकार उन्हें जब तक न मिल जाय, अपने धार्मिक सिद्धांतों के पक्ष में संघर्ष करें।

उपरोक्त सिद्धांतों के आधार पर हम अपनी राजनीतिक नीति तैयार कर सकते हैं और

इसके लिए हमें न तो मध्यमार्गी हिन्दुओं की चाटूकारी करने की आवश्यकता है और न ही उग्रवादी हिन्दुओं की। यदि हम ऐसा करेंगे तो एक मध्यमार्गी किन्तु निर्भीक समुदाय होंगे और हमसे अन्य किसी समुदाय को हानि पहुँचने का भय न होगा। हम अपने नितांत धार्मिक सिद्धांतों के अनुरूप देश की एकता और स्वतंत्रता के लिए प्रयत्न करेंगे, किन्तु हमारे प्रयत्न लड़ाई-झगड़े, उपद्रव और विद्रोह से नितांत मुक्त होंगे। क़ुरान ने हमको सिखलाया है कि 'धरती पर शांति स्थापित हो जाने के पश्चात् लड़ाई-झगड़े मत फैलाओ।"

बरतानिया सरकार ने निश्चय ही हमको शांति दी है और इस शांति के वातावरण में हम स्वतंत्रता से अपने धार्मिक कर्तव्यों का निर्वाह करते हैं। अतः हमारा धर्म हो जाता है कि विद्रोहियों के उत्पात और क़ानून के अवज्ञाकारियों से स्वयं को दूर रखें, क्योंकि यह बात धरती पर शांति की स्थापना के पश्चात् उसे उपद्रवग्रस्त बनाना होगा और निश्चय ही यह ईश्वर के प्रति अपराध और पाप है। अतः जो लोग देश में अशांति फैलाते हैं, चाहे वह हिन्दू अराजकतावादी हों या अपराधी वृत्ति के दल हों, हमारा कर्तव्य होना चाहिए कि उनसे दूर रहें और हो सके तो उन्हें सुधारने का प्रयास करें।

परन्तु सरकार को भी याद रखना चाहिए कि यदि हम सच्चे मुसलमान हो जाएं तो जितनी मात्रा में अपने लिए लाभदायक होंगे, उतना ही सरकार के लिए और उतना ही अपने पड़ोसियों के लिए भी। इस बात को न भूलना चाहिए कि यदि हम सच्चे मुसलमान होंगे तो हमारे हाथ में क़ुरान होगा और जिस हाथ पर क़ुरान का अंकुश होगा, वह बम का गोला या रिवाल्वर नहीं पकड़ सकता। परन्तु यह भी समझ लेना चाहिए कि इस्लाम ने हमें स्वतंत्रता प्रदान करने और उसे प्राप्त करने, दोनों बातों की शिक्षा दी है। हम जब सत्ताधारी थे तो हमने स्वतत्रता प्रदान की थी और अब हम पराधीन हैं तो वही बात मांग रहे हैं। हमारा विश्वास है कि ईश्वर की इच्छा यही है कि जातियों और देशों को आप अपने ऊपर राज करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाय और योरोप स्वयं इसी सिद्धांत को अपनाकर स्वतत्र हो चुका है। हम इंगलिशतान से आज उसी बात के इच्छुक हैं जिसके लिए वह स्वयं कल तक विचलित था। निश्चय ही यदि इस्लाम की बतलाई हुई राजनैतिक पद्धति हमारे सम्मुख होगी तो हम एक शक्तिशाली समूह होंगे, निर्भीक और साहसी होंगे क्योंकि हम ईश्वर के अतिरिक्त किसी से नहीं डरेंगे। हमारा मार्ग सुस्पष्ट होगा और हम संशयग्रस्त नहीं होंगे। इसीलिए हमारी कार्यनीति भी एक होगी और उसकी अभिव्यक्ति की भाषा भी एक होगी। हम आक्रोश में भी आयेंगे कितु हमारा आक्रोश और हमारा आदोलन क़ानून और शांति की परिधि में होगा क्योंकि 'ईश्वर ने कहा है कि उत्पात मत करो।' अब तक मुसलमानों के जो नेता समुदाय को चुप और असावधान रखने की चेष्टा करते रहे हैं वे अंदर ही अंदर फोड़े को पकाना और राख के अंदर चिंगारियों को दबाना चाहते थे। परन्तु यदि हम इस सत्य मार्ग पर चलें तो घाव हमारे हृदय पर नहीं होंगे बल्कि व्यक्त रूप से हमारे मुंह पर होंगे। हमारी इच्छाओं-आकांक्षाओं और शिकायतो के फोडे अंदर पक कर शांति के शरीर को हानि नहीं पहुचायेंगे, बल्कि फूटकर बह जायेंगे। हम निश्चय ही शोर मचायेंगे किंतु फिर मन में मलिनता शेष न रहेगी। हम चीत्कार अवश्य करेंगे कितु अंदर ही अदर शिकायतों की अग्नि प्रज्वलित न होगी। अतः सरकार की भी नीति यही होनी चाहिए कि हमें मुसलमान बनने के लिए छोड़ दें क्योंकि मुसलमान होने के पश्चात् हम अपने लिए तथा समस्त संसार के लिए समानतया लाभदायक हो सकते हैं।

यही 'अल-हिलाल' की नीति है और इसी की ओर हम मुसलमानों को बुलाना चाहते हैं।

यह नीति किसी मानवीय मस्तिष्क की उपज नहीं है और न किसी मानवीय समुदाय के आचरण का अनुसरण है, बल्कि उस जगपालनहार ने यह मार्ग हमारे सम्मुख खोल दिया है जिसने पुस्तकें, विवेक, न्याय और औचित्य का वरदान देकर धरती पर पैगम्बरों को भेजा था। उसकी यदि अनुकम्पा हुई तो उसके द्वारा प्रदत्त जीवन को इस सत्याह्वान में समाप्त कर देना चाहते हैं। न किसी से युद्ध है, न किसी से द्वन्द्व, न पाने की इच्छा न सराहना की आशा। इस मार्ग के संबंध में जो आदेश पैगम्बरों को दिया गया था वह हमारे सम्मुख था : "(ऐ पैगम्बर ! तुम उनको बुलाओ और जो आदेश दिया गया है उस पर सुदृढ़ रहो, उनकी इच्छाओं पर न चलो और उनसे कह दो कि समस्त अवतरित पुस्तकों पर मेरी आस्था है और मुझको आदेश मिला है कि न्याय करूं। वही ईश्वर हमारा और तुम्हारा दोनों का पालनहार है, हमारा आचरण हमारे लिए और तुम्हारा आचरण तुम्हारे लिए, झगड़ने की कोई बात नहीं। ईश्वर ने हम सब को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया और हम सबको उसी की ओर लौट कर जाना है।)" (४२ : १४)

मुस्लिम लीग यदि मुसलमानों का राजनैतिक नेतृत्व करना चाहती है तो उसको यही मार्ग अपनाना चाहिए।

स्वतंत्रता के लिए धर्मयुद्ध

अल-जेहाद फ़ी सबील-अल-हुर्रियत

अलहिलाल

"ईश्वर के अतिरिक्त किसी से भी भयभीत न हों यदि तुम मोमीन हो।"

(क़ुरान) १७ : १३

स्वतंत्रता के लिए धर्मयुद्ध *

भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास जिसका लेखन अभी शेष है

जो घटना होनी है वह अवरोधोत्पादक तत्त्वों के षड्यंत्र के होते हुए भी घट कर रहेगी। निश्चय ही वह दिन आएगा जब राजनैतिक क्रांति सम्पूर्ण भारत में उत्पन्न होकर रहेगी। पराधीनता की ज़ंजीरें जो मातृभूमि के पैरों में डाल दी गई हैं वह २०वीं शताब्दी की स्वतंत्रता की प्रचण्ड वायु के हथौड़े से टूट जाएंगी, जो कुछ होना है वह होकर रहेगा। कल्पना कीजिए कि उस समय जब भारत का इतिहास लिखा जाएगा और आप जानते हैं कि उसमें हिन्दोस्तान के सात करोड जन-समुदाय के संबंध में क्या लिखा जाएगा?

उसमे लिखा जाएगा कि एक भाग्यहीन और दुर्भाग्यग्रस्त समुदाय था जिसने सदैव देश की प्रगति में बाधा उत्पन्न की और उसके विकास में सर्वदा अवरोधक सिद्ध हुआ। यह लोग देश की स्वतंत्रता के मार्ग में रुकावट थे और सत्तारूढ़ बाजीगरों के हाथ का खिलौना थे, विदेशियों के हाथ की कठपुतली थे और भारत के ललाट पर कलंक थे। वह सरकार के हाथ के ऐसे हथियार थे जिसके द्वारा उसने देश की आशाओं और आकांक्षाओं पर कुठाराघात किया।

इतिहास में लिखा जाएगा कि यह ऐसा समुदाय था जिसकी स्थिति दयनीय थी जैसे उस पर जादू कर दिया गया था तथा कुछ महामना महात्माधारी व्यक्तियों के जादूई मंत्रों से यह समुदाय पशु बन गया था। इसकी नकेल पकड़कर इसके स्वामी चलते थे और यह उनके संकेत पर नाचता था, यह वह जन्तु था जो अपनी दास्यावस्था से प्रसन्न था और जो मानवीय इच्छाशक्ति, चेतना और भावना को व्यक्त नहीं कर सकता था। संक्षेप में इनमें किन्हीं मानवीय गुणों का लेशमात्र भी चिह्न दिखाई नहीं पड़ता था। इन्होंने न अपनी बुद्धि का उपयोग किया और न ही कोई विरोध प्रकट किया। यह अपने पैरों पर चलने या अपने हाथ उठाने में असमर्थ थे। यह इन्द्रजाल में फंसे ऐसे लोग थे जिनकी चेतना जादूगर की इच्छाशक्ति पर निर्भर होती है। उनका अस्तित्व गतिहीन था, वैसे वह ऐसे वृक्ष के समान थे जो हवा के हल्के से झोंके से गिरने को तैयार खड़ा होता है, वह ऐसी चट्टान थे जो केवल हाथों के छू जाने से ही हिल सकती थी, वह धरती के वक्षस्थल पर बोझ थे, वह मानवता के ललाट पर दुर्भाग्य की रेखा थे।

इस्लाम के पतनावसाद का पूर्ण दृश्य

इतिहास के पृष्ठों पर लिखा जाएगा कि यह उन लोगों की दुर्दशा थी जो स्वयं को

* यह लेख अल-हिलाल के खण्ड १ अक २३, १६ दिसम्बर १९१२ मे प्रकाशित हुआ। इस लेख के एक निकटवर्ती पृष्ठ पर एक चित्र छपा है जिसमे ईसाइयो के धार्मिक युद्ध मे विजयी होने के लिए बुलगारिया के सम्राट को पोप द्वारा सम्मानित करते हुए दिखाया गया है। इसके नीचे मर्शानगन का चित्र है जिसके द्वारा बुलगारियाई सेना के सामने के मोर्चे को तुर्कों ने उड़ा दिया था। इन दोनो चित्रो और इस लेख का पारस्परिक सबध स्पष्ट है।

मुसलमान कहते थे, जिनका चयन संसार की थाती को ग्रहण करने के लिए किया गया था, जो पृथ्वी पर परमसत्ता के प्रतिनिधि थे तथा जो मानवीय सम्मान और उसकी भव्यता के इतिहास के रक्षक थे।

यह लोग दुनिया में ईश्वर की सृष्टि को अत्याचार और पराधीनता से मुक्त कराने के लिए भेजे गए थे, जिनका अवतरण दासता की ज़ंजीरें काटने के लिए हुआ था और इसलिए नहीं कि वह इन ज़ंजीरों को स्वयं अपने पांव में डाल लें। वे आए थे उन बेड़ियों को तोड़ने के लिए जिससे शैतानी व्यक्तियों ने (इस्लामी परिभाषा में ईश्वर के अतिरिक्त किसी अन्य की श्रेष्ठता की स्वीकृति शैतानी काम है) मनुष्यों को जकड़ रखा था, इसलिए नहीं कि उन्हें वे स्वयं अपनी ग्रीवा में डाल लें। इसका अपवाद केवल एक श्रृंखला थी और वह थी परमसत्ता के सम्मुख नमन की ज़ंजीर। उन्हें ईश्वर का प्रतिनिधि नियुक्त किया गया था ताकि वह धरती पर राज कर सकें, इसलिए नहीं कि वह स्वयं अपनी दासता के प्रति उदासीन हो जाएं। वह इस संसार में भेजे गए थे ताकि जो उनके पांवों पर गिर जाएं उन्हें ऊपर उठा सकें, इसलिए नहीं कि वह स्वयं दासता के असम्मानजनक पंथ में विलोड़ित हो जाएं और कीचड़ में धंसते जाएं। वे ऐसे पंथ के अनुयायी थे जिन्हें मानवता के सम्मुख इसलिए प्रस्तुत किया गया ताकि वह दूसरों पर राज कर सकें, इसलिए नहीं कि उस पर दूसरे राज करें।

आह ! यह मुसलमान कौन थे ? मानवीय श्रेष्ठ गुणों में से कोई ऐसा है जो उन अत्यंत प्रांजल और पुनीत शब्दों में समाहित न हों जो ईश्वर की ओर से कहे गए थे ? वह मुसलमान थे और इसीलिए उनका कर्तव्य था कि वह हिन्दोस्तान में वह सब करते जो अन्ततोगत्वा दूसरों ने किया। वह मुसलमान थे, इसलिए हिन्दोस्तान की स्वतंत्रता और उन्नति की पताका उनके हाथों में होनी चाहिए थी, अन्य समस्त समुदायों को उनके पदचिह्नों पर चलना चाहिए था क्योंकि वह इस्लाम के अनुयायी थे और इस्लाम का अर्थ है अग्रगामी होना पिछलग्गू होना नहीं। इस्लाम की शक्ति ऐसी है कि उसकी महानता को स्वीकार करके दूसरे भी भौतिक और आध्यात्मिक मुक्ति प्राप्त करते हैं। इस्लाम किसी सांसारिक शक्ति के सम्मुख नतमस्तक नहीं होता।

मस्तिष्क चिन्तन के लिए है, निद्रा-निमग्न होने के लिए नहीं। आप जो सुप्तावस्था को जागृति और मृत्यु को जीवन समझते हैं, मुझे ईश्वर को साक्षी बनाकर बताएं कि आपके संबंध में यदि यह सब इतिहास के पन्नों पर नहीं लिखा जाएगा तो आगामी वर्षों में आपके संबंध में क्या लिखा जाएगा ? विश्वास कीजिए कि ये पंक्तियां लिखते समय मेरा हृदय दुःखी है, मेरी आत्मा अशांत है, मेरे हृदय के घावों से रक्त उबल-उबल कर बह रहा है और मेरी लेखनी मेरी उत्तेजना के अंकन मे असमर्थ है। मैं क्या देख रहा हूं ? आप सब भी आंखें रखते हैं किन्तु देख नहीं सकते ? वह कौन-सी आवाज़ है जो मैं सुनता हूं ? आपके भी कान हैं लेकिन क्या आप सुन नहीं सकते ? आप ! मेरे परिजनो ! मैं आपसे क्या कहूं ? ईश्वर के नाम पर मैं पूछता हूं क्या आप सद्धर्म के अनुयायी नहीं हैं, इस्लाम के नाम से आप क्या सम्मानित नहीं हुए हैं और आपको ईश्वर ने अपना विश्वासपात्र नहीं बनाया है। यदि इन बातों के प्रति आप निष्ठावान हैं तो आपको जानना चाहिए कि आपका निर्माण निर्भीक, साहसी, स्वतंत्र, और स्वराज-प्रेमी होने के लिए हुआ है, आप केवल इसलिए नहीं बनाए गए हैं कि स्वयं को स्वाधीन करें बल्कि आप इसलिए बनाए गए हैं कि दूसरों को भी दासता के बंधन से मुक्त करें। मैं इससे कुछ आगे की बात कहता हूं और सशक्त भाषा में कहता हूं कि आपका निर्माण इसलिए हुआ है कि आप सत्य के हेतु अपना जीवन बलिदान करने के लिए तत्पर रहें। फिर ऐसा क्यों है कि यह समस्त गुण

मुझे दूसरों में दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु दुर्भाग्यग्रस्त लोगो ! तुम में नहीं हैं ? कैसी विचित्र और आश्चर्यजनक घटना है।

भारतीय इतिहास का एक विशिष्ट अध्याय

आपको यदि विश्वास है कि भारतीय इतिहास में आपके संबंध में एक यशपूर्ण अध्याय होगा तो आइये इसमें क्या लिखा होगा उसकी भविष्यवाणी मैं कर दूं और आपको पढ़कर सुना दूं। निश्चय ही किसी के हाथ में जब इस इतिहास का अध्याय आएगा तो आप जानते हैं कि **इसमें क्या लिखा होगा ? उसमें लिखा होगा कि भारत जब प्रगति और स्वतंत्रता के मार्ग पर** अग्रसर हुआ तो हिन्दुओं ने अपना जीवन बलिदान करके उसके पथ को प्रशस्त किया। परन्तु जब रणक्षेत्र में दुंदुभी बजी तो मुसलमानों ने स्वयं को गुफाओं में छुपा लिया। हिन्दुओं ने उन्हें **पुकारा लेकिन उन्होंने अपने होंठ सी लिए। देश अन्यायपूर्ण कानूनों के नीचे पिस रहा था तो यह** हिन्दू थे जिन्होंने संघर्ष का उद्घोष किया, मुसलमान न केवल इस संघर्ष से दूर रहे बल्कि चीखने लगे कि अन्याय के विरुद्ध संघर्षरत सभी लोग बागी हैं।

भारतीय दमन की कथा

इस देश की अर्थव्यवस्था कृषिप्रधान है। इसके कृषक वर्ग को नष्ट किया जा रहा था, इसके संसाधनों को इंग्लैण्ड ले जाया जा रहा था और शीघ्र ही कच्चे माल की बढ़ती हुई मांग के फलस्वरूप इसकी अर्थव्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया गया था। रेल व्यवस्था के विस्तार के लिए अंग्रेज़ी कम्पनियों को ठेके दिए गए थे ताकि वह और अधिक धन-सम्पत्ति हड़प कर सकें। देश के कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए सिंचाई व्यवस्था को धन उपलब्ध नहीं था। हमारी वफ़ादारी की प्रशंसा की जाती थी किन्तु हथियारों को छूने की अनुमति हमें नहीं थी क्योंकि हमें अत्यंत संदिग्ध प्राणी समझा जाता है। देश की समस्त धन-सम्पत्ति लाल कालर वाले ७० हज़ार सेनानियों को उत्तम भोजन खिलाने के लिए लुटाई जा रही थी, भूखे मर रहे काले,लोगों को शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाओं से वंचित कर दिया गया था। नमक तक पर कर लगा दिया गया था, शिक्षा केवल सम्पत्ति और घर-बार बेच करके ही प्राप्त की जा सकती थी। महारानी विक्टोरिया जब साम्राज्ञी बनीं तब उन्होंने सुंदर शब्दों में वादा किया कि राजा और प्रजा के बीच किसी भेदभाव का प्रश्न नहीं उठेगा और जो सुअवसर एक को प्राप्त होगा उसी के अधिकारी सब होंगे। परन्तु जब उनके शब्दों पर विश्वास करके हम आगे बढ़े तो हमने अपने लिए सारे द्वार बंद पाये और प्रत्येक अंग्रेज़ राजा और प्रजा के बीच के भेदभाव के प्रति जागरूक हो उठा।

यह वह परिस्थितियां थीं जिनका देश को सामना करना पड़ रहा था। हिन्दू विरोध प्रकट करने के लिए उठ खड़े हुए और दमन के विरुद्ध संघर्ष में अपनी समस्त शक्ति उन्होंने समर्पित कर दी। परन्तु ठीक उसी समय मुसलमानों ने न केवल अपने हाथ-पांव तोड़ लिए बल्कि उन्होंने चाहा कि जिसके हाथ-पैर सुरक्षित हों उसको भी विकलांग बना दें। उस समय जब हिन्दू देश की आजादी की मशाल जला रहे थे तो मुसलमान उपेक्षाभाव से शिक्षा के शव के चारों ओर घेरा बनाए बैठे थे। किसी ने "अभी समय नहीं आया" का भ्रामक मंत्र फूंक दिया था और वह पूर्णतया इसके वशीभूत थे। 'सहस्र-रात्रि' नामक अरबी ग्रंथ के किसी जिन्न ने अपने मंत्र द्वारा उन्हें पाषाण बना दिया था। पाषाण की यह चट्टानें देश की उन्नति के मार्ग में बाधक थीं।

मुसलमानों की राष्ट्रीयता का लेखा-जोखा

भावी इतिहासकार जब घटनाक्रम का अंकन करेगा तो अंततोगत्वा वह लिखेगा कि जो कुछ होना था वह होकर रहा। बीसवीं शताब्दी में कोई भी देश पराधीन नहीं रह सकता था और कोई रहा भी नहीं। अंग्रेज़ी सरकार का ढांचा संवैधानिक था। यह चंगेज़ खां का स्वेच्छाचारी राज नहीं था। इसलिए अंग्रेज़ी सरकार ने अपनी भूमिका निभाई और भारत स्वतंत्र हो गया। परन्तु दुनिया याद रखेगी कि घटनाचक्र के इस परिवर्तन में मुसलमानों की कोई भागीदारी नहीं, जो कुछ घटा उसका मान-सम्मान किसी भी समुदाय को क्यों न मिले किन्तु मुसलमानों को नहीं मिलेगा। मुसलमानों ने सदैव स्वतंत्रता की तुलना में पराधीनता को और मान-मर्यादा तथा गौरव-गरिमा की तुलना में धूल-धूसरित होने को प्राथमिकता दी। भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता निश्चय ही मानवीय गरिमा की स्मारिका है। परन्तु इसके निर्माण में मुसलमानों का कोई हाथ नहीं है। देश के कानूनों में यदि संशोधन किया गया, यदि वित्त संबंधी विधियां लागू की गईं, यादे लोगों को कमरतोड़ करों से मुक्ति मिली, यदि अनिवार्य शिक्षा प्रारंभ हुई, सेना पर व्यय किया गया धन घटा और अंततः यदि देश को स्वराज मिला तो यह सब केवल माननीय हिन्दुओं और उन हिन्दुओं के कारण संपन्न हुआ जिन्होंने राजनैतिक आंदोलन चलाकर और उसे चलाए रखकर मुसलमानों के सम्मुख एक उदाहरण प्रस्तुत किया। जहां तक मुसलमानों का संबंध है उन्होंने इस आंदोलन को पाप समझा और इससे पृथक् रहे। उन्होंने जब कोई आंदोलन प्रारंभ करने का प्रयास भी किया तो केवल सरकार के सम्मुख स्वयं को नतमस्तक करने और छलछलाते नेत्रों से भिक्षा मांगने के लिए। शैतान ने उन्हें बहकाया, उसने कहा कि मुक्तामणि मत मांगो बल्कि घिसा-पिटा तांबे का पैसा या सड़ी-गली रोटी का टुकड़ा मांगो।

मुस्लिम लीग

दीर्घ काल के पश्चात् बेड़ियां टूटीं। जिसे पाक कहा गया था, जिसे पावन बताया गया था वह पाक-देश बन गया, परन्तु कैसे? क्या यह उनके प्रयासों, उनकी जागरूकता, उनकी चेतना अथवा उनके आध्यात्मिक मार्गदर्शन का फल था? इसके विपरीत यह उस षड्यंत्र का फल था जो दूसरों ने रचा था। जिन लोगों के आदेशानुसार उन्होंने गुफाओं में शरण ली थी अब उन्होंने इन्हें बाहर निकलने और स्वयं को धराशायी होने का आदेश दिया था। इस नाटक के अंतिम अंक का मंचन शिमला में प्रतिनिधि मंडल की वाइसराय से भेंट के पश्चात् हुआ और इसका नामकरण 'लीग' किया गया।

परन्तु यदि तुम एक हिमगृह बना कर उसका नाम अग्निगृह रख दोगे तो क्या बर्फ आग हो जाएगी? यदि तुम एक खिलौना लेकर उसके वक्षस्थल के निकट लगे हुए बटन को अंगूठे से दबाओगे ताकि वह अपने दोनों हाथ हिला-हिलाकर ताली बजाये तो क्या इस तमाशे से उसे मनुष्य का बच्चा समझ लिया जाएगा? मूर्खो, मौन क्यों हो? मुझको उत्तर दो। संभवतः आज तक दुनिया में किसी समुदाय ने राजनीति का ऐसा खुला हुआ तिरस्कार और निरादर नहीं किया होगा जैसा कि इन छः वर्षों में तुमने किया है। तुमने, ऐ चांदी और सोने के पूजने वालो !तुमने किया है। तुम्हारा अस्तित्व पूर्णतया राजनीति का तिरस्कार है और तुम्हारे कर्म उसके गर्वोन्नत भाल पर कलंक का टीका है। तुमने दासता का एक मूर्त्यालय बनाया और उसका नाम राजनीति की मस्जिद रखा, तुमने अपना सिर झुकाया और समुदाय को धोखा दिया कि हम आदर-सम्मान

से सिर ऊंचा कर रहे हैं। तुम दलदल में अपने पांव डालकर कूद रहे थे ताकि और गहरे धंस जाओ, किन्तु समुदाय से कहते थे कि हम मैदानों में दौड़ रहे हैं। तुम स्वयं पथभ्रष्ट थे, किन्तु इस पर संतुष्ट न हुए और संपूर्ण समुदाय को पथभ्रष्ट करना चाहा।

प्रश्न छत का नहीं है बल्कि उन ईंटों का है जो नींव में रखी गई हैं, यह वाद-विवाद व्यर्थ है कि दीवार कैसी है। देखना यह है कि नींव तो टेढ़ी नहीं है। राजनीति एक **आग है** जो स्वयं भड़कती है और भड़काई जाती है। वह शीतल जल से भरा गिलास नहीं है जिसका मिलना किसी उपेक्षा-दृष्टि रखने वाले पेय-पदार्थदाता की कृपादृष्टि पर निर्भर होगा। मार्गभ्रष्टता के प्रथम चरण के बाद वर्षो की निद्रा के पश्चात् जीवन ने करवट ली भी तो अपनी आकांक्षा, अपने उत्साह और अपने सामर्थ्य पर विश्वास के कारण नहीं ली बल्कि केवल किसी की भृकुटि के संकेतों और हाथ मिलाने के आश्वासन पर ली। परिणाम यह हुआ कि राजनीति दासता का एक दूसरा रूप बन गई और वह निर्दिष्ट स्थान से विमुख रखने का साधन बन गई। फिर इसके पश्चात् समस्त शक्ति इस बात पर लगाई जाने लगी कि सरकार से कुछ दक्षिणा मांगी जाए और जिस शक्ति को सरकार के विरुद्ध लगना चाहिए था उसको हिन्दुओं के विरुद्ध लगाया जाए। यह बात उस उन्माद के लिए अतिरिक्त तीखी मदिरा का भरा प्याला सिद्ध हुई। वस्तुतः समुदाय को यह महसूस करना है कि वह अपने पाँव पर खड़ा है या किसी बैसाखी के आश्रय टिका है। परन्तु विशेषाधिकार की इच्छा जब पैदा होगी, चाहे उसका कुछ भी नाम रखा जाएं, निश्चय ही अपने बाहुबल के स्थान पर केवल दाता की दया-कृपा पर विश्वास होगा। निश्चय ही मुसलमानों को अपने सामुदायिक अधिकारों की रक्षा के प्रति उदासीन नहीं होना चाहिए किन्तु साथ ही वास्तविक प्रयास इस बात का होना चाहिए कि वृक्ष अपनी जगह पर सुदृढ़ खड़ा रहे।

देश की पराधीनता के लिए मुसलमानों के बलिदान

हिन्दू-मुसलमान की समस्या भी एक जादूगर का खेल है और दुर्भाग्यवश नाचने वाले नाच रहे है। सेना में फूट पड़ गई है और शत्रु संतुष्ट है। यह विचार कि "तुम अभी शिक्षा-क्षेत्र में आगे नहीं बढ़े और इसलिए तुम्हारी राजनीति यही है कि पहले हिन्दुओं से उन अधिकारों को छीन लो जो उन्होंने हड़प कर लिए हैं।" सोचो तो, कि चतुर शत्रु की कितनी भयंकर चाल थी। याद होगा कि हमने एक बार इस स्थिति की ओर संकेत किया था। हिन्दुस्तान में स्वभावतः सरकार को अपने हितों की रक्षा के लिए एक महानाहुति की आवश्यकता थी। वह आहुति-बलि यह थी कि कोई एक समुदाय देश-पक्ष को छोड़ कर उसके साथ हो जाए और अपने देश की आकांक्षाओं की आहुति देकर उसके रक्त से सरकार के स्वार्थ-वृक्षों को सींचे। मुसलमानों ने स्वतः अपने आपको इस बलि के लिए प्रस्तुत कर दिया और जिस बोझ के उठाने से हिन्दोस्तान के सारे समुदायों ने इंकार कर दिया था उसके लिए पहले दिन ही उन्होंने अपनी ग्रीवा प्रस्तुत कर दी।

मुसलमानों की आंखों को यदि नेताओं के जादू-टोने ने बंद न कर दिया होता तो वह इस दृश्य को देखते और खून के आंसू रोते। वह देखते कि यह क्या दुर्भाग्य है कि देश की उन्नति तथा उत्थान की समस्या ही नितान्त 'हिन्दू समस्या' हो गई है और मुसलमानों का एक समुदाय के रूप में इससे कोई संबध नहीं रहा। 'हाउस आफ कामंस' में वादविवाद हो या कांग्रेस के मंच पर 'हिन्दुस्तान की समस्या' पर विचार-विमर्श, उनके लिए सब हिन्दू समस्या थी। यद्यपि देश की उन्नति और स्वतंत्रता का दायित्व हिन्दुओं पर देश की ओर से था तो ऐ आत्मविस्मृति से

ग्रस्त लोगो ! तुम्हारे सिर पर तो दायित्व तुम्हारे ईश्वर की ओर से था। दुनिया में सत्य के लिए संघर्ष और मानव को मनुष्य की दासता से मुक्त करना तो इस्लाम का स्वाभाविक ध्येय है। ईश्वर ने तुम्हें आगे करना चाहा था किन्तु खेद है कि तुमने सर्वप्रथम ईश्वर को और फिर अपने आपको भुलाया, परिणाम यह हुआ कि पिछली पंक्तियों में भी तुम्हारे लिए स्थान नहीं है।

परन्तु मैं निवेदन करूंगा कि तनिक धीरज रखिए और जिव्हा पर ताले न लगाइये क्योंकि वस्तुतः उलाहना देने का समय पहले न था, समय तो इसका अब आया है। हम भी परीक्षा के इसी क्षण की प्रतीक्षा में थे। केवल इच्छा करने से मंज़िल नहीं मिल सकती। आप ईंट-गारा प्राप्त भी कर ले तो भी घर नहीं बन सकता, जब तक राजगीर न हों। लीग के यह नए कटाक्ष संभवतः धैर्य को भंग करने की शक्ति अवश्य रखते हैं किन्तु इनमें ऐसा आकर्षण नहीं है कि टूटे हुए हृदय को पुनः प्रलोभित कर सकें। परन्तु अभावग्रस्त व्यक्तियों की ओर से खटका अवश्य है कि कहीं वह इसके धैर्य-भंजक हाव-भावों पर लट्टू न हो जाएं।

शारीरिक स्नायुओं की पहचान और लक्ष्य की खोज निश्चय ही रोग-निवारण के वास्तविक उपचार की खोज है, किन्तु जिज्ञासु होना ही समस्या का उचित निदान नहीं है और न ही स्वास्थ्यलाभ के लिए औषधि-प्राप्ति ही पर्याप्त है। आवश्यक है कि निदान की खोज सम्यक हो और जो औषधि प्रस्तावित की जाए वह रोग निवारण का वास्तविक उपचार हो। लीग यदि इस बात से सहमत हो गई हैं तो अहोभाग्य !

संधि-पत्र

वास्तविकता यह है कि लीग घोर निराशा का प्रतीक थी, अब भी है, और रहेगी, जब तक वह अपने आप को आशावान सिद्ध न कर दे। जन-समुदाय ने भली भांति देख लिया है कि न केवल महत्त्वपूर्ण राजनैतिक प्रश्नों के समाधान के लिए बल्कि तुच्छ राजनैतिक आवश्यकताओं के लिए भी लीग व्यर्थ है और इस दृष्टि से अत्यंत हानिकारक है कि राष्ट्र का भावी मार्ग रोक कर खड़ी है।

परन्तु ठीक उस समय जब यह बात स्पष्ट हो गई है कि हम लीग का त्याग करके अपना मार्ग ढूंढ रहे हैं और मन लगाने के लिए एक नये ठिकाने की चिन्ता में हैं तथा हमारी मनः स्थिति पहले से अच्छी है तो लीग पुनः सामने आई है और कहती है कि पिछली बातों को भूल जाओ ! यदि लीग पुनः हमारे मन को वशीभूत करना चाहती है तो उचित है कि हममें और उसमें एक संधि हो जाए। यह संधि-पत्र बिल्कुल न्यायपूर्ण होगा और इसके अनुबंधों के संबंध में कोई भ्रम नहीं होगा। लीग पिछली बातों को भुला दे, अपने घर को प्रतिद्वंद्वियों से रिक्त करे और हमसे लगाव रखना है तो प्रतिद्वंद्वियों से लगाव छोड़ दे। फिर हम भी दूसरे ठिकानों की चिन्ता छोड़कर उसी के हो रहे होंगे। परन्तु याद रहे कि अंतिम संधि होगी और यदि फिर कभी दूसरों की छाया भी उस पर पड़ी तो यह संधि-पत्र निष्फल और निरर्थक हो जाएगा।

यह बात भी स्पष्टतया कह दें कि प्रतिद्वंद्वियो और दूसरों से संबंध का अभिप्राय क्या है ? अभी इस बात का समय नहीं आया है कि प्रेम-संबंधों की अंतिम मांगें की जाएं। हमें इससे कोई चिढ़ नहीं, सरकार से पूरी तरह संबंध रखिये, कांग्रेस की वर्तमान स्थिति का दृष्टांत आपके सम्मुख है। अब तो स्वयं सरकार भी आशा की ज्योति प्रज्ज्वलित करने के लिए प्रयत्नशील है। परन्तु इन संबंधों के केवल यही अर्थ समझिए कि आनन्द के किसी क्षण में अपने सम्मान और अपनी गरिमा को सुरक्षित रखते हुए दो-चार घड़ी हँस-बोल लिए।

संधि के अनुबंध और लक्ष्य

राजनैतिक संघर्ष के लिए लक्ष्य निर्धारण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है और यदि आपको जीवित रहना है तो किसी उच्चादर्श की अंगीठी सुलगाइए जो प्रति क्षण आपके हृदय को गर्म रखे। यह बात बारंबार कही जा चुकी है कि कोई राष्ट्र अपने संघर्ष में वास्तविक कर्मठता, उच्चावधारणा और शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता जब तक उसके सम्मुख एक अत्यंत प्रेरक लक्ष्य न हो। अब आपको क्या समझाएं कि स्वतंत्रता वह महानतम लक्ष्य है जिसका आभास मात्र ही हृदय को प्राणवान बनाने के लिए पर्याप्त है।

लीग खोज में निकली है तो उसको भटकना नहीं चाहिए। हिन्दुस्तान में राजनैतिक लक्ष्यपूर्ति ही एकमात्र समस्या है यद्यपि इस संबंध में हमारा मार्ग साधारण पंथों से भिन्न है और हम इसे दूसरी दिशा से आकर लेना चाहते हैं किंतु लीग से उसमें सहयोग की आशा करना व्यर्थ होगा। अंततः उनको चाहिए कि घोषणा कर दें कि 'इंगलिस्तान के तत्वावधान में हिन्दोस्तान का स्वराज' उनका एकमात्र लक्ष्य है।

बोली कम लग रही है अतः खून बढ़ाओ

याद रहे कि हमारा प्रस्तावित लक्ष्य कोई अत्यंत उच्च कोटि का नहीं है क्योंकि हमारे साहस का विश्रामस्थल इस शाखा से भी उच्च स्थान की खोज में है। फिर भी यही उचित है कि आप 'स्वस्थ' राजनैतिक उद्देश्य निर्धारित करें और आज से ही उस ओर चलना आरंभ कर दें। यदि एक आकर्षक लक्ष्य आपके सम्मुख होगा तो यात्रा की यातनायें भी भूल जाइयेगा।

३० वर्षों से जो उलझाव इस समस्या के समाधान में बाधक रहे हैं, उन पर इधर बार-बार लिखा जा चुका है। हमें भ्रम है कि हिन्दुओं के बहुमत, समाज के विभिन्न तत्त्वों की पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता, हिन्दू-मुसलमानों का गत इतिहास, देश की अनन्यपरता, मुसलमानों के लिए हिन्दोस्तान में विदेशी राज की श्रेष्ठता और इसी प्रकार के वह समस्त संशय और स्वार्थ भाव जो मुसलमानों के हृदय में उत्पन्न किए गए थे अब भुलाए जा चुके हैं। स्वशासन की मांग हम इसी क्षण नहीं कर रहे हैं कि देश की सक्षमता और अक्षमता की कथा दोहराई जाए। उद्देश्य एक लक्ष्य को सम्मुख रखना है और शनैः-शनैः उस तक पहुंचना है। हिन्दू बहुमत का भय भी अब खुदा के लिए मन से निकाल दीजिए। यह सर्वाधिक शैतानी संशय था जो मुसलमानों के हृदय में उत्पन्न किया गया। शक्ति केवल संख्या पर नहीं बल्कि अन्य बातों पर निर्भर है, राष्ट्रों का वास्तविक बल उनका नैतिक बल है जो उनकी नैतिकता, उनकी सुचरित्रता, उनकी एकता और यदि इस्लामी पारिभाषिक शब्द में कहें तो ईश्वर की इच्छा और हमारे सुकृत्यों से उत्पन्न होती है। यह समस्त आशंकाएं इसलिए उत्पन्न होती हैं क्योंकि देश के सम्मुख सर्वमान्य उच्च लक्ष्य नहीं है। यदि प्रारम्भ काल से यही हो गया होता तो सब मिल कर एक ही लक्ष्य की ओर देखते और वह समस्त बल जो आज पारस्परिक रक्तपात में लगाया जा रहा है उसी लक्ष्य की पूर्ति के हेतु प्रयुक्त होता।

असावधानी से न सुनिये क्योंकि मैं एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात कह रहा हूँ। आपका समस्त भटकाव, आत्म-संतुष्टि, स्वार्थपरता और पारस्परिक रक्तपात, त्याग और समर्पण की उपेक्षा और प्रत्येक प्रकार के कुकर्म केवल इसलिए हैं कि सामने कोई आकर्षण नहीं है और मन-मस्तिष्क को विमोहित करने वाली जिस वस्तु को हम देख रहे हैं उसे आपने अभी देखा ही

नहीं है। जिस दिन एक उचटती हुई दृष्टि भी 'स्वतंत्रता की देवी' के सौंदर्य पर पड़ गई तो फिर आप स्वतः यह सारे प्रपंच भूल जाएंगे।

यात्रा की यातनायें

बहुत से लोग हैं जो यहां तक हमारे साथ आ गये हैं। मुसलमानों को भी यही लक्ष्य अपने लिए निर्धारित करना चाहिए किंतु वह मार्ग की कठिनाइयों से घबराते हैं।

प्रेमासक्त मेरे भाइयो !पता नहीं अब तक किस दुविधा में पड़े हो? यह राजनीति बलि की वेदी है, यह स्वतंत्रता और स्वाधीनता की रमणी है, यह आपका तीस वर्षीय मनोरंजक खेल-कूद का मैदान नहीं है। यदि आप कठिनाइयों से घबराते हैं तो आपके लिए फूलों की सेज उचित है, आप से किस मूर्ख ने कहा है कि इस कांटों से भरी घाटी में प्रवेश कीजिए? यहा आइयेगा तो पद-पद पर कांटे मिलेंगे और प्रत्येक क्षण आपत्तियों का सामना करना होगा। आप कठिनाइयों से घबरा रहे हैं जबकि यहां तो प्राणाहुति और जीवन-बलिदान का प्रश्न है। यहां वासना-लिप्त व्यक्तियों के लिए स्थान नहीं है। इस रणक्षेत्र के शूरवीर वह हैं जो ईश्वर के नाम पर बलि हो जाते हैं और सत्य के लिए संघर्षरत रहते हैं, जिनके सिर गर्दनों पर नहीं बल्कि हथेलियो पर रहते हैं।

राजनीति क्षणिक जादू नहीं है कि कुछ प्रस्ताव पढ़ कर आभार प्रकट करने के हेतु दण्डवत करके अपने आनंद कुंज में छुप जाइये, और वह आकाश से उतर कर आपको ढूढ़ती हुई आपके सम्मुख विराजमान हो जायेगी। आप से कोई नहीं कहता कि आइये, किंतु आने का संकल्प है तो मन को टटोल लीजिए कि आपके हृदय में और आपके बाहुओं में कितनी शक्ति है क्योंकि प्रेम-पंथ के अनुबंधों से आप अनभिज्ञ हैं।

दासता-मूर्ति और राजनैतिक प्राण-प्रतिष्ठान

आपके गत राजनैतिक क्रिया-कलाप सामने आ जाते हैं तो हँसी भी आती है और रोना भी। आपने वर्षों राजनीति के साथ जो उपहास किया है उसका उदाहरण शायद ही किसी पापलिप्त और मार्गभ्रष्ट राष्ट्र में मिले। चाटुकारिता और दासता के कीचड़ का प्रत्येक कीट स्वार्थपरता के प्रदूषण से उत्पन्न दुर्गन्ध से युक्त दावा करता था कि वह राजनैतिक रणक्षेत्र का शूरवीर है और राष्ट्रीय राजनैतिक कृत्यों का सुधारक है। ऐश्वर्य में तल्लीन जिन व्यक्तियों को किसी परीक्षण में पड़ने का साहस न हो तो उनमें इस बात का भी साहस नहीं हो सकता कि सरकार की लेशमात्र उपेक्षा-दृष्टि भी सहन कर सकें। वे इस बात का दावा करते थे कि इस राष्ट्र के राजनैतिक रणक्षेत्र के वह सेनापति हैं, और रणक्षेत्र में इसलिए कूदे हैं ताकि इस मोर्चे पर अपनी तलवार की तीक्ष्ण धार के जौहर दिखलाएं। जो लोकद्रष्टा थे वह इन वासना-ग्रस्त व्यक्तियों को देखते थे तो हँसते भी थे और समय की विडंबना पर रोते भी थे।

भाग्य की विडंबना ही है कि जिस बहुमूल्य वस्तु की प्राप्ति के हेतु प्राण देने और सिर कटाने की मांग को पूर्ण करना भी हम अपना सौभाग्य समझें, वह निर्मूल्य ही उनके हाथ आई है। उसका लीगी सार्थवाह की दृष्टि में इतना कम मूल्य है कि कुछ खोटे सिक्के हथेली पर रख कर बोलियां बोली जाती हैं।

अज्ञान के अंधकार में लिप्त लोगो !इस बात को याद रखो कि यदि तुम जीवित रहना

चाहते हो तो तुम्हें हतोत्साह नहीं होना चाहिए। केवल वही लोग पराजय की पीड़ा भोगते हैं जो जीवंत है, मृतक इन सब बातों से मुक्त हैं। यदि तुम्हें शांति चाहिए तो उसके लिए अत्यधिक अच्छा स्थान क़ब्र है। यदि तुम बैठे रहोगे तो निश्चय ही कभी गिरोगे नहीं, किंतु यदि चलोगे तो इस बात की संभावना है कि ठोकर अवश्य खाओगे और घुटना ज़रूर फोड़ोगे।

सुधार और व्यवस्था में परिवर्तन

मुसलमानों ने भद्रजनों में से अपने नेता चुनने की भूल की थी। यह लोग सहस्रों श्रृंखलाओं में जकड़े हुए हैं और सदा-सर्वदा इसी प्रकार के बंधन में अपने अनुयायियों को बांधे रखते हैं। इनके केवल दो गुण हैं। एक तो यह कि धन-धान्य संपन्न हैं और दूसरे यह कि विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के सदस्य हैं। तुम्हारा दोष इनकी तुलना में वस्तुतः कहीं अधिक है क्योंकि तुमने इन्हें घसीटा और यह उन परिस्थितियों की अवहेलना करके उनसे निकल न पाए जिन्होंने इनके पांव में बेड़ी डाल रखी थी। हम भी यदि इन्हीं की स्थिति में होते तो हम भी इसी प्रकार का आचरण करते। यह बात आवश्यक है कि लीग राजनीति को धन-सम्पत्ति के चंगुल से निकाल कर बुद्धि के हवाले करने का दृढ़संकल्प करें।

बंदी जीवन की शेषावधि

समय आ गया है जब हमें लीग को कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के चंगुल से निकाल कर उसे जनता को दे देना चाहिए और भद्रजनों से पूर्ण विनम्रता सहित प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमारी समस्याओं से विमुख हो जाएं और हमें अपने भाग्य के आश्रय छोड़ दें। हमें विधिवत अपनी पिछली भूलों के लिए क्षमाप्रार्थी होना चाहिए। करबद्ध हमें कहना चाहिए कि "हमें क्षमा प्रदान कीजिए, हमने जुलूस में आपकी गाड़ियां खींचीं, आपको हमने हार पहनाए, स्वयं को पशु बना डाला और अपनी लगाम आपके हाथ में दे दी। हमने यह जो कुछ किया उसके लिए हम दंड पाने के अधिकारी थे और हमें दंड मिल भी गया। अब यदि कारावास की अवधि में कुछ वर्ष शेष रह गए हैं तो हमारे अच्छे चाल-चलन और सरकारी नियमों को दृष्टि में रखते हुए इस अवधि को कृपया समाप्त कर दिया जाए। हम पर कृपा कीजिए। हमारी बेड़ियां खोल दीजिए।" इस समस्या का जब तक समाधान नहीं होगा तब तक केवल लीग के विधान में परिवर्तन लाने मात्र से कोई लाभ होने वाला नहीं है।

जेहाद : स्वाधीनता के लिए संघर्ष

लेख बहुत बड़ा हो गया है किन्तु इस संबंध में हम अपने विचार-प्रवाह के सम्मुख अत्यंत विवश हैं। बहुत-सी बातें अभी शेष हैं लेकिन जो रह गई हैं उनको नहीं लिखूंगा और उन्हें आपके चिंतन-मनन के लिए छोड़ देता हूं। परन्तु केवल कुछ शब्द सेवा में प्रस्तुत करने की अनुमति अवश्य चाहता हूं।

असावधानी और मादकता की स्थिति में बहुत-सी रातें बीत चुकी हैं, अब खुदा के लिए उन्माद-शैया से सिर उठा कर देखिये कि रज कितना चढ़ आया है? आपके सहयात्री कहां पहुँच गए हैं और आप कहां पड़े हैं, यह न भूलिये कि आप और कोई नहीं बल्कि 'मुस्लिम' हैं और

इस्लाम आप से आज बहुत-सी मांगें कर रहा है। कब तक इस ईश्वरीय पंथ को आप अपने कुकर्मों से लज्जित कीजियेगा? कब तक दुनिया को अपने ऊपर हँसाइयेगा और स्वयं न रोइयेगा? और कब तक हिन्दोस्तान में इस्लामी शक्ति का ख़ाना रिक्त रहेगा? यदि आपत्तियों का कुशाग्र विभ्रम दूर करने का उपाय है तो कौन-सी आपत्तिया हैं जो आप पर अवतरित नहीं हो चुकी हैं।

याद रखिये कि हिन्दुओं के लिए देश की स्वाधीनता के हेतु संघर्ष करना देशभक्ति है किन्तु आपके लिए यह एक धार्मिक कर्तव्य है, और ईश्वर के लिए संघर्षरत होना है। अब आपको ईश्वर ने उसके पक्ष में संघर्षशील होने के लिए बनाया है और जेहाद की परिधि में प्रत्येक वह प्रयास सम्मिलित है जो सत्य और मनुष्य को दासता और अत्याचार के बंधन से मुक्त कराने के लिए किया जाए। आज जो लोग देश के कल्याण और स्वाधीनता के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग कर रहे हैं वह विश्वास कीजिए जेहाद करने वाले हैं और एक ऐसे जेहाद में संलग्न हैं जिसके लिए वस्तुतः सबसे पहले आपको कटिबद्ध होना चाहिए था। इसलिए उठ खड़े हो कि ख़ुदा तुम्हें अब उठाना चाहता है और उसकी इच्छा यही है कि मुसलमान जहां कहीं भी हैं जागें और संघर्षशीलता के अपने विस्मृत कर्तव्य का पालन करें। हिन्दोस्तान में तुमने कुछ नहीं किया यद्यपि अब तुम्हारा ईश्वर चाहता है कि तुम यहां भी वह सब करो जो तुम्हें हर जगह करना है।

इस्लाम और राष्ट्रीयता

इस्लाम और नेशनलिज़्म

अल-हिलाल

''इस्लाम का आह्वान 'मानवतावाद' और 'मानव भ्रातृत्व' के लिए था। इसलिए वह नसली और राष्ट्रीय भेदभावों से उत्पन्न समस्त प्रकार के अनुदार भावों का विरोधी है।''

इस्लाम और राष्ट्रीयता *

१९२० मे घटना-प्रवाह ने बुद्धि और कल्पना को अधिक स्वच्छंद होने का अवकाश ही नहीं दिया था। महात्मा गांधी ने खिलाफत समस्या को केवल उसकी सरलता और व्यावहारिकता में देखा और उठ खड़े हुए। उन्होंने इससे अधिक सोचने की आवश्यकता ही न समझी कि मुसलमानों की मांग सत्य और न्याय के विरुद्ध नहीं है और यदि हिन्दुओं ने उनका साथ दिया तो इससे दोनों समुदायों में सौहार्द और एकता की भावना प्रबल हो जाएगी। वस्तुतः देश को उसकी तात्कालिक परिस्थिति में इससे अधिक प्रयास की आवश्यकता भी न थी। गांधी जी अत्यंत तीव्र गति से उठे और इसके पूर्व कि चेतना को 'यदि और परन्तु' में उलझने का अवकाश मिले उन्होंने कार्य आरम्भ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि कुछ महीनों मे एक सार्वजनिक आंदोलन खड़ा हो गया। खिलाफत की मांग हिन्दू-मुसलमानों की संयुक्त मांग बन गई। सैकड़ों-हजारों हिन्दुओं ने इसमें वैसी ही गहरी और निःस्वार्थ रुचि ली जैसी स्वयं मुसलमान ले रहे थे, बल्कि कहा जा सकता है कि कुछ हालतों में स्वयं मुसलमानों से भी उनके कदम आगे थे।

परन्तु जब व्यावहारिक गतिविधि का काल समाप्त हो गया तो प्रतिक्रिया होनी आरंभ हो गई। वही बात जो कुछ दिन पूर्व एक सर्वाधिक लोकप्रिय कार्य था अब संदिग्ध और तर्क-वितर्क का विषय बन गया और मानसिकता ने नाना प्रकार के प्रश्न उठाने आरम्भ कर दिये। जिस समय हज़ारों की संख्या में लोग कारावास जा रहे थे ताकि तुर्की के साथ न्याय किया जाए, उस समय भी यह बात उन्हें न सूझी कि इस मांग में जो इतनी उत्तेजना है वह हिन्दोस्तानी राष्ट्रीय हितों से मेल खाती है या नहीं ? किन्तु अब प्रत्येक व्यक्ति इसी चिंता से चिंतित है और कोई लेखनी ऐसी नहीं है जिसकी नोक पर यह प्रश्न न हो।

एक ओर तो वह लोग हैं जो कटुआलोचना की दृष्टि से इस समस्या पर विचार कर रहे हैं, दूसरी ओर मुसलमान लेखक हैं और चूंकि स्वयं उनके सामने भी कोई सुस्पष्ट वास्तविकता नहीं है इसलिए कुछ विलक्षण अतिशयोक्तिपूर्ण तर्क-वितर्क में व्यस्त हैं। कुछ वे लोग हैं जिन्होंने 'अल-हिलाल' के पिछले अंकों पर इस प्रकार के वक्तव्य पढे थे कि इस्लाम की व्यापक दृष्टि देशभक्ति की समीचीनता को स्वीकार नहीं कर सकती।

चूंकि भारतीय संदर्भ और उस बात के कहे जाने के अवसर पर उनकी दृष्टि नहीं है इसलिए इसका अर्थ वह यह समझते हैं कि इस्लाम 'राष्ट्रीयता' का विरोधी है और किसी मुसलमान को 'राष्ट्र-प्रेमी' नहीं होना चाहिए। कुछ ऐसे लोग हैं जो हिन्दुस्तानी मुसलमानों की राजनैतिक विमुखता से अत्यधिक रुष्ट हैं। जब वह देखते हैं कि बाहर की इस्लामी समस्याओं के

---

* इस लेख का चयन 'इस्लाम और राष्ट्रीयता' मे किया गया है जो अल-हिलाल मे पुनः प्रकाशित हुआ था। यह लेख जून १९२७ ई०-दिसम्बर १९२७ के अक मे प्रकाशित हुआ था। इस पत्र के सपादक अब्दुर्रज़्ज़ाक मलीहाबादी थे किन्तु उपर्युक्त लेख के समान ही मौलाना ने इस पत्र में अनेक उच्चकोटि के लेख लिखे थे।

लिए उनमें कितनी उत्सुकता उत्पन्न हो जाती है, जबकि उतना स्वयं अपने देश के लिए उत्साह उनमें नहीं होता तो वह सोचते हैं कि मुसलमानों की मानसिकता ही इस स्थिति का कारण है। अतः वह कहते हैं कि अब इस मानसिकता को उन्हें तिलांजलि दे देनी चाहिए।

न तो इस्लाम की व्यापक दृष्टि का यह अर्थ है कि वह राष्ट्रीय भावना के साथ जुड़ नहीं सकती और न तो राष्ट्रीयता के लिए इस बात की आवश्यकता है कि व्यर्थ में इस्लामी मानसिकता की विस्तृत परिधि को संकुचित किया जाए। यह दोनों स्थितियां अतिक्रमण हैं और हर बात के समान यहां भी वास्तविकता को उसके छोरों पर नहीं बल्कि उसे मध्य में ढूंढना चाहिए। वह 'मध्यम मार्ग' क्या है ? इस लेख का अभिप्राय उसी मध्यम मार्ग की खोज है। चूंकि समस्या अत्यधिक विस्तृत है अतः आवश्यक है कि उसे कुछ भागों में विभक्त कर दिया जाए।

सामाजिक जीवन और उसका विकासक्रम

'राष्ट्रीयता' क्या है? यह मनुष्य के सामाजिक जीवन की चेतना और उसकी अवधारणाओं की एक विशिष्ट स्थिति का नाम है। यह मनुष्यों के किसी एक समूह को दूसरे समूह से भिन्न करती है और उसके द्वारा मनुष्य की एक बड़ी बहुसंख्या पारस्परिक रूप से संबद्ध होकर जीवन व्यतीत करती है और सामाजिक जीवन के संघर्ष में संलग्न होती है। अतः इसके पूर्व की स्थिति में इस्लामी आदेशों और आह्वानों पर दृष्टिपात किया जाए तो स्वयं मनुष्य की स्थिति पर प्रकाश डालना चाहिए कि उसके सामाजिक संबंधों की मानसिकता और उसकी अवधारणाओं का स्वरूप क्या है।

मनुष्य दीर्घकाल तक जिस स्थान पर रहता है स्वभावतः उसके प्रति अधिक ममत्व का अनुभव करने लगता है। इस ममत्व के कारण एक से अधिक हैं। पहले तो यह कि उस स्थान की भौगोलिक विशेषताओं के साथ उसकी जीवनचर्या कुछ इस प्रकार घुल-मिल जाती है कि वहां के प्रत्येक कण और स्थिति के साथ उसके जीवन की कोई न कोई स्थिति संबद्ध हो जाती है और उसके मन में उस स्थान के लिए आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। दूसरे जो अनुभव उसे निरन्तर होते रहते हैं वह स्वतः ही उसकी पाशविक प्रवृत्ति को प्रभावित करते हैं। जिन वस्तुओं से उसका निरन्तर संबंध रहता है उनसे वह स्वभावतः अधिक निकट का संबंध अनुभव करता है। तीसरे स्थान और निवास के साथ नस्ल और परिवार के भी समस्त संबंध जुड़ जाते हैं। जिस स्थान पर मनुष्य का जन्म हुआ हो और जहां उसका पालन-पोषण हुआ हो वहीं उसके समस्त नातेदार तथा चिरपरिचित आदमी होते हैं और इसलिए उनके प्रति मोह की स्मृति वहां के कण-कण में व्याप्त हो जाती है। इस प्रकार मनुष्य ने परिवार के पश्चात् निवासस्थान और आज देश के संबंध का भी अनुभव किया है और शनैः-शनैः उसकी गहराइयां बढ़ती गई हैं और अंततोगत्वा यह उसकी प्रेम-भावना का केन्द्र तथा भौगोलिक भूभाग के प्रति आसक्ति की धुरी बन गए।

देशभक्ति 'नगर राज्य' के मानवीय संबंधों के एक विशिष्ट विकासक्रम का नाम है। जब सभ्यता अधिक उन्नत हो गई और उसमें विशालता आई तो असंख्य बस्तियां और नगर बस गये तथा मनुष्य के पारस्परिक संबंध अधिक व्यापक हुए। 'नगर राज्य' की भावना भी व्यापक होनी आरम्भ हुई और अब मनुष्य न केवल उस स्थान को जहां वह रहता हो और जहां उसका जन्म हुआ हो बल्कि उस समस्त क्षेत्र को अपनी जन्मभूमि समझने लगा जिसके किसी कोने में वह निवास करता था। फिर शनैः-शनैः इस घेरे में और विस्तार हुआ। छोटे-छोटे भूभागों के स्थान

पर पृथ्वी के बड़े-बड़े भाग इसमें सम्मिलित हो गए और यहां तक कि अब सकल जगत ही मातृभूमि बनता जाता है।

वंशानुगत सामूहिक अनुभव ने लोगों की बड़ी संख्या को नस्ल की इकाई में समाहित कर दिया। अब निवास-स्थान और भूभाग की एकता स्पष्ट हो गई और इस इकाई ने नस्ली घेरे से अधिक विस्तृत घेरा अपने चारों ओर बना लिया। यह घेरा विभिन्न क़बीलों को एक-दूसरे से संबद्ध करता है और उनमें एकता की भावना उत्पन्न करता है। 'देश भक्ति' के उपरान्त, सामूहिक चेतना का दूसरा चरण राष्ट्रीयता का है। यह मानवीय संबंधों का अधिक विस्तृत घेरा प्रस्तुत करता है और क्षुद्र हितों को समष्टि के हितों के अधीन करके एक उत्कृष्ट एकता उत्पन्न करता है।

सामाजिक जीवन का यही भाव एक ऐसा वृत्त है जो पिछले तमाम घेरों से अधिक व्यापक है और मनुष्यों की बहुत बड़ी संख्या इसमें सिमट आती है।

भौगोलिक विभाजन-रेखा पर पहुंच कर इस प्रकार के विस्तार के समस्त चरण समाप्त हो जाते हैं और वह गन्तव्य स्थान सामने आ जाता है जो इस वास्तविकता का अन्तिम चरण है तथा जहां पहुंच कर यह विकासक्रम पूर्णता को प्राप्त हो जाता है। यह मंज़िल 'मानव बन्धुत्व' और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की मंज़िल है। यहां पहुंच कर मनुष्य अनुभव करता है कि पारस्परिक संबंधों, भू-भागों की समस्त सीमाओं और सहचर की जिन भावनाओं को उसने सुरक्षित रखा था उनमें से कोई भी वास्तविक और स्वाभाविक नहीं है। वास्तविक नाता केवल एक ही है और वह यह है कि संपूर्ण मानवजाति एक ही परिवार की सदस्या हैं और प्रत्येक मनुष्य दूसरे मनुष्य का भाई है। इस चरण पर पहुंचकर मनुष्य की सामाजिक चिन्तन की यात्रा समाप्त हो जाती है और नस्ली एकता, देशगत एकता **और सामुदायिक एकता का स्थान अवनी और अंबर के स्वामी परमेश्वर द्वारा प्रदत्त मानवीय एकता पूर्णरूपेण और अनावृत्त रूप में व्यक्त हो जाती है।**

मनुष्य ने पहले भूमि के उस टुकड़े को सब कुछ समझा था जिसमें उसका जन्म हुआ था। अब भी जब वह जन्म लेता है तो घर की चारदीवारी ही उसकी दुनिया होती है। उसने वसुंधरा पर फैली सृष्टि पर दृष्टिपात किया और उसमें से उसके नानारूपों को दीर्घकालोपरान्त पहचान सका। उसने आकाश की ओर देखा और हज़ारों-लाखों वर्षोपरान्त इस सत्य से परिचित हो सका कि सूर्य का एक सूर्यमंडल है और स्वयं पृथ्वी भी उसी मंडल का एक अंग है।

इस्लाम और नस्ल तथा मातृभूमि संबंधी संकीर्णता

इन बिन्दुओं पर विचार करने के पश्चात् हमें अब उस दिव्य आदर्श की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए जिस ओर इस्लाम संसार को ले जाना चाहता था। वह गन्तव्य स्थान क्या था और वह उद्देश्य क्या था? वह गंतव्य स्थान 'मानवतावाद' का अवलंबन था जो विकासक्रम की प्रक्रिया की पूर्ति का द्योतक था। छठी शताब्दी ईस्वी में जब इस्लाम का आविर्भाव हुआ तो तब तक दुनिया ने 'क़बीलों' और 'जन्मभूमि' के प्रति प्रेम के चरण को पार नहीं किया था। जब इस्लाम का जन्म हुआ था तो अरब कबीलों में विभक्त थे। प्रत्येक कबीला अपनी नस्ली राष्ट्रीयता की परिधि में संकुचित था और एक विस्तृत घेरे को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं था। दंभ और आत्मश्लाघा, मानव के लिए घृणा और निरादर के वीभत्स भाव तथा विजेता बननेऔर दूसरों को पराधीन करने की आकांक्षा उनके मन में बहुत गहरी थी और

दृढ़ता से बैठी हुई थी। किसी अन्य जाति के इतिहास में इसके समतुल्य स्थिति का पाया जाना कठिन है। इस जाति का प्रत्येक सदस्य इस बात को अस्वीकार करता था कि उसके संकुचित संसार के अतिरिक्त भी किसी को गौरव-गरिमा और सम्मान प्राप्त हो सकता है और उसके कबीले से कहीं अधिक हो सकता है। संदेह में प्राणियों की हत्या कर दी जाती थी ताकि क़बीले की मान-मर्यादा निष्कलंक रहे। यह सब बातें इतनी प्रसिद्ध हैं कि इनका विवरण प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। हमज़ा की शक्तिशाली कविता आज भी अपनी नस्ल और वंशावली के प्रति दंभ के उद्दंड भाव सबमें उद्वेलित कर देती है। इस प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति जिस प्रकार इस्लाम-पूर्व की अरब कविता में हुई है उसकी तुलना दुनियां की किसी अन्य भाषा की कविता से नहीं की जा सकती। अवधारणा और उस पर गर्व करने, कुटुंब-क़बीले, नस्ल, जन्मस्थान की परिधि में संकुचित रहने की भावना को अरबी कविता का अतिवाद कहा जाता है। अतिवाद का प्रथम आधार था अरबवाद अर्थात् उन समुदायों पर अरबों की श्रेष्ठता की स्वीकृति जो अरब नहीं थे और द्वितीय स्थान पर स्वयं एक अरब क़बीले की श्रेष्ठता। प्रत्येक क़बीला स्वयं अपने नस्ली श्रेष्ठता के दर्प में तल्लीन था।

अरब भू-भाग से बाहर की दुनिया भी नस्ल और देश के अतिरिक्त अन्य उदार अवधारणा से अनभिज्ञ थी। रोम की सभ्यता ने रोमी राष्ट्रीयता की आधारशिला रखी थी परन्तु वह भी नस्ल और जन्मभूमि की भावना पर आधारित थी। एक बार जब रोम के एक नागरिक को सिसिली के राजा ने पकड़वा लिया और उस पर कोड़े मारे जाने का आदेश दिया तो प्रत्येक कोड़े की चोट पर वह चीख़ उठता था कि "मैं रोम का निवासी हूँ।" रोम के विख्यात वक्ता सिसरो ने इस राजा के विरुद्ध बोलते हुए कहा था कि "एक रोम निवासी को चबूतरे के मध्य में डाल दिया गया था और उस पर कोड़े बरसाए गये थे। वह पीड़ा से चीख़ नहीं रहा था और न ही उस चोट की उसे शिकायत थी जो कोड़ों की मार से उसे लग रही थी, वह तो केवल इतना ही कहता था कि "मैं रोम निवासी हूँ।" ऐ विधायको ! आघात सहन करने वाले को इस बात का विश्वास था कि वह स्वयं को रोम निवासी घोषित करके उन समस्त दुःखों और निरादर से स्वयं को मुक्ति दिला सकता है क्योंकि कुछ दिन पहले तक किसी व्यक्ति के लिए रोम निवासी होना सुरक्षा और सम्मान की विश्वसनीय जमानत थी। इसे सिसरो के विधि संबंधी भाषणों में सर्वश्रेष्ठ भाषण समझा जाता है। सिसरो ने रोमन निवासी होने के तथ्य पर बल दिया था, उसने यह नहीं कहा था कि वह व्यक्ति एक मनुष्य था। उसे रोमनवाद की चिंता थी, मानवतावाद की नहीं।

परन्तु इस्लाम इन्हीं बिन्दुओं पर रुका नहीं। उसने इन समस्त संबंधों और उनके आधारों को अस्वीकार किया जो मानवीय ज्ञान और अवधारणाओं की सीमाबद्धता के कारण प्रचलित हुए थे। उसने नस्ल, जन्मभूमि, राष्ट्र, वर्ण और भाषा के कृत्रिम संबंधों को अस्वीकार कर दिया। उसने मनुष्य का आह्वान एकमात्र मानवीय संबंध की ओर, भ्रातृत्व के स्वाभाविक बंधनों की ओर किया।

समस्त पृथ्वी पर फैले हुए मनुष्यों के लिए आवश्यक था कि वह स्वयं को विभिन्न क्षेत्रों और गुटों में विभाजित करें। इस प्रकार विभक्त होने के पश्चात् यह बात भी अनिवार्य थी कि कोई उपाय ऐसा हो कि एक गुट दूसरे गुट से भिन्न हो जाए। कोई अफ्रीकी है, अरब है, कोई आर्य जाति का या मंगोल जाति का है। यह सब इकाइयां केवल साधन मात्र थीं। इस प्रकार समूहों को मान्यता प्राप्त हो गई परन्तु इस विभाजन में न तो कोई भेद है और न ही यह

वास्तविक है। वास्तविक विशेषता एक है जो मनुष्य के कर्मों और उसके प्रयासों से उ
है। समस्त जाति का स्तर एक ही है और उनका मान-सम्मान भी एक जैसा ही है। ईश्वर कि
व्यक्ति को श्रेष्ठता प्रदान नहीं करता, केवल वही व्यक्ति महान बनता है जो सम्मान के य
होता है और स्वयं अपने कर्मों और प्रयत्नों से विशेषता प्राप्त करता है।

"जो बढ़कर खुद उठा ले हाथ में मीना उसी का है।"

(जो स्वयं हाथ बढ़ा कर उठा ले, मदिरा का प्याला उसी का होता है।)

संपूर्ण मानवजाति एक ही कुटुम्ब है और उसकी एक ही नस्ल है तथा समस्त म
एक-दूसरे के भाई हैं। यदि वस्तुतः कोई भिन्न नस्ल नहीं है और समस्त नस्लें एक ही हैं
जन्मभूमिगत भेद भी नहीं है, क्योंकि हम सब एक ही धरती के निवासी हैं तो एक समुदाय
से पृथक क्यों है? एक ही कुटुम्ब के सदस्यों में और उनके पारस्परिक संबंधों में भेद नहीं है
वह एक-दूसरे के साथ अजनबियों जैसे क्यों रहते हैं?

**इस संबंध में इस्लाम के मूलभूत सिद्धांत इतने सुविख्यात हैं कि यहां उनकी चर्चा क
आवश्यक नहीं है। यहां केवल कुरान की उन अवधारणाओं की ओर संकेत करना मेरा उद्दे**
जो मानव की एकता को घोषित करती हैं और उन समस्त आयतों को रेखांकित करना है जि
मनुष्य की वास्तविक एकता को प्रकाशित किया गया है। भेदभाव, पथ-भ्रष्टता और ईश्
नियमों से दूरी का फल है।

इस्लामी अवधारणा में मानवीय एकता और भ्रातृत्व की वास्तविकता को कितनी म
प्राप्त थी, यह बात हज़रत मुहम्मद की उस अनुनय-विनय से प्रमाणित है जो वह पांच समय
अपनी नमाज़ों में किया करते थे— ऐ ईश्वर! तू हमारा और समस्त सृष्टि का पालनहार है
साक्षी हूं कि तू ही संसार का पोषक है। तेरे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। ऐ ईश्वर, हमारे
समस्त सृष्टि के पालनहार! मैं साक्षी हूं कि मोहम्मद इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है कि
तेरा सेवक है और तेरा दूत है! ऐ ईश्वर, हमारे और समस्त सृष्टि के पालनहार! मैं साक्षी
तेरे समस्त सेवक आपस में भाई-भाई हैं। उन्होंने कितने ही भेदभाव उत्पन्न कर रखे हों ले
तूने उन सबको मानवता के एक ही संबंध से संबद्ध कर दिया है।"

मनुष्य के विश्वव्यापी भ्रातृत्व के मार्ग में चार बातें सबसे बड़ी रुकावट थीं—
जन्मभूमि, वर्ण और भाषा। इन्हीं चार भेदों के आधार पर अलग-अलग समुदाय बनाये ग
और मानवता का एक वृत्त अगणित छोटे-छोटे वृत्तों में बट गया था। इस्लाम ने न केवल
बातों को नकारा बल्कि इनके प्रतिकूल इतनी सुस्पष्ट घोषणा कर दी कि किसी प्रकार के सं
लिए स्थान न रहे। नस्ल के संबंध में स्पष्टतः कह दिया कि "सबकी नस्ल एक ही है", जन्म
के संबंध में कह दिया कि "अरब हो या अन्य देश का निवासी हो सब एक ही ईश्वर की
वसुधरा के रहने वाले हैं।" 'भाषा' और 'वर्ण' के संबंध में निर्णय कर दिया कि यह विधा
विधान और उसकी सत्ता के प्रतीक हैं। किसी स्थान की जलवायु एक प्रकार का वर्ण
करती है और कहीं की जलवायु दूसरा रंग। कहीं मनोभाव की अभिव्यक्ति के लिए एक
प्रकार की भाषा उत्पन्न हो गई है और कहीं अन्य प्रकार की। परन्तु यह भिन्नताएं मनु
अस्मिता और उसके पारस्परिक भेद-भाव के आधार नहीं हैं।

फिर इसके साथ ही इस्लाम ने आचरण की जो अपनी व्यवस्था की उसके प्रत्येक अं
रूपरेखा इस प्रकार प्रस्तुत की कि उसके साथ **राष्ट्र और नस्ल की पृथकता का सान्निध्य**
नहीं सकता। दिनचर्या और **पूजा-पद्धति में ऐसी बातें रख दी गईं कि सदैव मानव को**

और समानता का व्यावहारिक रूप प्राप्त होता रहे। नमाज़, ज़कात (धर्मकर), रोज़ा (तीस-दिवसीय व्रत), हज (निर्धारित तिथियों में क़अबे की परिक्रमा) सबमें यही आत्मा कार्यरत है। यह मनुष्य के कार्य और उसके व्यवहार में मानवीय एकता प्रदर्शित करने की एक पूर्ण व्यवस्था है जो अपने प्रत्येक सदस्य को विवश कर देती है कि वह इस वास्तविकता को स्वीकार करे, उसके सम्मुख नतमस्तक हो जाए, उसके प्रति विश्वास और निष्ठा की साकार मूर्ति बन जाये।

इस्लाम का आह्वान 'मानवता' और 'मानव भ्रातृत्व' का आह्वान था। इसलिए उसकी दृष्टि इन समस्त भेद-भावों से विमुख थी जो नस्ल और जन्मभूमि के भेद से उत्पन्न हो गए थे। इसलिए आवश्यक है कि सार रूप में नस्ल और जन्मभूमि की अतिक्रमणता की भी व्याख्या कर दी जाए ताकि स्पष्ट हो जाए कि इस्लाम की आस्था जिस बात की विरोधी है, वह स्पष्टतया और निश्चित रूप से क्या है?

दो बातें हैं। एक नस्ल और जन्मभूमि की सुरक्षा, दूसरे नस्ल और जन्मभूमि के कारण मनभेद। इस्लाम की आत्मा भेदभाव की विरोधी है, सुरक्षा की विरोधी नहीं है। परन्तु कठिनाई यह है कि जब कभी इस प्रकार का कोई वृत्त बनता है तो उसका प्रारम्भ सुरक्षा की भावना से होता है किन्तु आगे चल कर सुरक्षा भेदभाव का रूप धारण कर लेती है। पहले मनुष्यों का एक समूह जन्मभूमि और जातीयता का वृत्त इसलिए बनाता है ताकि उसके अंदर रहकर दूसरों के आक्रमणों से अपनी रक्षा करे। यह राष्ट्रीयता 'सुरक्षात्मक' राष्ट्रीयता है। परन्तु जिस समय तक यह घेरा बना रहता है, राष्ट्रीय सुरक्षा का स्थान राष्ट्रीय श्रेष्ठता ले लेती है और जन्मभूमिगत दर्प का भाव उत्पन्न हो जाता है तथा 'सुरक्षोन्मुखी राष्ट्रीयता' अकस्मात एकाधिकार सत्ता और अधिकार का रूप धारण कर लेती है। अब राष्ट्रीयता अपना बचाव ही नहीं करती, दूसरों पर आक्रमण करना भी चाहती है। साथ ही नस्ली और राष्ट्रीय श्रेष्ठता का उन्माद दूसरे मनुष्यों से पृथकता और उनके प्रति तिरस्कार की भावना भी उत्तेजित करता है। परिणाम यह होता है कि विभिन्न राष्ट्रीय वृत्तों में द्वंद्व आरंभ हो जाता है और मानवता के समस्त उच्चादर्श क्षीण होकर रह जाते हैं।

इस स्थिति का समाधान केवल यही था कि संकुचित वृत्तों का यथासंभव बनना ही रोक दिया जाता। जब कभी कोई तंग घेरा बनेगा तो चूंकि यह वास्तविक मानवीय घेरे के विस्तार में से ही कट-छंट कर बनेगा इसलिए आवश्यक है कि उदारता के स्थान पर संकीर्णता उत्पन्न हो। इस्लाम ने इसीलिए इन तमाम तंग घेरों को प्रोत्साहित नहीं किया।

'राष्ट्रीयता' अपने साधारण अर्थों में यद्यपि पहले से विद्यमान थी किन्तु वर्तमान युग में राष्ट्रीयता से तात्पर्य सामूहिक विचारों और भावनाओं से है। वह वस्तुतः योरोपीय आधुनिकयुगीन संस्कृति की उपज है, जिसका जन्म मनुष्य की स्वतंत्रता और मानवीय अधिकारों की रक्षा के लिए हुआ था किन्तु अब यह उन्हीं के लिए भयानक संकट बन गई है।

मध्य युग के पश्चात् जब योरोप ने करवट बदली और नवीन संस्कृति का विकास हुआ तो उसके साथ-साथ एक नवीन प्रकार के समाज का भी आविर्भाव हुआ। यह वह समय था जब एक ओर ज्ञान-विज्ञान और स्वतंत्रता की आत्मा का समस्त योरप में प्रचार-प्रसार हो रहा था और दूसरी ओर निरंकुश शासकों का अत्याचार और विदेशी आधिपत्य की बर्बरता अपनी समस्त पुरातन परंपराओं सहित उद्दंडतापूर्वक जमी हुई थी। परिणाम यह हुआ कि एक नवीन संघर्ष प्रारम्भ हो गया। एक ओर राजसत्ता और उसके अगणित दावे थे और दूसरी ओर ज्ञान-विज्ञान

तथा स्वतंत्रता द्वारा जनित नवीन सिद्धांत और नवीन आकांक्षाएं थीं। राजसत्ता के सम्मुख जब जन-साधारण का स्वतन्त्रता-प्रेम भाव आवेग में आया तो स्वतः एक अत्यंत प्रभावशाली और सशक्त पारिभाषिक शब्द प्रचलित हो गया। यह शब्द पहले से विद्यमान था परन्तु इसके मनोरंजक अर्थ से लोग अनभिज्ञ थे। अब यह अर्थ प्रत्येक व्यक्ति के सामने आ गया। यह शब्द 'राष्ट्र' था और इसके उद्घाटित रहस्य के फलस्वरूप 'राष्ट्र' अथवा 'राष्ट्रीयता' की उत्पत्ति हुई है। दुर्भाग्यग्रस्त चौदहवें लुईस के कथनानुसार राजसत्ता का दावा था कि "सत्य और शक्ति मैं हूं।" जनता अब इसे स्वीकार करने को तत्पर न थी। प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि यदि राज-परिवार और सत्ता की उत्तराधिकारिता सत्य और शक्ति का उचित आधार नहीं है तो फिर कौन है। वह कौन-सी शक्ति है जिसके सम्मुख राजसत्ता को भी नतमस्तक होना चाहिए। इस प्रश्न का उत्तर यह मिला कि 'राष्ट्र' है। केवल 'राष्ट्र' ही प्रत्येक प्रकार के अधिकार और सत्ता का स्रोत है। केवल 'राष्ट्र' ही को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपने ऊपर शासन करे।

यह तो उस 'राष्ट्रीयता' के गुण थे ;परन्तु इसके साथ हमें इसके दुर्गुणों पर भी दृष्टिपात करना चाहिए :

(१) ....यह सब जो कुछ हुआ केवल योरप में हुआ और योरप-निवासियों में हुआ, योरप की सीमा से बाहर के लिए न तो मानवीय स्वतंत्रता की घोषणा प्रभावशाली हो सकी और न ही ऐसा लगता है कि राष्ट्रीय अधिकारों की अवधारणा। प्राचीन रोमी सिद्धांतानुसार योरप ने निर्णय कर लिया कि दुनिया उच्च और निम्न जातियों में विभक्त है। स्वतंत्रता और अधिकार के संपूर्ण सिद्धांत उच्च राष्ट्र के लिए हैं न कि निम्न राष्ट्र के लिए। योरप और अमरीका इस श्रेष्ठ संसार का अर्ध भाग हैं। शेष संसार निम्न राष्ट्रों का भाग है। अतः उसे कोई अधिकार नहीं कि वह उस मानवीय स्वतंत्रता और राष्ट्रीय अधिकार की मांग करे जो उच्च और श्रेष्ठ मनुष्यों के लिए सुरक्षित हैं।

(२) ....फ्रांस उस समय अपने देश में स्वतंत्रता की तृतीय क्रांति की तैयारी कर रहा था उस समय किसी फ्रांसीसी के मन में यह विचार उत्पन्न भी नहीं हुआ कि स्वतंत्रता की अमीर अब्दुल-कादिर-जज़ाएरी और उसके दुर्भाग्यग्रस्त राष्ट्र को भी आवश्यकता है या नहीं जिसे फ्रांस ने अपने सैन्य बल से दासता स्वीकार करने पर विवश कर दिया है? आज फ्रांस की स्वतंत्रता प्रचारक 'राष्ट्रीयता' सीरिया में जो कुछ कर रही है वह दुनिया के सामने है। इंग्लिस्तान कहता है कि वह छोटे राष्ट्रों का रक्षक है, स्वतंत्रताप्रेमियों का सहायक है, देशभक्तों का आश्रयदाता है। परन्तु ऐसा सब कुछ किन परिस्थितियों में होता है और किनके लिए होता है? निश्चय ही उसने रूस से भागने वालों को आश्रय दिया, फ्रांस के निर्वासितों के लिए अपने द्वार खोल दिए, यूनान की स्वतंत्रता के लिए अपना राष्ट्रकवि अर्पित कर दिया, इटली के मैज़िनी को अपने यहां रहने की सुविधा दे दी और योरप में क्रांति के अगणित नक्शे लंदन की गलियों और मकानों में बनाए गए। परन्तु पूर्वी देशों और एशिया के लिए इसकी यह 'स्वतंत्रताप्रिय' राष्ट्रीयता क्या निर्णय करती रही? वह रूस और आस्ट्रिया के पीड़ितों को आश्रय देता रहा किन्तु स्वयं उसकी बर्बरता और परभूमिलोलुपता से पीड़ित व्यक्तियों के लिए उसके पास शरण देने का क्या उपाय था? इसके उत्तर की आवश्यकता नहीं क्योंकि आज पूर्वी देशों और एशिया का प्रत्येक क्षेत्र अपनी दुर्गति की कथा द्वारा इसका उत्तर दे रहा है।

आवश्यक था कि इस स्थिति के प्रति प्रतिक्रिया भी उत्पन्न हो। १९वीं शताब्दी अभी अधिक आगे नहीं बढ़ी थी कि इस प्रतिक्रिया के लक्षण परिलक्षित होने लगे। समाज के निम्न

वर्गों ने देखा कि स्वतंत्रता और समानता के लिए इतने कोलाहल के पश्चात् भी वास्तविक स्वतंत्रता और समानता नियमित रूप से अनुपस्थित है। वर्तमान राष्ट्रीय व्यवस्था, जो स्वतंत्रता और समानता के आधार पर स्थापित हुई थी, अब स्वतः स्वतंत्रता और समानता के मार्ग में अवरोधक हो गई है। आधुनिक युग से पूर्व दुनिया में अत्याचार करने की क्षमता और विशेषाधिकार केवल कुछ व्यक्तियों और कुछ परिवारों को प्राप्त थे किन्तु यह अब बड़े समूहों के अधिकार-क्षेत्र में आ गए हैं। परिणामतः समानता और न्याय की यह विरोधी शक्तियां पहले के समान अब घनीभूत हैं, केन्द्रीयभूत नहीं हैं, फिर भी जहां तक मानवीय स्वतंत्रता और समानता का संबंध है मानवता अब भी उसी प्रकार उससे वंचित है जैसे पहले थी।

इससे भी अधिक यह हुआ कि पूंजीवाद की शक्ति ने अब पहले से भी कहीं ज्यादा सत्ता प्राप्त कर ली है। पहले मनुष्य पर जो अधिकार और प्रभुता की जो शक्ति राज परिवार और सामंती परंपरायें प्राप्त कर सकती थीं, अब वह समस्त सत्ता कुछ महीनों और वर्षों में एक पूंजीपति केवल अपने धन के बल पर प्राप्त कर लेता है और दुनिया के युद्ध और शांति तथा देशों और राष्ट्रों की स्वाधीनता और पराधीनता की लगाम तुरन्त उसके हाथों में चली जाती है।

१९वीं शताब्दी के 'समाजवाद' का बीजारोपण इसी के विरुद्ध प्रतिक्रिया का फल था। अब यह बढ़ते-बढ़ते 'साम्यवाद' तक पहुंच गया है और न केवल योरपीय राष्ट्रीय व्यवस्था बल्कि संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को ही उलट देना चाहता है।

योरप का विश्वयुद्ध राष्ट्रीयता की इस व्यवस्था की विफलताओं की सबसे बड़ी घोषणा थी। पांच वर्षों तक रक्तपात करने और आग से खेलने के पश्चात् जब दुनिया पुनः सचेत हुई तो जीवन और शांति की खोज पुनः आरंभ हो गई। उन सभी लोगों ने, जिनकी चेतना राष्ट्रीय राजव्यवस्था के स्वार्थों से प्रदूषित न थी, अनुभव कर लिया कि पिछली व्यवस्था अब दुनिया को दीर्घकाल तक संतुष्ट नहीं रख सकती। योरप के दार्शनिकों और चिंतकों का एक बड़ा दल उभर कर आया है जो राष्ट्रीयता की इस भीषणता से ऊब गया है और 'राष्ट्रीयता' के स्थान पर 'मानवता' की विशालता की खोज कर रहा है। नाना प्रकार की नवीन अवधारणाएं और नवीन योजनाएं बुद्धि विकसित कर रही हैं—"दुनिया की सामाजिक व्यवस्था का नवनिर्माण" और "मानवजाति का बंधन रहित विस्तार।" किन्तु इस समय तो यह चिन्तन का अधिक महत्त्वपूर्ण और रोचक विषय मात्र है।

यदि दुनिया के वर्तमान चिंतन पर उसकी समग्रता में दृष्टिपात किया जाए तो स्पष्टतः दिखाई पड़ता है कि एक ऋतु का अंत हो रहा है और दूसरी का आगमन होने ही वाला है। हम जिस युग में रह रहे हैं उसमें यदि भावी इतिहासकार संक्रांति काल के लक्षण ढूंढें तो आश्चर्य नहीं। कहा नहीं जा सकता कि नई ऋतु का संदेश क्या होगा? परन्तु यह अवश्य है कि दुनिया इस समय तक सामाजिक घेरों में घिरी रही है और उससे एक अधिक विस्तृत घेरे की ओर वह पग बढ़ाएगी। क्या वह 'मानवता' और 'मानवीय भ्रातृत्व' की मंज़िल होगी? क्या दुनिया उस शिखर तक पहुंच गई है जिस तक अब से १३ सौ वर्ष पूर्व इस्लाम ने उसे पहुंचाना चाहा था, किन्तु वह नहीं पहुंच सकी थी? इसका उत्तर केवल भविष्य ही दे सकता है। परन्तु इस समय इसके उत्तर की आवश्यकता नहीं है। हमें इस समस्या का समाधान करना है कि वर्तमान परिस्थितियों में हमें क्या करना चाहिए? अर्थात् जहां तक 'राष्ट्र' और 'राष्ट्रीयता' का संबंध है, हमारी कार्यनीति क्या होनी चाहिए? यह बात तो निश्चित है कि शांति की स्थापना और राष्ट्रीयता के सुधार के लिए न केवल इस्लामी समुदाय को बल्कि समस्त समुदायों को इस्लामी दृष्टिकोण के अनुकूल ही आचरण करना पड़ेगा।

भाग २

ख्याति का चरमशिखर : १९१६–१९४७

धर्म, राजनीति और साहित्य

क़ौल-ए-फ़ैसल

निर्णायक अधिमत

"इस्लाम इस बात की अनुमति नहीं देता कि मुसलमान स्वाधीनता के अभ्यर्पण के पश्चात् जीवित रहें। उन्हें या तो स्वाधीन रहना चाहिए या मिट जाना चाहिए। इस्लाम में इनके अतिरिक्त अन्य किसी तीसरे मार्ग के लिए स्थान नहीं है।"

क़ौल-ए-फ़ैसल *

मेरी इच्छा न थी कि कोई मौखिक या लिखित वक्तव्य यहां प्रस्तुत करूं। यह एक ऐसा स्थान है जहां हमारे लिए न तो किसी प्रकार की आशा है, न अभियाचना है, न शिकायत है। यह एक मोड़ है जिसे पार किए बिना हम गन्तव्य स्थान तक नहीं पहुंच सकते। इसलिए थोड़ी देर के लिए अपनी इच्छा के विरुद्ध यहां हमें दम लेना पड़ता है। यह बात न होती तो हम सीधे जेल चले जाते।

यही कारण है कि पिछले दो वर्षों के भीतर मैंने सदैव इस बात का विरोध किया कि कोई असहयोग आन्दोलनकारी किसी प्रकार भी न्यायालय की कार्यवाही में भाग ले। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति, केन्द्रीय ख़िलाफत कमेटी और जमीअत-उल-उल्मा-ए-हिन्द ने यद्यपि इसकी अनुमति दे दी है कि जनसाधारण की शिक्षा के हेतु लिखित वक्तव्य दिया जा सकता है किन्तु व्यक्तिगत रूप से मैं लोगों को यही परामर्श देता रहा हूं कि मौन रहने को ही प्राथमिकता दें। मैं **समझता हूं कि जो व्यक्ति इसलिए वक्तव्य देता है कि वह अभियुक्त नहीं है, यद्यपि उसका उद्देश्य जनसाधारण का शिक्षण हो, फिर भी वह संदेहों से परे नहीं है। हो सकता है कि अपने** बचाव की एक हल्की सी इच्छा और सच्चाई के सुने जाने की एक क्षीण आशा उसके अन्तस्तल में काम कर रही हो, हालांकि असहयोग का मार्ग नितांत स्पष्ट और दुविधारहित है किन्तु वह इस संबंध में संदिग्धता भी सहन नहीं कर सकता।

पूर्ण निराशा, इसलिए पूर्ण परिवर्तन का दृढ़ संकल्प

'असहयोग' वर्तमान स्थिति से पूर्ण निराशा का परिणाम है और इसी निराशा से पूर्ण परिवर्तन का संकल्प उत्पन्न हुआ है। एक व्यक्ति जब सरकार से असहयोग करता है तो जैसे वह इस बात का उद्घोष करता है कि वह सरकार के न्याय और उसकी सत्यप्रियता से निराश हो चुका है। वह अन्यायी शक्ति के औचित्य को नकारता है और इसलिए परिवर्तन का इच्छुक है। **अतः जिस बात से वह इतना हताश हो चुका है कि परिवर्तन के अतिरिक्त अन्य उपाय उसे नहीं सूझता, वह कैसे उस शक्ति से किसी तरह का न्याय पाने की आशा कर सकता है?**

इस सैद्धांतिक तथ्य के प्रति यदि उपेक्षादृष्टि रखी जाए तब भी वर्तमान स्थिति में अभियोग से मुक्ति की आशा रखना एक व्यर्थ कष्ट भोग से अधिक कुछ नहीं है। यह अपनी

---

* २१ दिसम्बर, १९२१ ई० को मौलाना आजाद कलकत्ता में गिरफ्तार किए गए। उन्होंने मुकदमे की कार्यवाही में भाग नहीं लिया किन्तु २४ जनवरी, १९२२ ई० को एक लिखित वक्तव्य प्रस्तुत किया जिसका शीर्षक 'कौल-ए-फैसल' (निर्णायक अधिमत) है। इन्हें ९ फरवरी को एक वर्ष का परिश्रम सहित दण्ड दिया गया और अलीपुर जेल में रखा गया। न्यायालय में जाने के पूर्व उन्होंने मुस्कुराते हुए मजिस्ट्रेट से कहा था—"यह दंड बहुत हल्का है और मेरी आशा से अत्यधिक कम है।"

अभिज्ञता को नकारना होगा। सरकार के अतिरिक्त कोई भी बुद्धि रखने वाला इस बात से इंकार नहीं कर सकता कि वर्तमान परिस्थितियों में सरकारी न्यायालय से न्याय की कोई आशा नहीं है। इसलिए नहीं कि उसमें ऐसे व्यक्ति सम्मिलित हैं जिन्हें न्याय करना रुचिकर नहीं बल्कि इसलिए कि यह ऐसी व्यवस्था पर आधारित है जिनमें रहकर कोई न्यायाधीश उन अभियोगियों के साथ न्याय नहीं कर सकता जिनके साथ स्वयं सरकार न्याय करना पसंद न करती हो।

मैं यहां स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि 'असहयोग' का संबोधन केवल सरकार, सरकार की व्यवस्था और वर्तमान शासनिक तथा राष्ट्रीय सिद्धांतों से है, व्यक्तियों से नहीं है।

इतिहास साक्षी है कि जब कभी सत्ताधारी शक्तियों ने स्वतंत्रता और सत्य के विरुद्ध हथियार उठाए हैं तो न्यायालयों ने सबसे अधिक सुविधाजनक और अमोघ हथियार का काम दिया है। न्यायालय का अधिकार एक शक्ति है और वह न्याय और अन्याय दोनों के लिए उपयुक्त हो सकती है। न्यायनिष्ठ सरकार के हाथ में तो यह सत्य और न्याय का उत्तम साधन है किन्तु अत्याचारी और निरंकुश सरकारों के लिए इससे बढ़कर प्रतिशोध और अन्याय का अन्य उपकरण भी नहीं है।

विश्व इतिहास के सबसे बड़े अन्याय युद्धस्थल के पश्चात् न्यायालय के भवनों में ही हुए हैं। दुनिया के पुण्यात्मा धर्मसंस्थापकों से लेकर वैज्ञानिक अनुसंधानकर्ताओं और आविष्कारकों तक कोई पुनीत और सत्यनिष्ट समूह नहीं है जो अभियुक्तों के समान न्यायालय के सम्मुख खड़ा न किया गया हो।

एक विलक्षण किन्तु भव्य स्थान

न्यायालय के अन्यायों की सूची बड़ी ही लम्बी है। इतिहास आज तक इस पर प्रलाप करने से मुक्त नहीं हो सका। हम इसमें हज़रत मसीह जैसी पुण्यात्मा को देखते हैं जो अपने युग के विदेशी न्यायालय के सम्मुख चोरों के साथ खड़े किए गए थे। हमको इसमें सुकरात दृष्टिगोचर होते हैं जिनको केवल इसलिए विष का प्याला पीना पड़ा कि वह अपने देश के सबसे अधिक सत्यवादी व्यक्ति थे। हमको इसमें फ्लोरेंस के सत्यआसक्त गैलेलियो का नाम मिलता है जो अपने ज्ञान और निरीक्षण को इसलिए न झूठला सका कि तत्कालिक न्यायालय की दृष्टि में उन्हें प्रकट करना अपराध था। हमने हज़रत मसीह को मानव कहा है क्योंकि मेरे विश्वासानुसार वह एक पुण्यात्मा थे जो सदाचार और प्रेम का आसमानी संदेश लेकर आए थे। परन्तु करोड़ों मनुष्यों के विश्वासानुसार तो वह इसमें भी बढ़कर हैं ! फिर भी अभियुक्तों का यह कटहरा कैसा विलक्षण किन्तु भव्य स्थान है जहां सबसे अच्छे और सबसे बुरे दोनों प्रकार के मनुष्य खड़े किए जाते हैं ! इतनी महान विभूति के लिए भी यह स्थान अनुचित नहीं।

ईश्वर की स्तुति और आभार

इस स्थान के वैभवशाली और गूढ़ इतिहास पर जब मैं विचार करता हूं और देखता हूं कि इसी स्थान पर खड़े होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है तो अनायास मेरी आत्मा ईश्वर की स्तुति करने और आभार प्रकट करने में तल्लीन हो जाती है और केवल ईश्वर ही जान सकता है कि मेरे मन के आनन्दोल्लास की क्या दशा होती है ? मैं अभियुक्तों के इस कटहरे में महसूस करता हूँ कि मैं बादशाहों के लिए ईर्ष्या का पात्र हूं।

वस्तुतः मेरी इच्छा न थी कि वक्तव्य दूं। परन्तु ६ जनवरी को जब मेरा मुकदमा न्यायालय में प्रस्तुत हुआ तो मैंने देखा कि सरकार मुझे दण्ड दिलाने के संबंध में अत्यन्त विवश और आतुर है, जबकि मैं ऐसा व्यक्ति हूं जिसे उसकी इच्छा और विचार के अनुसार सबसे पहले और सबसे अधिक दण्ड मिलना चाहिए।

पहले मेरे विरुद्ध दण्ड प्रक्रिया संहिता की संशोधित धारा १७ (२)[1] के अन्तर्गत अभियोग चलाया गया था। परन्तु जब उसका ऐसा प्रमाण प्रस्तुत न हो सका जैसा आजकल अभियोग सिद्धि के लिए पर्याप्त समझा जाता है तो विवशतः ये धारा वापस ले ली गई। अब धारा १२४-अ[2] के अन्तर्गत मुकदमा चलाया गया है। लेकिन दुर्भाग्यवश यह भी उद्देश्यपूर्ति के लिए पर्याप्त नहीं है।

यह देखकर मेरी राय बदल गई है। मैंने महसूस किया कि जो कारण वक्तव्य न देने का था वही अब इस बात की मांग करता है कि चुप न रहूं और जिस बात को सरकार जानते हुए भी प्रमाणित नहीं कर सकती उसे स्वतः पूर्णतया स्वीकार करके अपनी लेखनी से लिख दूं।

'अपराध' का प्रतिग्रहण

हिन्दोस्तान की वर्तमान नौकरशाही एक वैसी ही शासनिक सत्ता है जैसी सत्ता देश और राष्ट्र की क्षीणावस्था के कारण बलशाली मनुष्य सदैव प्राप्त करते रहे हैं। स्वभावतः यह सत्ता राष्ट्रीय जागरण के विकास क्रम और स्वतंत्रता तथा न्याय के संघर्ष को घृणास्पद समझता है क्योंकि इसका अनिवार्यतः परिणाम अन्यायनिष्ठ सत्ता का विनाश है और कोई भी अपने अस्तित्व के विघटन को पसंद नहीं कर सकता, यद्यपि न्याय दृष्टि में वह कितना ही आवश्यक क्यों न हो। यह जीवन संघर्ष का एक संग्राम होता है जिसमें उभय पक्ष अपने-अपने हितों के लिए संघर्ष करते हैं। राष्ट्रीय जागरण चाहता है कि अपना अधिकार प्राप्त करें। आधिपत्य प्राप्त शक्ति चाहती है कि अपनी जगह से न हटे। कहा जा सकता है कि पहले पक्ष के समान ही दूसरा पक्ष भी निंदनीय नहीं है क्योंकि वह भी अपने बचाव के लिए हाथ-पांव मारता है, यह दूसरी बात है कि उसका अस्तित्व न्याय-विरुद्ध हो। हम स्वभावगत गुणों से तो इंकार नहीं कर सकते? वास्तविकता यह है कि दुनिया में नेकी के समान बुराई भी जीवित रहना चाहती है, चाहे वह स्वयं कितनी ही निंदनीय क्यों न हो।

हिन्दोस्तान में भी यह स्पर्धा आरम्भ हो गई है। इसलिए यह कोई असाधारण बात नहीं है कि नौकरशाही की दृष्टि में स्वतंत्रता और अधिकारप्राप्ति का संघर्ष अपराध हो और वह उन लोगों को कठोर दंड का पात्र समझे जो न्याय के नाम पर उसके अन्यायपूर्ण अस्तित्व के विरुद्ध युद्ध कर रहे है। मैं स्वीकार करता हूं कि मैं न केवल इसका अपराधी हूँ बल्कि उन लोगों में से हूं जिन्होंने इस अपराध का बीजारोपण अपने देशवासियों के हृदयों में किया है और उसके सिंचन के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर दिया है। मैं भारतीय मुसलमानों में पहला व्यक्ति हूं जिसने सन् १९१२ में अपने समुदाय का आह्वान इस अपराध कर्म के लिए किया था और तीन वर्ष के अन्दर उस दास्ताग्रस्त प्रवृत्ति से उन्हें विमुख कर दिया था जिसमें सरकार ने अपने कुटिल छलछंदो द्वारा उन्हें प्रवृत्त कर रखा था। अतः यदि सरकार मुझे अपने विचारानुसार दोषी समझती

---

१ धारा १७ (२)

२ १२४-अ

है और इसलिए दंड दिलाना चाहती है तो मैं स्वच्छ मन से स्वीकार करता हूँ कि यह कोई आशातीत बात नहीं है जिसके लिए मुझे शिकायत हो।

गिरफ़्तारी का वास्तविक कारण

१७ नवम्बर के पश्चात् दुनिया की उन समस्त वस्तुओं में से जो चाही जा सकती हैं सरकार द्वारा वह यह थी कि २४ नवम्बर को जब राजकुमार कलकत्ते पहुंचे तो हड़ताल न हो और जो बर्बरतायुक्त मूर्खता दंड प्रक्रिया संहिता १९०८ के संशोधित कानून के लागू करने में हुई है वह एक दिन के लिए ही स्वीकार कर ली जाए। सरकार सोचती थी कि मेरी और श्री सी० आर० दास की उपस्थिति इसमें बाधक है इसलिए कुछ समय तक दुविधाग्रस्त रहने और सोच-विचार करने के पश्चात् हम दोनों गिरफ़्तार कर लिए गए।

मैं पिछले दो वर्षों के अन्दर बहुत कम कलकत्ता में रह सका हूं। मेरे संपूर्ण समय का अधिकांश भाग ख़िलाफ़त आन्दोलन के केन्द्र-संचालित कार्यों में लगा है या देश के निरंतर दौरों में।

बहुधा ऐसा हुआ कि महीने दो महीने के पश्चात् कुछ दिनों के लिए कलकत्ता आया और बंगाल प्रांतीय ख़िलाफ़त कमेटी के कामों की देखभाल करके फिर बाहर चला गया।

लेकिन अकस्मात बंगाल सरकार के तत्कालीन अत्याचारों और १८-क की विज्ञप्ति की सूचना बम्बई में मिली तो मेरे लिए असंभव हो गया कि ऐसी स्थिति में कलकत्ते से बाहर रहूं। मैंने महात्मा गांधी से परामर्श किया। उनकी भी यही राय हुई कि मुझे समस्त कार्यक्रम स्थगित करके कलकत्ता चला जाना चाहिए। अधिक चिंता हमें इस बात की थी कि कहीं ऐसा न हो कि सरकार की क्रूरता और बर्बरता लोगों को निरंकुश न कर दे और धैर्य तथा सहनशीलता के प्रतिकूल कोई कदम वह उठा बैठें।

मैं पहली दिसम्बर को कलकत्ता पहुंचा। मैंने अत्याचार और सहनशक्ति दोनों की पराकाष्ठा के दृश्य देखे।

मैंने देखा कि १७ नवम्बर की स्मरणीय हड़ताल से विवश होकर सरकार उस आदमी के समान हो गयी है जो आवेग और आक्रोश में आपे से बाहर हो जाए और जिसके लिए क्रोधवश कुछ भी कर डालना असंभव न हो। सन् १९०८ के अपराध अधिनियम के संशोधन के अन्तर्गत समस्त राष्ट्रीय स्वयंसेवी संस्थाएं 'अवैधानिक भीड़' घोषित की गई हैं, सार्वजनिक सभाएं बिल्कुल निषिद्ध कर दी गई हैं, क़ानून केवल पुलिस की मनमानी का नाम है। वह 'अवैधानिक दलों' की जाँच-पड़ताल करने के संबंध में और संदेह के आधार पर जैसी कार्यवाही चाहे कर सकती है।

इसकी तुलना में लोगों ने भी सहनशीलता और दृढ़ता दोनों की जैसे पूर्ण प्रतिज्ञा कर ली है। स्पष्टतः दिखाई पड़ता है कि न तो लोग अपने मार्ग से विचलित होंगे और न हिंसा का मुकाबला करेंगे।

इन परिस्थितियों में मेरे लिए कर्तव्यमार्ग आदि से अंत तक स्पष्ट था। मैंने अपने सम्मुख दो वास्तविकताएं अनावृत देखीं—एक यह कि सरकार की संपूर्ण शक्ति कलकत्ते में केन्द्रित हो गई है। इसलिए जय-पराजय का प्रथम निर्णय यहीं होगा। दूसरी यह कि हम कल तक पूर्ण स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे किन्तु वर्तमान परिस्थिति ने बता दिया कि स्वतंत्रता के हमारे मूलभूत आधार तक सुरक्षित नहीं हैं। बोलने की स्वतंत्रता और एकत्रित होने की आज़ादी मनुष्य

के जन्मसिद्ध अधिकार हैं। इनको पद्दलित करना विख्यात दार्शनिक मिल के शब्दों में "मानवता की सर्वजनीन हत्या से कुछ ही कम" कहा जा सकता है, किन्तु इन्हें निस्संकोच और खुलमखुल्ला कुचला जा रहा था। अतः मैंने बाहर के सारे कार्यक्रम स्थगित कर दिए और निर्णय कर लिया कि उस समय तक कलकत्ता में ही रहूंगा जब तक दो बातों में से कोई एक बात पूर्ण न हो जाए .... या सरकार अपनी विज्ञप्ति और अपने आदेश वापस ले ले या मुझे गिरफ्तार कर ले।

दो वास्तविकताएं

सत्य यह है कि इन विगत दिनों ने एक साथ दोनों वास्तविकताएं **इतिहास के पृष्ठों के** लिए उपलब्ध करा दीं। यदि एक ओर सरकार के मुखड़े से दावों और दिखावे के मारे अवगुंठन हट गए तो दूसरी ओर देशीय शक्ति भी एक कठोर परीक्षा मे तप कर पूर्णतः निखर गई। दुनिया ने देख लिया कि यदि सरकार हर प्रकार की अपनी क्रूरता एवं हिंसा मे नितांत निर्लज्ज और निरंकुश है तो देश मे भी धैर्य और सहनशक्ति प्रतिदिन विकसित होती जा रही है। जिस प्रकार **हमेशा यह झूठा साबित** किया गया है वैसे आज भी इसका अवसर प्राप्त है कि **इसे नकारा जा सकता है,** किन्तु कल यह इतिहास के लिए एक अत्यन्त शिक्षाप्रद वृत्तान्त होगा। **इससे भविष्यत् को मार्ग दर्शन** मिलेगा कि नैतिक मनोबल द्वारा बचाव भौतिक शक्ति के आक्रमणात्मक दर्प को चूर्ण कर सकता है ? और यह कैसे हो सकता है कि केवल सहनशक्ति और बलिदान के द्वारा हिंसक हथियारों का मुकाबला किया जाए। मैं इतना अवश्य जानता हूँ कि इन दोनों पक्षों में से किस पक्ष के अन्दर उस महामानव की शिक्षा खोजी जाए जो बुराई के विरुद्ध धैर्य और क्षमा की शिक्षा देने आया था ? सरकार में या देश मे ? मैं सोचता हूँ कि नौकरशाही के पदाधिकारी उसके नाम से अपरिचित न होंगे। उसका नाम 'मसीह' था।

इतिहास-दर्शन हमें बतलाता है कि मूर्खता और अदूरदर्शिता हमेशा पतनोन्मुख शक्तियों के सहचर होते हैं। सरकार ने सोचा कि आतंक द्वारा वह खिलाफत-आन्दोलन और स्वराज-आन्दोलन को कुचल देगी तथा दिनांक **चौबीस** की हड़ताल **रुक जायेगी। लेकिन** तुरन्त ही सरकार को ज्ञात हो गया कि क्रूरता और हिंसा जब राष्ट्रीय जागृति के समकक्ष होती है तो वह कोई घातक वस्तु नहीं रह जाती।

प्रतिग्रहण

मैं स्वीकार करता हूं कि मैंने न केवल इन्हीं दो अवसरों पर बल्कि गत दो वर्षों के अन्दर अपने असंख्य भाषणों में यह और इसी आशय से प्रेरित इससे कहीं अधिक स्पष्ट और सुनिश्चित वाक्य कहे हैं। ऐसा कहना मेरे धर्मानुसार मेरा कर्तव्य है। मैं कर्तव्य-पालन से इसलिए मुंह नहीं मोड़ सकता कि वह १२४ (अ) के अन्तर्गत अपराध समझा जायेगा। मैं अब भी ऐसा ही कहना चाहता हूं, और जब तक बोल सकता हूं ऐसा ही कहता रहूंगा। यदि मैं ऐसा न कहूं तो अपने आपको ईश्वर और उसके भक्तों के समक्ष घोरतम पापाचार में लिप्त समझूंगा।

निस्संदेह मैंने कहा है कि "वर्तमान सरकार अन्यायी है" किन्तु यदि मैं यह न कहूँ तो और क्या कहूँ ? मैं नहीं जानता कि मुझसे यह आशा की जाए कि एक वस्तु को उसके वास्तविक नाम से न पुकारूं ? मैं काले को श्वेत कहने से इन्कार करता हूं।

मैं कम से कम और मधुर से मधुर शब्द जो इस बारे में बोल सकता हूँ यही है। ऐसा सत्यवचन जो इससे संक्षिप्त हो, मेरी जानकारी में कोई नहीं।

मैं निश्चय ही यह कहता रहा हूँ कि हमारी कर्तव्यनिष्ठा के सम्मुख दो ही मार्ग हैं—सरकार अन्याय और अधिकारापहरण न करे। यदि वह ऐसा नही कर सकती हो तो मिटा दी जाए। मैं नहीं जानता कि इसके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है? यह तो मानवीय विश्वासों की इतनी पुरानी सच्चाई है कि केवल पहाड़ और समुद्र ही इसके समवयस्क हो सकते हैं। जो चीज़ बुरी है उसे या तो ठीक हो जाना चाहिए या मिट जाना चाहिए। तीसरी बात क्या हो सकती है? मैं जब इस सरकार की बुराई पर संदेह नहीं करता तो निश्चय ही यह प्रार्थना नहीं कर सकता कि वह सुधरे भी नहीं और उसकी आयु में वृद्धि भी हो।

मेरा और मेरे करोड़ों देशवासियों का ऐसा विश्वास क्यों है? मैं कहना चाहता हूँ कि मेरा यह विश्वास इसलिए है कि मैं हिन्दुस्तानी हूँ, इसलिए है कि मैं मुसलमान हूँ, इसलिए है कि मैं मनुष्य हूँ।

मैं मानता हूँ कि स्वाधीनता हर व्यक्ति और प्रत्येक राष्ट्र का जन्मसिद्ध अधिकार है। कोई मनुष्य या मनुष्य निर्मित नौकरशाही यह अधिकार नहीं रखती कि ईश्वर के भक्तों को अपना दास बनाये। पराधीनता और दासता के कैसे भी रोचक नाम क्यों न रख लिए जाए लेकिन वह दासता ही है और ईश्वरीय आदेश उसके अधिनियमों के विरुद्ध है। मै वर्तमान सरकार को न्यायोचित सरकार नहीं स्वीकार करता। अतः मै अपना देशगत, धर्मगत, और मनुष्यगत कर्तव्य समझता हूँ कि उसकी पराधीनता से देश एवं राष्ट्र को मुक्ति दिलाऊँ।

'सुधारों' और शनैः-शनैः 'अधिकार विस्तार' का कुविख्यात छलछद मेरे इस स्पष्ट और सुनिश्चित विश्वास में कोई भ्रम उत्पन्न नहीं कर सकता था। स्वतंत्रता मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है और किसी मनुष्य को अधिकार नहीं कि वह अधिकारों को सीमाबद्ध करे और उन्हें टुकड़ों में विभक्त करे। यह कहना कि किसी राष्ट्र को उसकी स्वतंत्रता शनैः-शनैः मिलनी चाहिए बिल्कुल ऐसी ही बात है जैसे कहा जाए कि स्वामी को उसकी सम्पत्ति और ऋणी को दिया जाने वाला ऋण उसको टुकड़े-टुकड़े करके देना चाहिए।

यदि कोई व्यक्ति हमारी सम्पत्ति अपहृत करके बहुत अच्छे और सुकृत्य कार्य करे तो उसके कामो की अच्छाइयों के कारण उसका अपहरण उचित नही हो जाता।

न्यूनाधिक्य और गुणवत्ता की दृष्टि से बुराई को विभाजित किया जा सकता है किन्तु गुण और अवगुण के संबंध से वह केवल एक ही प्रकार की होती है, अर्थात् इस दृष्टि से वह विभक्त हो सकती है कि वह कितनी बुरी है और किस प्रकार से बुरी है? इस दृष्टि से उसका विभाजन नहीं हो सकता कि वह अच्छी है या बुरी है? हम यह कह सकते हैं कि 'अधिक बुरी चोरी' और 'कम बुरी चोरी' लेकिन यह तो नहीं कह सकते 'अच्छी चोरी' और 'बुरी चोरी'? अतः मै नौकरशाही की अच्छाई और उसके औचित्य का किसी स्थिति में भी अनुमान नहीं कर सकता क्योंकि वह अपने आप में एक निष्प्रयोजन कार्य है।

मैं मुसलमान हूँ और मुसलमान होने के नाते भी मेरा धार्मिक कर्तव्य यही है। इस्लाम किसी ऐसे शासन को युक्तियुक्त नहीं मानता जो किसी व्यक्ति का हो और या जो कुछ वेतनभोगी पदाधिकारियो की नौकरशाही के हाथ में हो। इस्लाम स्वाधीनता और जनतंत्र की एक पूर्ण व्यवस्था है जो मानव जाति को उसकी अपहृत स्वतंत्रता वापस दिलाने के लिए आया था। यह स्वतंत्रता सम्राटों, विदेशी शासकों, स्वार्थी धार्मिक नेताओं और समाज के बलशाली

दलों ने हड़प कर रखी है। वो समझते थे कि 'बाहुबल' और 'प्रभुता' ही वास्तविकता है। परन्तु इस्लाम ने अपने उदय काल में ही घोषणा की कि शक्ति वास्तविकता नहीं है बल्कि स्वयं स्वत्व अधिकार है और ईश्वर के अतिरिक्त किसी मनुष्य के लिए शोभनीय नहीं है कि ईश्वर-जनों को शासित करें और दास बनाए। उसने भेदभाव और श्रेष्ठता के समस्त राष्ट्रीय और नस्ली चिह्नों को बिल्कुल ही मिटा दिया और दुनिया को बतला दिया कि सारे मनुष्य बराबर हैं और सबके अधिकार समान हैं। वंश, जाति, वर्ण, श्रेष्ठता के माप नहीं हैं बल्कि श्रेष्ठता का मापदंड केवल कर्म है और सबसे बड़ा वही है जिसके कर्म सबसे अच्छे हैं : "मनुष्यो, देखो हमने तुम्हें स्त्री और पुरुष के रूप में बनाया है और तुम्हें समुदायों एवं कबीलों में विभक्त किया है ताकि तुम एक दूसरे को जान सको। विधाता की दृष्टि में उसी व्यक्ति का चरित्र श्रेष्ठ है जिसका आचरण शुद्धतम है।"

इस्लाम के पैगम्बर और उनके उत्तराधिकारियों का शासन पूर्णतया जनतांत्रिक था और समुदाय के मत पर एक मात्र निर्भरता, प्रतिनिधित्व एवं निर्वाचन के तत्त्वों से इसका गठन हुआ था। यही कारण है कि इस्लामी पारिभाषिक शब्दावली में जैसे व्यापक और श्रेष्ठ शब्द इस प्रकार के विचारों का बोध कराने के लिए उपलब्ध हैं वैसे कदाचित ही दुनिया की किसी अन्य भाषा में पाए जायें। इस्लाम ने 'सम्राट' की प्रभुता और उसके व्यक्तित्व से इन्कार किया है और केवल गणतत्र के एक प्रमुख का पद स्वीकार किया है परन्तु उसको भी 'ख़लीफ़ा' की उपाधि दी है जिसका शाब्दिक अर्थ है प्रतिनिधित्व। इस प्रकार उसका अधिकार केवल प्रतिनिधित्व करने का है। इससे अधिक अन्य अधिकार उसे अप्राप्य हैं।

जब इस्लाम मुसलमानो का यह कर्तव्य निर्धारित करता है कि वह ऐसे इस्लामी शासन को भी न्याययुक्त स्वीकार न करें जो समुदाय के मतदान और निर्वाचन द्वारा स्थापित न हो तो फिर स्पष्ट है कि मुसलमानों के लिए एक विदेशी नौकरशाही के संबंध में आदेश क्या हैं ? यदि आज हिन्दुस्तान में एक शुद्ध इस्लामी शासन स्थापित हो जाए किन्तु उसकी व्यवस्था भी वैयक्तिक शासन पर आधारित हो, या कतिपय शासकों की नौकरशाही उसका आधार हो तो मुसलमान होने के कारण उस समय भी मेरा धर्म यही होगा कि उसको अत्याचारी कहूँ और परिवर्तन का आग्रह करूँ।

मैं स्वीकार करता हूँ कि यह व्यवस्था इसके पश्चात् स्थापित न रह सकी। पूर्वी रूमी शासन और ईरानी साम्राज्य के वैभवशाली वृत्तान्तों ने मुसलमान शासकों को पथभ्रष्ट कर दिया। इस्लामी ख़लीफ़ा के स्थान पर जो बहुधा फटे-पुराने कपड़ों से एक साधारण व्यक्ति के समान तन ढकता था, मुसलमान शासकों ने (रूमी सम्राटों की उपाधि) और किस्रा (ईरान का सम्राट नौशेरवाँ) बनने को प्रधानता दी। फिर भी इस्लामी इतिहास का कोई युग भी ऐसे मुसलमानों से रिक्त नहीं रहा है जिन्होंने खुल कर तात्कालिक शासक के अत्याचारों और उसकी निरंकुशता का विरोध न किया हो और उन समस्त कष्टों और संघर्ष की यातना को सहर्ष न झेला हो, जिनका सामना इस पथ के पथिकों को करना पड़ता है।

एक मुसलमान से यह आशा रखना कि वह सत्य का उद्घोष न करे और अत्याचार को अत्याचार न कहे, ठीक ऐसी ही बात है जैसे यह कहा जाए कि वह इस्लामी जीवन त्याग दे। यदि तुम किसी व्यक्ति से इस बात का आग्रह करने का अधिकार नहीं रखते कि वह अपना धर्म त्याग दे तो निश्चय ही एक मुसलमान से यह मांग भी नहीं कर सकते कि वह अत्याचार को अत्याचार न कहे क्योंकि दोनों बातों का अभिप्राय एक ही है।

यह तो इस्लामी जीवन-पद्धति का वह तत्त्व है जिसे पृथक् कर देने के पश्चात् दूसरों से उसे भिन्न करने वाली उसकी बड़ी विशेषता विनष्ट हो जाती है। यही कारण है कि इस्लामी धर्माचरण की पुस्तक (क़ुरान) में मुसलमानों को बताया गया है कि वो विधाता की भूमि में 'साक्षी' हैं।

अर्थात् वह सत्य का साक्ष्य प्रस्तुत करने वाले हैं। एक समुदाय के रूप में यही उनका सामुदायिक कर्तव्य है और यही उनका सामुदायिक चरित्र है जो उन्हें अतीत और भविष्य के समस्त समुदायों से भिन्न करता है। इस संबंध में इस्लाम के पैग़म्बर के असंख्य प्रवचनों में से एक प्रवचन यह है कि "सदाचार का उद्घोष करो। दुराचार को रोको। यदि ऐसा न करोगे तो होगा यह कि तुम्हारे शासक अत्यंत दुराचारी बन जायेंगे और ईश्वरीय प्रकोप तुम्हें घेर लेगा। तुम प्रार्थना करोगे कि यह शासक टल जायें किन्तु तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार न होगी।"

परन्तु इस कर्तव्य का निर्वाह कैसे हो? इस्लाम ने तीन विभिन्न परिस्थितियों में इसकी तीन विभिन्न श्रेणियां बतलाई हैं। इस्लाम के पैगम्बर ने कहा है कि "तुम में से जो व्यक्ति बुराई की बात देखे तो उसे चाहिए कि वह स्वयं उसे दूर कर दे। यदि ऐसा करने में सक्षम न हो तो मौखिक रूप से उसकी घोषणा करे। यदि ऐसा करने का भी सामर्थ्य अपने में न पाये तो अपने मन में ही उसको बुरा समझे। परन्तु यह अंतिम अवस्था धर्मनिष्ठा की दुर्बल श्रेणी है।" (मुस्लिम-पैग़म्बरी प्रवचनों के संग्रहकर्ता) हिन्दुस्तान में हमें यह क्षमता प्राप्त नहीं है कि अपने हाथों से सरकार की बुराइयां दूर कर दें। इसलिए हमने दूसरी श्रेणी को उपयोगी समझा है जिसकी दक्षता प्राप्त है अर्थात् वाणी द्वारा इस बुराई की घोषणा करते हैं।

इसलिए इस्लाम पूर्णरूपेण निर्भीकता और निर्वेद का आह्वान है। क़ुरान पदे-पदे कहता है कि "मुसलमान वह है जो विधाता के अतिरिक्त किसी से त्रस्त न हो। प्रत्येक स्थिति में सच्ची बात कहे।"

इस्लाम के पैग़म्बर ने कहा है कि "उस व्यक्ति की उत्तम मृत्यु होती है जो किसी आततायी शासन के सम्मुख सत्याभिव्यक्ति करे और उसके परिणामस्वरूप प्राणों की बलि दे" (अबुदाऊद-रसूल के प्रवचन को उद्धरित करने वाले) पैग़म्बर जब किसी व्यक्ति को इस्लाम में दीक्षित करते तो उसे एक प्रण यह करना होता था कि "मैं सर्वदा सत्य की घोषणा करूंगा, चाहे कहीं भी रहूँ और किसी भी परिस्थिति में रहूँ" (बुखारी और मुस्लिम—रसूल के प्रवचनों के संग्रहकर्ता)।

जिन मुसलमानों के धार्मिक कर्तव्यों में यह बात सम्मिलित है कि मरना स्वीकार कर लें किन्तु सच बोलने से मुँह न मोड़ें उनके लिए धारा १२४-अ का अभियोग निश्चय ही कोई अधिक भयानक वस्तु नहीं हो सकती, जिसका अधिक से अधिक दंड आजीवन कारावास है।

प्रारम्भिककालीन मुसलमानों की सत्यवादिता की स्थिति यह थी कि राजधानी की एक वृद्धा महिला तात्कालिक ख़लीफ़ा से सबके सामने खुलकर कह सकती थी कि "यदि तुम न्याय न करोगे तो तुम्हारे बाल नोच लिए जाएंगे।" परन्तु ख़लीफ़ा राज्य-द्रोह का अभियोग चलाने के स्थान पर विधाता के प्रति आभार प्रकट करता था कि समुदाय में ऐसी सत्यवादी वाणियां विद्यमान हैं! शुक्रवार की नमाज़ के लिए एकत्रित लोगों के सम्मुख जब ख़लीफ़ा मस्जिद की पीठिका पर अभिभाषण करने खड़ा होता और कहता कि "सुनो और आज्ञापालन करो" तो कोई व्यक्ति खड़ा हो जाता और कहता कि "न तो सुनेंगे और न आज्ञापालन करेंगे।" क्यों? "इसलिए कि तुम जो परिधान धारण किये हो वह तुम्हारे हिस्से के कपड़े से अधिक का बना हुआ

है और यह चोरी है।" इस पर ख़लीफ़ा अपने बेटे को साक्षी के रूप में प्रस्तुत करता है। बेटा सब को बताता है कि मैंने अपने हिस्से का कपड़ा भी अपने पिता को दे दिया था और उससे ही यह वस्त्र बना है।

समुदाय का यह व्यवहार उस ख़लीफ़ा के साथ था जिसके तेज और प्रताप ने मिस्र तथा ईरान के सिंहासनों का ध्वंस कर दिया था। फिर भी इस्लामी शासन में कोई धारा १२४-अ न थी।

'हज्जाज' और 'रीडिंग'

हम मुसलमानो का जब अपनी जातीय शासन के साथ (जिनकी आज्ञा का पालन इस्लामी धर्माचार की दृष्टि से हमारे लिए अनिवार्य है) ऐसा व्यवहार रहा है तो फिर एक विदेशी शासन के कारिन्दे हम से क्या आशा रखते है ? "क्या हिन्दुस्तान की विधिवत स्थापित" सरकार हमारे लिए उस सरकार से भी अधिक सम्माननीय है जिसकी आज्ञा का पालन इस्लामी आचार संहिता के अनुसार हमारे लिए अनिवार्य है ? क्या इंगलिस्तान की बादशाहत और लार्ड रीडिंग द्वारा उसका प्रतिनिधित्व अब्द-उल-मलिक की ख़िलाफ़त और हज्जाज़ **बिन-यूसुफ** द्वारा उसके प्रतिनिधित्व से भी हमारे लिए अधिक आदरणीय हो सकती है ? यदि हम "विदेशी तथा अमुस्लिम" और "जातीय और मुस्लिम" का वैभवशाली तथा इस्लामी धर्माचार द्वारा निर्दिष्ट भेद को उपेक्षित कर दें तो भी हम से केवल यही आशा की जा सकती है कि जो कुछ हज्जाज बिन यूसुफ और ख़ालिद कसरी के शासन के संबंध मे हम कह चुके हैं वही बात 'चेम्सफोर्ड' और 'रीडिंग' के शासन के बारे मे भी कहें। हमने उनसे कहा था कि "विधाता से डरो क्योंकि तुम्हारे अत्याचार से धरती भर गई है।" यही हम आज भी कहते हैं।

वास्तविकता यह है कि आज हम अपनी दुर्बलता और विवशता के कारण हिन्दुस्तान मे जो कुछ कर रहे हैं वह वस्तुतः हमें अपने समुदाय के शासको के अत्याचार के विरोध मे करने को कहा गया था, यह एक विदेशी आधिपत्य और अपहरण के विरुद्ध करने का कार्य न था। यदि बरतानिया सरकार के सदस्य इस तथ्य को समझते तो उन्हें स्वीकार करना पड़ता कि मुसलमानों की उदारता और क्षमाशीलता सीमा को लांघ चुकी है। इससे अधिक बरतानिया के लिए वह इस्लाम को नही छोड़ सकते !

इस्लाम ने शासकों के अत्याचार के विरोध में दो प्रकार के आचरणों का आदेश दिया है क्योंकि परिस्थितियां भी दो भिन्न प्रकार की हैं . एक अत्याचार विदेशी आधिपत्य और पराधीनता का है और एक बर्बरता स्वयं मुसलमान शासकों की है। पहले के लिए इस्लाम का आदेश है कि सशस्त्र संघर्ष किया जाए। दूसरे के लिए आदेश है कि विरोध में शस्त्र न उठाए जायें किन्तु "निर्दिष्ट आचारों" और "सत्य" की जहां तक भी हो सके हर मुसलमान घोषणा करता रहे। पहली स्थिति में शत्रुओं के हाथो मरना पड़ेगा। दूसरी स्थिति में नृशंस शासको के हाथो तरह-तरह की यातनायें झेलनी पड़ेंगी। मुसलमानों को दोनों स्थितियों में दोनों प्रकार के बलिदान करने चाहिए और दोनों का फल सफलता तथा विजय है।

इसलिए गत १३ शताब्दियों में मुसलमानों ने दोनों प्रकार की **आहुतियां** दी हैं। विदेशी शासकों का विरोध करते हुए प्राणाहुति दी है और अपने लोगों के अत्याचारों के विरुद्ध धैर्य और सुदृढ़ता का भी प्रदर्शन किया है। जिस प्रकार पहली स्थिति के 'सामरिक संघर्ष' में वह अनुपम है उसी प्रकार दूसरी स्थिति में उनका 'नागरिक संघर्ष' भी अद्वितीय है।

हिन्दुस्तान में आज मुसलमानों ने दूसरे प्रकार की कार्य-पद्धति को अपनाया है जबकि

उनको सामना करना पड़ रहा है विदेशी शासन का। उनके लिए सामरिक संघर्ष का समय आ गया था। परन्तु उन्होंने 'नागरिक संघर्ष' का मार्ग अपनाया। उन्होंने 'अहिंसानिष्ठ' रहने का निर्णय करके इस बात को स्वीकार कर लिया है कि वह हथियार से मुकाबला न करेंगे, अर्थात् वही कार्य करेंगे जो उन्हें मुसलमान शासकों के अत्याचार के मुकाबले में करना चाहिए। निश्चय ही इस कार्य-पद्धति में हिन्दुस्तान की विशिष्ट परिस्थितियों का भी हाथ है। परन्तु सरकार को सोचना चाहिए कि इससे अधिक दुर्भाग्यग्रस्त मुसलमान और क्या कर सकते हैं ? हद तो यह है कि विदेशियों के अत्याचार के विरोध में वह बात कर रहे हैं जो उन्हें अपनों के विरुद्ध करनी थी।

मैं सच कहता हूँ। मुझे इसकी राई बराबर भी शिकायत नहीं कि दण्डित करने के लिए मुझ पर अभियोग चलाया गया है। यह बात तो होनी ही थी परन्तु परिस्थिति में यह परिवर्तन मेरे लिए बड़ा ही कष्टदायक है कि एक मुसलमान से सत्य-साक्ष्य को छोड़ने की आशा की जाती है और कहा जाता है कि वह अन्याय को केवल इसलिए अन्याय न कहे क्योंकि धारा १२४-अ के अन्तर्गत मुकदमा चलाया जाएगा।

मुसलमानों के सम्मुख सत्यवादिता का जो उदाहरण उनका सामुदायिक इतिहास प्रस्तुत करता है वह यह है कि एक अत्याचारी शासक के सम्मुख एक निर्भीक मनुष्य खड़ा है। उस पर आरोप यही है कि उसने शासक के अत्याचार की घोषणा की। इसी अपराध के कारण उसका अंग-प्रत्यंग काटा जा रहा है। परन्तु जब तक जिह्वा नहीं कट जाती वह यही कहती रहती है कि शासक नृशंस है। यह घटना ख़लीफ़ा अब्द-उल-मलिक के समय की है जिस का राज्य अफ्रीका से सिंध तक फैला हुआ था। तुम धारा १२४-अ के दंड की तुलना इस दंड से कर सकते हो ?

मैं इस दुःखदायी और विषादपूर्ण तथ्य से इन्कार नहीं करता कि परिस्थिति से इस परिवर्तन का दायित्व स्वयं मुसलमानों पर भी है। उन्होंने इस्लामी जीवन-पद्धति के समस्त गुण विलुप्त कर दिए और पराधीनता और दासता की जीवन-पद्धति के समस्त अवगुणों को आत्मसात् कर लिया। उनकी वर्तमान स्थिति से बढ़कर दुनिया में इस्लाम के लिए अन्य संकट नहीं है। मैं जब यह पंक्तियां लिख रहा हूँ तो मेरा मन लज्जा और दुःख से यह सोच कर जीर्ण-शीर्ण हो रहा है कि इसी हिन्दुस्तान में वह मुसलमान भी विद्यमान हैं जो अपनी निष्ठा की दुर्बलता के कारण खुल्लमखुल्ला अत्याचार की पूजा कर रहे हैं।

परन्तु मनुष्यों के कुकर्मों से किसी आदर्श की वास्तविकता को मापा नही जा सकता। इस्लाम की शिक्षा उसकी पुस्तक में उपलब्ध है। वह किसी भी स्थिति में इस बात को उचित नही ठहराती कि आज़ादी खोकर मुसलमान जीवन व्यतीत करें। मुसलमानों को मिट जाना चाहिए या स्वाधीन रहना चाहिए। तीसरा कोई मार्ग इस्लाम में नहीं है।

परन्तु मैं स्वीकार करूंगा कि गत दो वर्षों के अन्दर कोई प्रभात और कोई संध्या ऐसी नहीं बीती जिसमें मैंने 'ख़िलाफ़त' और 'पंजाब' से संबद्ध सरकार के अनाचारों की घोषणा न की हो। मैं स्वीकार करता हूँ कि मैंने सदैव यह बात कही है कि जो सरकार इस्लामी ख़िलाफ़त को विनष्ट कर रही हो और पंजाब पर ढाये गए अपने अत्याचारों के लिए न तो लज्जित हो और न ही उसके निराकरण के लिए कोई संतोषजनक उपाय कर रही हो, ऐसी सरकार के लिए किसी भारतवासी के मन में वफ़ादारी नहीं हो सकती। सरकार के स्थान पर वह रण-क्षेत्र में एक विरोधी पक्ष मात्र है।

मैंने १३ दिसम्बर सन् १९१७ को (जब मैं रांची में भारत सरकार के आदेश पर नज़रबन्द रखा गया था) लार्ड चेम्सफ़ोर्ड को एक विस्तृत पत्र लिखा था जिसमें स्पष्ट कर दिया

था कि ख़िलाफ़त और अरबद्वीप के संबंध में इस्लामी आदेश क्या है? मैंने लिखा था कि यदि बरतानिया सरकार इस्लामी ख़िलाफ़त और इस्लामी देशों के संबंध में दिए गए अपने वचन के प्रतिकूल क़ब्ज़ा जमा बैठती है तो इस्लामी धर्मशास्त्र की दृष्टि से हिन्दुस्तानी मुसलमान एक अत्यधिक असमंजस में पड़ जायेंगे। उनके सामने केवल दो ही मार्ग हैं—या इस्लाम का साथ दें या बरतानिया सरकार का। वह इस्लाम का साथ देने के लिए विवश होंगे।

अन्ततोगत्वा वही हुआ। सरकार वचनबद्ध न रह सकी। उन वचनों का भी पालन आवश्यक न समझा गया जो भारत सरकार ने २ नवम्बर सन् १९१४ की अपनी घोषणा में दिये थे और वह वादा भी धोखा सिद्ध हुआ जो इंगलिस्तान के प्रधानमंत्री मिस्टर लायड जार्ज ने ५ जनवरी १९१८ को 'हाउस आफ कामंस' में दिये गए अपने भाषण में किया था। सज्जनों के लिए वचनपालन न करना धूर्तता है किन्तु शक्तिशाली शासकों के लिए कोई भी बात अनैतिक नहीं है।

इस परिस्थिति ने मुसलमानों के लिए अत्यधिक दुविधात्मक स्थिति उत्पन्न कर दी। इस्लामी धर्मशास्त्र के अनुसार कम से कम बात जो उनके कर्तव्यों में सम्मिलित थी वह यह थी कि ऐसी सरकार की सहायता करने से हाथ खींच लें और उसके साथ सहयोग न करें। मुसलमानों को विश्वास हो गया है कि यदि वह न्याय चाहते हैं तो उसका मार्ग केवल एक ही है वह है स्वराज प्राप्ति।

अतः इस संबंध में मेरी मान्यता अत्यंत स्पष्ट है। वर्तमान सरकार केवल एक अनौचित्यपूर्ण नौकरशाही है, वह करोड़ों मनुष्यों की इच्छा और आकांक्षा को केवल नकारती है, वह सदैव न्याय और सच्चाई पर अपने मान-सम्मान को प्राथमिकता देती है। वह अमृतसर के जलियांवाला बाग के बर्बरतापूर्ण सार्वजनीन हत्या को नैतिक कार्य समझती है, वह इस आदेश को अन्यायपूर्ण नहीं मानती कि मनुष्य पशुओं के समान पेट के बल चलाए जाए, वह निरपराध लड़कों को केवल इसलिए कोड़ों की मार खा-खाकर निश्चेत हो जाने देती है कि वह एक मूर्ति के समान 'यूनियन जैक' की वन्दना नहीं करते। वह तीस करोड़ मनुष्यों की निरन्तर याचनाओं के पश्चात् भी इस्लामी ख़िलाफ़त को आक्रांत करने से नहीं रुकती, वह अपने समस्त वादों को तोड़ देने में कोई बुराई नहीं समझती।

मैं यदि ऐसी सरकार को 'अत्याचार' या 'निरंकुश' न कहूँ और यह न कहूँ "या ठीक हो जाओ या मिट जाओ" तो क्या इसे 'न्यायी' कहूँ और कहूँ "न तो ठीक हो और न ही मिटो?"

मैं लगातार १२ वर्षों से अपने देशवासियों और अपने समुदाय को स्वतंत्रता और अधिकार मांगने की शिक्षा दे रहा हूँ। मेरी आयु १८ वर्ष की थी जब मैंने इस विषय पर लिखना और बोलना आरम्भ किया था। मैंने जीवन का उत्तम भाग अर्थात् युवावस्था केवल इसी उद्देश्योन्माद में बिता दिया। मैं इसी के लिए चार वर्ष तक नज़रबन्द रखा गया किन्तु बन्दी जीवन में भी मेरा हर प्रभात और हर संध्या इसी बात के प्रचार-प्रसार में व्यतीत हुई। रांची की दीवारें इस बात की साक्षी हैं जहां मैंने नज़रबंदी की अवधि बिताई है। यह तो मेरा नित्य का जीवनलक्ष्य है। मैं केवल इसी एक काम के लिए जी सकता हूँ—"मेरी आराधना-वन्दना, मेरा त्याग-बलिदान, मेरा जीवन-मरण निश्चय ही विधाता के लिए है जो सकल सृष्टि का पालनहार है।"

मैं इस 'अपराध' को कैसे अस्वीकार कर सकता हूँ जबकि मैं हिन्दुस्तान के इस अन्तिम 'इस्लामी आन्दोलन' का आह्वान करता हूँ जिसने हिन्दुस्तानी मुसलमानों के राजनैतिक दृष्टिकोण में एक महान क्रांति उत्पन्न कर दी है और अन्ततोगत्वा उन्हें वहां तक पहुँचा दिया है जहां वह

आज दिखाई पड़ रहे हैं, अर्थात् उनमें से प्रत्येक व्यक्ति मेरे इस अपराध में सम्मिलित हो गया है। मैंने सन् १९१२ में एक उर्दू पत्रिका 'अल-हिलाल' निकाली जो इस आन्दोलन की मुख्य पत्रिका थी और जिसके प्रकाशन का उद्देश्य पूर्णतः वही था जिसका स्पर्ष्टीकरण मैं उपरोक्त पंक्तियों में कर चुका हूँ। यह एक वास्तविकता है कि 'अल-हिलाल' ने तीन वर्ष के अन्दर भारतीय मुसलमानों की धार्मिक और राजनैतिक मानसिकता को अत्यंत नवीन गतिशीलता प्रदान कर दी। पहले वह अपने हिन्दू भाइयों की राजनैतिक गतिविधियों से न केवल पृथक् थे बल्कि उसके विरोध में नौकरशाही द्वारा एक उपकरण के रूप में प्रयुक्त होते थे। सरकार की भेद-भाव पैदा करने वाली नीति ने उन्हें इस भ्रम में फंसा रखा था कि देश में हिन्दुओं की संख्या बहुत अधिक है इसलिए हिन्दुस्तान यदि स्वतंत्र हो गया तो हिन्दूराज स्थापित हो जाएगा। परन्तु 'अल-हिलाल' ने मुसलमानों को संख्या की जगह धर्मनिष्ठा पर निर्भर होने का निर्देश दिया और बिना किसी भय के हिन्दुओं से हाथ मिलाने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया। इसी से वह परिवर्तन उत्पन्न हुए जिनका परिणाम आज का ख़िलाफ़त और स्वराज का संयुक्त आन्दोलन है। नौकरशाही ऐसे आन्दोलन को अधिक समय तक सहन नहीं कर सकती थी। इसलिए पहले 'अल-हिलाल' की ज़मानत जब्त की गई और जब 'अल-ब्लाग़' के नाम से उसे पुनः प्रकाशित किया गया तो १९१६ ई० में भारत सरकार ने मुझे नज़रबंद कर दिया।

मैं बताना चाहता हूँ कि 'अल-हिलाल' "पूर्णतः स्वतत्रता या मृत्यु का निमंत्रण था"।

चार वर्ष पश्चात् पहली जनवरी सन् १९२० को मैं मुक्त किया गया। उस समय से पुनः गिरफ्तार होने के क्षण तक मेरा पूरा समय इन्हीं उद्देश्यों के प्रचार-प्रसार में लगा है। २८-२९ फरवरी १९२० ई० को इसी कलकत्ते के टाउन हाल में ख़िलाफ़त कांफ्रेंस का अधिवेशन हुआ था और मुसलमानों ने निराश होकर अपनी अंतिम घोषणा कर दी थी:

"यदि बरतानिया सरकार ने ख़िलाफ़त संबंधी मांगों की ओर अब भी कोई ध्यान नहीं दिया तो मुसलमान अपने धर्मशास्त्र के अनुसार विवश हो जायेंगे कि आज्ञापालन के सारे संबंधों को तोड़ दें।" मैं ही इस अधिवेशन का अध्यक्ष था।

मैंने अपने लम्बे अध्यक्षीय अभिभाषण में वह सारी बातें सविस्तार कह दी थीं जो और इन दो भाषणों में प्रस्तुत की गई हैं जो न्यायालय के सम्मुख हैं।

मैंने इसी अभिभाषण में उस इस्लामी धर्मादेश का भी स्पष्टीकरण कर दिया था जिसके अनुसार मुसलमानों का धार्मिक कर्तव्य है कि वर्तमान स्थिति में 'असहयोग' करें अर्थात् सहयोग और सहायता से हाथ खींच लें, यही 'संबंध विच्छेद है' जिसने आगे चलकर 'असहयोग आन्दोलन' का रूप धारण कर लिया और महात्मा गांधी जी ने उसका नेतृत्व किया। इसी अधिवेशन में वह प्रस्ताव पारित हुआ था जिसमें इस्लामी शास्त्राचार के अनुसार मुसलमानों के लिए सेना में नौकरी करना अनुचित बताया गया था क्योंकि सरकार इस्लामी ख़िलाफ़त और इस्लामी देशों के विरुद्ध युद्ध कर रही है। कराची अभियोग इसी प्रस्ताव के आधार पर चलाया गया। मैं बारम्बार पत्रों में लिखकर और भाषणों में घोषणा कर चुका हूँ कि यह प्रस्ताव सबसे पहले मैंने ही तैयार किया था और मेरी ही अध्यक्षता में यह तीन बार पारित हुआ है—सबसे पहले कलकत्ते में फिर बरेली और लाहौर में। अतः 'इस अपराध' के दंड का भी प्रथम अधिकारी मैं ही हूँ।

मैंने इस अभिभाषण में संवर्धन करने के पश्चात् इसे पुस्तक का रूप दे दिया जो अंग्रेजी अनुवाद सहित कई बार प्रकाशित हो चुकी है। यह मेरे 'अपराधों' की एक लिखित दस्तावेज़ है।

मैंने गत दो वर्षों के अन्दर अकेले और महात्मा गांधी के साथ सम्पूर्ण भारत का बार-बार दौरा किया। कोई नगर ऐसा नहीं है जहां मैंने ख़िलाफ़त, पंजाब, स्वराज और असहयोग पर बार-बार भाषण न दिए हों और वह सारी बातें न कही हों जो मेरे इन दो भाषणों में दिखलाई गई है।

दिसम्बर सन् १९२० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ ही अखिल भारतीय ख़िलाफ़त कांफ्रेंस का भी अधिवेशन हुआ। अप्रैल सन् १९२१ में जमीअत-उल-उलमा का बरेली में सम्मेलन हुआ। गत अक्टूबर में यू० पी० प्रान्तीय ख़िलाफ़त कांफ्रेंस आगरा में आयोजित हुई। नवम्बर में अखिल भारतीय उल्मा (धर्माचार) कांफ्रेंस का अधिवेशन लाहौर में हुआ। इन समस्त अधिवेशनों का भी मैं ही अध्यक्ष था। परन्तु इनमें भी सारे वक्ताओं ने जो कुछ कहा और अध्यक्षीय भाषणों में मैंने जो विचार व्यक्त किए उन सबमें वह सारी बातें विद्यमान थीं जो इन दो भाषणों में दिखलाई गई हैं। मैं तो यह भी स्वीकार करता हूँ कि इनसे कहीं अधिक सुनिश्चित और स्पष्ट विचार व्यक्त किए गए थे।

यदि मेरे इन दो भाषणों में कही गई बातें धारा १२४-अ के अन्तर्गत अपराध हैं तो मैं नहीं समझता कि केवल पहली और पंद्रह जुलाई को किए गए अपराधों का ही चयन क्यों किया गया है? मैं तो यह अपराध इतनी बार कर चुका हूँ कि वस्तुतः इनकी गणना करना मेरे लिए असम्भव हो गया है। मुझे कहना पड़ेगा कि गत वर्षों के अन्दर मैंने १२४-अ के अन्तर्गत किये जाने वाले अपराधों के अतिरिक्त और कोई काम ही नहीं किया है।

हमने स्वतंत्रता और अधिकार मांगने के इस संग्राम में 'अहिंसा और असहयोग' की नीति अपनाई है। हमारे विरुद्ध बाहुबल अपनी समग्र नृशंसता और क्रूरता तथा रक्तपातात्मक साधनों सहित खड़ा है किन्तु हमें केवल ईश्वर कर आश्रय है और अपने आत्मोत्सर्ग तथा अपने दृढ़ धैर्य पर विश्वास है। महात्मा गांधी के समान मेरा यह विश्वास नहीं है कि किसी भी परिस्थिति में भी हथियारों का मुकाबला हथियारों से नहीं करना चाहिए। इस्लाम ने जिन स्थितियों में इसकी अनुमति दी है मैं उसे ईश्वरीय नियम और न्याय तथा नैतिकता के अनुकूल समझकर उस पर विश्वास रखता हूँ। परन्तु साथ ही हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता और तत्कालीन संघर्ष के लिए महात्मा गांधी ने जो नीति निर्धारित की है उससे पूर्णतया सहमत हूँ और उसकी सत्यता पर पूर्ण विश्वास रखता हूँ। मुझे विश्वास है कि हिन्दुस्तान को अहिंसात्मक संघर्ष द्वारा विजय प्राप्त होगी और उसकी विजय नैतिक बल तथा अध्यात्मशक्ति की विजय की प्रतीक होगी।

मैंने प्रारंभ में, जैसा कि लिख चुका हूँ, अपनी बात को समाप्त करते हुए भी उसी को दोहराऊंगा। आज सरकार जो कुछ हमारे साथ कर रही है वह कोई असाधारण बात नहीं है जिसके लिए विशेष रूप से उसकी निन्दा की जाए। राष्ट्रीय चेतना का विरोध करना और दमन करना सारे सत्तापहरणकारी शासनों की मनोवृत्ति होती है और हमें यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि हमारे लिए मानवीय प्रकृति परिवर्तित हो जायेगी। यह प्रवृत्तिगत दुर्बलता व्यक्ति और समष्टि दोनों में समान रूप से पाई जाती है। दुनिया में कितने व्यक्ति हैं जो अपने आधिपत्य में आई हुई वस्तु केवल इसलिए लौटा देंगे कि वह उनकी नहीं है। फिर एक पूरे महाद्वीप के संबंध में ऐसी आशा क्यों की जा सकती है। शक्ति कभी किसी बात को केवल इसलिए नहीं मान लेती कि वह उचित और तर्कसंगत है। वह तो स्वय भी बाहुबल का प्रयोग किये जाने की प्रतीक्षा करती है और जब वह शक्ति दिखाई पड़ जाती है तो अनुचित से अनुचित मांग के आगे भी झुक जाती है।

हमें ज्ञात है कि यदि स्वाधीनता की हमारी उत्कंठा और अपना अधिकार लेने की हमारी इच्छा सच्ची और दृढ़ सिद्ध हुई हो तो यही सरकार जो आज हमें अपराधी ठहरा रही है कल देशभक्त विजेता के रूप में हमारा स्वागत करने पर बाध्य होगी।

मुझ पर राजद्रोह का आरोप लगाया गया है। लेकिन मुझे "राजद्रोह के अर्थ समझ लेने दो।" क्या 'राजद्रोह' स्वतंत्रता के लिए उस संघर्ष को कहते हैं जो अभी सफल नहीं हुआ है? यदि ऐसा है तो मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ। लेकिन साथ ही साथ इस बात का भी स्मरण करना चाहता हूँ कि इसी का सम्मानसूचक नाम देशभक्ति भी है—यदि वह सफल हो जाए। कल तक आयरलैंड के **शस्त्रधारी** नेता राजद्रोही थे लेकिन आज डी वेलरा और ग्रैफिन्थ के लिए महान बरतानिया कौन सी उपाधि देने का प्रस्ताव करती है?

अतः जो कुछ आज हो रहा है उसका निर्णय कल होगा। न्याय अमर रहेगा, अन्याय मिटा दिया जाएगा। हम भविष्यत् के निर्णय पर विश्वास रखते हैं।

परन्तु यह बात स्वाभाविक है कि बदलियों को देखकर वर्षा होने की प्रतीक्षा की जाए। हम देख रहे हैं कि मौसम में परिवर्तन के समस्त चिह्न परिलक्षित हो रहे हैं। दुःख तो उन आखो पर होता है जो देख कर भी इन संकेतों को मानने के लिए नहीं हैं।

मैंने इन्हीं भाषणों में, जो मेरे विरुद्ध प्रमाणरूप में न्यायालय में प्रस्तुत किये गए हैं, कहा था कि "स्वतंत्रता का बीज कभी फल-फूल नहीं सकता जब तक दमन-शमन के पानी से उसका सिंचन न हो।"

परन्तु सरकार ने इसका सिंचन आरम्भ कर दिया है।

मैंने इन्हीं भाषणों में कहा था कि "खिलाफत के प्रचारकों की गिरफ्तारियों पर दुःखी क्यों हो? यदि तुम वस्तुतः न्याय और स्वतंत्रता के अभिलाषी हो तो जेल जाने के लिए तत्पर हो जाओ।"

मैं मजिस्ट्रेट के संबध में भी कुछ कहना चाहता हूँ। अधिक से अधिक दंड देने का जो अधिकार उसे प्राप्त है वह दंड निस्संकोच मुझे दे दे। मुझे शिकायत या दुःखानुभूति नही होगी। मेरा झगड़ा तो पूरे शासन-तंत्र से है, उसके किसी एक पुर्जे से नही। मैं जानता हूँ कि जब तक शासनतंत्र नहीं बदलेगा पुर्जे अपनी कार्य-पद्धति नहीं बदल सकते।

मैं अपना वक्तव्य सत्य की वेदी पर बलि होने वाले इटली के विख्यात शहीद गार्डीनो ब्रूनो के कथन पर समाप्त करता हूँ जो मेरी ही तरह न्यायालय के कटहरे में खड़ा किया गया था :

"अधिक से अधिक जो सजा दी जा सकती है वह निस्संकोच मुझे दे दो। मै विश्वास दिलाता हूँ कि दण्डादेश लिखते हुए जितना कम्पन तुम्हारे मन में होगा उसका शतांश कंपन भी निर्णय सुनकर मेरे मन में न होगा।"

मिस्टर मजिस्ट्रेट! अब मै न्यायालय का अधिक समय न लूगा। यह इतिहास का एक रोचक और शिक्षाप्रद अध्याय है जिसको लिखने में हम दोनों समान रूप से व्यस्त है। हमारे भाग्य मे अपराधियों का यह कटहरा आया है, तुम्हारे भाग्य मे मजिस्ट्रेट की वह कुर्सी। मैं स्वीकार करता हूँ कि इस कार्य के लिए वह कुर्सी भी उतनी ही आवश्यक वस्तु है जितना यह कटहरा। आओ, इस स्मरणीय और अतीत की गाथा बनने वाले कार्य को शीघ्र समाप्त कर दें। इतिहासकार प्रतीक्षा कर रहा है और भविष्य कब से हमारी राह ताक रहा है। हमें यहा जल्दी-जल्दी आने दो और तुम भी जल्दी-जल्दी निर्णय करते रहो। अभी कुछ समय तक यह काम चलता रहेगा और यह कार्यक्रम उस समय तक चलता रहेगा जब एक दूसरे न्यायालय का

द्वार खुल जाएगा। यह ईश्वरीय विधि का न्यायालय है। समय उसका न्यायाधीश है। वह फ़ैसला लिखेगा और उसका निर्णय ही अन्तिम फ़ैसला है।

तर्जुमान-उल-क़ुरान

क़ुरानानुवाद

कहो : वह ही केवल और एकमात्र ईश्वर है :
वह ईश्वर जिस पर सभी निर्भर हैं !
वह न किसी को जन्म देता है और न ही उसका जन्म होता है;
और उस जैसा अन्य कोई नहीं है।

(क़ुरान : ११२ : १-४)

समर्पण

संभवतः दिसम्बर १९१८ ई० की घटना है जब मैं रांची में नज़रबन्द था। रात्रि की नमाज़ से निवृत्त होकर मस्जिद से निकला तो मुझे महसूस हुआ कि कोई व्यक्ति पीछे आ रहा है। मुड़ के देखा तो एक आदमी कम्बल ओढ़े खड़ा था :

आप मुझसे कुछ कहना चाहते हैं ?

हां श्रीमान् ! मैं दूर से आया हूँ।

कहां से ?

सीमापार से।

यहां कब पहुंचे ?

आज संध्या समय पहुँचा। मैं अत्यन्त निर्धन आदमी हूँ। कंधार से पैदल चलकर कोएटा पहुँचा। वहां अपनी जन्मभूमि के ही कुछ व्यापारी मिल गए थे। उन्होंने मुझे नौकर रख लिया और आगरा पहुंचा दिया। आगरे से यहां तक पैदल चलकर आया हूँ।

खेद है कि तुमने इतना कष्ट सहन क्यों किया ?

इसलिए कि क़ुरान-शरीफ़ के कुछ अंशों को समझ लूँ। मैंने 'अल-हिलाल' और 'अल-बलाग़' का एक-एक अक्षर पढ़ा है।

यह व्यक्ति कुछ दिनों तक मेरे पास ठहरा और फिर अकस्मात् वापस चला गया। वह चलते समय मुझसे इसलिए नहीं मिला कि उसे आशंका थी कि कहीं मैं उसे वापसी के खर्चे के लिए रुपया न दूँ, और वह नहीं चाहता था कि इसका भार मुझ पर डाले। उसने निश्चय ही वापसी में भी अपनी यात्रा का बड़ा भाग पैदल तय किया होगा।

मुझे उसका नाम याद नहीं। मुझे यह भी ज्ञात नहीं है कि वह जीवित है या नहीं, यदि मेरी स्मरण-शक्ति ने धोखा न दिया होता तो मैं यह पुस्तक उसके नाम समर्पित करता।

अबुल कलाम

कलकत्ता

१२ दिसम्बर १९३१ ई०

तरजुमान-उल-क़ुरान *

प्रथम संस्करण की प्रस्तावना

सन् १९१६ में जब मेरी साप्ताहिक पत्रिका 'अल-बलाग़' के पृष्ठों पर 'क़ुरानानुवाद' और उसके 'भाष्य' के प्रकाशन की घोषणा की गई तो इस बात का अनुमान भी मैंने नहीं किया था कि एक ऐसे कार्यक्रम की घोषणा कर रहा हूँ जो १५ वर्ष तक स्थगित रहेगा और इसके प्रति देशवासियों की उत्सुकता तथा इसके लिए उनकी प्रतीक्षा एक असहनीय भार बन जाएगा एवं मेरी कुंठाओं का एक विषादपूर्ण उदाहरण सिद्ध होगा। परन्तु जो घटनाएं घटीं उन्होंने तुरन्त बतला दिया कि इसी स्थिति के सम्मुख मुझे नतमस्तक होना है।

निष्कासन

अभी इस विज्ञापन को कुछ महीने ही बीते होंगे कि ३ मार्च सन् १९१६ ई० को बंगाल सरकार ने सुरक्षा अध्यादेश के अन्तर्गत मुझे बंगाल की सीमा से तुरन्त बाहर चले जाने का आदेश दिया और यह आदेश इतना आकस्मिक था कि अल-बलाग़ प्रेस का प्रबंध करने और परियोजित ग्रथों के लेखन तथा उनके प्रकाशन का समस्त कार्यक्रम अवरुद्ध हो गया।

इसके पूर्व इसी अध्यादेश के अर्न्तगत देहली, पंजाब, यू० पी० और मद्रास की सरकारें अपने-अपने प्रांतों में मेरा प्रवेश निषिद्ध कर चुकी थीं। इसलिए अब केवल बिहार और बम्बई के ही दो प्रांत रह गए थे जहां मैं जा सकता था। मैंने रांची का चयन किया। मेरा विचार था कि कलकत्ते से निकट रहकर कदाचित इन ग्रंथों के लेखन और प्रकाशन का काम जारी रख सकूँ।

सन् १९१५ में जब मैंने यह कार्य करने का संकल्प किया था तो तीन बातें एक साथ मेरे सम्मुख थीं—क़ुरानानुवाद, उसका भाष्य तथा भाष्य की भूमिका। मैंने सोचा था कि यह तीन पुस्तकें क़ुरान को समझने और उसके अनुशीलन की तीन विभिन्न आवश्यकताएं पूर्ण कर देंगी। सर्वसाधारण की शिक्षा के लिए अनुवाद, अनुशीलनकर्ताओं के लिए भाष्य, उच्चस्तरीय विद्वानों के लिए भूमिका।

'अल-बलाग़' में जब क़ुरानानुवाद और उसके भाष्य के प्रकाशन की घोषणा की गई थी तो पांच पारों (खंडों) का अनुवाद पूर्ण हो चुका था, सूरः आले इमरान तक भाष्य लिखा जा चुका था और स्मरणार्थ टिप्पणियां लिपिबद्ध हो चुकी थीं। इस विचार से कि अल्प काल में अधिक से अधिक कार्य पूर्ण हो जाए, मैंने लेखन के साथ मुद्रण भी आरंभ कर दिया था। मेरा विचार था कि इस प्रकार साल भर के अन्दर अनुवाद पूर्ण भी हो जाएगा और छप भी जाएगा तथा भाष्य का भी प्रथम खंड प्रकाशित हो जाएगा। प्रत्येक सप्ताह के लिए अपने कार्यक्रम को मैंने इस प्रकार नियोजित कर दिया था कि तीन दिन 'अल-बलाग़' के सम्पादन में लगाता था, दो दिन अनुवाद में और दो दिन भाष्य लेखन में।

३ मार्च १९१६ ई० को जब मैंने कलकत्ते से प्रस्थान किया तो भाष्य के छः फार्म मुद्रित हो चुके थे और अनुवाद की किताबत (मुद्रणार्थ सुलेखन) होने लगी थी। मैंने अब प्रयत्न किया कि मेरी अनुपस्थिति मे प्रेस चलता रहे और कम से कम भाष्य और अनुवाद का कार्य होता रहे। १९१६ मे जब प्रेस को पुन: चलाने की व्यवस्था हो गई तो मैं पाण्डुलिपियों के सम्पादन में सलग्न हो गया ताकि उन्हे प्रेस भेज सकूं।

नज़रबंदी

परन्तु ८ जुलाई १९१६ को अकस्मात् भारत सरकार ने मेरी नज़रबंदी के आदेश दे दिए और इस प्रकार अनुवाद और भाष्य के प्रकाशन की आशा का भी अंत हो गया। नज़रबंदी के पश्चात् कोई अवसर शेष नहीं रहा कि बाह्य जगत से किसी प्रकार का संपर्क रख सकूँ।

अब मै केवल अनुवाद और भाष्य का प्रारूप तैयार करने और उन्हें लिखने का ही कार्य कर सकता था। नज़रबंदी की १९ धाराओं में से कोई धारा भी मुझे यह कार्य करने से नहीं रोकती थी। मैं इस बात से सतुष्ट हो गया। इतना भी नहीं बल्कि मैंने सोचा कि यदि जीवन की सारी आज़ादियों से वंचित होने पर भी लिखने-पढने की स्वतत्रता प्राप्त है और अपने चिन्तन-मनन की उपलब्धियों को सुरक्षित रखने के लिए स्वतत्र हूँ तो जीवन की सुख-सुविधाओं मे से किसी बात से वंचित नहीं हूँ। मैं इस दशा में संपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकता हूँ। परन्तु इस स्थिति को तीन महीनें भी नहीं बीते थे कि ज्ञात हो गया कि इस आनदकुंज मे भी मुझे पुनः कठिन परीक्षा से गुज़रना था।

पुनः तलाशी और पाण्डुलिपियों की ज़ब्ती

नज़रबंदी के आदेश जिस समय लागू किए गए थे तो मेरे निवासस्थान की तलाशी भी ली गई थी और जितनी भी दस्तावेज़े मिली थीं जांच-पड़ताल करने वाले अधिकारियो ने उन्हें अपने अधिकार मे ले लिया था। उन्ही में अनुवाद और भाष्य की पाण्डुलिपियां भी थी, किन्तु जब जाच-पडताल के पश्चात् ज्ञात हुआ कि इनमे कोई चीज़ आपत्तिजनक और सरकार के लिए उपयोगी नही है तो दो सप्ताह के बाद वह दस्तावेज़ वापस दे दी गई।

परन्तु जब जाच-पडताल के निष्कर्ष भारत सरकार को सूचित किए गए तो वह स्थानीय सरकार के निर्णय से सहमत नहीं हुई। वहां विचार किया गया कि स्थानीय सरकार ने कागज़ो को वापस दे देने में शीघ्रता की है और अत्यन्त संभाव्य है कि पूर्ण सावधानी से इनकी जांच न की गई हो। उस समय भारत सरकार के जाच विभाग का सर्वोच्च अधिकारी सर चार्ल्स क्लेवलैंड था। अनेक कारणो से, जिन पर विचार करने का यह अवसर नही है, वह मेरे प्रति विशेषतया द्वेषभाव रखता था। वह पहले कलकत्ता आया और दो सप्ताह तक पूछताछ करता रहा और फिर रांची आया। मेरे घर की पुनः तलाशी ली गई। तलाशी के पश्चात् कहा गया कि जो कागज़ात पिछली तलाशी के अवसर पर ज़ब्त किये गए थे अब वह भारत सरकार के परीक्षणार्थ भेजे जाएंगे। अतः समस्त कागज, यहां तक कि प्रकाशित पुस्तकें भी ले ली गई। इनमें न केवल अनुवाद और भाष्य की पाण्डुलिपि थी बल्कि कुछ अन्य रचनाओ की पूर्ण और अपूर्ण पाण्डुलिपिया भी थीं। जिस समय यह घटना घटी उस समय आठ पारों तक अनुवाद पूर्ण हो चुका था। सुरः निसा तक भाष्य लिखा जा चुका था किन्तु अब उनका एक पृष्ठ भी मेरे पास नहीं था। फिर भी मैंने नवें

पारे से अनुवाद का कार्य करता रहा और १९१८ ई० तक इसे पूर्ण कर दिया। यदि प्रारम्भिक आठ पारों का अनुवाद वापस मिल जाता तो कुरान का आद्योपांत अनुवाद पूर्ण हो जाता।

मैंने कागज़ों की वापसी के लिए पत्र-व्यवहार किया लेकिन उत्तर मिला कि न तो तुरत वापस दिए जा सकते हैं और न यही बताया जा सकता है कि कब तक वापस किए जाएंगे। चूंकि कागज़ों की वापसी की निकट भविष्य में प्रत्यक्षतः कोई आशा नहीं थी और पता न था कि आगे चलकर क्या स्थिति उत्पन्न होगी इसलिए उचित यही लगा कि उन पारों का भी पुनः अनुवाद करके पुस्तक को पूर्ण कर लिया जाए। यह कार्य सरल न था। एक लिखित चीज़ को पुनः लिपिबद्ध करना मन और मस्तिष्क पर बोझ बन जाता है। फिर भी मैंने कुछ महीनो के परिश्रम के पश्चात् इन भागों को भी पुनः पूर्ण कर लिया।

इस विचार से कि पाण्डुलिपि इतनी सुपठनीय हो जाए कि यदि किसी अन्य व्यक्ति को दी जाए तो शोधन में सुविधा हो, मैंने उर्दू टाइपराइटर मंगा कर उसे टंकित कराना आरंभ कर दिया और दिसम्बर १९१९ ई० में इसका अर्धांश से अधिक भाग टंकित हो चुका था।

परन्तु २७ दिसम्बर १९१९ ई० को सरकार ने मुझे मुक्त कर दिया और परिणामतः इसके मुद्रण तथा प्रकाशन के मार्ग में बाधक समस्त बाधाएं दूर हो गईं। लेकिन इस समय देश में एक राजनैतिक विस्फोट के लिए लावा तैयार हो रहा था और जहां तक मुसलमानों का सबंध है 'अल-हिलाल' ने जो राजनैतिक आह्वान किया था वह कोने-कोने से प्रतिध्वनित होने लगा था। मेरे लिए संभव न था कि समय की पुकार से स्वयं को दूर रखता। परिणाम यह हुआ कि कारावास से मुक्त होते ही असहयोग आन्दोलन के कार्यों में व्यस्त हो गया और दीर्घकाल तक इतना अवकाश ही नहीं मिला कि किसी दूसरी ओर देख सकता। परन्तु १९२१ ई० में जब देश के कोने-कोने से कुरान के अनुवाद के लिए मांग आरंभ हुई तो मुझे उसके प्रकाशन के लिए तत्पर हो जाना पड़ा। चूंकि टाइप की लिखाई इसके लिए उचित नहीं समझी गई थी इसलिए हस्तलिखित सुलेख की व्यवस्था की गई। पहले मूल पाठ को लिखाया गया और तत्पश्चात् अनुवाद का लिखना आरंभ किया गया। नवम्बर १९२१ ई० में मूलपाठ की किताबत (मुद्रणार्थ सुलेख) समाप्त हो चुकी थी और अनुवाद की लिखाई आरम्भ हो गई थी। परन्तु महाकाल ने अपना निर्णय सुना दिया जो अब भी मेरे प्रतिकूल था।

गिरफ्तारी और समस्त पाण्डुलिपियों की दुर्दशा

१९२१ ई० के अंत में असहयोग आन्दोलन की गतिविधियां अपनी चरमसीमा पर पहुंच गई थीं और अब अनिवार्य था कि सरकार भी अपने समस्त साधनों का उपयोग करे। २० नवम्बर १९२१ ई० को सर्वप्रथम बंगाल सरकार ने कदम उठाया और उन समस्त संगठनों को अवैधानिक घोषित कर दिया जो असहयोग आंदोलन के कार्यों में संलग्न थे। इस कार्यवाही ने कांग्रेस को अवैधानिक संस्था घोषित करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया है और १० दिसबर, सन् १९२१ ई० को कुछ अन्य बंगाली सहयोगियों सहित मुझे गिरफ्तार कर लिया गया।

इस बार मेरी गिरफ्तारी से प्रेस के प्रबंध में बाधा उत्पन्न नहीं हो सकती थी क्योंकि पुस्तकें पूर्ण हो चुकी थीं और मैंने पूरी व्यवस्था कर ली थी कि मेरी अनुपस्थिति में भी नित्यकर्मानुसार कार्य चलता रहे। परन्तु गिरफ्तारी के पश्चात् जो घटना घटी वह इस कहानी का दुःखांत है। इसके कारण न केवल कुरान के अनुवाद और उसके भाष्य का प्रकाशन स्थगित हो गया बल्कि मेरे साहित्यिक जीवन की आकांक्षा की ही इति हो गई।

गिरफ्तारी के पश्चात् जब सरकार को आभास हुआ कि मेरे विरुद्ध अभियोग चलाने के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध नहीं है तो उसे अतिरिक्त सामग्री एकत्र करने की चिंता हुई और इसलिए तीसरी बार मेरे घर और मुद्रणालय की तलाशी ली गई। तलाशी के लिए जो लोग आए, उनमें कोई ऐसा व्यक्ति न था जो उर्दू या अरबी अथवा फ़ारसी का ज्ञाता हो। जो भी लिखित साम्रगी इनके हाथ लगी उसे उन्होंने अपने उद्देश्यपूर्ति के लिए उपयोगी समझा और निर्णय कर लिया कि इसमें कोई न कोई सरकार-विरोधी बात अवश्य होगी। मेरी पांडुलिपियों को वे अपने साथ ले गए। यहां तक कि मुद्रण के लिए लिखी हुई क़ुरान की सारी कापियों को भी तोड़-मरोड़ कर पांडुलिपियों के ढेर में मिला दिया।

संयोगवश उस समय किसी व्यक्ति ने मांग नहीं की कि कागज़ों को क्रमबद्ध करके वह ले जाएं और नियमानुसार सूची पर साक्षियों के हस्ताक्षर हो जाएं तथा विवरण सहित उनकी रसीद दी जाए। पूछ-ताछ अधिकारी अपने साथ एक छपा हुआ परिपत्र लाए थे और उस पर केवल यह लिखकर कि विभिन्न प्रकार की हस्तलिखित सामग्री ली गई है, वह परिपत्र थमा कर चले गए।

१५ महीने के पश्चात् जब मैं कारावास से मुक्त हुआ तो सरकार से कागज़ों की मांग की। दीर्घकाल तक पत्र-व्यवहार के पश्चात् कागज़ मिले किन्तु इस अवस्था में मिले कि संपूर्ण पाण्डुलिपियां छिन्न-भिन्न हो चुकी थीं।

पूछ-ताछ अधिकारियों ने जब उन्हें अपने अधिकार में लिया था तो यह पांडुलिपिया विभिन्न संकलनों के रूप में थीं और अलग-अलग बंडलों में बंधी हुई थीं। इनमें पूर्ण और अपूर्ण विभिन्न रचनाओं के अतिरिक्त बहुत बड़ी मात्रा में स्मृति-टिप्पणियां भी थीं किन्तु जब यह कागज वापस मिले तो यह बिखरे हुए पृष्ठों के ढेर मात्र थे और आधे से अधिक पृष्ठ या तो नष्ट हो चुके थे या जगह-जगह से फट कर टुकड़े-टुकड़े हो गए थे। यह धैर्य और सहनशक्ति मेरे जीवन की सबसे बड़ी परीक्षा थी किन्तु मैंने प्रयत्न किया कि इसमे भी खरा उतरूं। यह सब से अधिक कड़ुवा घूंट था जो परिस्थितियों ने मुझे पिलाया था किन्तु मैंने बिना किसी तुच्छ पूर्वापत्ति के इसे पी लिया। हां, इससे इंकार नहीं करता कि आज भी इसकी कड़ुवाहट मेरे गले में शेष है।

राजनैतिक जीवन की कुतूहलता और साहित्यिक जीवन की एकाग्रता एक जीवन में एकत्रित नहीं हो सकतीं और रूई तथा अग्नि के बीच संधि असंभव है। मैंने चाहा कि दोनों को एक साथ एकत्रित करूं। मैं हठपूर्वक एक ओर वैचारिक संपदा एकत्रित करता रहा और दूसरी ओर नीड़-भस्मकारी-चपला को भी नियंत्रण देता रहा। मैं परिणाम जानता था। इसलिए मुझे शिकायत करने का कोई अधिकार न था।

अब क़ुरान के अनुवाद और भाष्य को रूप देने का कोई दूसरा उपाय इसके अतिरिक्त संभव न था कि पुनः परिश्रम किया जाए, किन्तु इस घटना के पश्चात् चित्त कुछ इतना मलिन हो गया कि अनेक प्रयत्न किये किन्तु उसने साथ न दिया। मैंने महसूस किया कि इस विपत्ति का घाव इतना हल्का नहीं है कि तुरंत भर जाए।

चित्तवृत्ति में जो विचार रह-रह कर विघ्न उत्पन्न करता था वह यह था कि एक चीज़ को लिख चुकने के पश्चात् उसे पुनः कैसे लिखा जाए। वास्तविकता यह है कि एक लेखक के लिए इससे अधिक दुष्कर कार्य कोई अन्य नहीं है। वह हज़ारों नवीन पृष्ठ सुविधापूर्वक लिख डालेगा किन्तु एक विनष्ट पृष्ठ के पुनः लिखने में अपनी चित्तवृत्ति को नितांत शिथिल पाएगा। चिन्तन और मनःस्थिति की वह सक्रियता जो गत परिश्रमों के व्यर्थ हो जाने के कारण समाप्त हो जाती है, उसे पुनः सक्रिय बनाना अत्यंत दुष्कर होता है। इस स्थिति का अनुमान केवल वही लोग लगा

सकते हैं जिन्होंने ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों का सामना किया हो। जब मैंने टामस कारलाएल के जीवन-वृत्तांत में पढ़ा था कि उसने फ्रांसीसी क्रांति पर अपनी सुविख्यात पुस्तक पुनः लिखी थी और आलोचकों ने उसे सर्जनात्मक क्षमता की एक अद्भुत उपलब्धि स्वीकार किया था तो मैं नहीं समझ सका था कि इसमें असाधारण बात क्या है। परन्तु इस विपत्ति के पश्चात् मुझे ज्ञात हो गया कि यह न केवल असाधारण है बल्कि इससे भी कुछ अधिक है और वस्तुतः कारलाएल की सर्जनात्मक महानता का इससे बढ़ कर अन्य कोई दूसरा प्रमाण नहीं हो सकता।

कई वर्ष बीत गए किन्तु मैं अपने आपको इस कार्य में सलग्न न कर सका। बहुधा ऐसा हुआ कि अनुवाद और भाष्य के बचे-खुचे पृष्ट मैंने निकाले किन्तु जैसे ही विनष्ट कागज़ों पर दृष्टि पड़ती चित्त की मलिनता उभर आती और दो-चार पृष्ठ लिख कर छोड़ देना पड़ता।

परन्तु एक ऐसे कार्य की अधिक समय तक उपेक्षा करना मेरे लिए सभव न था जिसके सबंध में मेरा विश्वास था कि वह मुसलमानों के लिए उस काल का सबसे अधिक आवश्यक कार्य है। जितना समय बीतता जाता था, उस आवश्यक कार्य मे विघ्न का आभास मेरे लिए असहनीय होता जाता था। मै महसूस करता था कि यदि यह कार्य मेरे द्वारा सपन्न न हो पायेगा तो शायद दीर्घकाल तक इसके पूर्ण होने की आशा भी न की जा सके।

सन् १९२७ ई० लगभग समाप्त हो रही थी कि अकस्मात् बहुत दिनो से शिथिल चित्त गतिवान हो उठा और जिस ग्रंथि ने चित्त के निरन्तर प्रयासो को विफल कर दिया था, वह अकस्मात् मनोद्रेक के प्रवाह से स्वतः खुल गई। काम आरम्भ किया तो प्रारम्भ मे कुछ दिनो तक मनोभाव शिथिल रहा किन्तु जैसे ही अभिरुचि और चिंतन के दो-चार मादक प्याले पिये तो चित्त के समस्त अवरोधक तत्त्व दूर हो गये और फिर तो ऐसा मालूम होने लगा कि इस कौतूहलमय जगत पर मलिनता और उन्मादकता की कभी छाया भी नही पड़ी थी। इतना ही नही, बल्कि कहना चाहिए कि नवीन प्रयासों की मादकता बीती विभावरी के आनन्दोल्लास से भी कहीं अधिक उन्मादक हो गई। मन और आत्मा के कार्य-व्यापार की कुछ विलक्षण स्थिति है। या तो हाल यह था कि निरंतर प्रयास किया किन्तु चित्त की कुंठा दूर न हुई या अब स्वतः वह इस प्रकार प्रवाहित हुआ कि लेखनी रोकना भी चाहूँ तो नहीं रोक सकता।

कार्य पुनः आरम्भ हो गया और इस विचार से कि सूरः फ़ातेहा का भाष्य अनुवाद के लिए भी आवश्यक है, मैंने सर्वप्रथम इसकी ओर ध्यान दिया और फिर अनुवाद की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। परिस्थितिया अब भी प्रतिकूल थीं। स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन क्षीण हो रहा था, राजनैतिक कार्य सदैव की भांति बाधा उत्पन्न कर रहे थे। फिर भी न्यूनाधिक कार्य होता रहा और २० जुलाई सन् १९३० ई० में जब मैं मेरठ के जिला जेल में था—को अंतिम सूरः के अनुवाद से मैं निवृत्त हो गया।

अनुवाद और भाष्य के सिद्धांत

क़ुरान के उद्देश्यो और अर्थो को जिन सिद्धांतों और अवधारणाओं के अंतर्गत रूपांतरित करने की घोषणा की गई थी, उससे पूर्व-परिचित होने के कारण पुस्तक पढ़ने की लालसा लोगों में जाग्रत होना स्वाभाविक है। इस प्राक्कथन के लिखने के समय तक मेरा भी यही विचार था कि इस संबंध मे एक संक्षिप्त भूमिका पुस्तक में सम्मिलित की जायेगी परन्तु अब जब प्राक्कथन लिख रहा हूँ तो इन सिद्धांतों और अवधारणाओं को समेटना चाहा तो ज्ञात हुआ कि विषयगत जटिलताएं और विश्लेषणात्मक गहराइयां ऐसी नहीं हैं, जिनका विवरण प्रस्तुत हो सके और जिनका परिसीमन किया जा सके। प्रत्येक प्रस्तुत तर्क के स्पष्टीकरण के लिए पृथक्

भूमिकाएं और टिप्पणियां आवश्यक हैं और वर्ण्य-विषय के प्रत्येक अंश की परिधि इतनी दूर-दूर **तक फैली हुई है कि न तो वह समेटी जा सकती है और न ही संक्षेप में संकेतों द्वारा साधारणतया उन अंशों का अनुशीलन किया जा सकता है। इस विचार के भार से मुक्त होकर और उन** कठिनाइयों तथा अवरोधों की ओर संकेत करके उन कठिनाइयों को बता देता हूँ, जो इस मार्ग में बाधक थीं ताकि अनुमान किया जा सके कि इस मामले की साधारण स्थिति क्या थी और क़ुरान के अनुशीलन पर जो कदम उठाया गया है वह क्या रूप धारण करने जा रहा है।

रह गए क़ुरान के अनुवाद के भाष्य सिद्धात तो उनके लिए भाष्य की भूमिका की प्रतीक्षा करनी चाहिए जो क़ुरान की अनुवाद-श्रृंखला की दूसरी पुस्तक है और जिसकी पुरातन पाण्डुलिपियों के उद्धार और संपादन में आजकल व्यस्त हूँ।

अनुशीलन और मूल्याकंन का साधारण मापदंड

विभिन्न कारणों से, जिन्हें प्रकाशित करने का यहां अवसर नहीं है, अतीत में क़ुरान के अनुशीलन में शताब्दियो से ऐसे कारण विकसित होते रहे और ऐसे प्रभाव पड़ते रहे जिनके फलस्वरूप शनैः-शनैः क़ुरान का तत्त्वज्ञान दृष्टि से ओझल होता गया और धीरे-धीरे उसके अध्ययन तथा अर्थबोध का एक अत्यंत निम्नस्तर स्थापित हो गया। यह बात भी केवल अर्थबोध तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि हर बात में हुई, यहां तक कि उसकी भाषा, उसके शब्दों, उसके समासों और उसकी रमणीयता के लिए भी दृष्टि-बोध का कोई उच्च स्तर शेष नहीं रहा।

प्रत्येक युग के लेखक की रचना उसके अपने युग के बौद्धिक वातावरण की उपज होती है और इस विषय के केवल वही मनीषी अपवाद होते हैं जिनके कालभेदी पज्ञा को प्रकृति का वरदान प्राप्त हो और उन्हें साधारण श्रेणी से उन्हें पृथक कर दिया हो। अतः हम देखते हैं कि इस्लाम की प्रारंभिक शताब्दियों से लेकर आज तक जितनी मात्रा में भाष्यकार उत्पन्न हुए उनकी भाष्य-पद्धति एक पतनशील चिंतन के स्तर की अटूट श्रृंखला है जिसकी हर कड़ी अपने पूर्व की कड़ी से अधिक निम्नस्तरीय है और उसकी प्रत्येक पूर्वस्थिति को अधिक उच्च स्थान प्राप्त है। इस प्रकार हम जितना ऊपर की ओर बढ़ते जाते हैं, वास्तविकता अधिक स्पष्ट होती जाती है, अधिक उच्च-स्तरीय होती जाती है और अपने नैसर्गिक रूप में अभिव्यक्त होती जाती है तथा जितना-जितना नीचे उतरते जाते हैं स्थिति इसके विपरीत होती जाती है।

यह वस्तुस्थिति वस्तुतः मुसलमानों के मानसिक पतन का स्वाभाविक परिणाम थी। उन्होंने जब देखा कि क़ुरान की ऊंचाइयों का साथ नहीं दे सकते तो प्रयत्न किया कि क़ुरान को उसकी ऊंचाइयों से इतना नीचे उतार लें, जितना वह उनकी नीचाइयों का साथ दे सके।

अब यदि हम चाहते हैं कि क़ुरान को उसके वास्तविक स्वरूप में देखें तो आवश्यक है कि पहले वह सारे अवगुंठन हटाए जाएं जो विभिन्न युगों और विभिन्न स्रोतों के बाह्य प्रभावों ने उसके मुखमंडल पर डाल दिए हैं। फिर आगे बढ़ें और क़ुरान की वास्तविकता स्वयं क़ुरान ही के पृष्ठों में खोजें।

तत्त्वज्ञान के बोध में बाधक कुछ कारण और प्रभाव

यह विरोधी प्रभाव जो एक के बाद दूसरे एकत्रित होते रहे, दो-चार नहीं हैं, बल्कि असंख्य हैं और प्रत्येक अंश में व्याप्त हैं। यह संभव नहीं कि उनका संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जा सके किन्तु मैंने भाष्य की भूमिका में प्रयत्न किया है कि कुछ सिद्धांतों और उनके कुछ

प्रकारों के अन्तर्गत उन्हें समेट लूं। इस संबंध में निम्नलिखित अवधारणाएं विचारणीय हैं :

(१) ज्ञानगर्भित ग्रंथ अपने रूप-स्वरूप, अपनी शैली, अपनी वर्णन-पद्धति, संबोधन के अपने ढंग, तर्क-वितर्क की अपनी प्रणाली में हमारे द्वारा निर्मित और निर्धारित पद्धतियों के अधीन नहीं है और न ही उन्हें इनके अधीन होना चाहिए। वह अपनी हर बात में अद्वितीय और विलक्षण नैसर्गिक पद्धति अपनाते हैं और यही वह मौलिक भेद है जो ईश्वर द्वारा भेजे गए नबियों (दूतों) की सहज मार्गदर्शन पद्धति को मनुष्य द्वारा निर्मित ज्ञान-विज्ञान की तार्किक पद्धतियों से भिन्न कर देती है।

क़ुरान जब अवतरित हुआ तो उसका संबोधन जिस समूह से था वह ऐसा ही सरल था और सभ्यता द्वारा निर्मित और रूपायित सांचों में उसका मानस अभी नहीं ढला था, वह अपने सरल और सहज प्राकृतिक चिंतन स्तर पर संतुष्ट था। परिणाम यह हुआ कि क़ुरान अपने स्वरूप और बोधगम्यता में जैसा था वैसे ही ठीक-ठीक उस समय के समूह के मन में उतर गया और उसे क़ुरान को बोधगम्य करने में तथा उससे परिचय प्राप्ति में किसी प्रकार की कठिनाई का आभास नहीं हुआ। सहाबा (रसूल के सहचर) प्रथम बार क़ुरान की कोई आयत या सूरः सुनते ही उसके तत्त्व को प्राप्त कर लेते थे।

परन्तु प्रारंभिक युग अभी समाप्त भी नहीं हुआ था कि रोम तथा ईरान की सभ्यता की हवाएं चलने लगीं और तत्पश्चात् यूनानी ज्ञान-विज्ञान के अनुवाद के कारण मनुष्य द्वारा निर्मित कला एवं विज्ञान के नियमों का युग आरम्भ हो गया। परिणाम यह हुआ कि जैसे-जैसे ज्ञान-प्राप्ति की निर्मित पद्धति की ओर जिज्ञासा बढ़ती गई, क़ुरान की नैसर्गिक पद्धति से मानस अपरिचित होता गया। शनैः-शनैः वह समय आ गया कि क़ुरान की हर बात मनुष्य द्वारा निर्मित और उसके द्वारा रूपायित पद्धतियों के सांचे में ढाली जाने लगी। चूंकि इन सांचों में क़ुरान का ज्ञान ढल नहीं सकता था इसलिए विभिन्न प्रकार के उलझाव पैदा होने लगे और फिर जितने प्रयत्न सुलझाने के किए गए उलझाव और अधिक बढ़ते गए।

स्वाभाविक स्थिति से जब दूरी हो जाती है और कृत्रिम सिद्धांतों के प्रति तन्मयता हो जाती है तो फिर चिंतन दृष्टि इस बात पर सहमत नहीं होती कि किसी बात को उसकी प्राकृतिक सहजता में देखे। ऐसे व्यक्ति सहजता के साथ सौंदर्य और गरिमा के योग का अनुमान कर ही नहीं सकते। यह लोग जब किसी बात को उच्च और भव्य दिखाना चाहते हैं तो प्रयत्न करते हैं कि अधिक से अधिक स्वनिर्मित और स्वरूपायित पद्धति द्वारा विकार उत्पन्न करें। यही घटना क़ुरान के साथ घटी पूर्ववर्तियों का विवेक कृत्रिम पद्धतियों में नहीं ढला था इसलिए वह क़ुरान के सरल तत्त्व को तुरन्त पहचान लेते थे। किन्तु परवर्तियों की चिन्तनधारा में यह बात अरुचिकर समझी जाने लगी कि क़ुरान अपने सहज रूप में प्रस्तुत हो, सिद्धान्त-निर्माण की उनकी अभिरुचि इस बात पर सन्तुष्ट नहीं हो सकती थी। उन्होंने क़ुरान की हर बात के लिए कृत्रिम सिद्धान्तों के वसन सिलने आरम्भ कर दिये और उनके द्वारा बनाए गए यह वसन शरीर पर ठीक नहीं उतर सकते थे। इसलिए हठपूर्वक इस वसन को पहनाना चाहा। परिणाम यह हुआ कि सत्य और औचित्य का प्रश्न न रह गया और हर बात औचित्यविमुख तथा गूढ़ रहस्य बन कर रह गई।

क़ुरान के भाष्यों का प्रथम युग वह है जब इस्लामी ज्ञान-विज्ञान के ग्रंथों का पाठ-निर्धारण और वर्गीकरण का कार्य आरम्भ नहीं हुआ था। इस्लामी वांङ्मय का दूसरा युग पाठ-निर्धारण करने और उसे लिपिबद्ध करने से आरंभ होता है और इसके विभिन्न प्रकार के आचरण और इसकी विभिन्न श्रेणियां परिलक्षित होती हैं। हम महसूस करते हैं कि अभी दूसरा

युग आरम्भ भी नहीं हुआ था कि सिद्धांत-वसन क़ुरान को पहनाने का कार्य आरम्भ हो गया था। लेकिन यह स्थिति चरम शिखर पर उस समय पहुंची जब दर्शन और विज्ञान के प्रचार-प्रसार का अंतिम चरण पूर्ण हुआ। यही समय है जब इमाम फ़खरूद्दीन राज़ी ने महाभाष्य लिखा और उन्होंने पूर्ण प्रयत्न किया कि क़ुरान का स्वरूप उस कृत्रिम सिद्धांत के वसन से सुसज्जित हो जाए। यदि इमाम राज़ी की दृष्टि इस तथ्य पर न होती तो उनका पूर्ण भाष्य अनावश्यक होता, उसका दो-तिहाई भाग निश्चय ही निराधार हो जाता। यह बात अवश्य याद रहे कि कृत्रिम सिद्धांत के सांचे जितने टूटते जाएंगे क़ुरानी तथ्य उतने ही उभरते आएंगे। क़ुरान की वर्णन-पद्धति के संबंध में लोगों को जितनी मात्रा में कठिनाइयों का अनुभव करना पड़ा, वह केवल इसलिए कि कृत्रिम सिद्धांतों में वह तन्मय हुए और प्राकृतिक नियमों का ज्ञान शेष न रहा।

क़ुरान के विभिन्न अंशों और आयतों के औचित्यपूर्ण बोध के संबंधों में सारे प्रपंच केवल इसलिए हैं, क्योंकि प्राकृतिक सिद्धांतों से दूरी हो गई और कृत्रिम सिद्धांत हमारे अन्तस्तल में प्रविष्ट हो गए। हम चाहते हैं कि क़ुरान को भी एक ऐसी संकलित पुस्तक के रूप में देखें जैसी पुस्तकों का संकलन हम करते हैं।

क़ुरान की भाषा के संबंध में वाद-विवाद का जितना ढेर लगा दिया गया है वह केवल इसलिए है कि प्राकृतिक सिद्धांतों को समझने की हममें क्षमता नहीं रह गयी।

क़ुरान की अलंकृत भाषा शैली हमारी अनुभूति के लिए जितनी सहज है उतनी ही हमारी बुद्धि के लिए जटिल क्यों हो रही है? केवल इसलिए कि अप्राकृतिक सिद्धांतों का स्वनिर्मित मापक हमारे हाथ में है। हम चाहते हैं कि इसी से क़ुरान की अलंकारयुक्त भाषा को भी मापें। क़ुरान की तार्किक पद्धति का स्पष्टीकरण क्यों नहीं होता, उसकी समस्त तर्क-शैली और सारे दृष्टांत लुप्त क्यों हो गए हैं, जिन्हें उसने ज्ञानमर्म भंडार की संज्ञा दी है? इसलिए कि कृत्रिम सिद्धांतों के प्रति मोह ने हमें न्यायिक शैली का सांचा प्रदान किया है। हम चाहते हैं कि क़ुरान की वर्णन-पद्धति और उसमें प्रयुक्त दृष्टांतों को भी बुद्धि की कसौटी पर कसें। क़ुरान के जिस अंश के भाष्य पर दृष्टि डालें, इसी वास्तविकता का अनुभव होगा।

(२) जब किसी ग्रंथ के संबंध में यह प्रश्न उठ खड़ा हो कि उसका अर्थ क्या है तो फिर स्वतः उन लोगों के अर्थबोध को प्राथमिकता दी जायेगी जिन्होंने स्वयं पुस्तक पढ़ने का श्रेय प्राप्त करके अर्थ ग्रहण किया हो। क़ुरान तेईस वर्षों में शनैः-शनैः अवतरित हुआ। जितने अंशों में वह अवतरित होता जाता था, रसूल के पुनीतात्मा सहचर उन्हें सुनते थे, नमाज़ों में दोहराते थे और उनके बारे में जो कुछ पूछना होता था, स्वयं इस्लाम के पैगम्बर से पूछ लेते थे। इनमें से कुछ व्यक्ति विशेष रूप से क़ुरान को समझने में श्रेष्ठ सिद्ध हुए और स्वयं इस्लाम के पैग़म्बर ने उनके अर्थबोधों का समर्थन किया। धार्मिक मान्यता के कारण ही नहीं, बल्कि उनके स्वाभाविक और नैसर्गिक होने के कारण उस अर्थबोध को परवर्ती लोगों के अर्थबोध पर प्राथमिकता मिलनी चाहिए। परन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं समझा गया। परवर्तियों ने अपने-अपने युग के बौद्धिक प्रभाव के अंतर्गत नई-नई चेष्टाएं प्रारम्भ कर दीं और पूर्ववर्तियों के सुस्पष्ट अर्थापन्न के विपरीत प्रत्येक क्षेत्र में अपना चमत्कार दिखाने लगे। कहा गया कि "पूर्ववर्ती सुदृढ़ निष्ठावान हैं किंतु ज्ञान-क्षेत्र में परवर्तियों द्वारा अपनाई गई पद्धति सशक्त है।"

दूसरा परिणाम यह हुआ कि दिन-प्रतिदिन तथ्य लुप्त होते गए और अनेकानेक संदर्भ जो सुस्पष्ट थे, उलझते-उलझते नितांत प्रपंचपूर्ण बन गए। भीषण अत्याचार यह हुआ कि पहले एक संदिग्ध पहलू को लिया गया और बढ़ते-बढ़ते वह दूर तक निकल गए। फिर जब कठिनाइयों से

दो-चार हुए तो नित नवीन तर्क-वितर्कों और चेष्टाओं के भवन निर्मित करने लगे। पाठ्यशुद्धियों, टीकाओं, टिप्पणियों, वर्जनाओं और अन्याश्रय की प्रणाली यहां भी प्रचलित हुई। उसने और अधिक उलझाव उत्पन्न किए और कुछ स्थितियों में तो परदों की इतनी तहे डाल दीं कि एक के पश्चात् एक परदा उठाते चले जाओ और वांछित वस्तु प्राप्त नहीं होती।

इस बात का अनुमान कराने के लिए क़ुरान का कोई एक अंश ले लो। पहले उसकी व्याख्या सहचरों और आज्ञाकारियों की परंपरा में ढूंढो, फिर परवर्ती भाष्यकारों की ओर चलो और दोनों की तुलना करो। स्पष्टतः दिखाई पड़ जायेगा कि सहचरों और पूर्ववर्तियों की व्याख्या में बात अत्यंत सुस्पष्ट थी और परवर्ती अनावश्यक सूक्ष्मताधर्मी अनुशीलन ने उसे कुछ से कुछ बना दिया और प्रपंच खड़ा कर दिया।

उदाहरणतः सूरः बकरः के प्रारंभिक आयतों के संबंध में हज़रत-अब्दुल्ला-बिन-अब्बास और इब्न-मसऊद का कहना है कि

(१) **अख़ी** (भ्राता) से तात्पर्य अरब के निष्ठावान हैं

और

अख़ी से अभिप्राय उन लोगों से है जिन पर ईश्वरीय पुस्तकें अवतरित हुई हैं। इब्ने जरीर ने भी इसका यही भाष्य किया है। परन्तु परवर्ती भाष्यकार इस पर संतुष्ट नहीं हुए और उन्होंने नाना-प्रकार के प्रपंचपूर्ण वाद-विवाद उत्पन्न कर दिये। परिणाम यह निकला कि पहले तो—

"अर्थ विकृत हुआ, फिर क़ुरान ने मानव को जिन तीन जन-समूहों में विभक्त करके जिस बात पर बल दिया था उसका संपूर्ण गुण नष्ट हो गया।

(३) .....नये-नये मुसलमान होने वाले समुदायों में प्रचलित कथायें और उनकी परंपरायें पहले दिन से ही फैलना शुरू हो गई थीं। इनमें से इसराईली (यहूदियों) कथाओं को अनुसंधानकर्ताओं ने सदैव पृथक् करना चाहा किन्तु वास्तविकता यह है कि इन तत्त्वों के प्रभाव गुप्त रूप से दूर-दूर तक फैल चुके थे और वह निरन्तर भाष्यरूपी शरीर में प्रविष्ट रहे।

(४) .....एक ओर तो सहचरों और परवर्तियों की परंपरा की उपेक्षा की गई, दूसरी ओर भाष्य-परंपरा के असावधान विद्वानों ने एक अलग संकट उत्पन्न कर दिया और प्रत्येक बात जिसका संबंध पैग़म्बर के किसी न किसी सभासद से जोड़ दिया गया और उसे पूर्ववर्तियों का भाष्य समझ लिया।

(५) .....इस स्थिति का सबसे अधिक दुःखद परिणाम यह निकला कि क़ुरान की तर्क-पद्धति दूर की कौड़ी लाने वाले ज्ञान के गोरखधंधे में लुप्त हो गयी। स्पष्ट है कि क़ुरान के समस्त वर्णनों की धुरी और उसके बिन्दु उसकी तर्क-पद्धति ही है। इसके उपदेश और उसका दृष्टिकोण, उसकी कथाएं, उसका धर्मज्ञान और उसके आदेश, उसके उद्देश्य तथा शास्त्र सब इसी बात से संबद्ध थे। यह एक बात क्या कम हुई कि क़ुरान का सभी कुछ कम हो गया :—

ईश्वर द्वारा प्रेषित नबियों के कहने का ढंग यह नहीं होता कि तर्क-वितर्क के आधार पर वह अपने दृष्टिकोण की भूमिका तैयार करें, फिर उसके संबंध में सबोध्य को वाद-विवाद में उलझाना आरंभ कर दें। वह प्रत्यक्षतः मार्गदर्शन और अपनी ओर बुलाने की स्वाभाविक पद्धति ग्रहण करते हैं। उसे प्रत्येक मस्तिष्क भावनाधीन हो आत्मसात कर लेता है, प्रत्येक हृदय नैसर्गिक रूप से स्वीकार कर लेता है। परन्तु हमारे भाष्यकारों को दर्शन और तर्क के मोह ने इस योग्य ही न रखा कि किसी तत्त्व को उसके सरल और सहज रूप में देखें और स्वीकार कर लें। उन्होंने पुण्यात्मा नबियों की अत्यधिक महिमा इसमें समझी कि उन्हें तर्कशास्त्री बना दें और क़ुरान की

समस्त महत्ता इस बात में उन्हें दिखाई दी कि उसकी हर बात अरस्तू के दर्शन के ढांचे में ढली हुई निकले। इस सांचे में वह ढल नहीं सकती थी। परिणाम यह हुआ कि क़ुरान की शैली और उसके दृष्टान्तों का समस्त सौंदर्य और उसकी रमणीयता नाना प्रकार की कृत्रिमता में लुप्त हो गई। तात्विकता तो कम हो ही चुकी थी किन्तु वह बात भी न बन पाई जो यह लोग बनाना चाहते थे। शंकाओं और आपत्ति उठाने के असंख्य द्वार खुल गये। उनके खोलने में तो इमाम राज़ी का हाथ सशक्त था किन्तु बंद करने में वह अपनी क्षमता प्रदर्शित न कर सके।

(६) .....यह कठिनाई केवल क़ुरान की वर्णन-शैली में ही उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि उसके अंग-अंग में फैल गई। तार्किक और दार्शनिक वाद-विवाद ने नाना प्रकार के नवीन पारिभाषिक शब्द प्रस्तुत कर दिये। अरबी शब्दकोश के शब्द उन पारिभाषिक अर्थों में प्रयुक्त होने लगे। स्पष्ट है कि क़ुरान का वर्ण्य विषय यूनानी दर्शन नहीं है और न क़ुरान के अवतरण के समय अरबी भाषा इन पारिभाषिक शब्दों से परिचित थी। अतः जहां कहीं क़ुरान में वे शब्द आए हैं, उनके अर्थ वह नहीं हो सकते जो पारिभाषिक शब्द-निर्माण के पश्चात् निर्धारित किये गए हैं। परन्तु अब उनके पारिभाषिक अर्थ ही प्रचलित होने लगे और इसके आधार पर नाना प्रकार के रूढ़ वाद-विवाद उत्पन्न कर दिये गये और ऐसे अर्थ ग्रहण किए गए जिनका क़ुरान के किसी प्रथमयुगीन श्रोता को अनुमान भी न हुआ होगा।

(७) .....इसी बीज के यह भी पत्ते और फल हैं कि समझा गया है कि क़ुरान को प्रचलित ज्ञानांवेक्षण का साथ देना चाहिए। प्रयत्न किया गया कि पतली बतलीनूसी (यूनान के विद्वान बतलीनूस से संबद्ध) पद्धति उस पर चिपकाई जाए, ठीक उसी तरह जिस प्रकार आजकल के बुद्धिजीवियों की भाष्य-पद्धति यह है कि वर्तमान खगोलशास्त्र की समस्याओं को क़ुरान पर आच्छादित किया जाए।

(८) .....प्रत्येक पुस्तक और उपदेश के कुछ केन्द्रबिन्दु होते हैं और उसकी समस्त विवरणिका उन्हीं के चारों ओर घूमा करती है। जब तक यह केन्द्रबिन्दु समझ में न आयें, वृत्त की कोई बात समझ में नहीं आ सकती। क़ुरान का भी यही हाल है। उसके भी कुछ केन्द्रीभूत उद्देश्य और मान्यताएं हैं और जब तक वह ठीक-ठीक बुद्धिगम्य न कर ली जायें, उसकी कोई बात उचित रूप से समझी नहीं जा सकती।

उपर्युक्त कारणों से जब उसके केन्द्रीभूत उद्देश्य का प्रकाशन प्रायः लुप्त हो गया तो स्वभावतः उसका प्रत्येक अंश इससे प्रभावित हुआ। उसका कोई वक्तव्य, कोई अभिप्राय, कोई प्रमाण, कोई संभाषण, कोई संकेत, कोई सारतत्त्व ऐसा न रहा जो इस प्रभाव से सुरक्षित है। खेद है कि संक्षिप्ततः बात कहने के कारण उद्धरण प्रस्तुत करने संभव नहीं हैं और बिना उद्धरण के वास्तविकता प्रकाशित नहीं हो सकती। उदाहरणतः आले-इमरान की आयत के—अभिप्राय को देखो कि क्या-क्या निराधार विवाद नहीं उठाए गए। यहूदियों के संबंध में इसकी उक्ति कि............

......"किन-किन दिशाओं में नहीं निकल गये" का भाष्य किस प्रकार किया गया है और किस प्रकार कथन के देश-काल और उसके संदर्भ की स्पष्टतः उपेक्षा कर दी गई है।

(९) ..... क़ुरान के सम्यक् ज्ञान के लिए अरबी शब्दों और साहित्य की उचित मर्मज्ञता पहली शर्त है। किन्तु विभिन्न कारणों से, जिनको सविस्तार व्याख्यायित करने की आवश्यकता है, यह पाण्डित्य क्षीण होता गया और यहां तक कि वह समय आ गया, जब अर्थबोध में असंख्य उलझाव केवल इसलिए पड़ गए क्योंकि अरबी भाषाज्ञान के प्रति अभिरुचि शेष नहीं रही और

जिस भाषा में कुरान अवतरित हुआ था, उसके मुहावरों और कथन-शैली से नितान्त दूरी उत्पन्न हो गई।

(१०) ..... प्रत्येक युग के चिंतन का प्रभाव समस्त ज्ञान-विज्ञानों के समान भाष्यों को भी प्रभावित करता रहा है। निस्संदेह इस्लामी इतिहास की यह गौरवपूर्ण घटना हमेशा स्मरण रहेगी कि सत्यनिष्ट विद्वानों ने समय के राजनैतिक प्रभावों के सम्मुख हथियार नहीं डाले और कभी यह बात सहन नहीं की कि इस्लाम की मान्यताएं और धर्मशास्त्र उनके प्रभावाधीन है। परन्तु समय का प्रभाव केवल राजनीति के द्वार से ही प्रविष्ट नही होता, उसके मनोवैज्ञानिक प्रभावों के असंख्य द्वार हैं और जब वह खुल जाते हैं तो किसी के बंद किए बंद नहीं हो सकते। उनके हस्तक्षेप से मान्यताएं और धर्म-कर्म सुरक्षित रखे जा सकते थे और सत्यनिष्ट विद्वानों ने सुरक्षित रखे भी किन्तु मस्तिष्क सुरक्षित नहीं रहे। यहां आवश्यकता उदाहरणों की है किन्तु उदाहरणों के लिए विस्तार की आवश्यकता थी और संक्षिप्तता की मांग इसकी अनुमति नहीं देती।

(११) ..... हिजरी पंचांग की चौथी शताब्दी के पश्चात् इस्लामी ज्ञान-विज्ञान के इतिहास का साहसपूर्ण निर्देशनकाल समाप्त हो गया और कुछ अपवादों के अतिरिक्त वह साधारणतया अनुसरण का मार्ग हो गया। इस भयंकर रोग ने भाष्यरूपी शरीर में भी पूर्णतः प्रवेश प्राप्त कर लिया। प्रत्येक व्यक्ति जो भाष्य करने का इच्छुक होता था, किसी अपने से पहले के भाष्यकार का ग्रंथ अपने संमुख रख लेता था, फिर आंखें बंद करके उसके पीछे-पीछे चलता रहता था। यदि तीसरी शताब्दी हिजरी में किसी भाष्यकार से कोई गलती हो गई है तो आवश्यक है कि नवीं शताब्दी हिजरी के भाष्यों तक वह निरंतर अनुकृत होती चली जाए। किसी ने इस आवश्यकता का अनुभव नहीं किया कि कुछ क्षणों के लिए अनुकरण की प्रवृत्ति से मुक्त होकर अन्वेक्षण करें कि वास्तविक स्थिति क्या है। शनैः-शनैः भाष्यकारिता का उत्साह इतना घट गया कि पूर्व लिखे हुए भाष्य पर टीका-टिप्पणी कर देने से अधिक आगे बढ़ सके। बैजावी और जलालैन की टिप्पणियां देखो। एक पूर्व निर्मित भवन के लीपने-पोतने में किस प्रकार सर्जन शक्ति व्यर्थ गवाई गई है!

(१२) ..... युग की कुरुचि ने भी हर प्रकार से चिंतन विकार को आश्रय दिया है। हम देखते हैं कि अंतिम चरण में पठन-पाटन के लिए वही भाष्य लोकप्रिय हुए जो पुरातन आचार्यों की विशेषताओं से नितांत रिक्त थे। काल की यह मनोवृत्ति प्रत्येक शास्त्र और कला को प्रभावित करती रही है। जो काल जर्जजानु पर सकाकी को और सकाकी पर तफ्ताजानी को प्राथमिकता देता था, निश्चय ही उसके दरबार से बैज़ावी और जलालैन को ही मान्यता मिल सकती थी।

(१३) ..... प्रचलित भाष्यों को उठा कर देखो! जिस अंश के भाष्य में विभिन्न मत विद्यमान होंगे वहां यह विद्वान बहुधा उसी मत को प्राथमिकता देंगे जो सबसे अधिक त्रुटिपूर्ण और संदर्भ से दूर होगा, जिन मतों को उद्धरित करेंगे उनमें यदि औचित्यपूर्ण मत विद्यमान होगा तो उसकी उपेक्षा कर देंगे।

(१४) ..... संदेह और **विघ्नत्व** का बड़ा द्वार तफ़्सीर बिल-राय (मतानुसार भाष्य) में खुल गया जिसके भय से सहचरों और पूर्ववर्तियों की आत्माएं सिहर उठती है।

तफ़्सीर बिल-राय (मतानुसार भाष्य) का अभिप्राय समझने मे लोगों को भ्रम हुआ। तफ़्सीर बिल-राय के निषेध का उद्देश्य यह न था कि क़ुरान के अर्थबोध में बुद्धि और प्रज्ञा से काम न लिया जाए। यदि यह उद्देश्य हो तो फिर क़ुरान का पठन-पाठन ही निरर्थक हो जाए।

स्वयं क़ुरान की स्थिति यह है कि वह आदि से अंत तक प्रज्ञा और चिंतनशीलता का निमंत्रण है।

(१५) ... वस्तुतः तफ़सीर बिल-राय में 'राय' शब्द अपने शाब्दिक अर्थ में प्रयुक्त नहीं है बल्कि 'राय' इस्लामी धर्म का पारिभाषिक शब्द है और इससे अभिप्राय ऐसे भाष्य से है जो इसलिए न किया जाए कि स्वयं क़ुरान क्या कहता है बल्कि इसलिए किया जाए कि पूर्वाग्रह किस बात की मांग करता है। और किस प्रकार क़ुरान को खींचतान कर पूर्वाग्रहीत मतानुसार अर्थापन्न किया जा सकता है।

उदाहरणतः जब धार्मिक मान्यता के संबंध में विवाद आरम्भ हुए तो क़ुरान-मीमांसा के विभिन्न सम्प्रदाय उत्पन्न हो गए। प्रत्येक सम्प्रदाय के प्रवर्तक ने चाहा कि अपने सम्प्रदाय के मतानुसार क़ुरान की अर्थगर्भिता का स्पष्टीकरण करे। सूफियों को लीजिए, वह इस बात की खोज में न थे कि क़ुरान क्या कहता है बल्कि उनकी समस्त चेष्टा इस हेतु थी कि किस प्रकार उसे अपने सम्प्रदाय का अनुमोदक सिद्ध कर दें। इस प्रकार का भाष्य मतावलंबी भाष्य था।

या उदाहरणतः धर्मशास्त्र के संप्रदायों के अनुयायियों में जब **शियामत** और **तहज़ब** के विचार उत्पन्न हुए तो अपनी मान्यताओं के समर्थन में वह कौरानिक आयतों को खींचने-तानने लगे, इसकी कोई चिन्ता उन्हें नहीं थी कि अरबी शब्द के सुस्पष्ट अर्थ, क़ुरान की कथन-शैली का नैसर्गिक आग्रह क्या है और बुद्धि तथा प्रज्ञा का स्पष्ट निर्णय क्या कहता है। प्रयत्न यह था कि किसी न किसी प्रकार क़ुरान को अपने इमाम (संप्रदाय प्रवर्तक) के संप्रदाय के अनुकूल उसे बनाये। भाष्य की यह पद्धति मतों पर आधारित भाष्य है।

या उदाहरणतः सूफियों का एक दल रहस्य और आभ्यंतर की खोज में दूर तक निकल गया और फिर अपनी मान्यताओं और विवेचनों पर क़ुरान को ढालने लगा और क़ुरान का कोई आदेश, उसकी कोई मान्यता अर्थ-विकार से न बची। यह भाष्य मतों पर आधारित भाष्य था।

या उदाहरणतः क़ुरान की कथन-शैली को तर्क-वसन से सुसज्जित करने का प्रयास। जहां कहीं 'आकाश' और 'ग्रहों' तथा 'तारों' के शब्द आ गए वहां यूनानी खगोलशास्त्र की मतों पर आधारित भाष्य है।

या उदाहरणतः आजकल हिन्दुस्तान और मिस्र के नवीन मतावलंबियों और नवीन चिंतन के पोषकों ने यह पद्धति अपनाई है कि ज्ञान और उन्नति के वर्तमान मानक सिद्धांतों को क़ुरान के आधार पर प्रमाणित करें या ज्ञान-विज्ञान के आधुनिक अनुसंधान से इसे संबद्ध किया जाए, जैसे कि क़ुरान केवल इसलिए अवतरित हुआ है कि जो बात कोपरनिकस और न्यूटन या डार्विन और एच.जी. वेल्स ने बिना किसी ईश्वरीय पुस्तक के जिन रहस्यों को मालूम कर लिया उन्हें कुछ शताब्दी पहले पहेलियों के समान दुनिया के कान में फूंक दे और फिर शताब्दियों तक वह दुनिया की समझ में भी न आएं, यहां तक कि आधुनिक युग के भाष्यकारों का जन्म हो और तेरह सौ वर्ष पूर्व की पहलेलियां वह बूझें। निश्चय ही यह भी मतों पर आधारित भाष्य है।

वास्तविकता की खोज

यह कुछ संकेत हैं जिन्हें साररूप में प्रस्तुत करने की आवश्यकता थी। समय की कमी के कारण इन्हें संक्षेप में बताना पड़ा अन्यथा इस बात की व्याख्या सविस्तार होनी चाहिए। कम से कम इन संक्षिप्त संकेतों से इस बात का अनुमान कर लिया जा सकता है कि मार्ग की कठिनाइयों और बाधाओं का क्या स्वरूप है और किस प्रकार एक-एक करके अवगुंठनों को हटाना है और पदे-पदे बाधक तत्त्वों से निपटना है। रुकावटें किसी एक अंश में ही नहीं हैं और कठिनाइयां

किसी एक द्वार से ही नहीं आई हैं। एक साथ प्रत्येक घाटी का सर्वेक्षण और प्रत्येक अंश के संबंध में चिन्तन-मनन होना चाहिए, तब कहीं जाकर खोए हुए तथ्य का पता मिल सकता है। जहां तक मेरे बस में था, मैंने चेष्टा की है कि इन कठिनाइयों के प्रति अपने दायित्व में सफल होऊं। मैं इस प्रयत्न में कहा तक सफल हुआ हूँ, इसका निर्णय मैं स्वयं नहीं कर सकता। हां, यह कहने का साहस कर सकता हूँ कि कुरान के अध्ययन और उसके संबंध में चिंतन का एक नवीन मार्ग अवश्य खुल गया है और विद्वान इस मार्ग को उन समस्त मार्गों से भिन्न पायेंगे जिन पर आज तक वह चलते रहे थे।

कुरानानुवाद का उद्देश्य और स्वरूप

कुरान के पठन-पाठन की तीन विभिन्न आवश्यकताएं हैं और मैंने उन्हें तीन पुस्तकों में विभाजित कर दिया है। भाष्य-भूमिका, भाषा-शैली, मीमांसा और कुरानानुवाद। भाष्य-भूमिका, कुरान के उद्देश्यों के सैद्धांतिक विवेचन का संकलन है और प्रयत्न किया गया है कि कुरान के उद्देश्य और उसके व्यापक सिद्धांत समग्ररूपेण एकत्रित हो जाएं। भाषा-शैली, और भाष्य-चिंतन अध्ययन के लिए है और कुरानानुवाद कुरान के व्यापक शिक्षण और प्रचार के लिए है।

अंतिम पुस्तक सबसे पहले प्रकाशित की जा रही है, क्योंकि अपने उद्देश्य और स्वरूप की दृष्टि से यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक है तथा भाष्य और भूमिका का वास्तविक आधार भी यही है।

इसकी रचना से अभिप्राय यह है कि कुरान के उद्देश्यों को समझने और उसके संबंध में चिंतन के लिए एक ऐसी पुस्तक तैयार हो जाए जिसमें भाष्य-ग्रंथों जैसा विवरण तो न हो किन्तु वह सब कुछ हो जो कुरान को ठीक-ठीक समझ लेने के लिए आवश्यक है। इस दृष्टि से जो लेखन-शैली अपनाई गई है आशा है कि विद्वान उसे औचित्यपूर्ण समझेंगे और रचना के सिंहावलोकन मात्र से ही इसकी आवश्यकता का आभास कर लेंगे। सर्वप्रथम यह चेष्टा की गई है कि कुरान का अनुवाद उर्दू में इस प्रकार प्रस्तुत हो जाए कि व्याख्या के लिए किसी अन्य आधार का आश्रय न लेना पड़े, वह स्वयं व्याख्यायित हो। फिर यथास्थान टिप्पणियों का प्रयोग किया गया है जो जैसे-जैसे सूरतों के अनुवाद आगे बढ़ते हैं उनके साथ-साथ वह बराबर जुड़ती जाती हैं और जहां कहीं आवश्यकता पड़ती है वहां अर्थ को अधिक सुस्पष्ट कर देती हैं। इनसे अर्थ की व्याख्या होती है, जो बात साररूप में कही गई है उसका विवरण यह प्रस्तुत करती हैं, उद्देश्यों और कारणों पर पड़े पर्दे उठाती हैं, तर्क को पुष्ट करती हैं और साक्ष्य को प्रकाशित करती हैं, औचित्यपूर्ण कार्यों और निषेधात्मक कार्यों को संग्रहित और क्रमबद्ध करती हैं और अधिक से अधिक कम शब्दों में अत्यधिक ज्ञान-संपदा में वृद्धि करती हैं, यह जैसे कुरान के पाठ्य के लिए चिंतन-मनन का प्रकाश-स्तंभ हों, जो कुरान की उक्ति के अनुसार निष्ठावान स्त्री-पुरुषों के सम्मुख स्वयं उद्दीप्त हो जाएगा (५७ : १२)। यह टिप्पणियां चलती रहती हैं और कहीं साथ नहीं छोड़ती हैं।

इस तथ्य पर दृष्टि रहे कि कुरानानुवाद की टिप्पणियां व्याख्या और स्पष्टीकरण के एक अतिरिक्त साधन के रूप में हैं अन्यथा कुरान का सुस्पष्ट अर्थ समझने के लिए मूल पाठ्य का अनुवाद पूर्णतया पर्याप्त है।

मैंने प्रयोग की दृष्टि से सूरः बकरः का अनुवाद एक १५ वर्ष के लड़के को पढ़ने के लिए दिया जो उर्दू की सरल पुस्तकें पढ़ लेता था। फिर प्रश्न करके उसे जांचा। जहां तक अर्थ समझ लेने का संबंध है, वह एक स्थान पर भी न रुका और समस्त प्रश्नों का उत्तर देता गया। फिर मैंने

एक-दूसरे व्यक्ति पर प्रयोग किया जिसने वृद्धावस्था में लिखना-पढ़ना सीखा है, अभी उसकी क्षमता इससे अधिक नहीं थी पर वह उर्दू की शैक्षणिक पत्रिकाएं सरलतापूर्वक पढ़ लेता था। यह तीन जगह तीन फारसी शब्दों पर भटका किन्तु अर्थबोध में उसे भी किसी कठिनाई का अनुभव नहीं हुआ। मैंने उन शब्दों को उनसे कुछ अधिक सरल शब्दों से बदल दिया।

टिप्पणियों की क्रमबद्धता का प्रश्न अनुवाद में मूल की आत्मा की सुरक्षा से कम कठिन न था। देखने में तो इनके लिए अधिक जगह नहीं निकल सकती थी और टिप्पणियां अपना महत्त्व खो देतीं यदि उनकी संख्या एक विशेष मात्रा से कम या अधिक हो जाती। परन्तु साथ ही साथ यह आवश्यक था कि कोई महत्त्वपूर्ण स्थान अपूर्ण न रह जाए और कौरानिक उद्देश्य और उसके अर्थबोध की समस्त आवश्यकताएं स्पष्ट हो जाएं। अतः पूर्ण सावधानी के अंतर्गत ऐसी कथन-शैली अपनाई गई है जिसमें शब्द कम से कम हों किन्तु संकेतों द्वारा अधिक से अधिक बात कहने में वह सक्षम हो। लोग जिस बात की कमी पाएंगे वह केवल अर्थ-विस्तार है किन्तु इससे अर्थबोध में किसी अभाव का आभास नहीं होता। एक-एक शब्द, एक-एक सूरः, एक-एक स्थान, एक-एक आयत की घाटियों की यात्रा इन्होंने की है और पड़ाव पर पड़ाव पार करती रही हैं। भाष्यों और पुस्तकों का जितना प्रकाशित एवं अप्रकाशित संग्रह विद्यमान है मैं कह सकता हूँ कि उसके अधिकांश भाग पर मैं दृष्टिपात कर चुका हूँ और कौरानिक-विधा के समस्त विवेचनों और उसे समझने की समस्त चेष्टाओं का कोई कोण ऐसा नहीं है, जिसकी यथासंभव बुद्धि ने उपेक्षा की हो और मेरी गवेषणा ने उसके प्रति आलस्यभाव रखा हो। ज्ञान और चिंतन के मार्ग में आजकल प्राचीन और अर्वाचीन की विभाजन-रेखा खींची जाती है किन्तु मेरे लिए यह विभाजन-रेखाएं निरर्थक हैं। जो कुछ प्राचीन है, वह मुझे थाती रूप में मिला है और जो कुछ अर्वाचीन है उसकी प्राप्ति के लिए अपना मार्ग मैंने स्वयं निर्धारित किया है। समकालीन आधुनिक मार्ग भी वैसे ही मेरे देखे-भाले हैं जिस प्रकार प्राचीन मार्गों पर मैं यात्रा करता रहा हूँ।

मेरी दृष्टि में प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग एक जैसे हैं। शिक्षा और सामाजिक प्रभाव ने जो कुछ मुझे दिया था, मैंने पहले दिन से ही उस पर संतुष्ट होने से इंकार कर दिया और अनुकरणप्रियता के बंधन को किसी प्रकार अपने मार्ग का अवरोधक होने नहीं दिया और जिज्ञासा की तृष्णा ने किसी मैदान में भी मुझे ठहरने नहीं दिया :

"मेरे मन की कोई निष्ठा ऐसी नहीं है जिसमें संदेह के कंटक पूर्णतया न चुभ चुके हों और मेरी आत्मा की कोई आस्था ऐसी नहीं है जो इंकार की समस्त परीक्षाओं से न गुज़र चुकी हो। मैंने विष की घूंट भी प्रत्येक प्याले से पीए हैं और विष उतारने के उपचार भी प्रत्येक प्याले से किये हैं और प्रत्येक चिकित्सालय के विष उतारने की औषधि का भी सेवन किया है। मैं जब अतृप्त था तो मेरे होंटो की तृष्णा दूसरों के समान न थी और जब तृप्त हुआ तो मेरी तृप्ति का स्रोत भी प्रचलित मार्ग के अनुसार न था।"

इस दीर्घकालीन गवेषणा और मनन के पश्चात् क़ुरान को जैसा कुछ और जितना कुछ समझ सका हूँ, मैंने इस पुस्तक के पृष्ठों पर अंकित कर दिया है :

"यह कोई मनगढ़ंत कथा नहीं है, बल्कि विद्यमान पुनीत-ग्रंथों को प्रमाणित करने का प्रयास है और यह हर बात की विस्तृत व्याख्या है तथा यह उन व्यक्तियों के लिए जो निष्ठावान् हैं एक दिग्दर्शन है और मेरी कृपा-दृष्टि है। (१२ : १११)"

अबुल कलाम

मेरठ जिला जेल।

१६ नवंबर १९३० ई०

द्वितीय संस्करण की प्रस्तावना

मनुष्य के जीवनाभाव और थकन का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उसके कार्य कभी भी परिपूर्ण नहीं हो सकते। वह आज एक कार्य समाप्त करके उठता है और समझता है कि उसे पूर्ण कर चुका किन्तु फिर दूसरे दिन देखता है तो स्वयं उसके दृष्टिकोण का माप बदल जाता है और ज्ञात होता है कि नाना प्रकार की त्रुटियां रह गई थीं। प्रत्येक लेखक जो अपने पिछले लेखन पर दृष्टि डालेगा इस कथन की सच्चाई को मालूम कर लेगा।

मैंने क़ुरानानुवाद के प्रथम खंड पर अब कई वर्ष के पश्चात् दृष्टि डाली तो इसी बात का अनुभव हुआ। परिणाम यह हुआ कि पुनः पूरे भाष्य और अनुवाद का संशोधन करना पड़ा और उसने एक दूसरा ही रंगरूप धारण कर लिया।

इस संबंध में निम्नलिखित परिवर्तन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :

(१) .... सूरः फ़ातेहाः के भाष्य में जगह-जगह नए अर्थों का संवर्धन किया जो प्रथम संस्करण में उपेक्षित रह गए थे। इनसे भाष्य का आकार लगभग ड्योढ़ा हो गया है।

अधिक संवर्धन क़ुरान के 'ब्रह्मज्ञान' के विवेचन में किया गया है।

ईश्वर के गुणों की बात एक अत्यंत गूढ़ और जटिल समस्या है। इसके विवेचन और उसके प्रति दृष्टिकोण की सीमा एक **ओर** तत्त्व-मीमांसा से जा मिली है तो दूसरी ओर धर्म से, दोनों **ने** समानरूपेण उसे अपने चिंतन का विषय स्वीकार किया है। यही कारण है कि विद्या और विचारधारा के हर युग में धर्माचार्यों से अधिक दार्शनिकों के प्रयासों ने इसमें भाग लिया है और हिन्दुस्तान, यूनान, स्कन्देनेविया के दर्शनशास्त्रों तथा मध्ययुगीन दार्शनिक-विवेचनों का एक भारी संग्रह उपलब्ध हो गया। मुसलमानों के बीच जब अद्वैतवाद और मीमांसा के विवादों ने सिर उठाया तो इसी विषय पर सर्वाधिक तर्क-वितर्क हुआ और विभिन्न संप्रदाय उत्पन्न हो गए। हदीस (वचनावली) के समर्थकों और मुस्लिम दार्शनिकों के उस संप्रदाय का जन्म हुआ जिसकी मान्यता थी कि मनुष्य बुराई-अच्छाई स्वयं करता है और उसमें ईश्वर का कोई हाथ नहीं होता। मत-मतांतर का सबसे बड़ा मतभेद इसी द्वार से प्रविष्ट हुआ था।

बहुत-सी उन समस्याओं में से एक यह भी है जो विद्यार्थी-जीवन काल में मेरे लिए अत्यधिक शंका और चिंता का कारण बनी थी और मैं दीर्घकाल तक आश्चर्यचकित और भ्रमित रहा। अंततोगत्वा जब वास्तविक स्थिति प्रकाशित हुई तो ज्ञात हुआ कि मीमांसकों का दिग्दर्शन इस संबंध में कुछ लाभदायक नहीं हो सकता, बल्कि गंतव्य स्थान से और अधिक दूर कर देता है। विश्वास और संतोष का यही एक मार्ग है जो क़ुरान के आदि रूप में ग्रहण किया गया है और जिससे परवर्तियों के अनुयायियों ने विमुख होना स्वीकार नहीं किया।

इस गवेषणा और अभिव्याख्यान ने अंततः जिन निष्कर्षों तक पहुँचाया था वह संक्षेपतः इस स्थान पर स्पष्ट कर दिए गए हैं।

दर्शन और मीमांसा में यह वाद-विवाद अत्यंत जटिल है और पारिभाषिक शब्दों की गुत्थियों में उलझे हुए हैं। मेरी चेष्टा रही है कि इन गुत्थियों को खोल सकूं। मैं समझता हूं कि अब यह विचार इतना स्पष्ट तो हो ही गया है कि जो महानुभाव इस्लामी ज्ञान-विज्ञान की कला और पारिभाषिक शब्दावली से परिचित नहीं हैं वह भी इसमें रुचि ले सकेंगे। जहां कहीं दर्शन और मीमांसा के अरबी पारिभाषिक शब्द आ गए हैं वहां अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दावली भी प्रस्तुत कर दी गई है ताकि आधुनिक युग के दार्शनिक-विवादों में अभिरुचि रखनेवालों को अर्थबोध में कठिनाई न हो।

(२) .... 'ब्रह्मज्ञान' के विवाद में विश्व के धर्मों के विश्वासों की अवधारणाओं का भी उल्लेख हुआ था। परन्तु प्रथम मंस्करण में केवल इस ओर संकेत मात्र किए गए थे क्योंकि विवाद के क्षेत्र को अधिक विस्तार देना मुझे स्वीकार न था किन्तु अब इस स्थान पर पुनः दृष्टि डाली गई तो महसूस हुआ कि विवेचन अपूर्ण रह गया है और आवश्यक है कि व्याख्या को एक विशेष सीमा तक बढ़ने दिया जाए। अतः यह भाग पुनः लिखा गया और जिस सीमा तक जाने का अवसर मिल सकता था व्याख्या और विवरण पर नियंत्रण के पाश को ढीला कर दिया गया है।

(३) .. प्रथम संस्करण में ग्रंथ को केवल अध्यायों में विभक्त करना पर्याप्त समझा गया था, अब जगह-जगह टिप्पणी के शीर्षक भी बढ़ा दिए गए हैं। इस संवर्धन से अर्थ समग्ररूपेण इस प्रकार क्रमबद्ध हो गए हैं कि दृष्टि डालते ही इनका सार मालूम किया जा सकता है।

(४) . पूरे अनुवाद पर पुनः विचार किया गया और इस संबंध मे यह वास्तविकता सम्मुख रही कि अधिक से अधिक स्पष्टीकरण के साथ संक्षिप्तता से भी संबंध-विच्छेद न होने पाये। इसके अतिरिक्त जहा तक मूल पाठ्य के शब्दार्थ का अनुसरण किया जा सकता है उसे सुरक्षित रखा जाए। जिन महानुभावों की दृष्टि अनुवाद के पिछले संस्करण पर पड़ चुकी है वह अब इसका अध्ययन करेंगे तो हर दूसरी-तीसरी पंक्ति में कोई न कोई परिवर्तन उन्हें अवश्य महसूस होगा।

(५) . अनुवाद की व्याख्यात्मक टिप्पणियों में भी जगह-जगह संवर्धन किए गए हैं। अपनी समग्रता में यह संस्करण पिछले संस्करण से विशेष रूप से भिन्न हो गया है। मैं सोचता हूं कि जिन महानुभावो की दृष्टि पिछले संस्करण पर पड़ चुकी है, वह भी इससे प्रभावित हुए बिना नही रह सकते। वह प्रथम चित्र था यह द्वितीय चित्र है।

अबुल कलाम

अहमद नगर दुर्ग का कारावास
७ फरवरी १९४५ ई०

अल-फ़ातेहा : प्रारंभ

तरजुमानुल क़ुरान

अल-फ़ातेहा : प्रारंभ *

मक्का में अवतरित ७ आयतें

ईश्वर के नाम से जो कृपालु और दयावान है।

(१) ... हर प्रकार की स्तुतियां ईश्वर के लिए ही हैं जो समस्त सृष्टि का पालनहार है।

(२) ... जो दयालु है और उसकी दया-दृष्टि समस्त सृष्टि को अपने वरदानों से समृद्ध कर रही है।

(३) ... जो उस दिन का स्वामी है जिस दिन अपने कर्मों का परिणाम लोगों को मिलेगा।

(४) ... (ऐ ईश्वर !) हम केवल तेरी ही वंदना करते हैं और केवल तू ही है जिससे (अपनी समग्र आवश्यकताओं के लिए) सहायता मांगते हैं।

(५) ... (ऐ ईश्वर !) हम पर (कल्याण) का सीधा मार्ग खोल दे।

(६) ... वह मार्ग जिस पर वह लोग चले जिनको तूने कृपालु बनाया है।

(७) ... न कि उनका मार्ग जिनको असंतोष प्राप्त हुआ और न उनका मार्ग जो भटक गए हों।

सूरः फ़ातेहा कुरान की सबसे बड़ी सूरः है। इसलिए 'फ़ातेह-उल-किताब' (पुस्तक का प्रारंभ) के नाम से पुकारी जाती है। जो बात अधिक महत्त्वपूर्ण होती है स्वभावतः प्रथम और महत्त्वपूर्ण स्थान पाती है। यह सूरः कुरान की समग्र सूरों में विशेष महत्त्व रखती है। इसलिए स्वाभाविक ही है कि इसका उचित स्थान कुरान के प्रथम पृष्ठ पर ही निर्धारित किया गया है। स्वयं कुरान ने इसका उल्लेख ऐसे शब्दों में किया है जिससे इसकी महत्ता स्पष्ट होती है :

"(ऐ पैगम्बर !) यह सच है कि हमने तुम्हें प्रतिदिन दोहराई जाने वाली सात आयतें (पंक्तियां) और महान कुरान प्रदान किए हैं (१५ : ८७)।"

हदीसों (वचनावली) और जीवनचर्या से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि इस आयत में (सात दोहराई जाने वाली पंक्तियों या आयतों) से अभिप्राय इसी सूरः से है क्योंकि यह सात आयतों का संग्रह है और सदैव नमाज़ में दोहराई जाती है। यही कारण है कि इस सूरः को 'सबअ-अल-मसानी' (बार-बार दुहराई जाने वाली सात आयतें) भी कहते हैं। यही स्रोत इसे अन्य संज्ञायें भी देते हैं। जैसे उम्म-उल-कुरान (कुरान का केन्द्रबिन्दु), अतः कंज़ (कोशागार) और असास-उल-कुरान (कुरान का पूर्ण आधार) आदि अभियान से इसकी विशेषताएं ज्ञात होती हैं।

अरबी में 'उम्म' का प्रयोग सारी ऐसी वस्तुओं के लिए होता है, जो एक प्रकार से समानधर्मी होती है या बहुत-सी वस्तुओं में प्रधान और महत्त्वपूर्ण होती हैं अथवा फिर कोई ऐसी उच्च-पदासीन वस्तुएं होती है, जिसके अधीन उसके बहुत से अनुयायी हों। अतः सिर के मध्य भाग को उम-उल-रईस कहते हैं क्योंकि वह मस्तिष्क का केन्द्र है, सेना के झण्डे को उम्म कहते हैं क्योंकि समस्त सेना उसी के नीचे एकत्रित हाती है। मक्काः को उम्म-उल-कुरा कहते थे

क्योंकि कअ़बा के स्थित होने और हज के कारण समस्त अरब निवासियों के एकत्र होने की यही जगह थी। इसलिए इस सूरः को उम्म-उल-क़ुरान कहने का अभिप्राय यह हुआ कि यह एक ऐसी सूरः है जिसमें क़ुरान के प्रतिपाद्य विचार इसमें पूर्णतया प्रस्तुत हैं और यह उसका केन्द्रबिन्दु है तथा इस कारण क़ुरान की तमाम सूरतों में उसका अपना महत्त्वपूर्ण और प्रथम स्थान है।

इस के अतिरिक्त एक से अधिक ख़लीफ़ाओं (पैगम्बर के उत्तराधिकारी) की उक्ति से ज्ञात होता है कि इस सूरः की यह विशेषता रसूल के जीवनकाल में साधारणतः लोकप्रिय थी। इस हदीस (वचनावली) में कहा गया है कि स्वयं रसूल ने अबी-बिन-तब्रा को यह सूरः प्रदान की और **कहा कि 'इसके समान कोई सूरः नहीं है।' एक दूसरी उक्ति में इसे 'महानतम सूरः' कहा गया है और 'सर्वश्रेष्ठ सूरः' भी उन्होंने इसे कहा है।**

इस सूरः के प्रतिपाद्य विचारों का सिंहावलोकन करते ही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इसमें और क़ुरान के अन्य अंशों में सार रूप होने और विवरण रूप होने का संबंध उत्पन्न हो गया है, अर्थात् क़ुरान के समस्त सूरों में सद्धर्म के जो उद्देश्य सविस्तार बताए गए हैं वही सूरः-फातेहा में साररूप में उपस्थित हैं। यदि कोई व्यक्ति क़ुरान में से और कुछ न पढ़ सके और केवल इस सूरः के विचारों को आत्मसात् कर ले तो भी वह सद्धर्म और आस्तिकता के मौलिक उद्देश्य को प्राप्त कर लेगा क्योंकि इसमें क़ुरान का समस्त विश्वात्मवाद उपलब्ध है।

इसके अतिरिक्त यदि इस पहलू पर विचार किया जाए कि इस सूरः को जो रूप दिया गया है वह वंदना का है और उसे प्रतिदिन उपासना-प्रार्थना का एक अनिवार्य अंग बना दिया गया है तो इसकी यह विशेषताएं और अधिक महत्त्व वाली हो जाती हैं तथा स्पष्ट हो जाता है कि इसकी सारगर्भिता और विवरणात्मकता में बहुत महान प्रयोजन निहित है। इससे अभिप्राय यह था कि क़ुरान की विस्तृत वाणी का एक संक्षिप्त और सीधा-सा सार भी हो जिसे प्रत्येक मनुष्य सुविधापूर्वक आत्मसात् कर ले और फिर सदैव अपनी प्रार्थनाओं और उपासनाओं में उसे दोहराता रहे ताकि यह उसके धार्मिक जीवन के विधान, आस्तिकता की मान्यताओं का सार और आध्यात्मिक अवधारणाओं का मूल उद्देश्य हो जाए। यही कारण है कि हर मुसलमान के लिए इस सूरः का पढ़ना और सीखना अनिवार्य कर दिया गया और बुख़ारी और मुस्लिम के अनुसार इस्लामी उपासना-पद्धति इसके पाठ्य के बिना अपूर्ण है।

प्रश्न यह उठता है कि संपूर्ण इस्लाम का सारतत्त्व क्या है? जितना भी विचार क्यों न किया जाए इन चार बातों के अतिरिक्त अन्य कोई और बात दिखाई न देगी। प्रथम यह कि गुणयुक्त ब्रह्म के संबंध में ठीक-ठीक अवधारणा आवश्यक है क्योंकि मनुष्य को सुस्थिरता के मार्ग में जितनी ठोकरें लगी हैं, वह इसी गुण संबंधी अवधारणा के कारण ही लगी हैं। द्वितीय यह कि इसका जीवन के संबंध में कार्य-कारण सिद्धांत पर बल है अर्थात् जिस प्रकार संसार में हर वस्तु का एक प्राकृतिक और स्वाभाविक गुण है उसी प्रकार मानव-कर्मों के भी वास्तविक गुण और परिणाम हैं। अच्छे कर्म का परिणाम अच्छाई है और बुरे कृत्यों का बुराई। तृतीय बात यह है कि इस्लाम के अनुसार मनुष्य का जीवन इसी संसार में समाप्त नहीं हो जाता, मरणोपरांत भी जीवन है और जिसमें कर्मों का लेखा-जोखा होने वाला है। चतुर्थ मान्यता यह है कि इस्लाम कल्याण और आनंद के मार्ग से परिचित कराता है।

अब विचार करो कि इन बातों का सारांश कितनी कुशलता से एकत्रित कर दिया गया है। एक ओर यह इतनी अत्यधिक संक्षिप्त है कि इसमें गिनती के शब्द हैं और दूसरी ओर ऐसे **नपे-तुले शब्द हैं कि उनसे अर्थ पूर्णतः प्रकाशित हो जाता है और अर्थबोध में चमत्कार उत्पन्न हो**

गया है, किन्तु साथ ही वर्णन-शैली अत्यंत सीधी-सादी है। इसमें किसी प्रकार का विकार नहीं है, किसी प्रकार का उलझाव नहीं है। यह बात याद रखनी चाहिए कि दुनिया में जो बात जितनी अधिक यथार्थ के निकट होती है वह उतनी ही अधिक सहज और प्रभावशाली भी होती है। स्वयं प्रकृति की यही स्थिति है कि वह किसी प्रसंग में भी उलझी हुई नहीं है। उलझाव जितना भी उत्पन्न होता है, कृत्रिमता और संकोच से उत्पन्न होता है। अतः जो बात सच्ची और वास्तविक होगी, - आवश्यक है कि वह सीधी-सादी और आकर्षक भी हो। आकर्षणोत्पत्ति की प्रक्रिया यह है कि जब कभी कोई ऐसी बात तुम्हारे सामने आ जाए तो मन-मस्तिष्क को किसी प्रकार का अजनबीपन महसूस न हो और वह इस प्रकार उसे आत्मसात् कर ले जैसे कि यह पहले से समझी-बूझी हुई बात थी।

अब इस बात पर विचार करो कि जहां तक मनुष्य की आस्तिकता और आस्तिक अवधारणाओं का संबंध है, इससे अधिक सीधी-सादी बातें और क्या हो सकती हैं जिनका इस सूरः में उल्लेख किया गया है तथा फिर भी इससे अधिक सरल और आकर्षक वर्णन-शैली क्या दूसरी हो सकती है? सात छोटे-छोटे बोल हैं, और प्रत्येक बोल चार-पांच शब्दों से अधिक के नहीं हैं और प्रत्येक शब्द सुस्पष्ट है तथा मोहक अर्थों का नगीना है जो अंगूठी में जड़ दिया गया है। ईश्वर को संबोधित करते हुए उसे इस सूरः में, उसके उन गुणों से पुकारा गया है जिनकी विभूति दिन-रात मनुष्य को दिखाई पड़ती रहती है, यद्यपि अपने अज्ञान और असावधानी के कारण उन पर वह चिंतन-मनन नहीं करता। इसके पश्चात् उसके प्रति भक्ति-भावना की स्वीकृति है, उसके वरदानों के प्रति आभार है और जीवन के दुष्कर्मों से बच कर सद्मार्ग पर चलने की याचना है। कोई दुरूहता नहीं, कोई विलक्षण बात नहीं, कोई विचित्र रहस्य नहीं। हम बार-बार यह सूरः पढ़ते रहते हैं और शताब्दियों से इसके शब्दार्थ मानवजाति के सम्मुख हैं किन्तु ऐसा ज्ञात होता है कि जैसे हमारी धार्मिक अवधारणा की यह एक अत्यंत साधारण-सी बात है किन्तु यही साधारण बात जिस समय तक दुनिया की समझ में नहीं आई थी, इससे अधिक ज्ञानातीत और शंका समाधान से रिक्त अन्य कोई बात भी न थी। दुनिया में वास्तविकता और सच्चाई की हर बात की यही स्थिति है। जब तक वह सामने नहीं आती तो मालूम होता है कि इससे अधिक गूढ़ बात और कोई नहीं है। जब वह सामने आ जाती है तो ज्ञात होता है कि इससे अधिक सुस्पष्ट और सहज बात और क्या हो सकती है?

दुनिया में जब कभी ईश्वरीय पुस्तक के रूप में मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है तो उसने केवल यही नहीं किया कि मनुष्य को नई-नई बातें सिखाई हों क्योंकि आस्तिकता के संबंध में कोई अनोखी बात सिखाई ही नहीं जा सकती। उसका काम केवल यह रहा है कि मनुष्य की अध्यात्मनिष्ठा को ज्ञान और स्वीकृति का ठीक-ठीक द्योतक बना दे और सूरः फ़ातेहा की यही विशेषता है। इस सूरः ने मानवता की आध्यात्मिक अवधारणाओं को एक ऐसे अर्थापत्र से सुशोभित किया है कि प्रत्येक विश्वास, प्रत्येक चिंतनधारा, प्रत्येक भाव अपने रूप और गुण सहित अभिव्यक्त हो गया है और चूंकि यह वास्तविकता को चरितार्थ करती है इसलिए जब कभी एक मनुष्य ईमानदारी से उस पर विचार करेगा तो अकस्मात् कह उठेगा कि इसका हर बोल और इसका हर शब्द उसके मन-मस्तिष्क की स्वाभाविक आवाज़ है।

सद्धर्म की मान्यताओं पर पुनः विचार कीजिए। यद्यपि अपनी प्रकृतिधर्मिता में वह इससे अधिक कुछ नहीं है कि एक आस्तिक मनुष्य की सीधी-सादी प्रार्थना है। परन्तु किस प्रकार उसके प्रत्येक शब्द और अभिव्यक्ति के उसके प्रत्येक माध्यम से सद्धर्म का कोई न कोई

महत्त्वपूर्ण उद्देश्य प्रकाशित हो गया है और इस प्रकार उसके शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण अर्थों और उसकी रहस्यात्मकता की रक्षा कर रहे हैं।

ब्रह्म संबंधी अवधारणा के बारे में मनुष्य की एक बड़ी ग़लती यह रही है कि वह इसे प्रेमाश्रित होने के स्थान पर भयोत्पादक और त्रासयुक्त वस्तु बना लेता था। सूरः फ़ातेहा के पबसे पहले शब्द ने ही इस चिरकालीन पथभ्रष्टता का अंत कर दिया है।

इसका आरंभ "ईश्वर-स्तुति की स्वीकृति से होता है।" 'हाद' अथवा 'स्तुति' का अभिप्राय सर्वोत्कृष्ट प्रशंसा से होता है, अर्थात् उत्कृष्ट गुणों की सराहना को स्तुति कहते हैं। सराहना उसी के सौंदर्य की हो सकती है जिसमें सुन्दरता का गुण विद्यमान हो। अतः 'स्तुति' के साथ भीषणता और आतंक का गुण उसमें समाहित नहीं हो सकता क्योंकि जो स्तुत्य होगा वह विकारयुक्त नहीं हो सकता। 'स्तुति' के पश्चात् ईश्वर के सृष्टिव्यापी स्वामित्व, उसकी करुणाशीलता और न्यायशीलता का उल्लेख किया गया है और इस प्रकार ब्रह्म के गुणों का एक व्यापक 'रूप' प्रस्तुत कर दिया गया है जो मनुष्य को वह सब कुछ दे देता है जिसकी मानवता के विकास के लिए आवश्यकता है और उन समस्त भ्रष्टाचारों से उसे सुरक्षित कर देता है जो इस मार्ग में उसके सम्मुख उपस्थित हो सकते हैं।

'रब्ब-बिल-आलमीन' (सर्वलोक महेश्वर) में ईश्वर के सर्वलोक महेश्वर होने की स्वीकृति है जो प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक समुदाय और प्रत्येक जाति, प्रत्येक देश, अस्तित्व के प्रत्येक कण के लिए है और इसलिए यह स्वीकृति उन समस्त संकीर्ण दृष्टिकोणों का अंत कर देती है जो संसार के विभिन्न संप्रदायों और नस्लों में उत्पन्न हो गई थी और प्रत्येक समुदाय अपनी जगह समझने लगा था कि ईश्वरीय वरदान और उसकी अनुकम्पाएं केवल उसी के लिए हैं, किसी अन्य समुदाय का उनमें भाग नहीं है।

इसके पश्चात् सूरः में 'मालिक-ए-यौमिद्दीन' (कर्म-प्रतिफल-प्राप्ति-दिवस-अधिष्ठाता) का उल्लेख हुआ है।

कर्म प्रतिफलन को 'दीन' का पर्यायवाची स्वीकार करके यह तथ्य प्रकाशित कर दिया गया है कि कर्मों का फल मनुष्य के कर्मों का स्वाभाविक परिणाम है और उसका गुण है तथा यह समझना उचित नहीं है कि ईश्वर के प्रकोप और उसका प्रतिशोध मनुष्यों को यातना देने के हेतु है क्योंकि 'दीन' का अर्थ कर्मफल है और पापाचार के लिए दण्ड है।

महेश्वर और करुणानिधान कहने के पश्चात् 'मालिक-ए-यौमिद्दीन' (कर्मफल-प्राप्ति-दिवस) के उल्लेख से यह तथ्य प्रकाशित कर दिया गया है कि यदि सृष्टि में करुणा और सौंदर्य के साथ उसके रचयिता के प्रकोप और उसकी तेजस्विता भी अपना अस्तित्व रखती है तो यह इसलिए नहीं कि सृष्टि के पालनहार में प्रकोप और प्रतिशोध का गुण है, बल्कि यह इसलिए है कि वह न्यायी है और उसके विवेक ने हर वस्तु के लिए एक ऐसी विशिष्ट प्रकृति निर्धारित की है जिससे विशिष्ट परिणाम निकलते हैं। क़ुरान के अनुसार न्याय करुणा का विरोधी तत्त्व नहीं है बल्कि यह पूर्णतया करुणा ही है।

इस सूरः में यह नहीं कहा गया कि हम "तेरी उपासना करते हैं" बल्कि बल इस बात पर दिया गया है कि "केवल तू ही वह है जिसकी उपासना हम करते हैं" और "केवल तू ही वह है जिससे हम सहायता चाहते हैं।" इस कथन-शैली ने अद्वैतवाद में निष्ठा के समस्त आधार पूर्ण कर दिए हैं और 'शिर्क' (अनेकेश्वरवाद) के सारे मार्ग अस्वीकृत कर दिए हैं।

अन्तिम बात यह है कि सदाचार और कल्याण के मार्ग को 'सिरात-उल-मुस्तक़ीम'

(सुपथ) की संज्ञा दी गई है—जिससे श्रेष्ठ और स्वाभाविक कोई अन्य प्रतिपादन इ
सकता था क्योंकि कोई नहीं है जो सुपथ और कुपथ में भेद न करता हो तथा
अभिलाषी न हो। इसके लिए एक ऐसी सीधी-सादी और जानी-बूझी हुई पहचा
जिसके पालन की क्षमता स्वभावतः प्रत्येक मनुष्य में विद्यमान है। यह केवल
विचारमात्र नहीं है बल्कि ठोस वास्तविकता के रूप में है। यह उन लोगों का
पुरस्कृत किया गया है। किसी मनुष्य का देश या राष्ट्र चाहे कोई भी हो किन्तु उसने
है कि जीवन के दो मार्ग स्पष्टतः उसके सम्मुख विद्यमान हैं। एक मार्ग उन लो
जीवन में सफल रहे हैं और दूसरा उन लोगों का है जो विफल रहे हैं। अतः इस सु
कहने की उत्कृष्ट शैली यही हो सकती थी कि उसकी ओर संकेतमात्र कर दिया
अधिक कुछ कहना एक ज्ञात बात को अज्ञात बना देना था। यही कारण है कि इ
प्रस्तुत करने के लिए प्रार्थना की विधा ग्रहण की गई है क्योंकि यदि शिक्षण और अ
विधा अपनाई जाती तो इसका सारा प्रभाव विनष्ट हो जाता। प्रार्थना की विधा हमें ब
हर उस मनुष्य की मनःस्थिति क्या होती है और उसे क्या होना चाहिए जो आस्ति
पर कदम उठाता है? यह आस्तिकता के चिंतन-मनन का भावावेश है जो सत्याभिला
से अनायास मुखरित हो उठता है।

सूरः फ़ातेहा का सारतत्त्व

अच्छा ! अब कुछ क्षणों के लिए इस सूरः के अर्थों पर संपूर्णरूपेण दृष्टि डालिए और देखिये कि इसकी सात आयतों के अंदर धार्मिक विश्वासों और अवधारणाओं की जो आत्मा निहित है वह किस प्रकार की मानसिकता उत्पन्न करती है।

यहां एक ऐसा व्यक्ति है जो ईश्वर के गुण-गान में तल्लीन है परन्तु वह उस ईश्वर की स्तुति में तन्मय नहीं है जो नस्लों, जातियों और धार्मिक संप्रदायों का इष्ट है बल्कि वह 'रब्ब-उल-आलमीन' (सर्वलोक महेश्वर) की स्तुति करता है जो समस्त सृष्टि का पालनहार है और इसलिए समस्त मानवजाति का समान-रूपेण पालन करता है और उसकी करुणा समानतया सबके लिए है। फिर भक्त उसे उसके गुणों सहित पुकारना चाहता है किन्तु उसके तमाम गुणों में से केवल दया और न्याय ही के गुण उसे याद आते हैं जैसे कि ईश्वर की विभूति उसके लिए पूर्णतया दया और न्याय के रूप में ही प्रकट है और जो कुछ भी वह ईश्वर के संबंध में जानता है वह दया और न्याय के अतिरिक्त कुछ और नहीं है। फिर वह नतमस्तक होकर उसकी भक्ति को शिरोधार्य करता है और कहता है कि केवल तू ही है जिसके सम्मुख भक्तिभाव से मेरा सिर झुक सकता है, वह केवल तू ही है जो हमारे सारे कष्टों और अभावों में सहायक है। वह अपनी उपासना और सहायता-याचना दोनों को केवल एक ही तत्त्व के साथ संबद्ध कर देता है और इस प्रकार दुनिया की सारी शक्तियों, हर प्रकार के सत्ताधारियों से संबंध-विच्छेद कर लेता है। अब किसी चौखट पर उसका सिर झुक नहीं सकता, अब किसी शक्ति से वह त्रस्त नहीं हो सकता, अब किसी के आगे वह हाथ नहीं फैला सकता। फिर वह ईश्वर से सुपथ पर चलने के सामर्थ्य की याचना करता है। परन्तु कौन-सा सीधा मार्ग है? किसी विशेष नस्ल का सीधा मार्ग? किसी जाति का सीधा मार्ग? किसी विशेष धार्मिक समुदाय का सीधा मार्ग? नहीं वह मार्ग जो संसार के समस्त धार्मिक आयामों और समस्त सत्यवादी मनुष्यों का सुसम्मत मार्ग है, चाहे वह किसी भी युग का हो और किसी भी जाति का हो। इस प्रकार वह वंचना और पथ-भ्रष्टता के मार्ग से बचना चाहता है किन्तु यहां भी किसी विशेष नस्ल या जाति के उन मार्गों से बचना चाहता है जिन पर संसार के समस्त वंचक और पथभ्रष्ट मनुष्य चल चुके हैं। इस प्रकार जिस बात की याचना वह करता है वह भी मानव मात्र की अत्यंत व्यापक अच्छाई है और जिस बात से बचना चाहता है वह भी मानवता की विश्वव्यापी बुराई है।

विचार कीजिए कि धार्मिक अवधारणा का यह रूप मानव की मानसिकता का किस प्रकार का सांचा प्रस्तुत करता है? जिस मनुष्य का मन और मस्तिष्क ऐसे सांचे मे ढल कर निकलेगा वह किस प्रकार का मनुष्य होगा? कम से कम दो बातों से आप इन्कार नहीं कर सकते कि उसकी आस्तिकता ईश्वर की व्यापक करुणा और उसके सौंदर्य की अवधारणा पर आधारित आस्तिकता होगी और किसी रूप में भी वह नस्ल अथवा जाति या समुदायों का अनुयायी मनुष्य नहीं होगा, वह व्यापक मानवता का मानव होगा और क़ौरानिक शिक्षा की वास्तविक आत्मा यही है।

तज़ाकि ।

चर्या

"यदि कहीं भी ऐसे व्यक्ति हैं जो निष्कंटक मार्ग पर चलें तो मैं उन्हें भाग्यवान कहूँगा। परन्तु इस बात को दुर्भाग्य नहीं समझता कि मैं अपने वस्त्रों को कांटों से फटने से बचाने के लिए फिसलती हुई रेत पर मुझे चलना पड़ा और उन श्रृंखलाओं को तोड़ना पड़ा जिन्हें मैंने अपने हाथों से बनाया था, अपनी मनोवृत्तियों के दीर्घकालीन वृत्तांत को, अपनी आकांक्षाओं, अपनी आशाओं, अपनी इच्छाओं का गला घोटना पड़ा था ताकि उस स्थान पर मुझे सुख और शांति प्राप्त हो सके जहां आज मैं हूँ।"

तज़किरा
चर्चा *

मैं, जो एक बेघर यायावर, अपने युग और स्वयं के लिए अजनबी, घायल भाव
पला-बढ़ा, कुंठाओं से परिपूर्ण, अतृप्त इच्छाओं का ढेर हूँ, जिसका नाम अहमद है
अबुल कलाम पुकारा गया, १८८८ (१३०५ हिजरी) में पैदा हुआ, उस दुनिया
जिसका अस्तित्व एक परिकल्पना है, एक अस्तित्वविहीनता से वह वास्तविकता का
और जीवित रहने के दोषारोपण सहित छोड दिया गया है।

> एक हंगामा था और हमने अपनी आंखें खोलीं अस्तित्वहीनता की नींद से।
> हमने देखा कि वह अव्यवस्था वाली रात अभी खत्म नहीं हुई थी कि हम पु
> लगे। मेरे पिता ने मुझे कालक्रमानुसार फ़ीरोज़ भक्त ('बड़े भाग्यशाली का')
> दिया ......

"दयालु ईश्वर ऊँचा भाग्य क्या है, अहंकारी नियति क्या है? मैंने अपना आध
धर्मपरायणता के रास्ते में फिसलकर लडखड़ाते और निढाल होकर बिताया। क्या मैं यह
दूसरा आधा हिस्सा अब बीत रहा है जब मैं रुकता और आराम करता हूँ। मेरे पास
कोई सूचना नहीं है न ही मैं अपने पैरों को देखता हूँ कि वे रास्ते पर हैं और लक्ष्य की त
रहे हैं। जब मेरे पावों में फुर्ती और साहस में यौवन था, मेरा पूर्वनिर्धारित लक्ष्य और जो
रास्ते की तलाश का द्वार बद ही रहा।

अब, मेरे पांव सुन्न हो रहे हैं, मेरा शरीर घायल है, मैं विश्वास के साथ चल नहीं
साहस ने मुझे क्षीण कर दिया है। और अब, जब कि लक्ष्य की लालसा ने मेरी आंखें खो
और लापरवाही की नींद आ गई है, यात्रा लंबी मालूम पड़ती है और इसका अंत धुंधलवे
होती लगता है, मेरा बटुआ खाली है और जिन साधनों की मुझे जरूरत है उपलब्ध
चीज़ों को करने का समय बीत चुका है और प्रतिक्षण मैं उत्पीड़ित हूँ उस काफिले से
छूट गया हूँ जिससे जुड़ने को मेरी इच्छा थी। मैं उदास हूँ और लक्ष्य-प्राप्ति की दृष्टि से दु
अब भी यदि मेरे पैर अपनी फुर्ती पा लें और मेरा साहस एक नया जीवन पा ले तो भी,
गंवाया गया समय मैं कैसे वापस पा सकता हूँ। आशा का कारवां जो पहले ही दूर जा
उनको लेने कैसे वापस आ सकता है जो अपनी ... लापरवाही से पीछे छूट गए

> मैंने एक तरफ़ कदम रखा मेरे पैर के
> कांटे को बाहर खींचने के लिए और ऊँट
> (जिस पर मेरा प्रिय बैठाया) दृष्टि से ओझल हो गया,

* मौलाना ने अपने मित्र फज़्लउद्दीन के आग्रह पर राँची में १९१६-१९१९ के दौरान अपनी नज़रबंदी के समय (आत्मकथा) लिखा था। इसे आत्मकथा होना चाहिए था किन्तु मौलाना ने कुछ पृष्ठ ही अपने सबध में लिखे है। इ चयन **तज़किरा** के उस भाग से किया गया है जिसका सबध आत्मकथा से है और जिसे अत्यत सुस्पष्ट वृत्तात सम जो उन्होंने अपने घनीभूत व्यक्ति अनुभवो के सबध मे लिखा है

एक क्षण की लापरवाही के कारण मेरी
यात्रा सौ वर्षों के लिए लंबी हो गई।

"आज या कल, मेरे ऊँचे भाग्य और अहंकारी नियति का मामला हमेशा के लिए निर्धारित हो जाएंगे, उस दिन जब प्रत्येक मुखड़ा चमकदार या काला होगा।" वास्तविक उन्नति है उस अवसर की उच्चता का उन्नयन और वास्तव में वह आदमी भाग्यशाली है जो आने वाले दिन (फैसले का दिन) की कसौटी पर खरा उतरे। यदि किसी की किस्मत है 'ठंडी बयार और सुगंध,' 'परम आनंद की प्रचुरता' और 'उन्नति' (कुरान में इन पदों को स्वर्ग कहा गया है), तब किसी का भी भाग्य वास्तव में महान है, उसकी नियति एक वांछनीय नियति है। परन्तु यदि कोई नम्रता **और निराशा के योग्य पाया जाए "जिनके चेहरे धूल से मैले हो गये हैं और जिनके सिर शर्म से लटके हुए हैं।" और वह "जहां किसी खुशी के समाचार के न होने का अपराध बोध हैं।"** तब दुःख और विलाप के समाप्त होने की कोई आशा नहीं रह जाती। यहां तक कि अलेक्जेंडर की विजय से और जमशेद का सिंहासन भी इस तरह के नुक्सान की क्षतिपूर्ति नहीं कर सके।

यदि मैं सुनिश्चित हूँ कि "तीन के साथ एकता प्राप्त की जा सकती है तो मैं अपना दिल और अपना धर्म और बहुत कुछ भी दाँव पर लगा दूंगा।" इन विचारों में गोता लगा कर, किसी को भी सदमा लगेगा जब मौलाना आजाद फिर नियति और तारीख के मसले पर वापस आते हैं।

'मेरा पैतृक शहर दिल्ली है...... परन्तु मां पवित्र भूमि पर बसे शहर से थी, वह शहर जहां पैगम्बर देशांतरित हुए, वह शहर जो उनके पैगम्बर होने का, रहस्योद्घाटन है (मदीना)। यह वह शहर है जहां प्यार के तीर्थयात्री एकत्र होते हैं, वे जो प्रार्थना के उल्लास में रहते हैं यह उनका काबा है।

मेरा हृदय दिशाखोजी कंपास की सुई की तरह
चारों ओर घूमता है। किसी प्रकार मैं
इसकी स्थिति बदलता हूँ, सुई हमेशा
इष्ट की भौंहों की ओर इंगित करती है।

'और मेरे वास्तविक घर को मुझे क्या कहना होगा? हम सब अधिनायक के साथ एकमत हैं–"इस दुनिया में पथ के पक्षियों की तरह जीवित रहो?" यात्रियों और घुमक्कड़ों के इस घर विहीन घर में, सब एक ऐसे कारवाँ के सदस्य की तरह गुज़र रहे हैं जिन्हें नहीं मालूम जाना कहां है, परंतु समाप्ति पर सभी का अंतिम विश्राम स्थल पूर्वनिर्धारित है और कुछ भाग्यशालियों के लिए यहं एक उल्लास का घर है।

'पवित्र मक्का शहर में किदवाह नाम से जाने वाले हिस्से में बाब-अल-सलाम के पास काबा के समीप बंजर घाटी में मैं पैदा हुआ और मेरा बचपन बीता था.....।

'अब वह वर्ष १३३५ ए० एच० (१९१६ ई० स०) करीब आ रहा है, मेरे वर्षों के जहाजी बेड़े का जुलूस तीसवें चरण में पहुँच गया है।

यह विकासचरण भी पलक झपकते बीत जायेगा और भविष्य में क्या है मैं नहीं जानता:

कोई नहीं बताता मुझे कहां मेरी यात्रा
समाप्त होगी : मैं आड़ातिरछा भटका, उजाड के बाद
उजाड़ और उसके बाद भी अधिक उजाड़पन
जिसे पार करना है।

"जब मैं बीते जीवन पर मुड़कर पीछे देखता हूँ तो यह धुंध और धूल से अधिक दिखाई

नही देता और आगे का जीवन एक मृगतृष्णा से अधिक मालूम नहीं पड़ता। मेरी कलम झिझकती है, अभिव्यक्ति और व्याख्या का कठिन कार्य मेरे दिमाग को आतंकित कर देता। यदि मैं लिखना चाहूँ कि मैंने क्या अनुभव किया उन घटनाओं के बारे में जो मेरे जीवन में हुईं, तो उसे कैसे कहूँ? कोई एक धुंधली दृष्टि के अनुभव या भव्य मृगतृष्णा को कैसे कह सकता है? बुलबुले पानी पर तैरते हैं, धूल उड़कर हवा में मिल जाती है, तूफ़ान पेड़ों को तोड़े डालते हैं, बाढ़ें इमारतों को बहा ले जाती हैं, मकड़ी संपूर्ण जीवन अपना जाल बुनती है, घोंसला सजाने वाले पक्षी दुनिया के चारों कोनों से तिनके इकट्ठा करते हैं, बिजली (बादल की) घास के ढेरों से आंख-मिचौली करती है, आग पुआल से—यदि आत्मकथाओं में ऐसी चीजें आ रही हैं तो कृपया उन्हें रखिए। मेरे जीवन की कहानी उनमें से ही एक होगी पहले आधे भाग में आशा की मुस्कान दूसरे आधे भाग में हतोत्साह का विलाप।

आप प्रेम में नहीं पड़े या प्रेमी की यंत्रणा
नही भोगी : कोई आपसे अलगाव का
दुःख कैसे बतायेगा?

'एक बार मेरी आशा मूर्त हुई थी, अब मैं निराशा की मूर्ति हूँ।
संक्षेप में मेरी आंखों और दिल की
कहानी यह है : दिल के लिए कोई
विश्राम नहीं है और आंखों में कोई
नींद नहीं है।

'यदि कहानियां सुनने की आपकी इच्छा इसके बावजूद संतुष्ट नहीं हुई तो, मुझसे सुनिये मेरे तीस वर्ष कैसे गुज़रे। बिजली और घास का बड़ा ढेर मिलकर कोई कहानी नहीं बनाते वह सब कहने के लिए एक पूरी रात का समय लगेगा। एक गुस्सैल चीख और एक दुःख भरी आह यह सब कुछ आदि भी है अंत भी।

मेरे पड़ोसी ने मुझे कराहते सुना; उसने कहा,
खाकनी के पास इसकी दूसरी रात है।
एक भोर जो धुंधली हो गई थी जैसे ही हमने देखा
एक ईद के समान जो वसंत काल के समय आई
और गुजर गई इससे पहले कि वसंत खत्म हो।

'दुःखों की एक शाम थी जिसके अंधकार में आशा के जले सारे दीये डूब गए।
जबसे मेरे दुखी दिल की ज्वाला बाहर निकली
कोई दीप कहीं भी प्रकाश नहीं फैलायेगा।

'या, हमें कहना चाहिए, वे दो दिन थे, एक आशा का, दूसरा निराशा का, एक बनाने की अभिलाषा को तुष्ट करने में बीता, दूसरा उस मलबे के ऊपर दुःख व्यक्त करने में जिसे बनाया गया था। एक दिन घोंसले के लिए तिनके इकट्ठे करने में बीता, दूसरा मेरे परिश्रम के फल के राख होने पर न रुकने वाले आंसू बहाने में।

इस बाग में, जहां बसंत और शरद
एक दूसरे के साथ अनादिकाल से लिपटे हुए
आलिंगन कर रहे हैं। समय के पास

हाथ में शराब का एक प्याला है और
सिर के ऊपर मौत।

अबू तालिब कलीम (पृ० १६५२) ने हममें से हर एक की आत्मकथा चार पंक्तियों में लिखी हैं,

यह दो दिन से अधिक नहीं जीवित रहने के लिए विश्वास करती है,
और, कलीम, कैसे मैं उन दो बीते दिनों को मिलाऊंगा:
एक मैंने इसे और उसे जोड़ने में बिताया,
दूसरा दिल को फाड़ने में उनसे दूर होने के लिए जिनसे वह लिपटा रहा।

'और, सच में सांस लेने का कितना वक्त मिला इसके आने और जाने में, कोई फर्क नहीं है। "वे कहते हैं वे वहां नहीं थे सिर्फ एक शाम या एक सुबह के लिए" या "उन्होंने कहा, हम एक दिन के लिए या उसके बराबर ठहरे।" (गुफा के आदमी की तरह जिसका जिक्र कुरआन में है, जो अनेकों पीढ़ियों तक गुफा में ही छिपा जीवित रहा, बिना यह जाने कि समय कितना बीत गया)

मेरा बचपन एक सुखदायी सपना था
यह सचमुच तरस खाने जैसा था जिससे मैं जल्दी जागा।

'जब मैंने अपनी आंखें खोलीं किशोरावस्था का उदय पहले ही हो चुका था, और मेरी दुनिया के उजाड़ में हर कांटा आकांक्षा और इच्छा की ओस सहित पुष्प के समान ज़िंदादिल था। जब मैंने स्वयं की ओर देखा, मैंने देखा कि एक दिल खून की जगह पारे से भरा हुआ। जब मैंने दुनिया की ओर देखा यह ऐसी दिखाई पड़ी जैसे सुबह (उषा) भ्रमित हो जाय और इसे दूर करने के लिए दोपहर का सूर्य न हो, असफलता या निराशा की कोई छाया नहीं हो जो इसकी संध्या का संकेत दे। आशा और चित्रमय घर का चकित कर देने वाला संपूर्ण प्राकृतिक वास केवल मेरे लिए था, मेरी आखों को आनंदित और मेरे दिल की संतुष्टि के लिए हर एक एकांत और कोना फैले विस्तार का हर एक इंच मेरा और मेरी भूख की प्रतीक्षा में हो। जिस रास्ते पर मैं मुड़ा मैंने वही परिचित पुकार सुनी (मेरी दिली इच्छा की पूर्ति की)। क्या यह मेरे खुशी पाने के इच्छुक दिल की धड़कन थी जो प्रतिध्वनित हुई या एक राग था जो ज़िंदगी हमारे भावों के साजों पर छेड़ रही थी, जवानी की लापरवाही का स्वर गुंजाती हुई।

लापरवाही और मदमस्त आलाप उनके जादुई स्वर, मनोभावों से भरे प्याले, युवा पागलपन ने मुझे हाथ से पकड़ा, और मेरा दिल, स्वयं को समर्पित प्यारा लगा, जिसने स्पंदनों और इच्छाओं को दर्शा कर इसे लक्ष्य के रूप में स्वीकार कर लिया था। विवेक बुद्धि और कारण पहले व्यर्थ कर दिये गये थे, परन्तु बाद में वे भी मेरे साथ हो लिए। कोई रास्ता न था सिर्फ यह, कोई समय न था सिर्फ यह.

अपराधी मन बनो, ओ साकी,
मैं जवाँ हूँ और दुनिया जवाँ है मेरे साथ....

जो भी रास्ता मैंने अपनाया, बेड़ियाँ और फंदे स्वयं मेरे पैरों के आसपास लिपट गये। जो भी आश्रय मैंने लिया विवेक बुद्धि की जेल में पकड़ा गया। कोई इसे ऐसे चित्रित कर सकता है जैसे यह एक प्रकार की कैद थी, या कड़ियों को गिनना यदि वह केवल एक बेड़ी थी। मेरे पास केवल एक दिल था, परन्तु उस पर भी सैकड़ों दिशाओं से तीर आ आकर लगे: मेरी एक जोड़ी

आंख को सैकड़ों दृश्य दिखाई दिये। हर लुभाने वाले दृश्य ने अपना तीर चलाया, विवेक के हर लुटेरे ने अपना फंदा फेंक, हर मोहिनी रूप ने अपने प्यार के उच्चारण को मेरी ओर फेंका, हर ली गई सांस के साथ दृश्य ने मुझे पूर्णतः बंदी बनाया, विस्मयकारी रूप मेरी गर्दन के आस-पास आकर रुक गया....

'यह ऐसा नहीं था कि मेरे चुनाव को शक्ति से वंचित रखा गया, या कि मेरी आंखों ने विवेक दृष्टि खो दी। बिजली मुझ पर झपझपाई,, रात के साये के पीछे से तारे जब मुझे झाँकते रहे, परंतु वे पूरी तरह काले तूफ़ान की चढ़ाई की प्रचंडता के अंधकार का शमन या उसे प्रकाशित न कर सके।

'जब मैं देवदारु की मनोहारी ऊँचाई से ईर्ष्या करता हूँ, मेरा हृदय श्रेष्ठता और प्रसिद्धि के लिए दीर्घकाल तक जलता रहा है। जब मैंने विनम्र घास का कुचला जाना देखा मैं शर्मिंदा हुआ अपनी किंचित् मानवीय समझ पर। जब सुबह की बहती हुई बयार ने मेरे हृदय को तरोताज़ा किया, मैं धर्मनिरपेक्षतावाद की अरुचि से भर उठा और अद्‌भुत और साहसिक जीवन के लिए लालायित हो उठा। कभी-कभी दृष्टि का प्रवाह वहां जाता जहां से तारतम्य शुरू होता है। बिना लक्ष्य और मकसद जाने मुझे इस तरह दूर ले जाया गया और प्रतिबंध और बाध्यता से मेरी आंखें भर आईं आंसुओं से जिसका विषय मैं था जैसे मेरे हृदय के घाव थे। जब मैंने देखा फूलों का मुस्कुराना मेरी आंखों ने जवाब दिया भरपूर आंसुओं के साथ, जब हर्षोन्माद में वृक्ष झूमते और शाखाएं नाचतीं, मैं अपनी स्वयं की निष्क्रियता और अनुभवहीनता को याद करता। संक्षेप में, मेरी बेचैनी के अनेक कारण थे और मैंने अपनी संपूर्ण शक्ति नहीं खोई थी। बिजलियाँ चमकीं और बादलों की गर्जना भरी चेतावनी भी, परन्तु हाय मेरी नींद भी बहुत गहरी थी जिसके अधीन मैं असावधान लेटा था जो एक चाबुक की फटकार चाहती थी।

यह था मैं जो
इतना कमज़ोर था कि पूर्ण
प्रार्थना भी कर सके, आकांक्षाओं और
आशाओं को स्वीकार करने के दरवाज़े स्वयं हमेशा
खुले रहे।

'परन्तु मेरे लिए यह अच्छा है कि इसे साफ-साफ खोलकर घोषित करूँ कि मुझे क्या कहना है......

'हमारी बरबादी का कारण है, स्वयं के भुलक्कड़पन के हंगामे के बीच अंतःकरण की आवाज़ पहुँचती है परंतु कुछ कानों में और यदि ऐसा होता है हमारे स्वयं के हाथ धुत्त विवेक के नगाड़ों पर इतनी ज़ोर से पड़ते हैं कि भर्त्सना की धीमी आवाज़ शोर में डूब जाती है......

'परंतु इन सब तथ्यों और वास्तविक सच्चाइयों से महान है विश्व का यह सत्यः

जो हमारे लिए सब कुछ करता है और
वह हमारी ज़रूरतों को देखता है

'हम अपने ऊपर स्वयं विपत्ति लाते हैं। अगर हम सरोकारों पर चिंता करते हैं। और एक विचित्र मित्रता और चित्रों की श्रृंखला रास्ता देखती रही है उनका जो इस रास्ते पर फूँक-फूँक कर पैर रखते हैं (दैवीय इच्छा के सामने स्वयं को अर्पित कर देते हैं)...।

'तथापि रास्ता सभी के लिए एक सा है, चमत्कार बहुआयामी हैं और यदि विवेक नष्ट हो जाय तो यह उसी दृष्टि का परिणाम नहीं है।

तू हर दिल के साथ भिन्न-भिन्न रहस्य का अंश है,
और हर याचक तेरे दरवाज़े पर अपने आप हवा देता है।

कोई दस्तक देता है और दरवाज़ा उसके लिए नहीं खुलता, दूसरे के लिए फंदे फेंके जाते हैं ताकि उसे पकड़ा जा सके। खोजने और प्रयत्न के सिद्धांत को झुठलाया नहीं जा सकता पर यदि उसे बिना पूछे चुना जाय, तो कौन है जो उसका हाथ पकड़े?......

'तत्काल ईश्वरीय कृपा सांसारिक प्यार के रूप में प्रकट होती है और आनंद का सर्पिल रास्ता मुझे उसके राजमार्ग पर ले जाता है। जब कोई वस्तु जलती है, आग और लपटें जब फैलती हैं परिमाण में वे बढ़ती ही जाती हैं, बाढ़ें धीरे-धीरे फैलती हैं परन्तु यह बिजली थी जिसकी एक चमक सी दिखाई दी और जब मैंने वहां देखा तो केवल राख का ढेर था।

वास्तव में तीन चरण होते हैं: इच्छा, प्यार और सच....। यहां संकीर्ण, अशुद्ध, भौतिक अर्थ में प्रेम से मेरा मतलब है, प्रेम को छोड़कर सारी सृष्टि में और कुछ नहीं है। यह वह स्तंभ है जिसने स्वर्ग को ऊपर थाम रखा है, यह पृथ्वी की धुरी और सहारा है। वह सब जो दिखाई देता है प्रेम है वह सब जो छिपा हुआ है प्रेम है। हमारी दृष्टि दोषी होगी यदि हम एकता को पहचानने में असमर्थ हैं, इसी ने एक वास्तविकता को अनेक नाम दे दिए हैं। यह चीजों को उनके स्वरूप में देखने की असमर्थता है यह गलती कई गुना होगी जिससे अद्वितीय सुन्दरता की एकरूपता पर परदे पर परदे चले गये। अन्यथा

केवल एक दीया है प्रकाशित इस
घर में, जिसके चारों तरफ,
जहां भी आप देखें, लोग बातें करने इकट्ठे हुए।

'कोई शक नहीं (मेरा भी प्रेम) यह भी एक ग़लती थी। परंतु ऐसी ग़लती को हम क्या कहेंगे जो हमें प्रिय के पैरों पर गिराए? सब प्रयत्नों का अंत उसके पास तक पहुँचना है। यदि भूलें और मदहोशी हमें वहां तक ले जाती हैं तो तटस्थता और सादगी के हज़ारों तरीकों को उस पर क्यों नहीं न्योछावर कर देना चाहिए?

यदि ईश्वर चाहे कि मैं कृपण बनूँ,
सारा संतोष भेज दिया जाए गुमनामी के लिए।

सच तो यह है कि इस मार्ग पर चलने वालों की कार्यक्षमता पूर्णतः निर्भर करती है मिलने और अलग होने, या टूटने और जुड़ने पर और समीपता एक चरण है जो प्राप्त किया जा सकता है तब जब दूरस्थता सहन की जा सके। तात्पर्य है सबके साथ अलग होकर एक से मिलना, सबसे स्वयं को दूर ले जाकर एक में मिलना। यह दरवाज़ा तभी खुलेगा जब दूसरे/अन्य सभी जो पहले खुले थे बंद हो जाएं:

प्यार की दृष्टि में कोई स्वीकार्य है केवल तब जब
हज़ारों शर्तें पूरी हो गई हों
और पहला पछतावा है उस मनाए गए शांति और संतोष
के लिए।

उन सभी बंधनों को तोड़ना है, सभी बेड़ियों को काटना है जो ईश्वर को छोड़कर अन्य की पूजा करने के लिए बाध्य करें। यह करने के केवल दो ही रास्ते हैं, या तो कोई ताकतवर हाथ बाधाओं को हटाकर एक के बाद एक गांठों को खोलने का निश्चय करे, सब बेड़ियों को ढीला करे, अथवा कोई चमकाकर और आंखों के पलक झपकने तक के समय में ही पूरी

शक्ति से प्रहार कर सारे बंधनों और बेड़ियों को टुकड़े-टुकड़े कर दे। तब कोई बाध्यता नहीं है कि दक्ष अंगुलियाँ गांठों को खोलें, टूटी कड़ियों की कोई गिनती नहीं। सूखी लकड़ी के बड़े गट्ठे को जलाने हेतु किसी को हज़ारों चीज़ें करनी पड़ती हैं और तब केवल ज़रा सा धुंआ उठता है। परन्तु हम जानते हैं कि बिजली अपनी आंख की चमक मात्र से जला सकती है और हज़ारों घोंसले, सावधानी से एकत्र किए गए हज़ारों अनाज के ढेरों को पल भर में स्वाहा कर सकती है।

मैंने पूछा आज कैसे मारेंगे और जीवन दान करेंगे
परमप्रिय ने मुझे एक नज़र मारी और आगे
कोई उत्तर नहीं दिया।

पवित्र और लौकिक प्यार में यह आम बात है। वे जुड़कर एक होते और शेष से कट जाते हैं। तभी तो पवित्र प्यार का सबसे क़रीब का रास्ता लौकिक प्यार से होकर गुज़रता है।

हमारा प्याला उस शराब से लबालब है जो नई है।

यह केवल सुख खोजने और प्यार में ही नहीं है। बीच रास्ते के किसी घर जहां से पैर आगे बढ़ने से मना करते हैं, बुत बन जाता है और यात्री बुतपरस्त बन जाता है। बीच रास्ते का घर गुलाब की क्यारियों में (यथार्थ भक्ति की) मनकों को गिनना या पैबंद लगे कपड़े (सूफ़ी के) पहनने जैसा है......

इसलिए मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि यह चरण (लौकिक प्यार का) वह नहीं था जहां मैं लंबे समय तक ठहरा। एक वर्ष और पाँच महीनों में मैं इन सबके प्रयोग और पारंपरिकता, एकांत कोने अनदेखे किए या छोड़े बिना सभी से परिचित हो गया......। हर यात्री (लौकिक प्यार के इस पथ पर) को दो तरीकों में से एक को अपनाना होगा, या तो तूती (गाने वाला पक्षी) का जैविक रूढ़िबद्ध और लक्ष्यहीन भ्रमण और बुलबुल का उड़ना या मोमबत्ती की तरह चुपचाप जलना.....। हम जानते हैं कि आग भड़काना अधिक आसान है अपेक्षाकृत एक भट्टी के समान ऊष्मा धारण करके दहकते रहना और स्वस्वामित्व और नियंत्रण की परंपरा और आवश्यकता को पूरा करना।

आवरणहीनता सुखदायक है परन्तु फटा और मुड़ातुड़ा गलाबंद उन सबका अपना सौंदर्य है......

'यदि लोग हैं जिन्होंने ज़िंदगी के उजाड़ में रोने, विलाप करने में बिताई, उन्होंने वह किया जो करना था। मेरे जीवन में हर मिनट हर घंटा दबी हुई आह की यातना गुज़रा, हज़ारों हंगामें मेरी छाती में रोष पैदा करते रहे और आँसू जिन्हें आँखों से निकलने का रास्ता नहीं मिला, मेरे हृदय की छोटी सी सीमा के अंदर तूफान पैदा करते रहे।

यद्यपि देखने में यह मामला (लौकिक प्यार का) दुःखांत है, वास्तव में जीत का सारा आनंद इस हार के पीछे छिपा हुआ है....।

अल्लाह की दयालुता का चमत्कारिक संकेत मुझे लंबे समय तक मिलता रहा परन्तु मेरा हृदय सांसारिक सुखों में डूब हुआ असावधान बना रहा। बिना प्रतिफल के प्यार ने मेरे मायाजाल के अंतिम झोंके पर प्रहार किया और अचानक मेरी आंखें खुल गईं। मैंने देखा सांस ले रही दूसरी दुनिया का विलक्षण तमाशा। न वह आकाश, न वह पृथ्वी, यहाँ तक कि वह ब्रह्मांड भी नहीं। यह वह व्यक्ति भी नहीं था। वह हाथ जो मुझे उस स्थिति में रास्ता दिखाता रहा कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। जब मैंने उसकी खोज की वह जा चुका था। जैसे कि वह एक दीया था जो जलता रहा जब तक मैं चलकर रात के अंधकार के आवरण से बाहर नहीं निकल

आया ;परन्तु जब भोर होने को आई इसकी कोई आवश्यकता नहीं थी इसलिए वह बुझ गया था।

दुनिया जिसके उपेक्षितों के मदिरालय की असावधानी की शराब मुझमें उड़ेल दी गई थी, जिनके दृश्य मेरी आंखों को प्रलोभित करते रहे, मेरे कानों को जिनका राग अच्छा लगा, वही दुनिया अपने आप इस तरह रूपांतरित हो गई कि अब उसका तुच्छ हिस्सा भी गंभीरता और बुद्धिमत्ता का चित्रण लगता है और जो देखने वाली आंखों और सीखने वाले दिमाग के लिए एक है। हर कण वार्तालाप के लिए इच्छुक था, हर पत्ता एक दस्तावेज था, फूलों ने अपने होंठ खोले, पत्थरों ने उठकर स्वयं के होने का अहसास कराया, नीचे गर्त में पड़ी धूल बार-बार उठकर स्वयं को मोतियों के समान बरसाने लगी, प्रश्नों के उत्तर देने के लिए स्वर्ग नीचे आ गया, पृथ्वी स्वयं बहुधा अक्सर इतनी ऊपर चली जाती कि आकाश से तारों को तोड़ लें, देवदूतों ने हाथ फैला दिए सूर्य को लड़खड़ाकर फिसलने से रोकने के लिए जो दीपक लेकर आया था, सारे आवरण दूर फैंक दिए गये थे, सारे पर्दे छेदों से छलनी हो गये थे, प्रत्येक भौंह ने एक संदेश दिया, हर आंख में कहने के लिए कहानियाँ थीं।

'मूलतः चाहे जो भी स्थिति रही हो, यह पूर्णता उससे भिन्न था जिसे मैंने धीरे-धीरे प्राप्त किया। इस विशिष्ट मुद्दे से भिन्न मेरे विश्वास में कुछ नहीं था। मेरे क्रिया-क्लापों और आदतों, मेरी अभिरुचियों, मेरे विचारों और मतों, मेरे रास्तों जिनसे मैं अपने प्राकृतिक परिवेश को समन्वित कर सकता हूँ जो कुछ मेरे पास है प्रेम द्वारा स्वीकृत था।

ग़ुबार-ए-ख़ातिर

"पत्नी की बीमारी और मृत्यु"

"उसके मुख से दो शब्द ही निकल सके—खुदा हाफ़िज। यदि वह कहना भी चाहतीं तो इससे अधिक कुछ नहीं कह सकती थीं जो उनके मुखारबिन्दु पर अंकित भावरेखाएं कह रही थीं। उनकी आंखों में आंसू नहीं थे किन्तु उनमें झलकते भाव आंसू में भीगे थे।"

पत्नी का स्वर्गवास *

अहमदनगर दुर्ग
११ अप्रैल ४३ ई०

मित्रवर,

यह चार बजे का प्रायः की तरह की सुबह नहीं है बल्कि रात्रि का अंतिम पहर अभी आरंभ हुआ है। प्रायः की तरह १० बजे शय्या पर लेट गया था परन्तु नेत्र निंद्रा-निमग्न न हुए। विवश होकर उठ बैठा, कमरे में आया, प्रकाश किया और अपने नित्य के कार्यक्रमों में व्यस्त हो गया। फिर सोचा कि लेखनी उठाऊँ और कुछ देर आपसे बातें करके जी का बोझ हल्का करूँ। इन आठ महीनों के बन्दी जीवन के दौरान ये छठी रात है जो इस प्रकार व्यतीत हो रही है और नहीं मालूम अभी और कितनी रातें इसी तरह बीतेंगी।

मेरी धर्मपत्नी कई वर्ष से रुग्ण चली आ रही थीं। सन् ४१ ई० में जब मैं नैनी जेल में बंदी था तो मुझे उनके बिगड़ते स्वास्थ्य की सूचना इस कारण से नहीं दी गई थी कि उससे मैं चिंतित हो उठूंगा। परन्तु कारावास से निकलने के पश्चात् ज्ञात हुआ कि उनकी यह समस्त अवधि न्यूनाधिक रुग्णावस्था में ही व्यतीत हुई थी। मुझे कारावास में उनके पत्र मिलते रहे। उनमें सारी बातें होती थीं किन्तु अपनी बीमारी का कोई उल्लेख नहीं होता था। बंदीगृह से मुक्त होने के पश्चात् डाक्टरों से परामर्श किया गया तो उन सबका मत यही था कि जलवायु का परिवर्तन होना चाहिए। इसलिए वह रांची चली गईं। रांची में आवास के कारण देखने में तो स्वास्थ्यलाभ हुआ था, जुलाई में वापस आईं तो स्वास्थ्य की कांति मुखड़े पर वापस आ रही थी।

इस सम्पूर्ण अवधि में मैं अधिकांशतः यात्रा करता रहा। समय की गति इतनी सत्वरता से बदल रही थी कि किसी एक स्थान पर दम लेने का अवकाश ही नहीं मिलता था। एक स्थान पर अभी पग धरा नहीं कि दूसरे स्थान पर जाने का कार्यक्रम निश्चित हो जाता।

जुलाई की अंतिम तिथि थी कि मैं तीन सप्ताह के पश्चात् कलकत्ता वापस हुआ और फिर चार दिन के पश्चात् अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के जलसे के लिए बंबई चल पड़ा। यह वह समय था कि अभी तूफ़ान आया नहीं था किन्तु तूफ़ान के लक्षण हर ओर दिखाई देने लगे थे। सरकार की नीति के संबंध में नाना प्रकार की अफ़वाहें फैल रही थीं। एक बात जो विशेष रूप से फैली वह यह थी कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के जलसे के पश्चात् कार्यकारिणी के समस्त सदस्यों को गिरफ़्तार कर लिया जाएगा और हिन्दुस्तान से बाहर किसी अज्ञात स्थान में भेज दिया जाएगा।

---

* जुलैख़ा बेगम का देहात ९ अप्रैल १९४३ ई० को हुआ। मौलाना ने अपने परममित्र नवाब सद्रयार जंग को लिखे अपने उपर्युक्त पत्र में अपने उद्‌गारों को अभिव्यक्त किया है। यह उन बीस पत्रों मे से एक है जो उन्होंने १० अगस्त १९४२ और १६ सितम्बार १९४३ की अवधि में अहमदनगर जेल से लिखे थे। मौलाना के निजी सचिव मुहम्मद अजमल खां ने इन्हें एकत्रित किया और नवाब सद्रयार जग को लिखे गए अन्य पत्रों के साथ **गुबार-ए-ख़ातिर** (मालिन्यचित्त) नाम से १९४६ ई० में पत्रो का संकलन प्रकाशित किया।

यह बात भी कही जाती थी कि युद्ध के कारण आपात-स्थिति में सरकार को आपातकालीन अधिकार दे दिए गए हैं और वह उनसे हर प्रकार का काम ले सकती है।[1]

इस प्रकार की गतिविधि पर मुझसे अधिक ज़लैख़ाँ की दृष्टि रहा करती थी और उसने काल की कुचाल गति का पूरी तरह अनुमान कर लिया था। इन चार दिनों के अंदर जिन्हें मैंने दो यात्राओं के बीच व्यतीत किए हैं, मैं कामों में इतना व्यस्त रहा कि हमें आपस में बातचीत करने का अवसर बहुत कम मिला। वह मेरे स्वभाव को जानती थी। उसे पता था कि ऐसी स्थिति में मेरी ख़ामोशी सदैव बढ़ जाती है और मुझे अच्छा नहीं लगता कि इस खामोशी में विघ्न उत्पन्न हो। इसलिए वह भी मौन थी। परन्तु हम दोनों का यह मौन हमसे कुछ कह-सुन भी रहा था। हम दोनों निर्वाक्य रह कर भी एक-दूसरे की बातें सुन रहे थे और उनका आशय भली भांति समझ रहे थे। तीन अगस्त को जब मैं बंबई के लिए प्रस्थान करने लगा तो वह यथाव्यवहार द्वार तक बिदा करने के लिए आईं।

मैंने कहा कि यदि कोई नवीन घटना न घटी तो १३ अगस्त तक वापस आ जाऊंगा। उसने खुदा हाफिज कहने के अतिरिक्त कुछ और नहीं कहा। यदि वह कहना भी चाहतीं तो इससे अधिक कुछ नहीं कह सकती थीं जो उसके मुखारबिन्दु पर अंकित भावरेखाएं कह रहीं थी। उनके नयन शुष्क थे किन्तु मुख पर अश्रु-धारा प्रवाहित थी।

पिछले २५ वर्षों के दौरान कितनी ही यात्रायें मझे करनी पड़ीं और कितनी ही बार गिरफ़्तारियां हुईं किन्तु मैंने उसे इतना उदास कभी नहीं देखा था। क्या यह भावुकता की क्षणिक दुर्बलता थी जो उसके स्वभाव को प्रभावित कर रही थी? मैंने उस समय ऐसा ही सोचा था किन्तु अब सोचता हूँ तो लगता है कि शायद उसे संकट या स्थिति का आभास होने लगा था। कदाचित् वह महसूस कर रही थी कि इस जीवन में हमारी यह अंतिम भेंट है। वह मुझे खुदा हाफ़िज़ इसलिए नहीं कह रही थी कि मैं यात्रा पर जा रहा था बल्कि वह स्वयं यात्रा करने वाली थी।

वह मेरे स्वभाव से भली-भांति परिचित थी। वह जानती थी कि ऐसे अवसरों पर यदि उसकी ओर से लेशमात्र भी व्याकुलता दिखाई जाएगी तो मुझे बहुत बुरा लगेगा और बहुत दिनों तक उसकी कटुता हमारे संबंधों में शेष रहेगी। सन् १९१६ ई० में जब प्रथम बार गिरफ्तारी हुई थी तो वह अपने मन की आतुरता नहीं रोक सकी थी और मैं बहुत दिनों तक उससे नाराज रहा था। इस घटना ने सदैव के लिए उसकी जीवन-पद्धति को बदल दिया और उसने पूर्ण प्रयास किया कि मेरे जीवन की गतिविधि का साथ दे। उसने केवल साथ ही नहीं दिया बल्कि पूरे साहस और पूर्ण दृढ़ता के साथ हर प्रकार की दुष्कर स्थितियों को सहन किया। वह मानसिक दृष्टि से मेरे चिंतन और विश्वासों में सम्मिलित थी और व्यावहारिक जीवन में मित्र तथा सहायक थी। फिर क्या बात थी कि इस अवसर पर वह अपनी व्याकुलता पर नियंत्रण न रख सकी? संभवतः यही बात थी कि उसके अंतस्तल पर भविष्य की प्रतिच्छाया पड़ना आरंभ हो गई थी।

गिरफ़्तारी के पश्चात् कुछ समय तक हमें मित्रों और संबंधियों से पत्र-व्यवहार का

१– गिरफ़्तारी के पश्चात् जो वक्तव्य सूचनापत्रों मे प्रकाशित हुए उनसे ज्ञात होता था कि यह खबरे निराधार न थीं। सेक्रेटरी आफ स्टेट और वाइसराय का मत यही था कि हमे गिरफ्तार करके पूर्वी अफ्रीका भेज दिया जाए और इस आशय से कुछ व्यवस्था भी कर ली गई थी। परन्तु फिर राय बदल गई और अन्ततोगत्वा निश्चय हुआ कि हमें अहमदनगर दुर्ग मे सैनिक सरक्षण के अतर्गत रखा जाए और ऐसी कड़ी व्यवस्था की जाए कि हिन्दुस्तान मे बाहर भेजने का जो लक्ष्य था वह यहीं पूर्ण हो जाए।

अवसर नहीं दिया गया था। फिर जब यह रोक हटा दी गई तो १७ सितंबर को मुझे उसका पहला पत्र मिला और उसके पश्चात् बराबर पत्र मिलते रहे। मुझे पता था कि वह अपनी बीमारी का उल्लेख करके मुझे चिंतित करना स्वीकार नहीं करेगी। इसलिए घर के कुछ अन्य संबंधियों से हाल-चाल मालूम करता रहता था। पत्र यहां साधारणतः लिखी भेजे जाने वाली तिथि से १०-१२ दिन पश्चात् मिलते हैं। इसलिए कोई बात तुरंत ज्ञात नहीं हो सकती। १५ फरवरी को मुझे एक पत्र मिला जो २ फरवरी को भेजा गया था। इसमें लिखा था कि उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। मैंने तार द्वारा अधिक हाल-चाल मालूम किया तो एक सप्ताह के पश्चात् उत्तर मिला कि चिंता की कोई बात नहीं है। २३ मार्च को मुझे पहली सूचना उसके घातक रोग के संबंध में मिली। बंबई सरकार ने तार द्वारा निरीक्षक को सूचना दी कि इस विषय का एक तार उसे कलकत्ते से मिला है। ज्ञात नहीं कि जो तार बंबई सरकार को मिला वह किस तिथि का था और कितने दिनों के उपरांत यह निर्णय किया गया कि मुझे इस बात से अवगत कराया जाए।

सरकार ने हमारे कारावास का स्थान अपनी जान में गुप्त रखा है। इसलिए प्रारंभ से ही यह कार्य-पद्धति अपनाई गई है कि न तो यहां से कोई तार बाहर भेजा जा सकता है, न बाहर से कोई यहां आ सकता है क्योंकि यदि आएगा तो तार के कार्यालय के ही माध्यम से आएगा और ऐसी स्थिति में कार्यालय के लोगों को यह भेद पता चल जाएगा। इस प्रतिबंध का परिणाम यह है कि कोई भी बात कितनी ही शीघ्रता की हो किन्तु तार के द्वारा प्रेषित नहीं की जा सकती। यदि तार भेजना हो तो उसे लिख कर निरीक्षक को दे देना चाहिए। वह उसे डाक द्वारा बंबई भेजेगा। वहां से परीक्षणोपरांत उसे आगे भेजा जा सकता है। पत्र-व्यवहार पर नियंत्रण रखने की दृष्टि से यहां बंदियों को दो भागों में विभाजित कर दिया गया है। कुछ के लिए केवल बंबई का नियंत्रण पर्याप्त समझा गया है। कुछ के लिए आवश्यक है कि उनकी सारी डाक दिल्ली जाए और जब तक वहां से स्वीकृति न मिल जाए वह आगे न बढ़ाई जाए। मेरी डाक का संबंध दूसरे प्रकार की व्यवस्था से है इसलिए मुझे कोई तार एक सप्ताह से पहले नहीं मिल सकता और न मेरा कोई तार एक सप्ताह से पूर्व कलकत्ता पहुंच सकता है।

यह तार जो २३ मार्च को यहां पहुंचा सैनिक गुप्त लिपि में लिखा गया था। निरीक्षक इसे पढ़ नहीं सकता था। वह उसे सैनिक मुख्य कार्यालय में ले गया। वहां संयोगवश कोई ऐसा व्यक्ति उस समय उपस्थित न था जो इसे पढ़ सके। इसलिए पूरा दिन इसकी गुप्त लिपि को पढ़ने के प्रयास में निकल गया। रात्रि को अक्षरों में लिखी इसकी एक प्रतिलिपि मुझे मिल सकी।

दूसरे दिन सूचनापत्र आए तो उनमें भी इस बात की चर्चा थी। ज्ञात हुआ कि डाक्टरों ने स्थिति की सूचना सरकार को दे दी है और वह उत्तर की प्रतीक्षा में हैं। फिर रोग के संबंध में चिकित्सकों की सूचनाएं प्रति दिन प्रकाशित होने लगीं। निरीक्षक प्रतिदिन रेडियो से सुनता था और यहां कुछ मित्रों से इसकी चर्चा कर देता था।

जिस दिन तार मिला उसके दूसरे दिन निरीक्षक मेरे पास आया और उसने यह कहा कि यदि मैं इस संबंध में सरकार से कुछ कहना चाहता हूँ तो वह उसे तुरंत बंबई भेज देगा और यहां के प्रतिबंधों और निर्धारित नियमों के कारण इसमें कोई बाधा उत्पन्न नहीं होगी। वह स्थिति से अत्यंत प्रभावित था और अपनी सहानुभूति का विश्वास मुझे दिलाना चाहता था। परन्तु मैंने उससे स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि मैं सरकार से कोई निवेदन नहीं करना चाहता। फिर वह जवाहरलाल के पास गया और उनसे इस संबंध में बात की। वह तीसरे पहर मेरे पास आए और बहुत देर तक इस बारे में बातचीत करते रहे। मैंने उनसे भी यही बात कही जो निरीक्षक से

था। इसके पश्चात् ज्ञात हुआ कि निरीक्षक ने यह बात बंबई सरकार की अनुमति से

जैसे ही घातक स्थिति की पहली सूचना मिली, मैंने अपने मन को टटोलना आरंभ कर
नुष्य का स्वभाव भी कुछ विलक्षण है। सारा जीवन हम इसकी देखभाल में व्यतीत कर
र भी यह पहेली ही बना रहता है। मेरा जीवन प्रारंभ से ही ऐसी परिस्थितियों में बीता
को धैर्यवान बनाने के अवसर जीवन में आते रहे और जहां तक संभव था मैंने धैर्य और
दर्शित करने में कमी नहीं की।

फेर भी मैंने अनुभव किया कि मन अशांत हो गया है और उस पर नियंत्रण रखने के
र्ष करना पड़ेगा। यह संघर्ष मस्तिष्क को नहीं किन्तु शरीर को थका देता है। शरीर अंदर
ः घुलने लगता है।

उस समय मेरे मन और मस्तिष्क की जो स्थिति रही, मैं उसे छुपाना नहीं चाहता। मैंने
ो कि इस स्थिति को संपूर्ण धैर्य और शांति के साथ सहन कर सकूँ। इस प्रयत्न में मेरा
सफल हुआ किन्तु संभवतः मेरा अंतस्तल न हो सका। मैंने अनुभव किया कि अब
ः बनावट और दिखावट की वही भूमिका प्रस्तुत करने लगा है जो भावनाओं और
ओं के संबंध में हम सदैव अनुभव करते हैं और अपने ऊपरी अस्तित्व को आभ्यंतरिक
ा के समान नहीं बनने देते।

सबसे पहला प्रयत्न यह करना पड़ा कि यहां जीवनचर्या के जो कार्यक्रम निर्धारित किए
ए हैं, उनमें रुकावट न आने पाए। चाय और खाने के चार समय हैं जिन में मुझे अपने
से निकलना और कमरों की पंक्ति के अंतिम छोर के एक कमरे में जाना पड़ता है।
र्ा में समयसारिणी का मिनटों के हिसाब से पालन करने का मैं अभ्यस्त हो गया हूँ।
ए यहां भी उसके पालन की रीति प्रचलित हो गई और सभी साथियों को भी इसका साथ
ड़ा। मैंने इन दिनों में भी अपने कार्यक्रमों को निरंतर चलाए रखा। ठीक समय पर कमरे से
ता रहा और खाने की मेज पर बैठता रहा। भूख नितांत समाप्त हो चुकी है परन्तु मैं अन्न
छ ग्रास गले से उतारता रहा। रात्रि के भोजन के पश्चात् कुछ देर तक प्रांगण में कुछ
यों के साथ संगोष्ठी हुआ करती थी। इसमें भी कोई अंतर नहीं आया। जितनी देर तक
बैठता था, जिस प्रकार बातें करता था और जिस तरह की बातें करता था, वह सब कुछ
नेयम होता रहा।

पत्र यहां बारह से एक बजे के बीच आया करते हैं। मेरे कमरे के दूसरी ओर सामने
क्षक का कार्यालय है। जेलर वहां से अखबार लेकर सीधा मेरे कमरे में आता है। जैसे ही
े कार्यालय से उसके निकलने और चलने की आहट आना आरंभ होती थी, दिल धड़कने
ा था कि पता नहीं आज कैसी सूचना पत्रों से मिलेगी। परन्तु फिर मैं तुरन्त चौंक उठता।
ोफे की पीठ द्वार की ओर है। इसलिए जब तक कोई व्यक्ति अंदर आकर सामने खड़ा न हो
वह मेरा मुख देख नहीं सकता। जब जेलर आता था तो मैं यथानियम मुस्कराते हुए संकेत
ा कि पत्र मेज पर रख दे और फिर लिखने में तल्लीन हो जाता, जैसे बताना चाहता था कि
पढ़ने की कोई शीघ्रता नहीं है। मैं स्वीकार करता हूँ कि यह समस्त बाह्याडंबर दिखावे की
भूमिका थी जिसका अभिनय मस्तिष्क का अहंकार करता रहता था और वह इस कारण से
अभिनय करता था कि कहीं उसके धैर्य और प्रतिष्ठा पर अधीरता और व्याकुलता का कोई
ा न लग जाए।

अंततोगत्वा ९ अप्रैल को मेरे अवसाद का यह प्याला भर गया।

२ बजे निरीक्षक ने बंबई सरकार का एक तार लाकर दिया जिसके द्वारा इस दुर्घटना की सूचना दी गई थी। इसके पश्चात् ज्ञात हुआ कि निरीक्षक को यह सूचना रेडियो के माध्यम से प्रातः ही मालूम हो गई थी और उसने यहां कुछ मित्रों से इसकी चर्चा भी कर दी थी। परन्तु मुझे सूचना नहीं दी गई थी।

इस अवधि में यहां के मित्रों का जो व्यवहार रहा उसके लिए मै उनका आभारी हूं। प्रारंभ में जब रोगग्रस्त होने की सूचनाएं आने लगीं तो स्वभावतया उन्हे चिन्ता हुई। वे चाहते थे कि इस संबंध में जो कर सकते हैं करें किन्तु जैसे ही उन्हें मालूम हो गया कि मैंने अपने व्यवहार के संबंध में एक निर्णय कर लिया है और मै सरकार से कोई निवेदन नहीं करना चाहता तो फिर सबने मौन धारण कर लिया और इस प्रकार मेरी दिनचर्या में किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं हुआ।

इस प्रकार हमारा २६ वर्षीय विवाहित जीवन समाप्त हो गया और मृत्यु की दीवार हम दोनों के बीच खड़ी हो गई। हम अब भी एक-दूसरे को देख सकते हैं किन्तु इसी दीवार की ओट से। मुझे इन थोड़े दिनों के अंदर वर्षों की यात्रा करनी पड़ी है। मेरे संकल्प ने मेरा साथ नहीं छोड़ा किन्तु मैं महसूस करता हूँ कि मेरे स्नायु शिथिल हो गए हैं।

यहां के प्रांगण में एक पुरानी कब्र है। पता नहीं किसकी है। जब से आया हूँ सैकड़ों बार उसे देख चुका हूँ। परन्तु अब उसे देखता हूँ तो ऐसा आभास होने लगता है मानो इसके प्रति स्नेह का एक नवीन भाव मन में उत्पन्न हो गया हो। कल संध्या के समय देर तक उसे देखता रहा।

अब लेखनी रोकता हूँ। यदि आप मेरी बातें सुनते होते तो बोल उठते :

'सौदा[१] खुदा के वास्ते कर क़िस्सा[२] मुख़्तसर[३],
अपनी तो नींद उड़ गई तेरे फ़साने[४] से।

ग़ुबार-ए-ख़ातिर

बन्दी जीवन और चाय का आनंद

ीर की प्रत्येक कड़ी चाय के घूंट और सिगरेट के कश के रसायन से बनी है और यह चल रही है। तनिक उस सौंदर्य के बारे में सोचिए जो दोनों के ठीक-ठीक अनुपात में ' में लाने से संतुलित रूप में उत्पन्न होता है जब मेरे सिगरेट की अंतिम चिंगारी के रूप में ाी अंतिम प्याली के साथ तंबाकू समाप्त होती है।

बंदी जीवन और चाय का आनन्द *

अहमदनगर दुर्ग,
दिसम्बर १७, १९४३

मित्रवर,

समय वही है, परन्तु खेद है कि वह चाय उपलब्ध नहीं है जो मेरी इन्द्रियों को उत्तेजित और चिंताग्रस्त मस्तिष्क को संतोष प्रदान किया करती है :

फिर देखिए अन्दाज़े[1] गुल अफ़शानी[2]–गुफ़्तार[3]
रख दे कोई पैमाना[4]–ए–सहबा[5] मेरे आगे

(मेरे आगे कोई मदिरा का प्याला रख दे तो फिर देखे कि मेरे मुँह से बातों के फूल झड़ते हैं।)

वह चीनी चाय जिसका मैं अभ्यस्त था कई दिन हुए समाप्त हो गई और अहमदनगर व पूना के बाजारों में कोई इस बहुमूल्य पदार्थ से परिचित नहीं।

हानि और लाभ की दुनिया में कोई ऐश्वर्य नहीं जो किसी नैराश्य से संबद्ध न हो। यहां मदिरा का ऐसा कोई प्याला भरा ही नहीं गया जिसमें मिश्रण न हो। सफलता की मदिरा के पीछे सदैव विफलता का उन्माद लगा रहा और मधुमास की मुस्कान के पीछे हमेशा पतझड़ का रुदन होता रहा। अबुलफजल ने ठीक ही कहा है :

"मदिरा का प्याला भरते ही खाली हो गया और जैसे ही कोई पृष्ठ पढ़ लिया गया वह उलट दिया गया।" *

मालूम नहीं कि इस बात की जटिलताओं और इसके रहस्यों पर आपका ध्यान कभी गया है या नहीं? अपनी मनःस्थिति की चर्चा क्या करूँ? वास्तविकता यह है कि समय की बहुत सी समस्याओं के समान इस संबंध में भी मैं कभी आम डगर से सहमत न हो सका। दुनिया के कुमार्गगमन पर सदैव सीना पीटता रहा।

चाय के संबंध में अपने समकालीनों से मेरा मतभेद केवल शाखाओं और पत्तियों के बारे में नहीं हुआ कि समझौते की स्थिति उत्पन्न हो सकती, बल्कि सिरे से जड़ में हुआ अर्थात् मतभेद आंशिक नहीं, मूल सिद्धांत का है।

---

१ अंदाज = ढंग, २ गुलअफशानी = फूल झाड़ना, ३ गुफ्तार = बात, ४ पैमाना = चषक, ५ सहबा = साकी

* नवाब सदयार जंग को लिखे अपने कई पत्रों में मौलाना ने चाय पीने के आनंद के संबंध में लिखा है। बहुधा उन्हीं पत्रों में इन्होंने जीवन के उन सुखों का उल्लेख किया है जो इन्हें कारावास में प्राप्त होते हैं। प्रथम तो केवल ऐंद्रिक सुख है और द्वितीय प्रकार का आनन्द मानसिक और दार्शनिक है। उपर्युक्त उद्धरण गुबार-ए-खातिर में संकलित तीन पत्रों से लिए गए हैं और जिन का उल्लेख पाद-टिप्पणी १, २, ३ में किया गया है।

*– गुबार-ए-खातिर, पृष्ठ १८९-१९१

य के संबंध में सबसे पहला प्रश्न स्वय चाय का प्रस्तुत होता है। मैं चाय को चाय के हूँ। लोग चीनी और दूध के लिए पीते है। मेरे लिए वह साध्य है। उनके लिए साधन ए मैं किस ओर जा रहा हूँ और दुनिया किधर जा रही है:

य चीन की उत्पत्ति है और चीनियों के अनुसार पन्द्रह सौ वर्ष से उपयोग की जा रही वहां कभी किसी को स्वप्न में भी यह विचार नहीं हुआ कि इस सूक्ष्म तत्त्व को दुग्ध की ी मिश्रित किया जा सकता है। जिन-जिन देशों में उदाहरणतः रूस, तुर्किस्तान, ईरान । प्रत्यक्ष रूप से चाय पहुंची वहां भी किसी को यह विचार नहीं हुआ। परन्तु सत्रहवीं ं जब अंग्रेज़ इससे परिचित हुए तो न जाने क्यों इन लोगों को क्या सूझी कि इन्होंने ने की घृणित प्रथा प्रारंभ की और चूंकि हिन्दोस्तान में चाय का रिवाज़ इन्हीं के द्वारा लेए यह विकृति यहां भी फैल गई। शनैः-शनैः बात यहां तक पहुँच गई कि लोग चाय लने की जगह दूध में चाय डालने लगे। संसार में अत्याचार का आधार सीमित होता है, आता है उसमें वृद्धि करता जाता है। अब अंग्रेज़ तो यह कहकर अलग हो गए कि ध नहीं डालना चाहिए। किन्तु अनाचार के बोये उनके बीज ने जो पत्ते और फल उत्पन्न उन्हें कौन छांट सकता है। लोग चाय की जगह एक प्रकार का तरल हलुवा बनाते हैं जगह पीते हैं और हर्षित होते हैं कि हमने चाय पी ली। इन मूर्खों से कौन कहे कि:

हाय कमबख़्त, तूने पी ही नहीं।

री चाय बहुत रुचिकर है। चीन की उत्तम प्रकार की है। रंग इतना हल्का कि चाय का ही न हो। अबुनिवास के शब्दों में:

"बोतल पारदर्शी है और मदिरा भी। दोनों एक जैसे हैं और अभेद्य हैं।"

इसकी सुगंध इतनी तेज़ है कि सचमुच ही हर कप मुझे कानी के अत्यन्त नशीली मदिरा ह का स्मरण कराता है।

संभवतः आपको नहीं मालूम कि चाय का मेरा अपना समारोह है। मैंने चाय की सूक्ष्मता ठास को तंबाकू की तेज़ी और कड़ुवाहट से मिश्रित करके एक रुचिकर मिश्रण तैयार ा प्रयत्न किया है। चाय का पहला घूंट लेते ही मैं साधारणतः एक सिगरेट सुलगा लिया हूँ। फिर इस विशिष्ट प्रक्रिया को इस प्रकार सपन्न करता हूँ कि थोड़े-थोड़े अन्तराल के चाय का एक घूंट लूंगा और इसी के साथ सिगरेट का भी एक कश लेता रहूंगा। ज्ञानी क्रया को "क्रिया की एक स्थिर और अविरत श्रृंखला कहेंगे।" इस प्रकार इस प्रक्रिया की कड़ी चाय के एक घूंट और सिगरेट के एक कश के पारस्परिक मिश्रण से शनैः-शनैः ढलती है और कार्य-श्रृंखला लंबी होती रहती है। तनिक इन दोनों के सेवन के ठीक-ठीक ों के सौंदर्य पर विचार कीजिए कि इधर कप अंतिम बूंद से रिक्त हुआ, उधर जलती हुई ने सिगरेट की उस अंतिम रेखा तक पहुंच कर दम लिया, जहां तक वह पी जा सकती है।

रबी का विख्यात प्राचीन कवि।

९वीं शताब्दी का विख्यात फारसी कवि।

दिनाक ३ अगस्त, १९४२। मौलाना ने बबई जाते हुए यह पत्र ट्रेन मे लिखा था। यह पत्र उस व्यक्ति तक न पहुंच जिसे लिखा गया था क्योंकि छै दिन पश्चात् ९ अगस्त, १९४२ ई० को मौलाना गिरफ्तार कर लिए गए थे। ए-ख़ातिर, पृष्ठ ३६-३९

तेज और सूक्ष्म के मिश्रण से आनंदोन्माद का जो संतुलित गुण प्रस्तुत होता है, उसका वर्णन कैसे करूँ।

आप कहेंगे, चाय की आदत स्वतः एक इल्लत थी, फिर दूसरे नशे की वृद्धि क्यों की जानी चाहिए? इस प्रकार की बातों से मिश्रण और परिवर्तन की पद्धति काम में लाना, लतों पर लतें बढ़ाना, मादकता और उसके उतार की पुरानी कहानी को दुहराना है। मैं स्वीकार करूंगा कि यह स्वतः निर्मित सभी आदतें निःशंक रूप से जीवन की गलतियों में सम्मिलित हैं। लेकिन क्या कहूँ !जब कभी इसके इस पक्ष पर विचार किया तो मन इस बात पर संतुष्ट न हो सका कि जीवन को गलतियों से नितांत निष्कलंक बना दिया जाए। ऐसा ज्ञाता होता है कि इस भवसागर में जीवन को जीवन बनाए रखने के लिए कुछ न कुछ गलतियाँ ज़रूर करनी चाहिए। विचार कीजिए कि वह जीवन ही क्या हुआ जिसकी चादर पर कोई पाप का धब्बा न हो? वह चाल ही क्या जो लड़खड़ाहट से नितांत मुक्त हो? और फिर यदि चिंतन-मनन का एक पग और बढ़ाइये तो सारी बात अंततोगत्वा वहीं समाप्त हो जायेगी जहां कभी सिरास के ज्ञानी हाफ़िज़[3] ने उसे देखा था :

"आओ और देखो कि इस दुनिया का कौतूहल समाप्त नहीं हुआ।"

"न तो ऐसी पवित्रता से जैसी तुम्हारी है और न ऐसे पाप से जो मैंने किए हैं।"

यदि पूछिये कि कर्म की सफलता का मापदंड क्या हुआ? यदि यह पाप लिप्सायें मार्ग में रुकावट न समझी गई तो इसका उत्तर वही है जो सूफ़ियों ने सदैव दिया है:

हर बात का त्याग करो किन्तु सबसे परिचित भी रहो। अर्थात् निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों का समावेश इस प्रकार कीजिए कि पापाचार सम्पन्न हो, किन्तु मनुष्य उससे निर्लिप्त रहे। इस मार्ग में कांटों से उलझने से अवरोध उत्पन्न नहीं होता, अवरोध उत्पन्न होता है इसमें लिप्त हो जाने से। कुछ आवश्यक नहीं कि आप इस भय से सदैव अपना वस्त्र समेटे रहें कि कहीं भीग न जाये। भीगता है तो भीगने दीजिए, किन्तु आप के बाहुबल में वह शक्ति अवश्य होनी चाहिए कि जब चाहा उसे इस प्रकार निचोड़ कर रख दिया कि पाप की एक बूंद भी शेष न रही :

तरदामनी[1] पे शैख़ हमारी न जाइयो,
दामन निचोड दें तो फ़रिश्ते[2] वज़ू[3] करें।

(ऐ शैख़ मेरे पाप लिप्त होने पर भ्रम में न रहना, मैं इतना पवित्र हूँ कि यदि अपने वस्त्र को निचोड़ दूँ तो पुनीत आत्मायें उससे पवित्र होने के लिए प्रक्षालन करें।)

मैंने बंदी जीवन को दो विरोधी दर्शनों से निर्मित किया है। इसमें एक अंश वैराग्यवादियों का है और एक अनुरागवादियों का[4]। जहां तक परिस्थितियों की प्रतिकूलता का सम्बन्ध है वैराग्य से उनके घावों पर मरहम लगाता हूँ। जहां तक जीवन के सुखों का संबंध है अनुरागवादियों का दृष्टिकोण अपनाता हूँ और प्रसन्नचित्त रहता हूँ। मैंने अपनी काकटेल के चषक में दोनों बोतलें उड़ेल दी हैं। इस मिश्रण के बिना मेरी तृप्ति नहीं हो सकती थी। काकटेल की यह विशिष्ट पद्धति हर उस व्यक्ति के बस का रोग नहीं है जो परिपक्व न हो। वरमॉथ और जिन का मिश्रण पीने वाले इस तेज़ मदिरा को सहन नहीं कर सकेंगे।

आप कहेंगे कि बंदी-जीवन वैराग्य के लिए तो अनुकूल है क्योंकि जीवन के सुख-दुख से बेपरवाह बना देना चाहता है। परन्तु अनुराग के ऐश्वर्य का वहां क्या अवसर है? जो हतभाग्य

---

३. हाफ़िज़, दीवान-ए-हाफिज

---

* १. तरदामनी =पापाचार, २. फ़रिश्ते =पुनीत आत्माएं, ३. वजू =पवित्र होने के लिये प्रक्षालन।

४-पत्र दिनांक २७ अगस्त, १९४२; **गुबार-ए-ख़ातिर** पृष्ठ ९७-१०३

बंदीगृह से बाहर की स्वतंत्रता में भी जीवन की आनंदोन्मादकता से वंचित रहते हैं, उन्हें कारावास के वंचनापूर्ण जीवन में इसकी सामग्री कहां प्राप्त हो सकती है? किन्तु मैं आपको स्मरण कराऊंगा कि मनुष्य का वास्तविक आनंद मानसिक है। शरीर का नहीं है। मैं अनुरागवादियों से उनकी मानसिकता ले लेता हूँ, शरीर उनके लिए छोड़ देता हूँ। स्वर्गीय दाग़ ने नीतिप्रचारक से केवल उसकी जिह्वा ले लेनी चाही थी।

मिले जो हश्र[1] में, ले लूँ ज़बान नासेह[2] की
अजीब[3] चीज़ है यह तूले मुद्दआ[4] के लिए।

कर्मों के लेखे-जोखे के बदले यदि नीति प्रचारक की जिह्वा जो मुझे मिल जाए तो मैं ले लूँ, क्योंकि यह अभिप्रायों को विस्तारपूर्वक अभिव्यक्त करने के लिए अत्यन्त विलक्षण उपकरण है।

विचार कीजिए तो यह भी हमारी चेतना का एक भ्रम ही है कि आनंद के उपकरणों को सदैव अपने से बाहर ढूँढ़ते रहते हैं। यदि भ्रम का यह आवरण हटा कर देखें तो स्पष्टतः दिखाई देगा कि वह हमसे बाहर नहीं है। स्वयं हमारे अन्तस्तल में ही विद्यमान है। हर्षोल्लास के जिन पुष्पों को हम चारों ओर ढूँढ़ते हैं और नहीं पाते, वह हमारे मन के अभ्यंतर के उपवनों में ही सदैव हिलते और मुरझाते रहते हैं। परन्तु विडंबना यह हुई कि हमें चारों ओर की सूचना है किन्तु स्वयं अपना ही ज्ञान नहीं है :

कहीं तुझको न पाया गर्चे हमने इक जहां ढूंढ़ा
फिर आख़िर दिल ही में पाया, बग़ल ही में से तू निकला।

(हमने सारी दुनिया में तुझे ढूँढ़ा और न पाया। अन्ततोगत्वा तुझे अपने हृदय में पाया और तू बगल ही से निकला।)

जंगल का मयूर कभी उद्यान की खोज नहीं करता। उसका उपवन स्वयं उसके पास में विद्यमान रहता है। जहां कहीं अपना पर खोल देगा, विभिन्न रंगों के पुष्पों का उद्यान विकसित हो जायेगा।

जेल की चार-दीवारी के भीतर भी सूर्य प्रत्येक दिन चमकता है और चांदनी रातों ने कभी बंदी और स्वतंत्र मनुष्य में भेद नहीं किया। अंधेरी रातों में जब आकाश में तारों की रोशनी खिल जाती है तो वह केवल कारावास के बाहर ही नहीं चमकती। वो प्रतिबंध और अवसाद में पलने वालों को भी अपनी सुषमा का संदेश भेजती है। प्रातः जब सूर्य की किरणें बिखेरता हुआ आएगा और संध्या जब क्षितिज की लालिमामय चादरें फैलाने लगेगी तो केवल ऐश्वर्य के प्रसादों के गवाक्षों ही से उनको नहीं देखा जायेगा। बंदीगृह के सुराखों से लगी हुई आँखें भी उन्हें देख लिया करती हैं। प्रकृति ने मनुष्य के समान कभी यह नहीं किया कि किसी को आनंदित करे और किसी को उससे वंचित रखे। वह जब कभी अपने मुखड़े से अवगुंठन उठाती है तो सब को समान रूपेण सौंदर्य के दर्शन के लिए आमंत्रित करती है। यह दोष हमारा है कि हम दृष्टि उठाकर देखते नहीं और केवल अपने परिवेश में ही खोये रहते हैं।

जिस बंदीगृह में प्रभात प्रत्येक दिन मुस्कराता हो, जहां हर रोज़ संध्या निशा की चादर

---

१. हश्र =कर्मों के लेखे-जोखे का दिन, २. नासेह =नीतिप्रचारक, ३. अज़ीब =विचित्र, ४ तूले मुद्दआ =अभिप्राय की विस्तृत अभिव्यक्ति।

ओढ़कर आती हो, जिसकी रातें कभी सितारों से जगमगाने लगती हों, कभी चंद्रमा की के सौंदर्य की छटा से प्रकाशित रहती हों, जहां दोपहर प्रत्येक दिन चमके, क्षितिज हर रोज़ पक्षी प्रत्येक प्रभात और संध्या को चहकें, उसे बंदीगृह होने पर भी आनंदोल्लास की स रिक्त क्यो समझ लिया जाय ? यहां ऐश्वर्य के उपकरणों का तो इतना आधिक्य है वि कोने में भी लुप्त नही हो सकता।

यदि प्रासाद और स्थान न हों तो हम किसी वृक्ष की छाया से काम चला लें। रेः मखमल का फर्श न मिले तो अपने आप उगी हुई हरी घास के फर्श पर जा बैठें। यदि ि प्रकाश के कुमकुम उपलब्ध नहीं है तो आकाश की कंदीलों को कौन बुझा सकता है यि का समस्त कृत्रिम सौंदर्य ओझल हो जाए—सुबह अब भी प्रत्येक दिन मुस्करायेगी। ज्योत भी सदैव अपनी सुषमा बिखेरेगी। परन्तु यदि हृदय में ही उत्साह और उमंग न रहे तो लिए बतलाइये कि इसका उपाय क्या हो ? उसके रिक्त स्थान को भरने के लिए किस अंगारे काम देंगे :

मुझे यह डर है, दिले ज़िन्दः ! तू न मर जाए
कि ज़िन्दगानी इबारत[१] है तेरे जीने से

(ऐ जीवंत हृदय मुझे आशंका है कि कहीं तू मर न जाए क्योंकि जीवन का त कोई अर्थ है जब तक तुझमें उत्साह और उमंग हो।)

मैं आपको बतलाऊँ इस मार्ग में मेरी सफलताओं का रहस्य क्या है ? मैं अपने कहीं भी दूर या अलग नहीं होने देता। कोई भी स्थिति हो, कोई स्थान हो, उसकी तः धीमी नहीं पड़ेगी। मैं जानता हूँ कि जीवन-जगत की समस्त महत्ता अभ्यंतर की इसी के दम से है। यह उजड़ा कि सारी दुनिया उजड़ गई। ऐश्वर्य के समस्त बाह्य उपकरण छिन जायें, किन्तु जब तक यह नही छिनता, मेरे जीवंत आह्लाद की मादकता को व सकता है।

आपको ज्ञात है, मैं सदैव प्रातः तीन से चार बजे के बीच उठता हूँ और चाय प्यालियाँ पीकर आलस्य को दूर करता हूँ। प्याली चषक होती है और चाय प्रातः पी ज मदिरा। यह समय सदैव मेरी दिनचर्या का अत्यधिक आनंददायक समय होता है किन्त के जीवन में इसकी मादकता और आत्मविभोरता एक दूसरी ही स्थिति उत्पन्न कर

हाँ कोई व्यक्ति ऐसा नहीं होता जो उस समय निद्रामग्न आंखें लिए हुए सुघड़ता से चाय बनाकर मेरे सामने रख दे। इसलिए स्वतः अपने ही इच्छुक हाथों से द पड़ता है। मैं उस समय पुरानी मदिरा की बोतल के स्थान पर चीनी चाय का ता खोलता हूँ और एक कलाकार जैसी लगन से चाय बनाता हूँ। फिर चषक और सुराही व दाहिनी ओर जगह दूंगा कि उसकी प्रधानता इसकी अधिकारी हुई। लेखनी और कागज ओर रखूंगा क्योंकि कार्य-प्रणाली में उनका स्थान द्वितीय हुआ। फिर कुर्सी पर बैठ जा कुछ न पूछिये कि बैठते ही किस लोक मे पहुँच जाऊंगा। किसी मद्यप ने शाम्पेन और बो माला पुरानी मदिरा में भी वह आनंद और मादकता कहां पाई होगी, जो मैं चा प्रातःकालीन प्रत्येक घूंट से प्राप्त करता हूँ।

आपको ज्ञात है कि मैं चाय के लिए रूसी प्यालिया काम में लाता हूँ। यह साधारण प्यालियों से बहुत छोटी होती हैं। यदि अरुचिकर ढंग से पीजिये तो दो घूं

१ इबारत =पहचान

समाप्त हो जाये। किन्तु ईश्वर न करे मैं ऐसी रुचि-हीनता का प्रदर्शन क्यों करने लगा? मैं एक अभ्यस्त पीने वाले के समान ठहर-ठहर कर पीऊंगा और छोटे-छोटे घूट लूंगा। फिर जब पहली प्याली समाप्त हो जायेगी, मैं कुछ समय के लिए रुक जाऊंगा और इस अंतराल को जितना बढ़ा सकूंगा बढ़ाऊंगा ताकि इसके बाद की हर प्याली का अधिक से अधिक आनंद ले सकूं। फिर दूसरी और तीसरी प्याली के लिए हाथ बढ़ाऊंगा और दुनिया को, और हानि लाभ के उसके सारे कार्य-व्यापार को नितांत विस्मृत कर दूंगा। इस समय भी कि यह पंक्तियां अनायास लेखनी की नोक से निकल रही हैं, मैं उसी आनंद-लोक में हूँ, और नहीं जानता कि ९ ९ अगस्त के प्रातःकाल के पश्चात् से संसार में क्या हुआ और अब क्या हो रहा है।

मेरा दूसरा उल्लासपूर्ण समय दोपहर का होता है या अत्यन्त ठीक-ठीक कहूं तो अपरान्ह का समय होता है। लिखते-लिखते थक जाता हूँ तो थोड़े समय के लिए लेट जाता हूं। फिर उठता हूँ, स्नान करता हूँ, पुनः चाय पीने का आनंद लेता हूँ और नई स्फूर्ति से युक्त होकर पुन अपने कार्यक्रमों में तल्लीन हो जाता हूँ। उस समय आकाश की स्वच्छ नीलिमा और सूर्य की अनावृत चमक का जी भर कर आनंद लूंगा। हृदय के एक-एक द्वार और एक-एक खिड़की को खोल दूंगा। मन चाहे कितना भी अवसादों और चिंताओं से धूल-धूसरित क्यों न हो, किन्तु आकाश के उच्च ललाट और सूर्य की चमकती हुई मुस्कान देखकर वह फिर से ताज़ा होकर खिल पड़ता है।

ग़ुबार-ए-ख़ातिर

संगीत

उन रातों में अपना सितार लेकर मैं विशेष रूप से ताज चला जाता था। वहां मैं यमुना की ओर मुँह करके चन्द्रिका-युक्त छत पर बैठ जाता था। यह स्मारिका जब चांदनी में नहाने लगती थी तो मैं अपने सितार पर एक राग छेड़ देता था और उसकी संगीतात्मकता में पूर्णतया आत्मविभोर हो जाता था।

संगीत *

१६ सितम्बर, १९४३

शायद आप को ज्ञात नहीं कि एक समय मुझे संगीत के अध्ययन और अभ्यास का भी शौक रह चुका है। यह कार्य-व्यापार कई वर्षो तक चलता रहा था। इसका श्रीगणेश यूं हुआ कि १९०५ ई० में जब शिक्षा पूर्ण हो चुकी थी और शिक्षार्थियों को पढ़ाने में व्यस्त था तो पुस्तकों का प्रेम मुझे बहुधा एक पुस्तक-विक्रेता खुदाबख्श के यहां ले जाया करता था जिसने वैलेज़ली स्ट्रीट पर मदरसा-कालिज के सामने दुकान ले रखी थी और अधिकांशतः अरबी और फारसी की हस्तलिखित पुस्तकों के क्रय-विक्रय का व्यापार किया करता था। एक दिन उसने फ़क़ीर उल्लाह सैफ़ खाँ की राग-दर्पण की एक अत्यंत सुलिखित और चित्रित प्रति मुझे दिखाई और कहा कि इस पुस्तक का संबंध संगीत-कला से है। सैफ़ खां औरंगज़ेब के शासन-काल में एक पदाधिकारी था और भारतीय सगीत के ज्ञान और अभ्यास में निपुण था। उसने संस्कृत की एक पुस्तक का फ़ारसी में अनुवाद किया जो राग-दर्पण के नाम से विख्यात हुई। यह प्रति जो खुदाबख्श के हाथ लगी थी आसिफ़ जाँह के पुत्र नासिर जंग शहीद के पुस्तकालय की थी और इसे अत्यंत सुघड़ता से तैयार किया गया था। मैं अभी इसकी भूमिका पढ़ रहा था कि मिस्टर डैनसम रॉस आ गए जो उस काल में मदरसा-ए-आलिया के प्रधानाचार्य थे और ईरानी लहजे में फ़ारसी बोलने में अत्यधिक रुचि रखते थे। यह देखकर कि एक अल्पायु लड़का फारसी की एक हस्तलिखित पुस्तक का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर रहा है, आश्चर्यचकित हुए और मुझसे फारसी में पूछा–"यह किस लेखक की पुस्तक है"? मैंने फ़ारसी में उत्तर दिया कि शैफ़ खां की पुस्तक है और संगीत कला से संबद्ध है। उन्होंने पुस्तक मेरे हाथ से ले ली और स्वयं पढ़ने का प्रयत्न किया। फिर कहा कि भारतीय संगीत-कला अत्यन्त जटिल कला है। क्या तुम इस पुस्तक के प्रतिपाद्य को समझ सकते हो? मैंने कहा जो भी पुस्तक लिखी जाती है, इसलिए लिखी जाती है कि लोग उसे पढ़ें और समझें। मैं भी इसे पढ़ूंगा तो समझ लूंगा। उन्होंने हँस कर कहा-'तुम इसे नहीं समझ सकते। यदि समझ सकते हो तो मुझे इस पृष्ठ का अर्थ समझाओ।' उन्होंने जिस पृष्ठ की ओर संकेत किया था उसमें रागों का वर्गीकरण किया गया था। मैंने शब्द पढ़ लिए किन्तु अर्थ कुछ ममझ में नहीं आया। लज्जित होकर चुप हो गया और अंततोगत्वा कहना पड़ा कि इस समय इसका अर्थ नहीं बता सकता; गंभीरतापूर्वक अध्ययन करने के पश्चात् बता सकूंगा।

मैंने पुस्तक ले ली और घर आकर उसे आद्योपांत पढ़ लिया परन्तु ज्ञात हुआ कि जब तक संगीत की परिभाषिकी पर अधिकार न हो और किसी कला-निपुण से उनके अर्थ समझ न लिए जाएं पुस्तक का प्रतिपाद्य समझ में नहीं आ सकता। शिक्षार्थी जीवन में ही इस बात का अभ्यस्त हो गया था कि जो भी पुस्तक हाथ आई उसका अवलोकन करते ही समस्त विषय पर अधिकार प्राप्त हो गया। अब जो यह बाधा उत्पन्न हुई तो मुझे अत्यधिक उलझन हुई। विचार

---

* यह उद्धरण मगीत के इतिहास और कला के मबध मे नवाब मद्रयार जग को अहमदनगर जेल मे लिखे गए मौलाना के पत्र मे लिया गया है।

हुआ कि किसी संगीतज्ञ से सहायता लेनी चाहिए, किन्तु सहायता ली जाए तो किससे ली जाए पारिवारिक मर्यादा कुछ ऐसी थी कि संगीत से प्रेम रखने वाले के साथ मिलना सरल न था। अंततः मसीता खां की ओर मेरा ध्यान गया। इस पेशे का यही एक व्यक्ति था जो हमारे यहां आना-जाना था।

इस मसीता खां की चर्चा भी उल्लेखनीय है। यह अम्बाला ज़िले में सोनीपत का रहने वाला था और व्यवसाय की दृष्टि से गायक घराने से संबंध रखता था। गाने की कला में उसने अच्छी तरह निपुणता प्राप्त की थी और यह कला दिल्ली और जयपुर के उस्तादों से अर्जित की थी। वह कलकत्ते में वेश्याओं को संगीत सिखाया करता था।

तकरीब कुछ तो बहेरि मुलाकात चाहिये

स्वर्गीय पिताजी की सेवा में दीक्षार्थ उपस्थित हुआ। उनका सिद्धांत था कि इस प्रकार के लोगों को दीक्षित नहीं करते थे। किन्तु सुधार करने और उनकी ओर ध्यान देने का द्वार भी बंद नहीं करते थे। कहते कि बिना दीक्षा के आते रहो, देखो ईश्वर की इच्छा क्या है। बहुधा ऐसा हुआ कि कुछ दिनों के पश्चात् लोग स्वतः अपना व्यवसाय छोड़ कर पश्चाताप करने लगे। मसीता खां को भी यही उत्तर मिला।

स्वर्गीय पिताजी वीरवार के दिन प्रवचन समाप्त करने के पश्चात् जामा मस्जिद से घर आते तो पहले कुछ समय तक बैठक में बैठते। फिर अंदर जाते और उनके मुख्य मुरीद पालकी के साथ चलते हुए आ जाते और अपना-अपना निवेदन प्रस्तुत करके विदा हो जाते। मसीता खां भी प्रत्येक वीरवार के प्रवचन के पश्चात् उपस्थित होता और दूर फ़र्श के किनारे हाथ बांधकर खड़ा रहता। कभी स्वर्गीय पिताजी की दृष्टि पड़ जाती तो पूछ लेते, "मसीता खां क्या हाल है ?" निवेदन करता "आपकी कृपा-दृष्टि का आकांक्षी हूँ।" कहते—"हां, अपने मन की लगन में लगे रहो।" वह हर्ष-विभोर होकर पांव पर गिर जाता और अपने आंसुओं की झड़ी से उन्हें भिगो देता। जौक ने कितनी सुन्दरता से इस बात को अभिव्यक्त किया है :

हुए हैं तर गिरया[1]-ए-नदामत[2] से इस क़द्र[3] आस्तीन व दामन
कि मेरी तर दामनी[4] के आगे अर्क-अर्क[5] पाक दामनी[6] है

(आस्तीन और दामन पश्चात्ताप के आंसुओं से इतने भीग गए हैं कि मेरी पापलिप्ति के आगे पवित्रता लज्जित है) कभी निवेदन करता कि रात्रि की संगोष्ठी में उपस्थिति का आदेश हो जाए। रात की संगोष्ठी मुख्य मुरीदों की शिक्षा-दीक्षा के लिए सप्ताह में एक बार हुआ करती थी। मसीता खां को स्वर्गीय पिताजी टाल जाते, परन्तु उनके टालने का भी एक विशिष्ट ढंग था। कहते कि अच्छी बात है। देखो, सारी बातें अपने समय पर हो रहेंगी। आशा-निराशा के बीच में लटका हुआ वह मनुष्य इतने ही में प्रसन्न हो जाता और रुमाल से आंसू पोंछते हुए अपने घर की राह लेता।

उसकी हार्दिक श्रद्धा और तीव्र इच्छा रंग लाये बिना न रही। स्वर्गीय पिताजी ने उसे दीक्षित कर लिया था और संगोष्ठी में बैठने की अनुमति भी दे दी थी। उसे भी ऐसा दैवानुग्रह प्राप्त हुआ कि उसने वेश्याओं को संगीत सिखाना छोड़ दिया और बंगाली ज़मींदार की सेवा पर सन्तुष्ट हो गया। मैंने स्वर्गीय पिताजी को मसीता खां के बारे में एक बार यह कहते सुना था कि

---

१ गिरया =रुदन, २ नदामत =पश्चाताप, ३ क़द्र =मात्रा, ४ तरदामनी =पाप-लिप्ति, ५ अर्क-अर्क =लज्जित, ६ पाकदामनी =पवित्रता

"जब कभी मैं मसीता खां को देखता हूँ तो मुझे पीर चंगी की कथा याद आ जाती है अर्थात् मौलाना रूमी वाले पीर चंगी की।

परन्तु मेरा ध्यान उसी मसीता खां की ओर गया और उससे इस बात की चर्चा की। पहले तो उसे कुछ आश्चर्य सा हुआ किन्तु फिर जब बात पूरी तरह समझ में आ गई तो वह बहुत प्रफुल्लित हुआ कि पीर के पुत्र की कृपा-दृष्टि उसकी ओर गई है। किन्तु अब कठिनाई यह उत्पन्न हुई कि इस योजना को कार्यान्वित कैसे किया जाए ? घर में यहां **हिदाया** और **मिशकात** के पढने वालों का जमघट रहता था, सा, रा, गा, मा, के पाठ का अवसर न था और दूसरे स्थान पर विधिवत् जाना आशंकाओं से रिक्त न था ; फिर भी इस कठिनाई का एक समाधान निकाल लिया गया और एक विश्वसनीय व्यक्ति मिल गया जिसके घर पर उठने-बैठने का प्रबंध हो गया। पहले तो सप्ताह में तीन दिन निर्धारित किए गए थे : फिर प्रत्येक दिन अपरान्ह के समय जाने लगा। मसीता खां पहले से वहां उपस्थित रहता और दो-तीन घंटे तक संगीत के ज्ञान और अभ्यास का कार्यक्रम चलता रहता।

मसीता खां की शिक्षा देने की केवल एक ही पद्धति रटी हुई थी जो इस कला के उस्तादो की प्रचलित पद्धति होती है। वही उसने यहां भी चलाया। किन्तु मैंने उसे रोक दिया और प्रयत्न किया कि अपने ढंग से इसका ज्ञान प्राप्त करूं। संगीत वाद्यों में अधिकांशतः सितार पर ध्यान केन्द्रित हुआ और शीघ्र ही अंगुलियाँ इससे परिचित हो गईं। अब सोचता हूँ तो खेद होता है कि वह भी क्या युग था और मन में क्या-क्या उत्साह थे। मेरी आयु १७ वर्ष से अधिक न होगी, किन्तु उस समय भी उत्साह यही था कि जिस मैदान में कदम उठाइये पूरी तरह उठाइये और जहां तक मार्ग मिले बढते ही जाइये। कोई भी काम हो, किन्तु मैं कभी इस बात से सहमत नहीं हुआ कि उसे अधूरा करके छोड़ दिया जाए। जिस गली में भी कदम उठाया उसे पूरी तरह छान कर छोड़ा। पुण्य के कार्य किए तो वह भी पूरी तरह किए। पाप के कार्य किए तो उन्हें भी अधूरा न छोडा। रंगरलियों का जीवन मिला था तो उसमें भी सबसे आगे रहे थे। त्याग और सदाचार का मार्ग मिला तो उसमें भी किसी से पीछे न रहे। हमेशा यही इच्छा रही कि जहां जाइये त्रुटिपूर्ण और अपरिपक्व लोगों की तरह न जाइये। संबंध रखिये तो उस मार्ग में निपुणता प्राप्त करिये।

इस प्रकार संगीत के मार्ग में पांव रखा तो जहां तक राह मिल सकी, कदम बढाये जाने में कमी नहीं की। सितार का अभ्यास चार-पांच वर्ष तक जारी रहा था, बीन से भी अंगुलियां अपरिचित नहीं रहीं। किन्तु इससे अधिक अनुराग उत्पन्न न हो सका। फिर इसके पश्चात् समय आया कि यह कार्यक्रम नितांत त्यक्त हो गया और अब तो बीते हुए दिनों की केवल कहानी शेष रह गई है। हाँ, उम्मीद पर से मिज़राब का निशान बहुत दिनों तक नहीं मिटा था :

अब जिस जगह दाग़ है, यां पहले दर्द था।

इस रंग-रूप के संसार में एक कार्यप्रणाली मधुमक्खी की तरह है कि मधु पर बैठती है तो इस तरह बैठती है कि फिर कभी उठ नहीं सकती :

कि पांव तोड़ के बैठे हैं पाएबंद[1] तिरे।

और एक भ्रम की प्रणाली है कि हर फूल पर बैठे, बू-बास ली और उड़ गए :

टुक[2] देख लिया, दिलशाद[3] किया, खुश काम[4] हुए और चल निकलें :

इस प्रकार साहस-वर्ण-युक्त जीवन के उपवन का एक पुष्प यह भी था। कुछ देर के लिए

---

१. पाएबंद =बधे हुए पैर, २ टुक =क्षणिक, ३. दिलशाद =मन प्रसन्न, ४. खुशकाम =आनन्दित,

हिदाया =धर्म शास्त्र की पुस्तक, **मिशकात** =हजरत मुहम्मद के प्रवचनो का सकलन।

रुक कर बू-बास ले ली और आगे निकल गए। संगीत में अभिरुचि का उद्देश्य केवल यह था कि इससे भी अपरिचित न रहूँ, क्योंकि व्यक्तित्व का सन्तुलन और चिंतन की सूक्ष्मता संगीत के बिना प्राप्त नहीं हो सकती। जब एक विशेष सीमा तक यह उद्देश्य पूर्ण हो गया तो फिर इसमें अधिक तल्लीनता केवल अनावश्यक थी, बल्कि निषेधात्मक क्षेत्र में आ सकती है। परन्तु संगीत जो मेरे हृदय के एक-एक कोने में रच-बस गया था, मन से निकाला नहीं जा सकता था और आज तक नहीं निकला :

जाती है कोई कशमकश अन्दोहे इश्क़ की
दिल भी अगर गया तो वहीं दिल का दर्द था।

सौंदर्य आवाज़ में हो या मुखाकृति में, ताजमहल में हो या निशात-बाग में, सौंदर्य तो सौंदर्य है और सौंदर्य की अपनी स्वाभाविक मांग है। खेद है उस हतभाग्य पर जिसके संवेदनारहित हृदय ने इस मांग का उत्तर देना न सीखा हो।

मैं आपसे एक बात कहूँ। मैंने बारम्बार अपने आप को टटोला है। मैं जीवन में प्रत्येक वस्तु के बिना प्रसन्न रह सकता हूँ किन्तु संगीत के बिना नहीं रह सकता। यह सुहावनी आवाज़ मेरे लिए जीवन का आश्रय है, मानसिक तनावों का हल और तन-मन के सारे रोगों का उपचार है। मुझे यदि आप जीवन के रहे-सहे सुखों से वंचित कर देना चाहते हैं तो इस एक वस्तु से वंचित कर दीजिए। आपका अभिप्राय पूर्ण हो जाएगा। यहां अहमदनगर के कारावास में यदि किसी वस्तु का अभाव प्रत्येक संध्या को महसूस होता है तो वह रेडियो है।

जिन दिनों मेरा संगीत अभ्यास चल रहा था उस समय तल्लीनता और आत्मविभोरता की कुछ अविस्मरणीय घटनाएं घटीं। यद्यपि वे क्षणिक अनुभूतियां थीं, किन्तु सदैव के लिए मेरे ऊपर अपना अमिट छाप छोड़ गईं। उसी काल की एक घटना है कि संयोग से आगरा जाना हुआ। अप्रैल का महीना था और चांदनी की ढलती हुई रातें थीं। जब रात की अंतिम पहर आरम्भ होने को होता तो चंद्रमा निशा का अवगुंठन हटा कर अकस्मात् झांकने लगता। मैंने विशेष रूप से सप्रयास ऐसी व्यवस्था कर रखी थी कि रात्रि को सितार लेकर ताज चला जाना और उसकी छत पर यमुना की ओर मुख करके बैठ जाता। फिर ज्यों ही चांदनी फैलने लगती सितार पर कोई गीत छेड़ देता और उसमें तल्लीन हो जाता। क्या कहूं और किस तरह कहूं कि कल्पना के कैसे-कैसे रूप इन्हीं आंखों के आगे आ चुके हैं।

रात का सन्नाटा, सितारों की छांव, ढलती हुई चांदनी और अप्रैल की भीगी हुई रात, चारों ओर ताज की मीनारें सिर उठाये खड़ी थीं, बुर्जियां निस्तब्ध बैठी थीं। बीच में चांदनी से धुला हुआ मर्मर पाषाण का गुम्बद अपनी कुर्सी पर गतिहीन बिराजमान था, नीचे यमुना की रुपहली लहरें बल खा-खाकर दौड़ रही थीं और ऊपर सितारों की अगणित दृष्टियाँ आश्चर्यचकित होकर ताक रही थीं। प्रकाश और अंधकार के इस मिले-जुले वातावरण में सितार के पर्दों से अकस्मात् बिन बोल के विलाप उठते और वायु की लहरों पर बेरोक तैरने लगते हैं। आकाश से तारे झड़ रहे थे और मेरी रक्तस्रावी अगुलियां से गीत।

कुछ समय तक वातावरण थमा रहता जैसे कि कान लगा कर चुपचाप सुन रहा है। फिर धीरे-धीरे प्रत्येक दर्शक गतिवान होने लगता। चांद बैठने लगता। यहां तक कि सिर पर आ खड़ा होता। सितारे आंखें फाड़-फाड़कर ताकने लगते। वृक्षों की शाखायें भावविभोर होकर झूलने लगतीं। रात्रि के अंधकारमय आवरण के भीतर से पंचभूत की फुसफुसाहट स्पष्टतः सुनाई देती।

५ कशमकश =द्वन्द्व, ६ अन्दोह =पीड़ा, ७. इश्क़ =प्रेम।

कई बार ताज की बुर्जिया अपने स्थान से हिल गईं और कितनी ही बार ऐसा हुआ कि मीनारें अपने कांधों को कम्पायमान किए बिना न रह सके। आप विश्वास करें या न करें, किन्तु यह बात सत्य है कि इस अवस्था में बारम्बार मैंने बुर्जियों से बातें की हैं। और जब कभी ताज के मौन गुंबद की ओर दृष्टिपात किया है तो इसके ओंठों को हिलता हुआ पाया है।

कांग्रेस अभिभाषण, १९२३

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का विशिष्ट अधिवेशन
दिल्ली

''जब 'हिन्दूओं को बचाओ' और 'मुसलमानों को बचाओ' की स्थिति उत्पन्न हो गई हो तो राष्ट्र को बचाने की चिंता कौन करे? प्रेस और मंच धर्मान्धता और रुढ़िवाद को फैलाने में व्यस्त हैं और भोली-भाली तथा अनभिज्ञ जनता सड़कों पर खून बहाने में व्यस्त है।''

कांग्रेस अभिभाषण, १९२३ *

जनता के प्रतिनिधिगण, देवियो और सज्जनो !

राष्ट्रीय संघर्ष के ऐसे संकटपूर्ण और निर्णयात्मक समय में जिससे आज हम दो चार
आप महानुभाव परिस्थितिवश विवश हुए कि वर्ष के अंत से पूर्व इस राष्ट्रीय स्मारक स्थान
एकत्रित हों और समय की कठिनाइयों का समाधान और मार्गदर्शन प्राप्त करें। यदि मैं कहूँ
यह समय कार्य और उद्देश्य के संकट का है, ऐसा सम्मेलन है जिसका कोई उदाहरण इर
इतिहास में उपस्थित नहीं तो मैं समझता हूँ कि यह ऐसी बात होगी जो आप में से प्रत्
व्यक्ति अनुभव कर रहा है। तीन वर्ष हुए जब आप एक ऐसे ही एक विशिष्ट अधिवेशन
कलकत्ते में एकत्रित हुए थे, तो वह भी आप के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण क्षण था। परन्तु
दिन की महानता राष्ट्रों के उन दिनों के समान थी जिनमें स्वतंत्रता संग्राम की घोषणा की ग
और आज के दिन की महत्ता में इतिहास के उन दिनों की झलक पाई जाती है जिनमें राष्ट्रों
संग्राम के निर्णयात्मक संकटों का सामना करना पड़ा है। उस दिन आप संग्राम के प्रारंभ के
चिंतित थे, आज उसके परिणाम के लिए व्याकुल हैं। उस समय आपको यात्रा की जिज्ञासा
आज भटक जाने का भय उत्पन्न हो गया है। उस समय आप तट पर नौका के लिए विचलित
किन्तु आज हाफ़िज़ के ज्वलंत शब्दों में "नौका एक तट से चल चुकी है किन्तु दूसरा कि
अभी दूर है और तरंगें घेरा डाल रही हैं।"

सज्जनो ! जब मैं देखता हूँ कि ऐसी संकटपूर्ण परिस्थिति में अध्यक्ष पद के लिए अ
मेरा चयन किया है तो मुझे आपकी ओर से सम्मान और विश्वास पाकर एक ऐसा महान सं
मिलता है जिसको मैं अपने अधिकारों का नहीं, बल्कि आपकी उदारता का ही परिणाम स
सकता हूँ। यदि मैं अपनी तुच्छ सेवा के द्वारा आपका ऐसा विश्वास प्राप्त कर सका हूँ तो
विश्वास करना चाहिए कि यह मेरा देश और राष्ट्र की ओर से उस सेवा की स्वीकृति का
अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रमाण-पत्र है। मैं इस सम्मान के लिए आपका आभारी हूँ किन्तु उस दा
के लिए जो आपके विश्वास की पवित्र धरोहर है, आप ही से सहयोग और सहायता की प्रा
करता हूँ, निश्चय ही आज हमें एक अत्यन्त कठिन समय में अत्यन्त दुष्कर कार्य करना
परन्तु हमारा विश्वास डिगा नहीं है और यद्यपि हमें अपने उपायों की ओर से शंकायें रहीं, f
हमें अपने उद्देश्य की सच्चाई में कोई संदेह नहीं है कि हमारी विनम्र चेष्टाएं सत्य और न्या
लिए हैं। हमें विश्वास है कि यह ईश्वर की धरती में उसका सबसे अधिक प्रिय कार्य है
उसकी इच्छा यही है कि ऐसा हो। अतः यह तो आवश्यक है कि हम अपने दुःखों और त्रु
को स्वीकार करें, हम काल परीक्षा और मार्ग के खटकों की ओर से चिंतित हों। हम कठिन

* १५ दिसम्बर १९२३ ई० को मौलाना ने कांग्रेस के विशिष्ट अधिवेशन की अध्यक्षता की। ३५ वर्ष की आयु मे वह
कम आयु के कांग्रेस के अध्यक्ष थे। उस समय हिन्दू-मुस्लिम साप्रदायिक मतभेद उच्च शिखर पर पहुँच चुके थे। मौल
भाषण मे बल हिन्दू-मुस्लिम एकता पर है।

और बाधाओं की भीषणता से पूर्णतया आशंकित रहें, किन्तु हमें परिणाम की ओर से कभी भयभीत नहीं होना चाहिए। हमें विश्वास रखना चाहिए कि ईश्वर की जिस कृपा की प्रारम्भिक आशाओं ने हमारा साथ दिया था, वह मध्यावधि की इस परीक्षा में भी हमारी सहायक होगी और अंततोगत्वा विजय भी हमारी ही लिखी हुई है।

समकालीन समस्या

यदि मैं समकालीन परिस्थितियों और समस्याओं पर प्रकाश डालता तब भी मैं बात कहने के स्थान पर मौन धारण करना ही उचित समझता। हमारे लिए अब समय की कौन-सी बात है जो नहीं हो सकती है? और जिसकी चर्चा हम इसलिए कर सकते हैं कि इससे हमारे ज्ञान या अनुभूति के लिए कोई नई स्थिति उत्पन्न हो गई है? एक समय था जब भारतीय राष्ट्रीय मनोभाव की अभिव्यक्ति इस सीमा तक पहुँची थी कि उसने नौकरशाही के अन्यायों को आलोचना तक सीमित रखा। फिर टीका-टिप्पणी उपालम्भ में परिवर्तित हुई और शिकायत ने विरोध और प्रश्न का रूप धारण कर लिया। अब अन्यायों की चर्चा न केवल अनावश्यक है बल्कि अपने कार्य और विश्वास में संदेह करना है। वास्तविकता हमारे सम्मुख पूर्णतया स्पष्ट हो चुकी है। इसमें न तो वृद्धि हो सकती है, न किसी नए अवगुंठन के हटने की प्रतीक्षा शेष है। हमें विश्वास है कि हमारे साथ जो कुछ हो रहा है, वह बराबर होता रहेगा, जब तक हम उसे स्वयं न बदल देंगे। हमारा मुकाबला व्यक्तियों और युगों से नहीं है कि जिनका परिवर्तन परिस्थितियों को प्रभावित करे। हमारा मुकाबला एक व्यवस्था से है जिसके संबंध में हमें विश्वास है कि उसकी मनोवृत्ति ही अन्यायपूर्ण है और यदि यह इस समय तक चलता रहा है तो इसलिए नहीं कि इसके भीतर उसकी अपनी शक्ति विद्यमान है बल्कि केवल इसलिए कि हमारी मूर्खता ने इसे टिकाये रखा। अतः अन्याय इसका आचरण नहीं है बल्कि इसकी मनोवृत्ति है। तो हमें न तो आश्चर्यचकित होना चाहिए और न शिकायत करनी चाहिए। बल्कि यह चेष्टा करनी चाहिए कि वह बरकरार न रहे।

तुर्की की महान विजय

सज्जनो !

मुझे विश्वास है कि आज आप जिस बात की सबसे पहले आशा रखते होंगे यह है कि मैं आपके हर्षोल्लास को स्थापित करने का सम्मान प्राप्त करूं। जो आपके राष्ट्रीय संघर्ष से एक विलक्षण किन्तु गौरवपूर्ण ढंग से संबद्ध है और जिसमें आपके इतिहास की एक वैभवशाली गाथा निहित है। विधाता की यही इच्छा थी कि पूर्व के दो सुदूर स्थित देशों को न्याय और स्वतंत्रता के नाम पर एक दूसरे से इस प्रकार एक साथ जोड़ दे कि एक के दुःख से दूसरे के मुख से आह निकले और एक की विजय में दूसरे के लिए विजय और उपलब्धि का हर्ष हो। वे पूर्व के दो कौन से अलग अलग भू-भाग हैं जिनके समान न्याय और स्वतंत्रता की खोज ने एक दूसरे को इतना निकट कर दिया है? यह हिन्दोस्तान है लेकिन ठीक उस समय जबकि उसे स्वयं अपनी स्वतंत्रता के दुष्कर मार्ग पर चलना था, इस्लामी ख़िलाफ़त और उसकी सरकार की आज़ादी और सार्वभौमिकता को भी अपनी स्वतंत्रता के समान अपनी राष्ट्रीय मांग स्वीकार किया, और यह तुर्की है और उसकी आधुनिक राष्ट्रीयता का जन्म है जिसकी क्रांतिकारी विजयों का दुनिया ने एक जीवित चमत्कार के रूप में दर्शन दिया है और जिसकी विजयी देशभक्ति की आत्मा पूर्व की समस्त भूमि के लिए जीवन और कर्मठता का एक नवीन संदेशवाहक बनकर विराजमान हुई है।

आधुनिक प्राच्य

हमें याद रखना चाहिए कि विश्व की उन निश्चित घटनाओं की जो महत्ता सदै इतिहास के पृष्ठों पर अंकित होती है वह कभी उन लोगों को कभी मालूम नहीं होती जो उ घटनाओं के नायक होते हैं। हम वस्तुतः एक ऐसे क्रांतिकारी युग से गुज़र रहे हैं जो ठीक-ठी उन युगों के समान है जिनमें विश्व के इतिहासकारों ने संसार की बड़ी-बड़ी क्रान्तियों आधार-बिन्दुओं की खोज की। दुनिया तीव्र गति से नए परिवर्तन की ओर झुक रही है। उसव सारी बातें जो कल तक अटल सत्य समझी जाती थीं, अब कम्पायमान परिवर्तन है। इसके अं अवधारणाओं के समान इसके मानचित्र की सीमायें और रेखायें भी कम्पायमान हैं। कितने उच्च शिखर हैं जो गिर-गिर कर पतनावस्था को प्राप्त हो रहे हैं और कितने ही ऐसे हैं नीचे उठ-उठकर ऊंचे हो रहे हैं। उत्थान अपने चरम बिन्दु से पतन का आरंभ कर रहा है अं निराशाओं का अंधकार बढ़ते-बढ़ते वहां तक पहुँच चुका है जिसके पश्चात् प्रभात आरंभ जाता है। कौन देख सकता है कि निकट भविष्य की झोली में क्या है? फिर भी जो कुछ हो र है, उसमें एक नवा प्राच्य की क्रांति का दृश्य तो अत्यंत स्पष्ट है जिसके लिए किसी को कहने आवश्यकता नहीं। प्राच्य का वह जागरण जो चौथाई शताब्दी से केवल जागृति मात्र था उ जागृति के पश्चात् की अवस्था तय कर रहा है और महायुद्ध के द्वारा फैलाए हुए विनाश ने जी और गति की एक नवीन आत्मा प्राप्त करा दी है। गाजी मुस्तफ़ा कमाल पासा के चमत्क हाथों ने केवल तुर्की के सुप्त भाग्य ही को नहीं जगाया बल्कि प्राच्य के द्वार को भी खटखट है। अब उसका गुंजार एक ओर मध्य एशिया के मैदानों में फैल रहा है, दूसरी ओर अफ्री मरुभूमि स्थलों और तटों पर से चलकर हिन्द महासागर की तरंगों को पार कर रहा है। कौन सकता है कि इसकी प्रतिध्वनि निकट भविष्य में पूर्व के एक-एक कोने से ध्वनित न होग

सज्जनो,

हिन्दोस्तान प्राच्य के इस शानदार संघर्ष के साथ इसकी प्राकृतिक और भौगोलिक एव को उपेक्षित या विस्मृत नहीं कर सकता। वह अपने संघर्ष को इससे संलग्न करता हुआ एकता के उन समस्त भावों को महसूस कर रहा है जो एक भू-भाग के विभिन्न दलों में क परिस्थितयों और उद्देश्यों की समानता स्वभावतः उत्पन्न कर देती है। अतः भारत पूर्व के हर राष्ट्र का स्वागत करता है जो न्याय और स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत हैं और प्रत्येक उस राष्ट्र खेद प्रकट करता है जो इस मार्ग में अपने साथियों से पीछे हैं। वह मिस्र, सीरिया, फलिस्त ईराक, मराकर और पूर्व के अन्य भू-भागों के समस्त देशभक्तों को विश्वास दिलाता है हिन्दुस्तान के कोटि-कोटि हृदय उनकी सफलता के लिए व्याकुल हैं। वे उनकी स्वतंत्रता के उससे कम प्रेम नहीं करते जितनी स्वयं अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता उनको प्रिय

कुस्तुन्तुनिया और यरवदा जेल

सज्जनो,

हम सब तुर्की की महान विजय की बधाई देते हुए कुस्तुन्तुनिया के भव्य ख़िलाफ़त की ओर देख रहे हैं तो अनायास ही हमारा ध्यान हिन्दोस्तान के बंदीगृह की ओर भी आकृ जाता है जिसकी एक कोठरी में हिन्दोस्तान की महानतम विभूति बन्दी है। मैं विश्वास कर कि यदि तुर्की से बाहर कोई मनुष्य इसका अधिकारी है कि तुर्की की विजय पर उसे बधा

जाए तो वह हिन्दोस्तान के महान नेता महात्मा गांधी हैं। महात्मा गांधी ने इस उद्देश्य के समर्थन में उस समय आवाज़ उठाई जबकि स्वयं तुर्की में राष्ट्रीय सुरक्षा की कोई आवाज नहीं उठी थी। यह उनकी ही तथ्यग्राही दृष्टि थी जिसमें प्रारम्भ ही में समस्या के समस्त विस्तार और गहराइयों का अनुमान कर लिया था और सारे हिन्दोस्तानीयों का आह्वान किया था कि यह केवल मुसलमानों ही की समस्या नहीं है बल्कि यह एक राष्ट्रीय समस्या है। सज्जनों ! हिन्दोस्तान ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में खिलाफ़त की मांग के लिए जो संघर्ष किया वह वस्तुतः इस युग की एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण घटना है जिसके परिणामो पर इतिहास विचार करेगा। सम्भवतः अभी इसका समय नहीं आया है कि हम इसके सारे परिणामों का अनुमान कर सकें। फिर भी कुछ परिणाम तो ऐसे हैं जो बिना किसी तर्क-वितर्क के हम सब महसूस कर रहे हैं और जिनमें से प्रत्येक परिणाम इतना महान है कि केवल उसी के लिए यह संघर्ष हो सकता था।

खिलाफत आन्दोलन के कारण, बिना हिन्दोस्तान की स्वतन्त्रता के हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या एक खंडित स्वप्न के अतिरिक्त कुछ नहीं है; इसी के कारण उन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर पाया जो दीर्घ काल से उसके मार्ग में अवरोध उत्पन्न कर रही थीं।

हिन्दोस्तान का, सम्पूर्ण पूरब में वह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान, जिसे पूर्व के आधुनिक जागृत समूह ने एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया, इसी का परिणाम है। यदि यह संघर्ष उत्पन्न न होता तो आज हिन्दोस्तान सारे एशिया और अफ्रीका में क्या है ? तुर्की और अरब की स्वतंत्रता भारतीय सेनाओं के द्वारा ही पदाक्रान्त की गई थी। अतः स्पष्ट है कि सम्पूर्ण प्राच्य की संपूर्ण घृणा और तिरस्कार का वह भागीदार बनता। अतः जहां कहीं भी एक हिन्दोस्तानी दिखाई पड़ जाता अंगुलियां उठती कि यह एक दुर्भाग्यशाली देश का निवासी है। यह केवल अपने दुर्भाग्य से ही सन्तुष्ट नहीं है बल्कि प्राच्य के स्वतंत्र राष्ट्रों के लिए भी दुर्भाग्य का कारण है परन्तु आज स्थिति बिल्कुल बदल चुकी है। आज हिन्दोस्तान सर उठाकर यह कह सकता है कि उसके दामन पर विवशता ने जो कलंक लगा दिया था, उसकी इच्छा और अधिकार ने उसे धो दिया है। यदि ऐसा हुआ था कि बिना अपनी इच्छा के हजारों हिन्दोस्तानी रण-क्षेत्र में गये ताकि तुर्की और अरबों की स्वतंत्रता के विरुद्ध संग्राम करें तो यह भी हो चुका है कि स्वयं अपनी इच्छा से हजारों हिन्दोस्तानी जेल गए ताकि तुर्कों और अरबों के प्रति न्याय किया जाए। आज प्राच्य के कोने-कोने से हिन्दोस्तान के लिए आदर और सम्मान प्रतिध्वनित हो रहा है। कुस्तुन्तुनिया में उसका नाम इस प्रकार लिया जाता है कि जैसे कि वह प्राच्य की स्वतंत्रता का नायक है। काहिरा के बाज़ारों से आवाज़े आ रही हैं कि ए गांधी, ईश्वर तुझे विजयी करे। यह वस्तुतः स्वाधीन राष्ट्रों के जैसा सम्मान जो पराधीन हिन्दोस्तान ने प्राप्त कर लिया तो निस्संदेह यह किसी खिलाफ़त आन्दोलन का ही फल है।

यह इन दोनों परिणामों से भी बढ़कर जो बात हमारे सामने आती है यह हिन्दोस्तान की उस स्वतन्त्र निष्ठा की मानसिक यात्रा है जो इस संघर्ष द्वारा उसे प्राप्त हो गई। किसी राष्ट्र के स्वतंत्र होने के लिए पहली बात यह है कि वह अपने आपको पूर्णतः स्वतंत्रता का आकांक्षी सिद्ध कर दे। पराधीन राष्ट्रों में न तो कोई आकांक्षा होती है और न ही इच्छा। यदि हिन्दुस्तान की तुर्की के लिए कोई इच्छा है जिसकी प्राप्ति के हेतु वह संघर्ष कर सकता है तो फिर वह अपनी स्वतंत्रता के कार्य को भी सम्पन्न कर लेगा क्योंकि स्वतंत्रता की प्राप्ति वस्तुतः राष्ट्र की इच्छा के विकास का ही नाम है।

समसामयिक कठिनाइयां

सज्जनो,

मैंने अपने अभिभाषण के प्रारंभ में ही समसामयिक कठिनाइयों की चर्चा की थी भी राष्ट्रीय संघर्ष की सफलता के लिए सुसंगठित एकता आवश्यक है और अनेकत है।इस समय हममें एकता का अभाव है। और इसलिए हमें संकट का सामना करना है। सबसे पहले आपका ध्यान इन कठिनाइयों के स्वरूप और उनकी मात्रा की ओर आकृष्ट यदि आप इनका ठीक-ठीक अनुमान न कर सकें और इसमें लेशमात्र भी न्यूनाधिक आश्चर्य नहीं कि हमें एक दूसरे सकट से सामना करना पड़े। आज हम एक ऐसे मध्या खड़े हैं जिसका एक छोर हताशा है और दूसरा निराशा। यदि हमने संकट को उसके व रूप से अधिक समझा तो वह हताशा की ओर हमें ले जाएगा। और यदि हमने इसे क देखा तो इससे निराशा की ओर बढ़ जाने का भय है। हमें न तो असावधान रहना चाहिए ही भयभीत, हमें मुकाबला करना चाहिए और विजयी होना चाहिए। परन्तु यह जब सकता है कि हम कठिनाइयों का ठीक-ठीक अनुमान कर लें। इस मार्ग में हथियार अ बारूद के स्थान पर तराजू और बाट की आवश्यकता है।

संगठन की एकता की नियमावली

हमें चाहिए कि इस अवसर पर दुनिया के सामाजिक जीवन के उन प्राकृतिक नि याद करें जो यद्यपि हमारे मानस-पटल पर अंकित हैं किन्तु जिन्हें हम बहुधा भाव मस्तिष्क के ज्ञात तथ्यों से विस्मृत कर देते हैं।

हम गत्यात्मकता और जीवन के इस आश्चर्यजनक जगत के एक ऐसे ही जीव अगणित और अज्ञात जीव इस समान गत्यात्मकता के साथ उत्पन्न होते रहे और आज अकपाय में फैले हुए हैं। जो कुछ एक बार हो चुका है वही सदैव होता है और जो एक हुआ है उसी का सामना सब को करना पड़ता है। वह समान है, सर्वांगीण है, मिलता-ज और अटल है। ईरान के दार्शनिक कवि उमर खैयाम के शब्दों में "उसके जीवन की कह ही है जो सर्वथा नये-नये नामों और नये-नये रूपों में दोहराई जा रही है।" और विख्यात कवि विक्टर ह्यूगो के संक्षिप्त शब्दों में "विश्व की घटनाओं की गाथा यद्यपि किन्तु केवल पुनरावृत्ति है।"

समानधर्मिता का नियम जिस प्रकार व्यक्तियों के लिए है ठीक-ठीक उसी प्रव समाजों के लिए भी है। जब कभी किसी समुदाय का स्वभाव उसी प्रकार का होगा औ परिवेश उसे प्राप्त होगा तो आवश्यक है कि तदनुरूप नियम अपना कार्य करें। राष्ट्रों और अंत, उत्थान और पतन, निश्चेष्टता और जागृति, स्वाधीनता और पराधीनता, वि पराजय सब पर यही नियम लागू है। और जो कुछ एक राष्ट्र पर बीता है उसी तरह हर बीतता है और प्रत्येक राष्ट्र को सामना करना पड़ता है। सामाजिक जीवन की यही आश् एकरूपता है जिसको १३वीं शताब्दी ईसवी के एक दार्शनिक इतिहासकार अब्दुल रहम खदुल ने, जिसने सबसे पहले इतिहास दर्शन की आवधारणाओं और सिद्धांतों को निरूप था, इन शब्दों में अंकित किया है—यदि हम युगों और नामों का बंधन तोड़ दें तो और एक युग का इतिहास ठीक-ठीक प्रत्येक राष्ट्र और प्रत्येक युग के लिए काम दे स

क्योंकि नामों और रूपों के परिवर्तन के अतिरिक्त राष्ट्रों की परिस्थिति में और कोई परिवर्तन नहीं होता। इसी तथ्य को वर्तमान युग के विख्यात और फ्रांसीसी लेखक डा० गस्ताव ली बॉन ने अधिक सारगर्भित और शास्त्रीय ढंग से कहा है—जब हम सामाजिक जीवन का मनोविज्ञान इसी प्रकार रूपायित कर लेंगे जिस प्रकार हमने वैयक्तिक जीवन को कर लिया है तो फिर हमारे लिए संभव हो जाएगा कि हम एक राष्ट्र और सभ्यता का इतिहास लिखकर उसे प्रत्येक राष्ट्र और सभ्यता के लिए उपयुक्त कर सकें। यह फिर सहस्त्रवर्षीय पंचांग के समान हमें प्रत्येक वर्ष समान रूप से काम दे सकेगा।

एक परीक्षा का चरण

आइये, एक क्षण के लिए ठहर कर देखें कि आज जो संकट हमारे सम्मुख है सामूहिक कर्मों के मनोविज्ञान में उनका तात्विक स्वरूप क्या है? व्यक्ति चेतना जब सामूहिक चेतना में परिवर्तित हो जाती है तो उसमें विवेक से अधिक भावुकता का तत्त्व क्रियाशील हो जाता है। अतः यह केन्द्र बिन्दु भावुकता से उत्पन्न होता है न कि विवेक से। जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो कर्मठ संघर्ष आरम्भ होता है और वह संघर्ष अपनी शक्ति के अनुसार उभरती हुई और विरोधी शक्तियों से टकराता है, फिर या तो यह संघर्ष किसी निर्धारित सीमा तक पहुंचने में सफल हो जाता है या मार्ग के प्राकृतिक नियमों के अधीन उसे रुक-रुक कर चलना पड़ता है। इस अवरोध की भी विभिन्न स्थितियां हैं और विभिन्न नियम हैं किन्तु प्रत्येक स्थिति में आवश्यक है कि किसी न किसी सीमा तक क्रिया-प्रतिक्रिया का नियम अपना प्रभाव डाले। इस अवस्था में अकस्मात् एक अवसादपूर्ण और दुःखपूर्ण स्थिति उत्पन्न होने लगती है जिसका सर्वाधिक प्रभाव सामूहिक चेतना पर पड़ता है। ऐसा ज्ञात होता है कि जैसे चूल्हे में जल रहे पृष्ठों के बंडल का बंधन या तो ढीला पड़ गया है या खुल गया है। अब मतभेद प्रारम्भ होते हैं, पृथकता की हवायें चलने लगती हैं और राष्ट्रीय संघर्ष को एक कठिन परीक्षा का सामना करना पड़ता है। समष्टि की समस्त स्थितियों के समान यह स्थिति भी स्वाभाविक है इसलिए ज्ञान और विवेक इसमें बहुत कम परिवर्तन ला सकते हैं। व्यक्ति कितना ही चतुर और दुनिया के पिछले अनुभवों का ज्ञाता हो किन्तु अपनी भावनाओं को इन स्थितियों और परिणामों से नहीं रोक सकते। परन्तु यदि संघर्ष का मस्तिष्क और फेफड़ा सुरक्षित हो तो यह मनःशारीरिक लक्षण मात्र होते हैं, संघर्ष के जीवन के लिए इससे संकट उत्पन्न नहीं होता। यह बहुधा एक अस्थायी अंतराल होता है परन्तु कुछ स्थितियों में यह कठिन समस्या बन जाता है और कभी-कभी एक भयंकर गतिरोध का भी रूप धारण कर लेता है परन्तु जैसे ही वह अवधि समाप्त होती है जो इस उन्मादकता के लिए आवश्यक थी। वैसे ही निराशा का यह समसामयिक पट हट जाता है और संघर्ष पुनः अपनी वास्तविक गति के साथ बढ़ने लगता है और कुछ स्थितियों में तो वह पहले से अधिक सुदृढ़ होता है क्योंकि यह समसामयिक अंतराल केवल ऊपर का था और गहराइयों की शक्तियां निरन्तर काम कर रही थीं, अब संघर्ष के दूसरे चरण में नवीन शक्ति के साथ पिछली शक्तियों के मिश्रण से इसकी गति में वृद्धि होती है।

संसार के समस्त परिवर्तनों और संघटनाओं के समान समूह की कर्मठता भी या समाप्त हो जाती है या क्रियाशील रहती है, बार-बार उत्पन्न नहीं होती। इसमें उतार-चढ़ाव अवश्य होता

रहता है, हम भ्रमवश उतार को अंत और चढ़ाव को जन्म समझने लगते हैं। किसी राष्ट्रीय संघर्ष के अंतराल को उसका अंत समझ लेना ऐसा होगा जैसे समुद्र का उतार देखकर समझ लें कि वह फिर कल नहीं चढ़ेगा।

हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन ऐसे स्थगन या व्यवधान पर पहुंच गया था। पर यह संघर्ष पूरे उत्साह के साथ अकेला टकरा रहा था। आंदोलन अपने पूरे उत्साह के साथ अत्यन्त तीव्र गति से दौड़ा जा रहा था कि अकस्मात् बारदौली के निर्णय ने संकेत दिया कि यह थम जाय। वह अकस्मात् थम गया परन्तु स्वभावतः उसे धक्का लगा और उससे वह समस्त परिणाम उत्पन्न हुए, जो ऐसे अंतराल में स्वभावतः उत्पन्न होते हैं। इसी का परिणाम है कि हमारा संगठन हिल गया है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे एक बंधी और लिपटी हुई वस्तु शीघ्रता से खुलती और बिखरती जा रही हो। आंदोलन का गतिरोध, कांग्रेस का मतभेद, हिन्दू-मुस्लिम एकता में विघ्न, एकता की चेष्टाओं की विफलताएं, यह सब इसी स्थिति का फल है।

सज्जनो, निश्चय ही एक परीक्षा है जिसमें हमें उत्साहपूर्ण संकल्पों सहित उत्तीर्ण होना पड़ेगा और आश्चर्य नहीं कि इसके लिए अत्यधिक संघर्ष करना पड़े। फिर भी आशा करूंगा कि आपके मन-मस्तिष्क को इससे अधिक कोई और बात प्रभावित नहीं करेगी। एक ऐसे व्यक्ति के लिए जो राष्ट्रों की मानसिकता और इतिहास का ज्ञाता हो, यह स्थिति नितांत एक ऐसी साधारण बात है जैसे एक आदमी का दौड़ते-दौड़ते रुक जाय ताकि दम लेकर फिर दौड़े।

हमें इसकी कदापि चिंता नहीं करनी चाहिए कि हमारे विरोधी और कटु आलोचक इस स्थिति में भ्रम में रहना चाहते हैं क्योंकि हम जानते हैं कि वह एक ऐसी मनःस्थिति में हैं जिसमें शक्ति को केवल उसी समय स्वीकृति प्रदान की जाती है जब वह सामने आ जाए। परन्तु स्वयं हमें नहीं चाहिए कि अपनी वास्तविक स्थिति के प्रति किसी प्रकार शंकाग्रस्त रहें। क्या है, जो हमने खो दिया है? हमारे संघर्ष की समस्त बौद्धिकता पूर्णतः शक्तिशाली है। उसकी जड़ें अभी तक हिली नहीं हैं। हम उसकी गत्यात्मकता क्षीण नहीं पाते। क्या हमें स्वयं अपनी अनुभूतियों में संदेह हो सकता है? क्या हम महसूस नहीं कर रहे हैं कि वह एक भावना के समान हमारे मन में है, एक लक्ष्य की तरह हमारी दृष्टि में है और वह आत्मा के समान हमारे शरीर की प्रत्येक धमनी में प्रवाहित है।

सज्जनो,

मुझे अनुमति दीजिए कि मैं आज सबकी ओर से एक ऐसी घोषणा करूँ जो वस्तुतः आप के विश्वास और आपकी ही अनुभूति का द्योतक है। मैं पूर्ण विश्वास से घोषणा करता हूँ कि हमारा संघर्ष गतिमान है और बराबर चल रहा है तथा हम एक ऐसे गतिरोध की स्थिति में हैं जिसमें निर्णयात्मक संग्राम ने जो बाधा उत्पन्न कर दी है किन्तु संग्राम रुका नहीं। हमारे लिए सावधानी, सक्रियता और प्रचलन की समस्याएं उत्पन्न हो गईं। परन्तु हम इस बात को पूर्णतः अस्वीकार करते हैं कि गतिरोध या निराशा का कोई विकल्प हमारे सम्मुख है। मैंने आपका ध्यान जब इस ओर आकर्षित किया कि निराशा का कोई कारण नहीं तो मुझे यह भी निवेदन करने दीजिए कि निश्चेष्टता का भी कोई कारण नहीं है। हमें अपने दैनिक जीवन की इस वास्तविकता को विस्मृत नहीं करना चाहिए कि रोग कितना ही महत्त्वहीन क्यों न हो किन्तु असावधानी और स्वास्थ्य में नियमों की उपेक्षा उसे तुरन्त घातक बना सकती है। आज जो परीक्षा हमारे सम्मुख है

वह वस्तुतः एक अस्थायी अंतराल है। हम उसको अधिक बढ़ने न दें। हम ऐसा क्यों कर सकते हैं? समय की कठिनाइयों का उपचार क्या है? इस सब का उत्तर हमें ज्ञात है किन्तु उस पर चलना दुःखकर हो रहा है। हमें केवल एकता की आवश्यकता है और इसी की खोज में हम आज यहां एकत्रित हुए हैं। आज का यह स्मरणीय दिवस इसलिए आया है कि हमें इस परीक्षा में सफलतापूर्वक निकल जाने के लिए अत्यंत बहुमूल्य अवकाश प्राप्त करा दे। हमने आज समस्त दुनिया की दृष्टियों को आमंत्रित किया है कि वह हमारी परीक्षा के परिणाम का दृश्य देखें। क्या हम इस दिवस की स्मृतियों का उचित उपयोग करेंगे? इसका उत्तर हमें कुछ घंटों में ही देना है।

अहिंसात्मक असहयोग

मेरे लिए यह अनिवार्य है कि मैं अपना निवेदन किसी मूल बिन्दु से आरम्भ करूं। हमने लक्ष्य प्राप्ति के हेतु अहिंसा और असहयोग के सिद्धांतों को ग्रहण किया है। असहयोग का आधार वस्तुतः दुनिया की वह सहज किन्तु विश्वव्यापी अवधारणा है कि हमें बुराई का साथ नहीं देना चाहिए और उसे अकेला छोड़ देना चाहिए ताकि वह फूल-फल न सके। संसार के समस्त नीति-शास्त्र समान रूप से इस सच्चाई को स्वीकार करते हैं। यदि इस सैद्धांतिक परिभाषा में बुराई शब्द को हानि मे परिवर्तित कर दिया जाए (और मेरे विचार में दोनों को समानार्थक ही होना चाहिए) तो फिर यह मानव जाति की न केवल विश्वव्यापी अवधारणा रह जाती है बल्कि पाशविक मनोवृत्ति की एक स्वाभाविक दृष्टि बन जाती है और यहां भी धर्मों के स्वर हमारे कानों में गुंजार करते हैं। इस्लाम ने अपने अनुयायियों को 'असहयोग' का आदेश दिया है जिसमें अभिप्राय यही है कि **जिन लोगों के कार्यों में तुम्हारा राष्ट्रीय अहित है तुम किसी प्रकार उनकी सहायक और बलशाली होने का साधन न बनो।** दूसरे धर्मों में भी ऐसी ही उक्तियां विद्यमान हैं।

राष्ट्रों के राजनैतिक संघर्ष में देखा जाए तो भी यह न केवल एक सर्वमान्य विश्वास है बल्कि सर्वमान्य क्रियाशीलता है। यह बात अत्यन्त स्पष्ट है कि दुनिया में कोई राष्ट्र और समूह अपनी स्वतंत्रता के अधिकार को सहयोग द्वारा प्राप्त नहीं कर सका है। प्रत्येक राष्ट्र ने अपने अधिकार संघर्ष करके प्राप्त किए हैं और संघर्ष लड़ना है तथा द्वन्द्वात्मकता है, सहयोग नहीं है।

कमजोर राष्ट्रों के लिए सविनय अवज्ञा सर्वाधिक तेज अस्त्र है। जब कभी निर्बल राष्ट्र सशस्त्र संघर्ष करने में विफल हुए हैं तो उन्होंने इसी पद्धति को अपने उद्देश्यों की रक्षा का एकमात्र उपाय पाया है; धर्म, नीति और राष्ट्रीयता का यह सर्वमान्य तत्त्व दुनिया की बहुत पुरानी वस्तु है। कष्ट सहन कर लो किन्तु सत्य से मुंह न मोड़ो। कहा जा सकता है कि प्रत्येक धर्म और उपदेश की प्रारम्भिक दुर्बलता और विवशता में केवल यही सिद्धांत दृढ़ता और धैर्य का साधन बना है।

हमें इसकी प्रतिछाया सुकरात के विष के प्याले में दिखाई पड़ती है। यरोशलम के जारू पर हम इसे अंकित पाते हैं और मक्के की गलियों में भी इसका गुंजार सुनाई दे चुका है। ईसाई धर्म की प्रारम्भिक दो शताब्दियाँ पूर्णतः किसी का वृत्तांत सुनाती हैं। रोम के सम्राट सेवरुस के शासनकाल में जब ईसाई धर्म की मूल आधार-शिलाएं बर्बरता और अत्याचार के तूफ़ान से हिल रही थीं तो यही सिद्धांत था जिसकी अमोघ शक्ति उसे थामे रही। उसी काल के शहीद तस्कूरिढ़ का एक लिखित वक्तव्य आज तक सुरक्षित है जो रोम के न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किया गया था। उसके ये शब्द अमरीकी लेखक ड्रैपर की पुस्तक 'कानफलिक्ट बिटविन रिलीज एण्ड साइंस' में आप पढ़ सकते हैं।

"यद्यपि हमारे समुदाय को गठित हुए अधिक समय नहीं बीता किन्तु वह कौन सा स्थान है जहां हम विद्यमान नहीं हैं। नगर, द्वीप, प्रांत, गढ़, सैनिक, छावनी, राजदरबार, सीनेट कक्ष में उस स्थान में जो तुम्हारी सत्ता के प्रतीक हैं हम लोग बराबर पाये जाते हैं, तुम्हारे पूजा स्थानों के अतिरिक्त हमने तुम्हारे अधिकार में कोई स्थान नहीं छोड़ा। सोचो यदि हम चाहें तो युद्ध का तूफ़ान आ सकता है। परन्तु हमारा धर्म हमें सिखाता है कि बांधने से मारा जाना श्रेष्ठ है। इसलिए हम कष्ट सहते हैं किन्तु प्रतिकार नहीं करते।"

क्या इससे भी अधिक पूर्ण और प्रभावशाली अभिव्यक्ति अहिंसात्मक असहयोग की है? हम चाहें तो १७०० वर्ष के इन पुराने शब्दों को ज्यों का त्यों आज भी प्रयुक्त कर सकते हैं।

काउंट लियो टालस्टाय

निश्चय ही यह बात कि राजनैतिक अधिकारों की प्राप्ति और अन्यायपूर्ण राज्य की व्यवस्था को पराजित करने के लिए इसे एक नियम के रूप में ग्रहण किया जाए और सशस्त्र क्रांति के स्थान पर केवल इसी पर संतोष कर लिया जाए तो यह एक ऐसा विचार है कि स्वभावतः वर्तमान युग में सर्वप्रथम रूस के सच्चे ईसाई शिक्षक काउंट टालस्टाय ने अपने विश्वविख्यात उपदेशों में अभिव्यक्त किया है और इस महामना का मस्तिष्क वस्तुतः पाश्चात्य सभ्यता की आत्माविहीन भौतिकता, सामाजिक व्यवस्था की असहनीय असमानता, पूंजीवाद का निरंकुश दुराचार और रूस को चर्च के धार्मिक अत्याचार और गतिरोध के विरुद्ध एक ज़ोरदार विरोध किया। टालस्टाय की क्रांतिकारी अवधारणाओं के संबंध में अमरीका के भूतपूर्व राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने टिप्पणी की थी (यह बात उसने एक बार 'अमरीकन आउटलुक' में लिखी थी) कि "वह (टालस्टाय के विचार) निस्संदेह व्यवहार और सन्तुलन की सीमा पार कर गये हैं। फिर भी टालस्टाय के समस्त उपदेशों में यह उपदेश एक ऐसा सन्तुलित उपदेश है जिसकी सरल व्यावहारिकता अत्यंत स्पष्ट है और यह निःसंदेह दुनिया को उसकी अत्यंत महत्त्वपूर्ण खोज के लिए अत्यधिक स्पष्ट और सहज पता बतला देती है। टालस्टाय के उपदेशों की वास्तविक आत्मा यह थी कि मानवीय हत्या और युद्ध का अंत होना चाहिए। जो शक्तियां न्याय और मानवीय अधिकारों के मार्ग में बाधक हैं उनसे न तो शस्त्रों से जूझना चाहिए और न ही इसकी आवश्यकता है। उन्हें बल प्राप्त है उनके कारखानों से। और यदि लोग अपने सहयोग और सहायता द्वारा उनके फूलने-फलने का कारण न बने, तो वे एक क्षण के लिए भी टिक नहीं सकते।

महात्मा गांधी

दुनिया को सदैव उपदेश से अधिक व्यावहारिक नेतृत्व की आवश्यकता होती है। वास्तविकता और सच्चाई की कोई बात भी उसके लिए नई नहीं है परन्तु जो बात उसे नवीन महत्ता और सफलता प्रदान करती है वह सत्यनिष्ठा और व्यवहार है। यह बात कि स्वाधीनता के लिए लड़ना हमारा कर्तव्य है प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञात है। परन्तु यह बात कि स्वाधीनता के लिए लड़ना चाहिए वाशिंगटन के जैसे कुछ व्यक्तियों ही को मालूम था।

यद्यपि टालस्टाय ने दुनिया का आह्वान इस सिद्धांत की ओर किया था किन्तु संसार के क़दम एक दूसरे ही व्यक्तित्व की प्रतीक्षा में रुके हुए थे। एक ऐसा महान व्यक्तित्व जिसको

विधाता ने विशेष रूप से इसी कार्य के लिए चुन लिया हो जो महात्मा गांधी के रूप में उपस्थित है। टालस्टाय से पूर्व भी दुनिया को असहयोग की सच्चाई ज्ञात थी किन्तु महात्मा गांधी से पूर्व उसकी व्यावहारिक शक्ति के रहस्य से वह अनभिज्ञ थी।

असहयोग का कार्यक्रम

असहयोग की जिस पद्धति को हिन्दोस्तान में महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वीकार किया गया है वह सिद्धांततः यद्यपि वही है जिसकी चर्चा ऊपर की गई है किन्तु बहुत सी बातों में यह उनसे भिन्न भी हो गयी है। पहले वह एक नैतिक प्रवचन था, अब वह एक राजनैतिक कार्यक्रम है। टालस्टाय के विचारों में अवधारणाओं और सिद्धांतों की ऐसी शक्ति थी जो एक ओर लोगों के तात्कालिक अंधविश्वासों और कार्यप्रणाली की व्यवस्था से टकराती थी तो दूसरी ओर उनकी व्यावहारिक कठिनाइयों को दूर करना उसके लिए अत्यन्त दुष्कर था। किन्तु टालस्टाय के विचारों के वर्तमान रूप ने पूरे संसार को अपनी परिधि में ले लिया। अब उसमें कोई बात ऐसी नहीं है जो किसी समुदाय के धार्मिक या राजनैतिक विश्वासों को परिवर्तित करना चाहती हो या इसमें ऐसी कठिनाई हो जिसे एक सीमित समय में दूर नहीं किया जा सकता। अहिंसा असहयोग की मूल आत्मा है इस शर्त के साथ कि यदि अहिंसा को एक विश्वास के रूप में स्वीकार न किया जा सकता हो तो उसे एक सुदृढ़ नीति के रूप में ग्रहण कर लिया जाए। उन समस्त संबंधों का विच्छेद हो जो हिन्दोस्तान की नौकरशाही को जमाये रखने के कारण है, निःसंदेह यह असहयोग कार्यक्रम का मुख्य सिद्धांत है। परन्तु इस सिद्धांत के कार्यान्वित करने की परिधि को भी इस कार्यक्रम ने अत्यधिक सीमित कर दिया है। और इसे केवल इस प्रकार व्यवहार में लाना चाहता है कि इसकी कठिनाइयां कम से कम रह जाएं। त्याग, इन्द्रिय निग्रह और अध्यात्म की उच्चता इसके युद्ध के मूल हथियार हैं, फिर भी वह इस संबंध में पूर्ण साहिष्णुता का प्रदर्शन करता है और चुनिंदा लोगों से देश के लिए आदर्श प्रस्तुत करने के अतिरिक्त और किसी से ऐसी मांग नहीं करता जिसकी पूर्ति देश की साधारण क्षमता के लिए अत्यन्त कठिन है। अपने वर्तमान रूप में पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि यह कार्यक्रम अधिकार-प्राप्ति के इच्छुक उन समस्त दलों के लिए एक ऐसा संविधान बन गया है जो अधिक से अधिक स्पष्ट तथा सरल है। इसलिए व्यावहारिक हो सकता है तथा दुनिया की निहत्थी शक्तियों को विजय का विश्वास दिला सकता है। इस कार्यक्रम में न केवल सिद्धांतगत सच्चाई को ध्यान में रखा गया है बल्कि व्यवहार की भी समस्त कठिनाइयों पर दृष्टि रखी गई है।

कार्यक्रम की रूपरेखा

इस कार्यक्रम का मूल आधार यह है कि हम हिन्दोस्तान की वर्तमान सशक्त नौकरशाही से लड़ने के लिए बिना हथियार और अहिंसात्मक संघर्ष के द्वारा ऐसी विजय प्राप्त कर सकते हैं कि वह सत्ताधारी हिन्दोस्तानी राष्ट्र की इच्छा के आगे हथियार डालने पर विवश हो जाए। प्रत्येक देश के समान हिन्दोस्तान को भी आज इस प्रश्न का उत्तर देना है। वह केवल यह है कि क्या राष्ट्र की इच्छा की प्रतिनिधि इस देश के निवासियों की स्वतंत्र सरकार होगी या कोई ऐसी सरकार होगी जो सैन्य-बल द्वारा बनवाई गई हो।

यह बेहथियार संघर्ष किस प्रकार चलाया जाए? इस प्रश्न का उत्तर निःसंदेह हमें एक

बात की ओर ले जाता है जो केवल आवश्यकता और तात्कालिक समस्या ही नहीं है बल्कि एक दृढ़ अवधारणा भी है। यह विचार कहता है कि हमें वर्तमान राज्यव्यवस्था के सहयोग से अलग हो जाना चाहिए क्योंकि हमें ऐसी सत्ता का साथ नहीं देना चाहिए और इसलिए कि हम इससे अलग होकर उसे इस प्रकार गिरा सकते हैं कि वह हमसे लड़ने के अयोग्य हो जाए। इसकी यह मांग कर्तव्य और आवश्यकता दोनों पर आश्रित है। वह धर्म, नैतिकता, अनुभव और इतिहास सबकी सर्वमान्य सच्चाई है। हमें उस अन्याय का उपादान नहीं बनना चाहिए जो हमारे साथ किया जा रहा है। इसमें कोई शंका नहीं कि एक दिन के सूर्योदय और सूर्यास्त के भीतर हिन्दोस्तान का इतिहास पलटा जा सकता है यदि हम इस सत्ता से असहयोग करने पर सहमत हो गए हों। इस सहजता की समस्त कठिनाइयां इसी प्रश्न में निहित हैं। इस संग्राम में जो युद्ध होते हुए भी युद्ध नहीं है पर समर जैसी कोई तैयारी है।

असहयोग आंदोलन के कार्यक्रम ने अपने कार्य को दो स्वाभाविक भागों में विभाजित कर दिया है। एक है युद्ध के लिए सामग्री उपलब्ध करना और दूसरा है स्वतः युद्ध कार्य। युद्ध-सामग्री का अर्थ असहयोग की अन्तरात्मा द्वारा प्रेरित व्यक्ति और युद्ध का अर्थ हमारे सहनशील शक्ति और उसके नौकरशाही शासन के बीच मुकाबला यह शक्ति-परीक्षण जल्दी ही आगे आएगा या बाद में।

असहयोग की मानसिकता

यह बात भी अपने आप यहां स्पष्ट हो गई कि असहयोग आंदोलन की मानसिकता के संबंध में जो भ्रम फैलाए गए हैं वह कितने अविश्वसनीय हैं। कहा गया है कि वह पाश्चात्य संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान के विरुद्ध एक चुनौती है। वह राजनैतिक संघर्ष के स्थान पर एक नवीन धर्म और नैतिकता का प्रवचन है और वह संन्यास की शिक्षा देकर सांसारिक संघर्षों से विमुक्त करना चाहता है। परन्तु मैं पूर्ण विश्वास से कहता हूँ कि यह हमारे विचारों की ऐसी व्याख्या है जिसे हम स्वीकार नहीं करते।

वस्तुतः किसी शिक्षा और समाज के प्रयत्न से असहयोग का प्रत्यक्षतः संबंध नहीं है। हिन्दोस्तान में निस्संदेह पाश्चात्य संस्कृति और सभ्यता के गुणों और अवगुणों के संबंध में विभिन्न मत पाये जाते हैं। स्वयं योरप और अमरीका की मानसिक शांति उद्वेलित होती है तो नये-नये सिद्धांतों और विचारों की बात आती है। यह भी सत्य है कि टालस्टाय के समान स्वयं महात्मा गांधी का भी इस संबंध में विशिष्ट दृष्टिकोण है किन्तु असहयोग आंदोलन अपने लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य कोई मत नहीं रखता। वह अपने समर्थकों को न कोई धार्मिक अवधारणा प्रदान करता है और न ही संन्यास और तपस्या और न एक नवीन आश्रम निर्मित करना चाहता है। वह हर प्रकार से एक राजनैतिक आचार-संहिता है जिसका आधार वस्तुनिष्ठता और सच्चाई है। अतः धर्म, नैतिकता, इतिहास सबकी आंखें समान रूप से उसे पहचानती हैं। अपनी-अपनी भाषा में उसका अभिधान करती हैं। असहयोग आंदोलन कहता है कि सरकारी शिक्षा संस्थायें और वकालत को छोड़ दो, तो वह इसलिए नहीं कहता कि यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान और विधि-विधान के प्रयोग का विरोधी है ;वह केवल यह बात इसलिए कहता है कि वह उस सत्ता का

धी है जिसके अंतर्गत वहां रहना और उसकी सहायता का उपादान बनना पड़ता है। यदि वह
ता है कि खद्दर पहन लो तो यह इसलिए नहीं है कि वह मूल्यवान वस्त्रों या किसी विशेष
र की वेशभूषा का विरोधी है बल्कि इसलिए कहता है कि वह देशीय वेशभूषा को
शी वेशभूषा से श्रेष्ठ समझता है और इसलिए कहता है कि देश को अपनी स्वतंत्रता और
त के लिए जीवन आचरण की सादगी और इन्द्रिय निग्रह की नैतिक आत्मा की आवश्यकता

प्रयोग की सफलता

मैं बिना किसी संकोच के यह कहने का साहस करता हूँ कि मेरे विचार में यह कार्यक्रम केवल सफल हुआ है बल्कि उसने अधिक से अधिक वह सफलता प्राप्त की है जिसकी आशा । प्रकार के किसी कार्यक्रम से की जा सकती है। यदि अब से तीन वर्ष पूर्व यह सिद्धांतमात्र था सकी सफलता तर्क-वितर्क द्वारा ही व्याख्यायित की जा सकती थी तो अब वह प्रयोग में ाया हुआ विश्वास है जिसकी सफलता परिलक्षित हो रही है।

राष्ट्रीय क्रांतियां पहले ऊपरी तल पर नहीं होतीं बल्कि मन और मस्तिष्क की गहराइयों उत्पन्न होती हैं। इस आंदोलन ने बारह महीने में हिन्दोस्तान की मनःस्थिति को परिवर्तित कर ाया है।

अनुशासन

अंधानुसरण जिस प्रकार प्रगति और सफलता के मार्ग में अवरोधक है उसी प्रकार आज्ञा-पालन प्रत्येक सामूहिक कर्म के लिए परम आवश्यक है। संभव है कि सेनानायक ने आदेश ने में भूल की हो, सेनानी उसके विपरीत मत रख सकता है, मगर उसके विरुद्ध क़दम नहीं उठा सकता। यदि हमारे सेनानायक का आदेश अनुचित ही क्यों न हो तो भी हमें चाहिए कि, उस अंग्रेज़ रेजिमेंट के समान जिसके विनाश का शोक गीत टैनिसन ने लिखा है, हम कट जाएं किन्तु आज्ञा-पालन के पथ से विचलित न हों। एक अनुचित आदेश को झेल लेना इस बात से श्रेष्ठ है कि संपूर्ण सेना का अनुशासन ही विनष्ट हो जाए।

आज इंडियन नेशनल कांग्रेस हमारा एक मात्र सत्ताधारी दल है। इस युद्ध जैसी स्थिति में हमें चाहिए कि चाहे कांग्रेस का निर्णय हो या हमारे बड़े से बड़े नेता का मत हो, हमें क्षणिक मात्र के लिए भी उसका अंधानुसरण नहीं करना चाहिए किन्तु साथ ही हमें अवज्ञाकारी भी नहीं होना चाहिए। जो दल परिवर्तन का विरोधी है वह इस ओर से सावधान नहीं है कि कहीं अनुसरण मात्र से गतिरोध की ओर कदम न बढ़ जायें और जो दल परिवर्तन का आग्रह करता है वह इस बात पर ध्यान नहीं देता कि एक साधारण से मतभेद के कारण हमें अपने संगठनगत अनुशासन से हटना चाहिए।

काउंसिलें (परिषदें)

परिस्थितियों के समस्त पक्षों पर विचार करने के पश्चात् मैं जिस निष्कर्ष पर पहुंचा हूँ वह यह है कि वर्तमान स्थिति में हमारे लिए बाहर रहकर काउंसिलों का बहिष्कार करना कुछ उचित

नहीं हो सकता। जिस प्रकार पिछले चुनावों के अवसर पर हमारे लिए बायकाट आवश्यक था उसी प्रकार आज हमारे लिए यह संभव है कि जहां तक संभव हो, हम अधिक मात्रा में निर्वाचन में सफलता प्राप्त करें और काउंसिलों और विधानसभा में जाएं और ऐसी कार्यनीति अपनाएं कि यह स्थान भी हमारे संघर्ष का क्षेत्र बन जाए। मेरी तुच्छ राय में हमारी भावी कार्यनीति यह होनी चाहिए कि एक ओर हमारा एक दल काउंसिलों में चला जाए और दूसरी ओर काउंसिलों से बाहर भी हमारी गतिविधि जारी रहे।

हिन्दू-मुस्लिम एकता

मैंने आपका इतना समय बाह्य ढांचे की चर्चा में ले लिया किन्तु अभी यह बात शेष है कि हमारे संघर्ष के मूल आधार की क्या स्थिति है। मेरा संकेत हिन्दू-मुस्लिम एकता की ओर है। यह हमारे भवन की वह प्रथम आधार-शिला है जिसके बिना न केवल हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता बल्कि हिन्दुस्तान की वह समस्त बातें जो किसी देश के जीवित रहने और उन्नति करने के लिए हो सकती हैं, नितांत निराधार कल्पना है। केवल यही नहीं कि इसके बिना हमें राष्ट्रीय स्वतंत्रता नहीं मिल सकती बल्कि इसके बिना हम मानव-प्रेम के मूल सिद्धांत भी अपने अंदर नहीं उत्पन्न कर सकते। आज यदि एक देवदूत आकाशाच्छादित बदलियों से उतर आये और कुतुबमीनार पर खड़ा होकर यह घोषणा कर दे कि स्वराज्य चौबीस घंटे में मिल सकता है, यदि हिन्दोस्तान हिन्दू-मुस्लिम एकता का आग्रह त्याग दें तो मैं स्वराज्य को छोड़ दूंगा किन्तु इस एकता को नहीं छोड़ूंगा। स्वराज्य के मिलने में विलम्ब हुआ तो यह हिन्दुस्तान की हानि होगी किन्तु यदि हमारी एकता जाती रही तो यह मानव जाति की हानि होगी।

देश की वर्तमान स्थिति

कौन है जिसके मन में हिन्दोस्तान के प्रति लेशमात्र भी अनुराग हो और वो इस स्थिति को शांत भाव से देख सके और इसे सहन कर सके। चार वर्ष हुए कि हमने राष्ट्रीय सम्मान और गौरव की एक अत्यन्त महान घोषणा की थी और दुनिया से कहा था कि वह हमारी स्वतंत्रता की प्रतीक्षा करे। परन्तु ठीक उस समय जब दुनिया का ध्यान हमारे ऊपर केन्द्रित हो गया तो हम तत्पर हो गए हैं कि अपनी दासतापरक निर्लज्जता और अपने उन्मादपूर्ण रक्तपात की कथा उसके सम्मुख प्रस्तुत करें। वर्तमान स्थिति यह है कि स्वराज्य और ख़िलाफ़त के स्थान पर शुद्धि का नारा लगाया जा रहा है। एक ओर से कहा जा रहा है कि हिन्दुओं को मुसलमानों से बचाओ तो दूसरी ओर से कहा जा रहा है कि इस्लाम को हिन्दूवाद से बचाओ। जब हिन्दुओं को बचाओ और मुसलमानों को बचाओ की पुकार हो रही है तब राष्ट्र बचाने की चिन्ता कौन करे। प्रेस और मंच धर्मान्धिता और रूढ़िवाद को फैलाने में व्यस्त हैं और भोलीभाली तथा अनभिज्ञ जनता सड़कों पर खून बहाने में व्यस्त है। अजमेर, मेरठ, सहारनपुर, आगरा और पलवल सभी जगह खूनी दंगे हो चुके हैं और कौन कह सकता है कि आगे चलकर इसके कितने दुःखद परिणाम होंगे?

सांप्रदायिक संगठन

अभी अधिक समय नहीं बीता जब मुसलमान एक समुदाय के रूप में कांग्रेस की नैतिक गतिविधियों में भाग नहीं लेते थे। मुसलमानों की साधारणतः भावना यह थी कि दोस्तान में उनकी संख्या हिन्दुओं से बहुत कम है; शिक्षा और सम्पत्ति में उनसे पीछे हैं; लिए यदि वह किसी संयुक्त संघर्ष में सम्मिलित होंगे तो उसके अस्तित्व का हनन होगा। इसी धारणा का परिणाम था कि दीर्घ काल तक वह राष्ट्रीय आंदोलन से पृथक् रहे और अपना क् सामुदायिक संगठन बनाने में प्रयत्नशील रहे।

परन्तु संभवतः आप में से वे समस्त महानुभाव जो गत बारह वर्षों के अंदर मुसलमानों सामाजिक परिवर्तनों का अध्ययन करते रहे होंगे इस बात से परिचित होंगे कि १९१२ ई० सर्वप्रथम इस मनोवृत्ति के विरुद्ध मैंने आवाज उठाई थी। मैंने अपने सहधर्मियों का ध्यान इस र आकृष्ट किया कि वह पृथकतावादी नीति पर चलकर स्वयं को देश की स्वतंत्रता के विरुद्ध योग कर रहे हैं। उन्हें चाहिए कि अपने हिन्दू भाइयों पर विश्वास करें, कांग्रेस में सम्मिलित देश की स्वतंत्रता को अपना लक्ष्य बनाएं और सांप्रदायिक संगठनों से परे हो जाएं। उस समय ी यह पुकार मेरे समस्त सहधर्मियों को अनुचित लगी। पूरी शक्ति के साथ मेरा विरोध किया या। परन्तु अंततोगत्वा वह समय अत्यन्त शीघ्र आ गया जब मुसलमानों ने इस वास्तविकता की च्चाई को स्वीकार किया। मैं जब १९१६ ई० में रांची में नज़रबंद था तो सुन रहा था कि सलमानों के दल के दल कांग्रेस में सम्मिलित हो रहे हैं।

जिस प्रकार मैंने १९१२ में अपने समस्त सहधर्मियों की नीति के विरुद्ध आवाज़ उठाई ी और उनके विरोध का भय उन्हें सत्याभिव्यक्ति से न रोक सका था, ठीक उसी प्रकार आज भी अपना कर्तव्य समझता हूँ कि उन सारे भाइयों के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाऊं जो हिन्दू संगठन के ांदोलन के संचालक हैं। मैं यह देखकर आश्चर्यचकित हो रहा हूँ कि जो मानसिक स्थिति उस समय ुसलमानों के राजनैतिक घटकों की थी ठीक-ठीक वही मनःस्थिति आज इन महानुभावों की हो ही है। वही तर्क आज भी हमें सुनाए जा रहे हैं। वही कार्य-कारण आज भी उनकी जिह्वा पर ं। मुसलमानों का यह विचार इस नीति के साथ संबद्ध था कि उनकी जनसंख्या कम है और यह आंदोलन उन लोगों को भड़काना चाहता है जिनकी संख्या मुसलमानों से तीन गुना अधिक है। ैं निःसंकोच स्पष्टतः कहना चाहता हूँ कि आज हमें हिन्दोस्तान में न किसी हिन्दू संगठन की आवश्यकता है न मुस्लिम संगठन की, हमें केवल एक संगठन की ज़रूरत है और वह है 'इंडियन ेशनल कांग्रेस'।

इन आंदोलनों के कतिपय विश्वसनीय महानुभाव यह भी कहते हैं कि उनके आंदोलन हिन्दू-मुस्लिम एकता के विरोधी नहीं हैं। इसीलिए वह सदैव लड़ मरने का प्रवचन देकर अंत में एकता और प्रेम का भी संदेश सुना देते हैं। इन महानुभावों से मैं कहूंगा कि आपने हमें ग़लत मार्ग की ओर बुलाया है किन्तु अब मनुष्य की स्वाभाविक मनोवृत्ति को नकारने का निमंत्रण न दीजिए। ईसा ने दुनिया से कहा कि शत्रुओं को क्षमा प्रदान करो किन्तु दुनिया आज तक मित्रों को भी क्षमा न कर सकी। क्या आप चाहते हैं कि एक ओर प्रतिशोध और जूझने की भावना भड़का कर दूसरी ओर एकता और प्रेम की स्थिति भी उत्पन्न की जा सकती है?

इसी प्रकार मैं शुद्धि आंदोलन के संबंध में यही निवेदन करूंगा कि हम कागज पर राजनैतिक संयुक्त संघर्ष और धार्मिक सांप्रदायिक द्वन्द्व को दो विभिन्न स्थानों में रख सकते हैं, किन्तु व्यवहार में कोई ऐसा भेद स्थिर नहीं रह सकता। हमें संयुक्त राष्ट्रीयता की

आवश्यकता है और हम जानते हैं कि यदि हिन्दोस्तान में एक ओर मलेच्छ और दूसरी ओर से काफिर की आवाज़ें उठती रहेंगी तो असंभव है कि वह सहिष्णुता उत्पन्न हो सके जिसके बिना एकता स्थापित ही नहीं रह सकती।

इतिश्री

अन्य राष्ट्रों के ऐतिहासिक महत्त्व के दिनों के समान आज के इस उल्लेखनीय दिन के परिणाम भी अत्यन्त विरोधी रूपों में निकल सकते हैं। हम या तो बहुत बड़ी सफलता प्राप्त कर सकते हैं या बहुत बड़ी विफलता भी हमारा भाग्य बन सकती है। हमारे संकल्प, हमारे साहस और हमारी देश-भक्ति के लिए आज यह बहुत बड़ी परीक्षा का दिन है। आइये ! इस पर विजय प्राप्त करें और अपने भाग्य के निर्माण में संलग्न हो जाएं।

महात्मा गांधी की ७८वीं वर्षगांठ

आकाशवाणी, देहली

''पंजाब में सहस्रों वर्षों से पाँच नदियां बह रही थीं। अब गर्म-गर्म रक्त की छठी नदी भी बहने लगी है। पानी की नदियों पर हमने ईंट, पत्थर और लोहे के पुल बनाये थे। इस छठी नदी पर मनुष्य के शवों से पुल बनाया जा रहा है।''

महात्मा गांधी का जन्मदिन *

आज का दिन महात्मा गांधी की ७८वीं वर्षगांठ का दिन है। आज उनकी आयु ७८ वर्ष की हो गई। इस ७८ वर्ष में से उनके जीवन के पूरे ५० वर्ष शांति, मानव और मानवीय अधिकारों की सेवा और प्रचार में व्यतीत हुए। वस्तुतः यह गांधी जी की वर्षगांठ नहीं है, शांति और मानवता के लक्ष्यों की वर्षगांठ है। परन्तु आज जब हम मानवता के लिए शांति की यह वर्षगांठ मना रहे हैं तो हमारे चारों ओर क्या हो रहा है। स्वयं शांति और मानवता की क्या दुर्गति हो रही है। जिस हिन्दुस्तान ने संसार को शांति और मानवतावाद का यह महानतम पुरुष दिया है, स्वयं उसी हिन्दुस्तान में किस प्रकार शांति को धूल-धूसरित किया जा रहा है। पंजाब में पानी की पांच नदियां हज़ारों वर्षों से बह रही थीं, अब एक छठी नदी मनुष्य के गर्म-गर्म रक्त की बहने लगी है। पानी की नदियों पर हमने ईंट-पत्थर और लोहे के पुल बनाये थे। इस छठी नदी का पुल अब मनुष्यों के शव से चुना जा रहा है। आज से ६०० वर्ष पूर्व जब तातारियों ने मुल्तान पर आक्रमण किया था तो अमीर खुसरो ने कहा था कि "पंजाब अर्थात् मुल्तान में पानी की पांच नदियों के साथ-साथ रक्त की भी पांच नदियां बहने लगी हैं।" उस समय संभवतः यह उक्ति अतिशयोक्तिपूर्ण थी किन्तु आज यह एक वास्तविकता है। आज पूर्वी पंजाब में किसी मुसलमान के लिए शांति नहीं रही, इसी तरह पश्चिमी पंजाब में किसी हिन्दू और सिक्ख के लिए शांति दुर्लभ है। इसी दिल्ली में जिसके एक भवन के अन्दर बैठा हुआ मैं आपके कानों तक अपनी यह आवाज़ पहुंचा रहा हूं, दो सप्ताह तक जो कुछ होता रहा है उसकी स्मृति प्रत्येक लज्जाशील भारतवासी के हृदय को घावों से भर देती है। प्रश्न यह है कि हम अकस्मात क्या से क्या हो गये और अब हम जा किस ओर रहे हैं। अभी कल की बात है कि हम अपने देश की स्वतन्त्रता के लिए रो रहे थे और फिर समस्त संसार में हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय जागृति की धूम मच गई। क्या-क्या चित्र नहीं हैं जो हमने स्वतन्त्र भारत के नहीं बनाए, क्या-क्या स्वप्न नहीं हैं जो हमने राष्ट्रीय जीवन की नई उठानों के नहीं देखे। आज वो सब कहां हैं? क्या हमारे मस्तिष्क के किसी कोने में भी उसकी प्रतिछाया शेष रह गई है, क्या उनकी महक भी कोई दुर्भाग्यग्रस्त व्यक्ति इस वातावरण में सूंघ सकता है? हमारी स्वतन्त्रता के विरोधियों ने सदैव कहा था कि हिन्दुस्तानियों के हाथ-पांव जब तक दासता के बंधनों से बंधे हुए हैं, उसी समय तक सुख-शांति है, जहां यह बंधन टूटे तो ये एक-दूसरे की गर्दन काटना आरम्भ कर देंगे। खुदा के लिए मुझे बतलाओ, यदि इस स्थिति को तुरन्त समाप्त न कर सके तो इसका परिणाम क्या होगा? क्या यही परिणाम नहीं निकलेगा कि भारतीय स्वतन्त्रता के विरोधियों ने जो कुछ कहा था वह नितांत सत्य था? आज स्वतन्त्र भारत को जीवन के सबसे बड़े संकट का सामना है, वो एक बड़ी गहरी खाई के किनारे खड़ा है। उसका भाग्य अधर में झूल रहा है, या तो उसे गहरी खाई में गिरना है

---

* २ अक्तूबर, १९४७ को महात्मा गाधी की ७८वी वर्षगाठ के अवसर पर मौलाना ने आकाशवाणी से यह वार्ता प्रसारित की थी। यह वार्ता प्रथम बार प्रकाशित हो रही है।

या छलांग मारकर सुरक्षित पार उतर जाना है। यदि हम चाहते हैं कि अपेन देश की स्वतन्त्रता को इस संकट से सुरक्षित निकाल ले जाएं तो हमें चाहिए कि सर्वप्रथम ठीक-ठीक समझ लें कि संकट क्या है और फिर इससे देश को बचाने का उपाय करें। जो सकंट आज हमारे सम्मुख है, वह देश में अशांति और दुर्व्यवस्था का संकट है। देश की स्वतन्त्र सरकार की आयु अभी दो महीने की भी नहीं हुई है और वो देखने लगी हैं कि अशांति और अनुशासनहीनता का संकट शनैः-शनैः सिर उठा रहा है। साहसपूर्वक और देश की संपूर्ण शक्ति सहित यह संकट न दबाया गया तो कोई नहीं कह सकता कि यह कहां जाकर थमेगी? यह एक वास्तविकता है कि पंजाब के दोनों भागों में अशांति की बाढ़ आई और दोनों स्थानों की सरकारें उसे रोक न सकीं। प्रश्न यह है कि अब हमें क्या करना चाहिए? यह करना चाहिए कि सरकार की संपूर्ण शक्ति लगा कर पंजाब में एक और अधिक विनाश न होने दिया जाए और साथ ही साथ समस्त देश में शांति और व्यवस्था बनाए रखी जाए या यह करना चाहिए कि पंजाब को और अधिक विनष्ट होने के लिए छोड़ दिया जाए और देश के अन्य भागों की शांति और व्यवस्था को भी विनष्ट होने के लिए छोड़ दिया जाए। मुझे विश्वास है कि आप में से कोई व्यक्ति भी ऐसा कहने का साहस नहीं कर सकेगा कि प्रथम उपाय के अतिरिक्त मुक्ति का कोई अन्य उपाय भी हो सकता है। यदि वास्तविक रूप से आप इस बात पर विश्वास रखते हैं तो आपका कर्तव्य है कि इस कार्य के लिए अपनी समस्त शक्ति लगा दीजिए। जहां तक सरकार का संबंध है, उसने सुदृढ़ निर्णय कर लिया है कि किसी स्थिति में भी अशांति और उपद्रवों को सहन नहीं करेगी और प्रत्येक उपद्रव जो सिर उठाएगा उसे अत्यन्त कड़ाई से मटियामेट करेगी। आपको भी चाहिए कि इस काम में सरकार का हाथ बटाएं और हर प्रकार की अशांति और दुर्व्यवस्था को रोकें। आप अपने इस कर्तव्य का निर्वाह कैसे कर सकते हैं, इसका विवरण मैं प्रस्तुत नहीं करूंगा। यदि आप सच्चे मन की लगन के साथ तत्पर हो गये हैं तो आपको बतलाने की आवश्यकता नहीं कि देश की यह सेवा आपको किस प्रकार पूर्ण करनी चाहिए।

''जयहिन्द !'

दिल्ली के मुसलमानों के सम्मुख भाषण

जामा मस्जिद, देहली

"जामा मस्जिद की मीनारें आप से पूछती हैं। आपने अपनी गौरव-गाथा के पृष्ठों को कहाँ गुम कर दिया है? यह कल की ही तो बात है कि आप के सार्थवाह ने यमुना के तट पर वजू किया था और आज आप यहाँ रहने से भयभीत हैं?"

जामा मस्जिद का भाषण *

मेरे प्रियजनो, आप जानते हैं कि वह कौन सी बात है जो मुझे यहाँ ले आई है। मेरे लिए शाहजहाँ की ऐतिहासिक मस्जिद में यह जनसभा कोई नई बात नहीं है। मैंने यहीं से तुम्हें पिछले कई अवसरों पर संबोधित किया था, तब से लेकर अब तक हमलोगों ने विभिन्न उतारों और चढ़ावों को देखा है। जब तुम्हारे मुखमण्डल पर चिन्तारेखा के स्थान पर संतोष था और तुम्हारे हृदयों में असमंजस की जगह विश्वास था। आज तुम्हारे मुखों पर क्षोभ और हृदयों में शून्यता देखता हूं तो मुझे अकस्मात पिछले कुछ वर्षों की भूली-बिसरी गति-विधियां याद आ जाती हैं। तुम्हें याद है, मैंने तुम्हें पुकारा, तुमने मेरी जीभ काट ली, मैंने लेखनी उठाई, तुमने मेरे हाथ काट दिए, मैंने चलना चाहा, तुमने मेरे पांव काट दिए, मैंने करवट लेनी चाही, तुमने मेरी कमर तोड़ दी। यहां तक कि पिछले सात वर्षों में जब कटु राजनीतिक खेल अपने उत्कर्ष पर थी, मैंने तुम्हें प्रत्येक खतरे के संकेत से बचाना चाहा। किन्तु तुमने न केवल मेरे आह्वान को ठुकरा दिया बल्कि भ्रांतिलिप्त रहने वालों और सत्य को नकारने वालों की सारी पुरानी कहानियां फिर से दुहरा दीं। परिणाम सामने है। आज उन्हीं खतरो ने तुम्हें घेर लिया है जिनकी आशंका तुम्हें सद्मार्ग से दूर ले गयी थी।

सच पूछो तो आज मैं एक जड़ अस्तित्व से अधिक कुछ नहीं हूं या परित्यक्त रुदन : मैं अपनी ही मातृ-भूमि में एक अनाथ हूं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जो स्थान मैंने पहले दिन अपने लिए निर्धारित किया था वहां मेरी उड्डयन शक्ति का अन्त कर दिया गया है, या मेरे नीड़ के लिए वहाँ जगह नहीं रही बल्कि मैं यह कहना चाहता हूं कि मेरे दामन को तुम्हारे लांछनों से शिकायत है। मेरी भावनाएं घायल नहीं हैं और मेरा मन दुःखी है। सोचो तो सही, तुमने कौन सा मार्ग अपनाया, कहां पहुंचे और अब कहां खड़े हो, क्या यह भयातुर जीवन नहीं ? क्या तुम्हारी चेतना में विषेप उत्पन्न नहीं हुआ है ? यह आतुरता तुमने स्वयं ही उत्पन्न की है। ये तुम्हारे अपने कर्मों के ही फल हैं।

अभी उस बात को कुछ अधिक समय नहीं बीता जब मैंने तुमसे कहा था कि द्वैराष्ट्र की अवधारणा आभ्यन्तरिक जीवन के लिए प्राणघातक रोग के समान है, उसको छोड़ दो। यह खम्भे जिन का तुमने सहारा लिया है अत्यन्त तीव्रता से टूट रहे हैं। लेकिन तुमने सुनी-अनसुनी कर दी और यह न सोचा कि समय और इसकी गति तुम्हारे लिए अपना नियम नहीं बदल सकती।

---

* २३ अक्तूबर, १९४७ ई० को मौलाना ने देहली के मुसलमानो के सम्मुख भाषण दिया था। उस समय बेघर हो चुके थे और अपनी राजनैतिक तथा राष्ट्रीय अस्मिता खो देने के कारण भयभीत थे। अपने पूर्वजो की धरती को छोडकर जाने की बात सोचने और पाकिस्तान रूपी मृगतृष्णा के पीछे भागने पर मौलाना ने उन्हे फटकारा था।

१ संकेत अबुजेहल की ओर है जिसने रसूल के सत्यवचन को आजीवन नकारा है और सद्मार्ग से विमुख रहा।

२ तात्पर्य जुलेखा और पैगम्बर यूसुफ की अन्तर्कथा से है जिसमें हजरत यूसुफ पर आसक्त जुलेखा ने वासनातृप्ति के हेतु स्वय को समर्पित करना चाहा, किन्तु जब हजरत यूसुफ इसके लिए तैयार नही हुए और कमरे से बाहर निकलने लगे तो पिछे से उसने उनका दामन फाड़ दिया तथा उन पर बलात्कार करने का लांछन लगाया।

समय की गति थमी नहीं। तुम देख रहे हो कि जिन सहारों पर तुम्हें भरोसा था वो तुम्हें अनाथ समझकर भाग्य के हवाले कर गए। यह वह भाग्य है जिसका तुम्हारे मानस शब्दकोष के अभिप्रायों से भिन्न अर्थ है। उसके अनुसार साहस के अभाव का नाम ही भाग्य है।

अंग्रेज़ की बिसात तुम्हारी इच्छा के विपरीत उलट दी गई और नेतृत्व की यह प्रतिभाएं जो तुमने गढ़ी थीं वह भी धोखा दे गई, हालांकि तुमने यही समझा था कि यह बिसात चिरकाल के लिए बिछाई गई है और इन्हीं प्रतिमाओं की पूजा मे तुम्हारा जीवन सफल है। मैं तुम्हारे घावों को दुखाना नहीं चाहता हूं और तुम्हारी व्याकुलता को और अधिक बढ़ाना भी नहीं चाहता। लेकिन यदि अतीत में झांककर देखो तो तुम्हारे लिए बहुत से रहस्यों का उद्घाटन हो सकता है। एक समय था जब मैंने हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रताप्राप्ति की आवश्यकता को प्रोत्साहित करते हुए तुम्हें पुकारा था :

"जो होने वाला है उसके कोई समुदाय अपने अमंगल से रोक नहीं सकता। हिन्दुस्तान के भाग्य में राजनैतिक क्रान्ति लिखी जा चुकी है और पराधीनता की जंजीरें बीसवीं शताब्दी के स्वातन्त्र्य वातचक्र से कट कर गिरने वाली है। यदि तुमने समय के साथ-साथ क़दम उठाने में आनाकानी की और गतिरोधात्मक वर्तमान जीवन को अपनी जीवनचर्या बनाए रखा तो भविष्य का इतिहासकार लिखेगा कि तुम्हारे दल ने जो सात करोड़ मानवों का समूह था देश की स्वाधीनता के बारे में वह मनोवृत्ति अपनायी जो धरती तल से लुप्त हो जाने वाली जातियों का आचरण हुआ करता है। आज हिन्दुस्तान का झंडा अपने पूर्ण वैभव में लहरा रहा है। यह वही झंडा है जिसके आह्वान करने पर एक समय के शासकवर्ग तिरस्कारपूर्ण उपहास किया करते थे।"

यह ठीक है कि समय ने तुम्हारी आकांक्षानुकूल अंगड़ाई नहीं ली। बल्कि उसने एक राष्ट्र के जन्मसिद्ध अधिकार के सम्मान मे करवट बदली और यही वह क्रान्ति है जिसकी एक करवट ने तुम्हें बड़ी हद तक भयभीत कर दिया है। तुम सोचते हो कि तुम से कोई अच्छी चीज़ छिन गई है और उसके स्थान पर बुरी वस्तु आ गई है। हां, तुम्हारी व्याकुलता इसीलिए है कि तुमने स्वयं को अच्छी वस्तु के लिए तत्पर नहीं किया था और बुरी चीज़ को स्वर्ग का स्वादिष्ट भोजन समझ रखा था। मेरा आशय विदेशी दासता से है जिसके हाथों तुमने दीर्घकाल तक सत्तालोलुपता का खिलौना बनकर जीवन व्यतीत किया। एक दिन था कि हमारे समुदाय के पग किसी संघर्ष के शुभारम्भ की ओर बढ़े थे और आज तुम इस युद्ध के परिणाम से विचलित हो। तुम्हारी इस उतावली के संबंध में क्या कहूँ कि इधर यात्रा की खोज समाप्त नहीं हुई और उधर भटक जाने का भय उत्पन्न हो गया।

मेरे भाई, मैंने राजनीति को वैयक्तिकता से सदैव अलग रखने की चेष्टा की है। मैंने उन कंटकपूर्ण घाटियों में क़दम नहीं रखा। यही कारण है कि मैंने बहुत सी बातें अप्रत्यक्षरूप से कही हैं। लेकिन मुझे आज जो कुछ कहना है उसे निर्भीक होकर कहना चाहता हूं। अखंड भारत का विभाजन मूलतः गलत है। धार्मिक भेदभाव को जिस प्रकार हवा दी गई उसका अनिवार्यतः परिणाम यही लक्षण और रूप थे जो हमने अपनी आंखों से देखे और दुर्भाग्यवश कुछ स्थानों पर आज भी देख रहे हैं।

पिछले सात वर्षों की कथा दोहराने से कोई लाभ नहीं है और न इससे कोई अच्छा निष्कर्ष निकल सकता है। लेकिन हिन्दुस्तानी मुसलमानों पर जो विपत्ति आई है वह निश्चय ही मुस्लिम लीग के भ्रामक नेतृत्व की भयंकर ग़लतियों ही का परिणाम है। मेरे लिए इसमें कोई नई बात नहीं है। पिछले दिनों ही से मैं इन परिणामों को देख रहा था।

अब हिन्दुस्तानी राजनीति की दिशा बदल चुकी है। मुस्लिम लीग के लिए यहां कोई स्थान नहीं है। अब यह हमारी अपनी बुद्धि पर निर्भर है कि हम किसी उचित दृष्टिकोण से सोच सकते हैं या नहीं। इसीलिए मैंने नवम्बर के दूसरे सप्ताह में हिन्दुस्तान के मुसलमान नेताओं को दिल्ली बुलाने का निर्णय किया है। निमंत्रण पत्र भेज दिए गए हैं। संत्रास की ऋतु अस्थायी है। मैं तुमको विश्वास दिलाता हूं कि हमको हमारे अतिरिक्त कोई अन्य वशीभूत नहीं कर सकता। मैंने हमेशा कहा और आज फिर कहता हूं कि दुविधा का मार्ग छोड़ दो, आशंकाओं से हाथ उठा लो और अनुचित कर्मों का त्याग कर दो। यह अनोखा त्रिधारी खन्जर लोहे की उस दोधारी तलवार से अधिक घातक है जिसके घाव की कहानियां मैंने तुम्हारे नवयुवकों के मुख से सुनी हैं।

पलायन का यह जीवन जो तुमने हिज़रत[३] के पुनीत नाम पर अपनाया है उस पर विचार करो, अपने मन को सुदृढ़ बनाओ और अपने मस्तिष्क में सोचने की क्षमता उत्पन्न करो और फिर देखो कि तुम्हारे यह निर्णय कितने उतावलेपन से लिए गए हैं। आखिर कहां जा रहे हो और क्यों जा रहे हो?

यह देखो, जामा मस्जिद के उत्तुंग मीनारें तुमसे उचककर एक प्रश्न करना चाहते हैं कि तुमने अपने इतिहास के गौरवपूर्ण पृष्ठों को कहां गुम कर दिया? अभी कल की बात है कि यमुनातट पर तुम्हारे सार्थवाहों ने वज़ू[४] किया था और आज तुम हो कि तुम्हें यहां रहते हुए डर लग रहा है जबकि दिल्ली तुम्हारे रक्त से सिंचित है।

स्वजनो, अपने अन्दर एक मौलिक परिवर्तन उत्पन्न करो। जिस प्रकार कुछ समय पूर्व तुम्हारा उल्लास अनुचित था उसी प्रकार आज तुम्हारा यह भय और तुम्हारी यह निराशा भी अनुचित है। मुसलमान और कायरता या मुसलमान और उत्तेजना एक स्थान पर एकत्रित नहीं हो सकते। सच्चे मुसलमानों को न तो कोई लालसा डिगा सकती है और न कोई भय भयभीत कर सकता है। कुछ मानवीय आकृतियों के अगोचर हो जाने से डरो नहीं। उन्होंने तुम्हें जाने के लिए ही इकट्ठा किया था। आज उन्होंने तुम्हारे हाथ से अपना हाथ खींच लिया है तो यह कोई बुरी बात नहीं है। यह देखो कि तुम्हारे दिल तो उनके साथ ही प्रस्थान नहीं कर गये। यदि दिल अभी तक तुम्हारे पास है तो उसे उस ईश्वर की क्रीड़ास्थली बनाओ जिसने आज से तेरह सौ वर्ष पूर्व अरब के एक निरक्षर के माध्यम से अपनी वाणी सुनाई थी—"जिन्होंने ईश्वर पर विश्वास किया और उस पर जम गए तो फिर उनके लिए न तो किसी प्रकार का भय है और न ही कोई दुख।"[५] हवायें आती हैं और चली जाती हैं। यह गर्म हवा सही किन्तु इसकी आयु कुछ अधिक नहीं है। अभी देखते-देखते यह विपत्तिकाल बीत जाने वाला है। यूं बदल जाओ जैसे तुम पहले कभी इस स्थिति में थे ही नहीं।

मैं बातचीत में पिष्टपेषण का अभ्यस्त नहीं हूं। लेकिन मुझे तुम्हारी भ्रमित बुद्धि के कारण बार-बार यह कहना पड़ता है कि तीसरी शक्ति अपने दम्भ का पिटारा उठाकर जा चुकी है। जो होना था वह होकर रहा। राजनीतिक मानसिकता अपना पिछला सांचा तोड़ चुकी है और अब नया सांचा ढल रहा है। यदि अब भी तुम्हारा मन नहीं बदला और दिमागी पूर्वाग्रह समाप्त नहीं हुई तो फिर स्थिति कुछ भिन्न है। लेकिन यदि वस्तुतः तुम्हारे अन्दर सच्चे परिवर्तन की इच्छा उत्पन्न हो गई तो फिर इस तरह बदलो जिस प्रकार इतिहास ने स्वयं को बदल लिया है। आज भी जब हम क्रान्ति के एक चरण को पूरा कर चुके हैं हमारे देश के इतिहास में कुछ

---

३. आत्मसुरक्षा के हेतु एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रस्थान। संकेत रसूल के द्वारा मक्के से मदीना प्रस्थान करने की ओर है।

४. नमाज़ के लिए विधिवत शरीर के निर्वस्त्र अवयवों का प्रक्षालन।

५. संकेत इस्लाम के पैगम्बर की ओर है,

पृष्ठ रिक्त हैं और हम इन पृष्ठों पर अंकित होने का गौरव प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु शर्त यह है कि हम इसके लिए तत्पर भी हों।

स्वजनो, तबदीलियों के साथ चलो, यह न कहो कि हम इस परिवर्तन के लिए तत्पर न थे, बल्कि अब तैयार हो जाओ। सितारे टूट गए किन्तु सूर्य तो चमक रहा है। उससे किरणें मांग लो और उन अंधेरी राहों में बिछा दो जहां प्रकाश की अत्यधिक आवश्यकता है।

मैं तुमसे यह नहीं कहता कि तुम शासनिक सत्ता की पाठशाला से वफ़ादारी का प्रमाण-पत्र प्राप्त करो और वही खुशामदी जीवन बिताओ जो विदेशी सत्ताधारियों के युग में बिताया है। मैं कहता हूं कि जो कीर्तिमान स्तंभ तुम्हें इस हिन्दुस्तान में अतीत के स्मारक के रूप में दिखाई पड़ रहे हैं वह तुम्हारे ही सार्थवाह के पदचिह्न हैं, उन्हें भुलाओ नहीं, उन्हें छोड़ो नहीं। उनके उत्तराधिकारी बन कर रहो और समझ लो कि यदि तुम भागने के लिए तत्पर नहीं हो तो फिर तुम्हें कोई शक्ति भगा नहीं सकती। आओ प्रण करो कि यह देश हमारा है, हम इसके लिए हैं और इसके मौलिक भाग्य-निर्णय हमारी आवाज़ के बिना अधूरे ही रहेंगे।

आज भूकम्पों से डरते हो, कभी तुम स्वय एक भूकम्प थे, आज अन्धेरे से डरते हो, कभी तुम्हारा अस्तित्व प्रकाश का अधिकेन्द्र था! बादलों ने यह गन्दला पानी बरसाया है, तुमने भीग जाने के भय से अपने पायंचे चढ़ा लिये हैं। वह तुम्हारे ही पूर्वज थे जो समुन्दरों में उतर गए, पहाड़ों के वक्षस्थल को पदाक्रांत कर डाला, विद्युतपात हुआ तो वह मुस्करा दिए, बादल गरजे तो अट्टहासों से गर्जन का उत्तर दिया, तूफ़ान उठे तो उनका रुख़ मोड़ दिया, आंधियां आईं तो उनसे कहा तुम्हारा मार्ग यह नहीं है। यह निष्ठा और ईमान के निष्प्राण होने का द्योतक है कि सम्राटों की ग्रीवा पर हाथ डालने वाले आज स्वयं अपनी गरदनें मरोड़ रहे हैं और ईश्वर से इतना विमुख हो गए हैं कि जैसे उस पर कभी निष्ठा थी ही नहीं।

बन्धुओ! मेरे पास तुम्हारे लिए कोई नया उपचार नहीं है। वही पुराना उपचार है जो वर्षों पहले का है। वह उपचार वही है जिसे मानवता के महानतम उद्धारक ने बताया था। वह उपचार क़ुरान की यह घोषणा है—"डरो मत और दुःखी मत हो। निश्चय ही तुम्हारा पलड़ा भारी होगा यदि तुम निष्ठावान हो।"[६]

आज की सभा समाप्त हुई। मुझे जो कुछ कहना था वह सार रूप मे कह चुका हू। फिर कहता हूं और बारम्बार कहता हूं—अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण करो, तुम स्वयं अपनी परिस्थिति और अपनी दुनियां को निर्मित करना सीखो। यह मंडी में बिकाऊ वस्तु नहीं कि तुम्हें क्रय करके ला दूं। यह तो मन की दुकान ही से सत्कर्मों की नक़दी से ही सुलभ हो सकती है।

तुम्हें शान्ति मिले, ईश्वर की तुम पर दया हो और वह तुम्हारा कल्याण करे।

---

६. संकेत इस्लाम के पैग़म्बर की ओर है।

कांग्रेस अभिभाषण, १९४०

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस,
रामगढ़

"हमारे सहस्र वर्षों की सहचर भावना ने एक सामान्य राष्ट्रीयता को जन्म दिया है। इस प्रकार का साँचा कृत्रिम रूप से निर्मित नहीं हो सकता। प्रकृति की अप्रत्यक्ष निहाई ने शताब्दियों में इसे रूपायित किया है। यह सांचा अब ढल चुका है और नियति ने इस पर अपनी मुहर लगा दी है।"

कांग्रेस अध्यक्षीय अभिभाषण *

मार्च १९४०

मित्रो,

१९२३ में आपने मुझे इस राष्ट्रीय सभा का अध्यक्ष चुना था। अब १७ वर्ष पश्चात् दूसरी बार आपने यह सम्मान मुझे दिया है। राष्ट्रों के संघर्ष के इतिहास में १७ वर्ष की अवधि कोई लम्बी अवधि नहीं है। परन्तु संसार ने अपने परिवर्तनों की गति इतनी तीव्र कर दी है कि अब पुरातन पद्धति काम नहीं दे सकती। इस १७ वर्ष में एक के पश्चात् एक बहुत सी मंज़िलें हमारे सामने आती रहीं। हमारी यात्रा दूर की थी और आवश्यकता थी कि हम विभिन्न चरणों से गुज़रें। हम प्रत्येक मंज़िल में ठहरें, किन्तु रुके कहीं नहीं, हमने हर स्थान को देखा-भाला किन्तु हमारा मन कहीं भी नहीं अटका। नाना प्रकार के उतार-चढाव का हमें सामना करना पड़ा। किन्तु हर परिस्थिति में हमारी दृष्टि सामने ही की ओर रही। दुनिया को हमारे संकल्पों के सम्बन्ध में आशंकाएं रही हों, किन्तु हमें अपने निर्णयों के बारे में कभी सन्देह नहीं हुआ। हमारा मार्ग में कठिनाइयों से पूर्ण था। हमारे सम्मुख कदम-कदम पर बाधाएं खड़ी थीं। हम जितनी तीव्र गति से चलना चाहते थे, न चल सके हों किन्तु हमने आगे बढ़ने में कभी दुर्बलता नहीं दिखाई।

यदि हम १९२३ और १९४० के बीच की अपनी यात्रा पर दृष्टिपात करें तो हमें अपने पीछे बहुत दूर तक धूँधला-सा निशान दिखाई देगा। १९२२ में हम अपने गन्तव्य स्थान की ओर बढ़ना चाहते थे परन्तु मंज़िल हमसे इतनी दूर थी कि उसके मार्ग के चिह्न भी हमारी आंखों से ओझल थे। लेकिन आज भाइयो, इस स्थान की ओर देखिए, न केवल मंज़िल का निशान स्पष्टतः दिखाई दे रहा है बल्कि स्वयं मंज़िल भी दूर नहीं है। हां, यह स्पष्ट है कि जैसे-जैसे मंज़िल निकट आती जाती है हमारे संघर्ष की परीक्षाएं भी बढ़ती जाती हैं। आज घटनाओं की तीव्र गति ने जहां हमें पिछले निशानों से दूर और अंतिम मंज़िल के निकट कर दिया है, वहीं तरह-तरह की नई उलझनें और कठिनाइयां भी उत्पन्न कर दी हैं और एक अत्यंत संकटपूर्ण चरण में हमारा सार्थवाह गुज़र रहा है। ऐसे चरणों की सबसे बड़ी परीक्षा उनकी विरोधी सम्भावनाओं में होती है। बहुत सम्भव है कि हमारा एक उचित कदम हमें गन्तव्य स्थान से नितान्त निकट कर दे। और बहुत सम्भव है कि एक अनुचित कदम नाना प्रकार की नई कठिनाइयों में उलझा दे।

एक ऐसे संकटपूर्ण समय में आपने मुझे अध्यक्ष चुनकर अपने जिस विश्वास को अभिव्यक्त किया है वह निश्चय ही बड़े से बड़ा विश्वास है जो देश के सेवा-मार्ग में आप अपने एक साथी पर कर सकते थे। यह बहुत बड़ा सम्मान है, इसलिए बहुत बड़ा दायित्व है। मैं इस सम्मान के लिए

---

* मौलाना १५ फरवरी, १९४० को कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। वह १५ मार्च, १९४० ई० को रामगढ पधारे और डॉ० राजेन्द्र प्रसाद तथा सरोजनी नायडू ने वहा उनका स्वागत किया। वर्षा के कारण निर्धारित समय से एक दिन पश्चात् कांग्रेस का ५३वा अधिवेश आयोजित हुआ। मौलाना ने उपस्थित जनसमूह के सम्मुख भाषण दिया और अपनी कार्यकारिणी समिति के सदस्यों की घोषणा की।

आभारी हूं। और इस दायित्व के भार वहन के लिए आपके सहयोग की आशा भी करता हूं। मुझे विश्वास है कि जिस उत्साह के साथ आपने इस विश्वास की अभिव्यक्ति की है, वैसे ही उत्साह के साथ आपका सहयोग भी मेरा साथ देता रहेगा।

समय की वास्तविक समस्या

अब मैं समझता हूं कि मुझे किसी भूमिका के बिना असली समस्या पर आ जाना चाहिए। हमारे लिए समय का सबसे पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि तीन सितम्बर १९३९ की युद्ध घोषणा के पश्चात् हमने जो कदम उठाया है वह किस ओर जा रहा है? और इस समय हम कहां खड़े हैं?

सम्भवतः कांग्रेस के इतिहास में उसकी मानसिकता का यह एक नया रंग था। १९३६ के लखनऊ अधिवेशन में यूरोप की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर एक लम्बा प्रस्ताव पारित करके उसने अपने दृष्टिकोण की स्पष्ट घोषणा कर दी। और तत्पश्चात् वह कांग्रेस की वार्षिक घोषणाओं का एक महत्त्वपूर्ण और आवश्यक अंग बन गया। इस सम्बन्ध में यह हमारा एक सोचा-समझा हुआ निर्णय था जो हमने दुनिया के सामने रख दिया।

इन प्रस्तावों के माध्यम से हमने दुनिया के सम्मुख एक ही समय में दो बातों की घोषणा की थी:

सबसे पहली बात यह है जिसे मैंने हिन्दुस्तानी राजनीति का एक नया रंग कहा है, हमारा यह मानना है कि हम अपनी वर्तमान विवशता की स्थिति के बावजूद भी दुनिया की राजनैतिक स्थिति से अलग-थलग नहीं रह सकते। यह आवश्यक है कि अपने भविष्य का मार्ग प्रशस्त करते हुए हम केवल अपने चारों ओर ही न देखें बल्कि उससे बाहर की दुनिया पर भी दृष्टिपात करें। युग के असंख्य परिवर्तनों ने देशों और राष्ट्रों को इस प्रकार एक दूसरे से निकट कर दिया है और चिन्तन और क्रियाओं की लहरें एक अनुभाग में उभरकर इस तीव्रता के साथ दूसरे अनुभागों पर अपना प्रभाव डालना आरम्भ कर देती हैं कि आजकल की स्थिति में यह सम्भव नहीं है कि हिन्दोस्तानी अपनी समस्याओं पर केवल अपनी चारदीवारी के अन्दर ही बन्द रहकर सोच सकें। यह अनिवार्य है कि बाह्य परिस्थितियाँ हमारी परिस्थितियों पर तुरन्त प्रभाव डालें और यह भी अनिवार्य है कि हमारी परिस्थितियां और निर्णयों से दुनिया की परिस्थितियों और निर्णयों पर प्रभाव पड़े। यही भावना थी जिसने इस निर्णय का रूप धारण किया। हमने इन प्रस्तावों द्वारा घोषणा की कि यूरोप में जनतन्त्र वैयक्तिक और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के विरुद्ध नाजिज्म और फासिज्म के, जो प्रतिक्रियावादी आन्दोलन दिन-प्रतिदिन बलशाली होते जाते हैं, हिन्दोस्तान उन्हें दुनिया की उन्नति और शान्ति के लिए एक विश्वव्यापी संकट समझता है और उसका मन तथा मस्तिष्क उन राष्ट्रों के साथ है जो जनतन्त्र और स्वतन्त्रता की रक्षा में इन आन्दोलनों के विरुद्ध संघर्षरत हैं। परन्तु जब फासिज्म और नाजिज्म के संकटों के विरुद्ध हमारा ध्यान जा रहा है तो हमारे लिए असम्भव था कि हम उस पुराने संकट को भुला देते जो इन शक्तियों से कहीं अधिक राष्ट्रों की शान्ति और स्वतन्त्रता के लिए घातक सिद्ध हो चुका है और जिसने वस्तुतः इन नवीन प्रतिक्रियावादी आन्दोलनों को जन्म देने का समस्त वातावरण प्रस्तुत किया है। मेरा संकेत बरतानिया की साम्राज्यवादी शक्ति की ओर है। इसे हम इन नई प्रतिक्रियावादी शक्तियों के समान दूर से नहीं देख रहे, ये तो स्वयं हमारे घर पर आधिपत्य जमाये हमारे सामने खड़ी है। अतः हमने सुस्पष्ट शब्दों में यह बात भी कह दी कि यदि योरप के इस नवीन संघर्ष ने युद्ध का

रूप धारण किया तो हिन्दोस्तान जो अपने स्वतन्त्र संकल्प और स्वतन्त्रता से वंचित कर दिया गया है इस युद्ध में कोई भाग नहीं लेगा। वह केवल इसी स्थिति में इसमें हिस्सा ले सकता है जबकि उसे अपनी स्वेच्छा और रुचि से निर्णय करने की क्षमता प्राप्त हो।

वह नाजिज्म और फासिज्म का विरोधी है। किन्तु उससे भी अधिक बरतानिया के साम्राज्यवाद से घृणा करता है। यदि हिन्दोस्तान अपनी स्वतन्त्रता के स्वाभाविक अधिकार से वंचित रहता है तो इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि बरतानिया का साम्राज्यवाद अपनी समस्त परम्परागत विशेषताओं सहित जीवित है और हिन्दोस्तान किसी भी स्थिति में तत्पर नहीं कि बरतानिया के साम्राज्यवाद की विजय में सहायक हो।

यह दूसरी बात थी जिसकी घोषणा इन प्रस्तावों में निरन्तर होती रही है।

यह प्रस्ताव कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन से लेकर अगस्त १९३९ ई० तक स्वीकृत होते रहे हैं और 'लड़ाई के प्रस्तावों' के नाम से विख्यात हैं।

कांग्रेस की यह समस्त घोषणायें बरतानिया सरकार के सामने थीं कि अकस्मात् अगस्त १९३९ ई० के तीसरे सप्ताह में लड़ाई के बादल गरजने लगे और ३ सितम्बर को लड़ाई भी आरम्भ हो गई।

अब मैं इस अवसर पर एक क्षण के लिए आपको आगे बढ़ने से रोकूंगा और निवेदन करूंगा कि तनिक पीछे मुड़कर देखिये कि पिछले अगस्त को आपने किन स्थितियों में देश को छोड़ा है।

बरतानिया सरकार ने भारत सरकार एक्ट १९३५ ई० को हिन्दोस्तान के सिर पर शक्ति के बल पर थोपा था और यथा-नियम दुनिया को यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया था कि उसने हिन्दुस्तान को उसके राष्ट्रीय अधिकार का एक बहुत बड़ा भाग दे दिया है। कांग्रेस का निर्णय इस सम्बन्ध में दुनिया को ज्ञात है।

फिर भी कांग्रेस ने उस समय तक मौन रहने का संकल्प किया और इस बात को स्वीकार कर लिया कि एक विशिष्ट अनुबंध के साथ मंत्रीपदों को स्वीकार कर लें। अतः ११ प्रान्तों में से आठ प्रान्तों में उसके मंत्रीमंडल सफलतापूर्वक कार्य कर रहे थे और यह बात बरतानिया सरकार के हित में थी कि इस स्थिति को जितने अधिक समय तक बनाए रखा जा सकता है, बनाए रखे। इसी के साथ परिस्थिति का एक दूसरा पक्ष भी था। जहां तक युद्ध के बाह्य रूप का संबंध है हिन्दोस्तान सुस्पष्ट शब्दों में नाज़ी जर्मनी के प्रति अपने विरोध की घोषणा कर चुका था। उसकी सहानुभूतियां जनतन्त्र प्रेमी राष्ट्रों के साथ थीं और स्थिति का यह पक्ष भी बरतानिया सरकार के हित में था। ऐसी स्थिति में सम्भवतः यह आशा की जा सकती थी कि यदि बरतानिया सरकार की पुरानी साम्राज्यवादी मानसिकता में कुछ भी परिवर्तन हुआ है तो कम से कम कूटनीति की दृष्टि से ही वह इसकी आवश्यकता को अवश्य महसूस करेगी कि इस अवसर पर अपनी पुरानी पद्धति बदल दे और हिन्दोस्तान को ऐसा महसूस करने का अवसर प्रदान करे कि अब वह एक परिवर्तित वातावरण में सांस ले रहा है। परन्तु हम सब को ज्ञात है कि इस अवसर पर बरतानिया सरकार का व्यवहार कैसा रहा? परिवर्तन की लेशमात्र प्रतिछाया भी उस पर पड़ती हुई दिखाई नहीं देती है। ठीक इसी प्रकार जैसी उसकी साम्राज्यवादी मानसिकता की डेढ़ शताब्दी से विशेषता रही है। उसने अपने व्यवहार का निर्णय कर लिया और किसी रूप में और किसी भी सीमा तक भी हिन्दुस्तान को अपना मत व्यक्त करने का अवसर दिए बिना युद्ध में उसके सम्मिलित हो जाने की घोषणा कर दी गई। इस बात तक की आवश्यकता नहीं समझी

गई कि उन प्रतिनिधि विधान सभाओं ही को अपना मत व्यक्त करने का एक अवसर दे दिया जाए, जिन्हें बरतानिया सरकार ने अपनी राजनैतिक दान-शीलता का प्रदर्शन करते हुए हिन्दुस्तान के सर थोपा है।

समस्त संसार के समान हमें भी विदित है कि इस अवसर पर बरतानिया साम्राज्य के समस्त देशों को अपने-अपने कार्यनीति का निर्णय करने का किस प्रकार अवसर दिया गया था। कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका और आइसलैंड ने युद्ध में सम्मिलित होने का निर्णय अपनी-अपनी विधानसभाओं में बिना किसी विदेशी हस्तक्षेप के किया था। इतना ही नहीं, बल्कि आइसलैंड के युद्ध में सम्मिलित होने के स्थान पर तटस्थ रहने के निर्णय से बरतानिया के किसी निवासी को आश्चर्य नही हुआ। मिस्टर डी० वलेरा ने बरतानिया के पड़ोस में खड़े होकर स्पष्ट कर दिया था कि जब तक अल्सटर समस्या का सन्तोषजनक समाधान नहीं होता वह बरतानिया की सहायता करने से इन्कार करता है।

परन्तु बरतानिया के उपनिवेशो के इस सम्पूर्ण नक्शे में हिन्दुस्तान का स्थान कहा दिखाई दे रहा है? जिस हिन्दुस्तान को आज ये महत्वपूर्ण सुखद समाचार सुनाया जा रहा है कि उसे बरतानिया सरकार के दानी हाथों से शीघ्र किन्तु अज्ञात समय मे बरतानिया के उपनिवेशो का दरजा मिलने वाला है। उसके अस्तित्व को किस प्रकार स्वीकार किया गया? इस प्रकार से उसे विश्व-इतिहास की सम्भवतः सबसे बड़ी होने वाली लडाई मे अचानक धकेल दिया गया है बिना इसके कि उसे ज्ञात भी न हो सका हो कि वह युद्ध में भागीदार हो रहा है।

केवल यही एक घटना इसके लिए पर्याप्त है कि बरतानिया सरकार के वर्तमान दृष्टिकोण को हम उसके वास्तविक स्वरूप मे देख लें परन्तु नहीं, हमें उतावला नहीं होना चाहिए। हमारे सम्मुख और भी घटनाएं घटित होने वाली हैं। वह समय दूर नहीं जब हम उस दृष्टिकोण को अधिक तथा और अधिक निकट और अधिक अनावृत रूप मे देखने लगेंगे।

१९१४ में जब इस युद्ध की पहली चिंगारी बल्कान के एक कोने में ज्वलित हुई थी तो इंगलिस्तान और फ्रांस ने छोटे राष्ट्रों के अधिकारों का नारा लगाना आरम्भ कर दिया था। उसके पश्चात् राष्ट्रपति विलसन के १४ सूत्री कार्यक्रम दुनिया के सामने आए और इनकी जो कुछ दुर्दशा हुई वह दुनिया को मालूम है। इस बार स्थिति भिन्न थी। विगत युद्ध के पश्चात् इंगलिस्तान और फ्रांस ने अपने विजयोन्माद के फलस्वरूप जो कार्य नीति ग्रहण की थी उसका अनिवार्यतः परिणाम था कि एक नवीन प्रतिक्रिया आरम्भ हो जाए। वह प्रतिक्रिया प्रारम्भ हुई। उसने इटली में फासिज्म और जर्मनी में नाजिज्म का रूप धारण किया और बर्बर शक्ति के आधार पर निरंकुश तानाशाही दुनिया की शान्ति और स्वतन्त्रता को चुनौती देने लगी। जब यह स्थिति उत्पन्न हुई तो स्वभावतः दो नये गुट दुनिया के सम्मुख आ खड़े हुए—१. जनतन्त्र और स्वतन्त्रता के पक्षपातियों का और दूसरा प्रतिक्रियावादी शक्तियों को अग्रसर करने वाला। इस प्रकार युद्ध का एक नया नक्शा बनना आरम्भ हो गया। मिस्टर चेम्बर लेन की सरकार जिसके लिए फासिज्म के पक्षधर इटली और नाजी जर्मनी से कहीं अधिक सोवियत संघ का अस्तित्व असहनीय था और जो उसे बरतानिया के साम्राज्य के लिए एक जीवित चुनौती समझती थी, तीन वर्षों तक इस क्रिया-कलाप का आनन्द लेती रहीं। इतना ही नहीं बल्कि उसने अपने कार्य-व्यवहार से स्पष्टतः फासिज्म के समर्थकों और नाजी शक्तियों को निरन्तर प्रोत्साहित किया। अबिसीनिया, स्पेन, आस्ट्रिया, यूगोस्लोवाकिया और अलबानिया का अस्तित्व एक के पश्चात् एक का दुनिया के मानचित्र से मिटता गया और बरतानिया सरकार ने अपनी बकवासी

नीति से उन्हें दफ़न करने में बराबर मदद दी। परन्तु जब इस कार्यनीति का स्वाभाविक परिणाम अपनी चरम सीमा में उभर आया और नाजी जर्मनी का पग निरंकुश रूप से आगे बढ़ने लगा तो बरतानिया सरकार नितान्त विवश हो गई। उसे रण-क्षेत्र में उतरना पड़ा क्योंकि यदि अब न उतरती तो जर्मनी की शक्ति बरतानिया के साम्राज्य के लिए घातक हो जाती। अब छोटे राष्ट्रों की स्वतन्त्रता के पुराने नारे का स्थान 'जनतन्त्र, स्वतन्त्रता और विश्व शान्ति' के नये नारों ने ले लिया और समस्त संसार इन ध्वनियों से गुंजरित होने लगा। इंगलिस्तान और फ्रांस ने ३ सितम्बर की युद्ध-घोषणा इन्हीं ध्वनियों के गुंजन में की और संसार की उन समस्त विचलित आत्माएं, जो यूरोप की नवीन प्रतिक्रियावादी शक्तियों की बर्बरता और विश्व-व्यापी अशान्ति के अभिशाप से आश्चर्य चकित और भयभीत हो रही थी ने इन मोहक ध्वनियों पर कान लगा दिए।

कांग्रेस की मांग

३ सितम्बर १९३९ को युद्ध की घोषणा हुई और ७ सितम्बर को अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक वर्धा में हुई, ताकि परिस्थिति पर विचार किया जाए। कार्यकारिणी समिति ने इस अवसर पर क्या किया? कांग्रेस की समस्त घोषणाएं उसके सामने थीं जो १९३६ से लगातार होती रही थीं। युद्ध-घोषणा के सम्बन्ध में जो कार्य-नीति अपनाई गई थी वह भी उसकी दृष्टि से ओझल नहीं थी। निश्चय ही उसकी निन्दा की जा सकती थी। यदि वह कार्यकारिणी ऐसा निर्णय कर देती जो इस परिस्थिति का अनिवार्य परिणाम थी। परन्तु उसने सम्पूर्ण सावधानी के साथ अपने मन और मस्तिष्क पर अंकुश लगाए रखा। उसके समय के उन तमाम आंखों से जो तीव्र गति से चलने की माग कर रहे थे अपने को सुरक्षित कर लिया। उसने समस्या के तमाम पक्षों पर सम्पूर्ण शान्ति के साथ विचार करके वह कदम उठाया जिसे आज हिन्दुस्तान सिर उठाकर दुनिया से कह सकता है कि इस स्थिति में उसके लिए वही एक ठीक क़दम था। उसने अपने सारे निर्णय स्थगित कर दिये। बरतानिया सरकार से प्रश्न किया कि वह पहले अपने निर्णय से संसार को अवगत करा दे, जिस पर न केवल हिन्दुस्तान का बल्कि संसार की शांति और न्याय के समस्त उपदेशों का निर्णय निर्भर है। यदि इस युद्ध में सम्मिलित होने का निमंत्रण हिन्दुस्तान को दिया गया है तो उसे ज्ञात होना चाहिए कि वह लड़ाई क्यों लड़ी जा रही है? इसका उद्देश्य क्या है? यदि मानवीय हत्या की इस सबसे बड़ी त्रासदी का भी वही परिणाम निकलने वाला है जो पिछली लड़ाई का निकल चुका है और यह युद्ध वस्तुतः इसलिए लड़ा जा रहा है कि स्वतन्त्रता, जनतन्त्र और शान्ति की एक नवीन व्यवस्था से दुनिया को परिचित कराया जाए, तो फिर निश्चय ही हिन्दुस्तान को यह मांग करने का अधिकार प्राप्त है कि स्वयं उसके भाग्य पर उन उद्देश्यों का क्या प्रभाव पड़ेगा?

कार्यकारिणी समिति ने अपनी इस मांग को एक विस्तृत घोषणा के रूप में तैयार किया और चौदह सितम्बर १९३९ ई० को यह घोषणा प्रकाशित की। यदि मैं आशा करूं कि यह घोषणा हिन्दुस्तान के नवीन राजनैतिक इतिहास में अपने लिए एक उचित स्थान की मांग करेगा तो मुझे विश्वास है कि मैं भविष्य के इतिहासकार से कोई अनुचित आशा नहीं कर रहा हूं।

यह सत्य और औचित्य का एक सरल किन्तु ऐसा दस्तावेज़ है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता और न उसे शस्त्र बल का नग्न दर्प ही ठुकरा सकता है। यह बात यद्यपि हिन्दुस्तान में उठी किन्तु वस्तुतः यह केवल हिन्दुस्तान की ही आवाज़ न थी, यह विश्व-मानव की घायल

आकांक्षाओं की चीत्कार थी। पच्चीस वर्ष हुए कि संसार विनाश और हत्या के एक सबसे बड़े अभिशाप में, जिसे इतिहास की दृष्टियां देख सकी हैं, लिप्त की गई हैं और केवल इसलिए लिप्त की गईं ताकि उसके तत्पश्चात् उससे भी कहीं अधिक एक अभिशाप उसके सम्मुख खड़ा हो जाएगा। निर्बल राष्ट्रों की स्वतन्त्रता शान्तिप्रिय निर्णयों की स्वायत्तता, शस्त्रों की सीमाबद्धता, अन्तर्राष्ट्रीय मध्यस्थता की स्थापना और इसी प्रकार के समस्त उच्च और मोहक उद्देश्यों के जादुई मंत्रों ने आशुविश्वासी राष्ट्रों के कानों को प्रभावित किया, उनमें आशा उद्वेलित की गई। परन्तु अन्ततोगत्वा परिणाम क्या निकला ? प्रत्येक पुकार मिथ्या सिद्ध हुई। प्रत्येक रूप एक सपना निकला। आज फिर राष्ट्रों को खून और आग के संकट में ढकेला जा रहा है। क्या औचित्य और वास्तविकता से हमें इतना निराश हो जाना चाहिए कि हम मृत्यु और विनाश की बाढ़ में कूदने से पूर्व यह भी मालूम नहीं कर सकते कि यह सब कुछ क्यों हो रहा है ? और स्वयं हमारे भाग्य पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा ?

बरतानिया सरकार का उत्तर और कांग्रेस का पहला क़दम

कांग्रेस की इस मांग के उत्तर में बरतानिया सरकार की ओर से वक्तव्यों की एक श्रृंखला आरम्भ हो गई। हिन्दुस्तान इंगलिस्तान में वक्तव्य दिए जाने लगे। इस श्रृंखला की पहली कड़ी भारत के वायसराय की वह घोषणा थी जो १७ अक्तूबर को दिल्ली से प्रकाशित हुई। यह घोषणा जो सम्भवतः भारत सरकार के सहकारी साहित्य के उलझे हुए ढंग और थका देने वाली शैली के विस्तार का सबसे अच्छा नमूना है जिसके पृष्ठ के पृष्ठ पढ़े जाने के बाद केवल इतना ज्ञात हो पाता है कि युद्ध के उद्देश्य के जानने के लिए बरतानिया के प्रधानमंत्री का एक भाषण पढ़ना चाहिए। परन्तु इसमें केवल योरप की शान्ति और उसके अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के सुधार की चर्चा हुई है। 'जनतन्त्र' और 'राष्ट्रों की स्वतन्त्रता' के शब्द इसमें नहीं ढूंढ़े जा सकते। जहां तक हिन्दुस्तान की समस्या का संबंध है यह भाषण हमें केवल इतना बताता है कि बरतानिया सरकार ने १९१९ के कानून की भूमिका में अपनी जिस नीति की घोषणा की थी और जिसका परिणाम १९३५ ई० के कानून के रूप में निकला था, आज भी वही नीति उसके सामने है। इससे अधिक और बेहतर बात वह कुछ और नहीं कर सकती।

१७ अक्तूबर १९३९ को वायसराय की घोषणा प्रकाशित हुई और २२ अक्तूबर को उस पर विचार करने के लिए कार्यकारिणी समिति की बैठक वर्धा में हुई। वह बिना तर्क-वितर्क के इस निष्कर्ष पर पहुंची कि यह उत्तर किसी प्रकार भी उसे सन्तुष्ट नहीं कर सकता और अब उसे अपना वह निर्णय निःसंकोच कर लेना चाहिए जो इस समय तक उसने स्थगित कर रखा था। जो निर्णय समिति ने किया वह उसके प्रस्ताव के शब्दों में यह है :

"इन परिस्थितियों में समिति के लिए सम्भव नहीं कि वह बरतानिया सरकार की साम्राज्यवादी नीति को स्वीकार कर ले। समिति कांग्रेस मंत्रिमंडलों को निर्देश देती है कि जो मार्ग हमारे सम्मुख खुल गया है उसकी ओर अग्रसर होते हुए एक प्राथमिक कदम के रूप में अपने-अपने प्रान्तों की सरकारों से त्यागपत्र दे दें।"

फलतः आठों प्रान्तों में मन्त्रिमण्डलों ने त्यागपत्र दे दिया।

यह तो इस वृत्तान्त का आरम्भ था। अब देखना चाहिए कि यह अधिक से अधिक कहां तक पहुंचता है ? भारत के वायसराय की एक विज्ञप्ति जो ५ फरवरी को दिल्ली से प्रकाशित हुई

और वह उस वार्तालाप का सार प्रस्तुत करती है जो महात्मा गांधी से हुई थी। और फिर गांधी जी का अपना वक्तव्य जो उन्होंने ६ फरवरी को प्रकाशित किया था, इस वृतान्त की अन्तिम कड़ी समझी जा सकती है। इसका सार हम सबको ज्ञात है। बरतानिया सरकार इस बात की सम्पूर्ण इच्छा रखती है कि हिन्दुस्तान इतने अल्प काल में जो परिस्थितियों के अनुसार सम्भव हो बरतानिया के उपनिवेशों का दर्जा प्राप्त कर ले और बीच के समय की अवधि जहां तक सम्भव हो कम की जाए। परन्तु वह हिन्दुस्तान का यह अधिकार मानने को तत्पर नहीं कि बिना बाह्य हस्तक्षेप के वह अपना संविधान स्वयं अपने चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा बना सकता है और अपने भाग्य का निर्णय कर सकता है। दूसरें शब्दों में बरतानिया सरकार हिन्दुस्तान के इस अधिकार को स्वीकार नहीं करती कि वह अपने सम्बन्ध में स्वयं निर्णय कर सके। वास्तविकता की एक स्पर्श से दिखावे का समस्त प्रबंध किस प्रकार विनष्ट हो गया। पिछले चार वर्षों के जनतन्त्र और स्वतन्त्रता की सुरक्षा के नारे दुनिया में गुंजरित हो रहे थे। इगलिस्तान और फ्रांस की सरकारों के अधिक से अधिक विश्वसनीय व्यक्ति इस सम्बन्ध में जो कुछ कहते हैं वह अभी इतना धूमिल नहीं हुआ कि उसके स्मरण कराने की आवश्यकता पड़े। परन्तु जैसे ही हिन्दुस्तान ने यह प्रश्न उठाया, वास्तविकता को नग्न रूप में सामने आना पड़ा। अब हमें बताया जाता है कि राष्ट्रों की स्वतन्त्रता की रक्षा निश्चय ही इस युद्ध का उद्देश्य है किन्तु इसकी परिधि योरप की भौगोलिक सीमाओं से बाहर नहीं जा सकती। एशिया और अफ्रीका के निवासियों को यह साहस नहीं होना चाहिए कि वह इस ओर आशापूर्ण दृष्टि से देखें।

मिस्टर चेम्बरलेन ने २४ फरवरी को बरसिंघम में भाषण करते हुए इस वास्तविकता को और भी स्पष्ट कर दिया है। यद्यपि उनके भाषण से पूर्व भी इस सम्बन्ध में हमें कोई सन्देह न था। उन्होंने हमारे लिए बरतानिया सरकार की स्पष्ट कार्यनीति के साथ स्पष्ट उक्ति भी प्राप्त करा दी है। वे युद्ध के बारे में बरतानिया के उद्देश्यों की घोषणा करते हुए विश्व को यह विश्वास दिलाते हैं :

"हमारी लड़ाई इसलिए है कि हम इस बात की ज़मानत प्राप्त कर लें कि योरप के छोटे राष्ट्र भविष्य में अपनी स्वतन्त्रता को अनुचित अत्याचारों की धमकियों से नितान्त रिक्त पायेंगे।"

बरतानिया सरकार का यह उत्तर इस अवसर पर यद्यपि बरतानी मुंह से निकला है। किन्तु वस्तुतः वह अपने तरह का शुद्ध बरतानी नहीं है बल्कि ठीक-ठीक योरपीय महाद्वीप की उस साधारण मानसिकता का उद्योतन कर रहा है जो लगभग दो शताब्दियों से संसार के सम्मुख रही है। अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में मनुष्य के व्यक्तिगत और समष्टिगत स्वतन्त्रता के जितने सिद्धान्त स्वीकार किये गये हैं उन्हें मांगने का विशेष अधिकार केवल योरपीय राष्ट्रों का समझा गया और योरप के राष्ट्रों के ही ईसाई धर्मावलम्बी योरप के संकुचित दायरे से यह बात कभी बाहर न जा सकी। आज बीसवीं शताब्दी की मध्यावधि में दुनिया इतनी बदल चुकी है कि विगत शताब्दी के चिन्तन और कार्य के मानचित्र इतिहास की पुरानी गाथाओं के समान सामने आते हैं और हमें उन चिह्नों के समान दिखाई देते हैं जिन्हें हम बहुत दूर पीछे छोड़ आये। लेकिन हमें स्वीकार करना चाहिए कि कम से कम एक चिह्न अब भी हमारे पीछे नहीं है और वह हमारे साथ-साथ आ रहा है। वह मानवीय अधिकारों के लिए योरप का विशिष्ट चिह्न है।

ठीक-ठीक स्थिति का ऐसा ही मानचित्र हिन्दुस्तान के राजनैतिक और राष्ट्रीय अधिकार ने प्रश्न में भी हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर दिया है। हमने जब युद्ध की घोषणा के पश्चात् यह प्रश्न

उठाया कि युद्ध का उद्देश्य क्या है और हिन्दुस्तान के भाग्य पर इसका क्या प्रभाव पड़ने वाला है तो हम इस बात से अनभिज्ञ न थे कि बरतानिया सरकार की नीति १९१७ और १९१९ में क्या रह चुकी है। हम जानना चाहते थे कि १९३९ की इस दुनिया में जो दिनों में शताब्दियों की चाल से बदलती और पलटती हुई दौड़ रही है। हिन्दुस्तान को बरतानिया सरकार किस स्थान से देखना चाहती है। इसका स्थान अब भी बदला है या नहीं ? हमें स्पष्ट उत्तर मिल गया कि नहीं बदला। वह अब भी साम्राज्यवादी दृष्टि में कोई परिवर्तन उत्पन्न नहीं कर सकी है। हमें विश्वास दिलाया जाता है कि बरतानिया सरकार इस बात की अत्यधिक इच्छुक है कि जितनी जल्दी सम्भव हो हिन्दुस्तान उपनिवेशों का दर्जा प्राप्त कर ले। हमें ज्ञात था कि बरतानिया सरकार ने अपनी यह इच्छा व्यक्त की है ; अब हमें यह बात भी ज्ञात हो गई कि वह इसकी 'अत्यधिक इच्छुक' है। परन्तु प्रश्न बरतानिया सरकार की इच्छा और उसकी इच्छा के विभिन्न चरणों का नहीं है। सीधा और स्पष्ट प्रश्न हिन्दुस्तान के अधिकार का है। हिन्दुस्तान को यह अधिकार प्राप्त है या नहीं कि वह अपने भाग्य का निर्णय स्वयं करे ? इसी प्रश्न के उत्तर पर समय के सारे प्रश्नों का उत्तर निर्भर है। हिन्दुस्तान के लिए यह प्रश्न बुनियाद की वास्तविक ईंट है। वह इसे नहीं हिलने देगा क्योंकि यदि यह हिल जाए तो उसके राष्ट्रीय अस्तित्व का सम्पूर्ण भवन हिल जाएगा।

जहां तक युद्ध का प्रश्न है हमारे लिए स्थिति नितांत स्पष्ट हो गई है। हम बरतानिया साम्राज्य का मुखौटा इस युद्ध में भी उसी प्रकार स्पष्टतः देख रहे हैं जिस प्रकार हमने पिछली लड़ाई में देखा था। हम तैयार नहीं हैं कि इसकी विजय-पताका फहराने के लिए युद्ध में भाग लें। हमारा मुकदमा बिल्कुल साफ है। हम अपनी पराधीनता की आयु बढ़ाने के लिए बरतानिया साम्राज्य को अधिक शक्तिशाली और अधिक विजयी नहीं देखना चाहते हैं। हम ऐसा करने से स्पष्टतः इन्कार करते हैं। हमारा मार्ग निश्चय ही इसके बिल्कुल विपरीत दिशा में जा रहा है।

हम आज कहां खड़े हैं ?

अब हम उस स्थान पर वापस आ जाएं, जहां से हम चले थे। हमने इस प्रश्न पर विचार करना चाहा था कि ३ सितम्बर की युद्ध-घोषणा के पश्चात् जो कदम हम उठा चुके हैं वह किस ओर जा रहे हैं ? और आज हम कहां खड़े हैं ? मैं विश्वास करता हूं कि इन दोनों प्रश्नों का उत्तर इस समय हममें से प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में इस प्रकार सुस्पष्ट होकर उभर आया होगा कि उसे अब केवल वाणी प्रदान करना ही शेष रह गया है। यह आवश्यक नहीं है कि आप के होठ हिलें, मैं आपके होठों को हिलता हुआ देख रहा हूं। हमने अस्थायी सहयोग का जो कदम १९३१ ई० में उठाया था उसे हमने युद्ध-घोषणा के पश्चात् वापस ले लिया। इसलिए स्वभावतः हमारी दिशा अब असहयोग की ओर है। हम आज उस स्थान पर खड़े हैं जहां हमें निर्णय करना है कि इस दिशा की ओर आगे बढ़ें, या पीछे हों ? जब कदम उठा लिया जाए तो वह रुक नहीं सकता। अगर रुकेगा तो पीछे हटेगा। हम पीछे हटने से इन्कार करते हैं। हम केवल यही कर सकते हैं कि आगे बढ़ें। मुझे विश्वास है कि मैं आप सबके मन की आवाज़ अपनी आवाज़ के साथ मिला रहा हूं जब मैं यह घोषणा करता हूं कि हम आगे बढ़ेंगे।

पारस्परिक सद्भावना

इस सम्बन्ध में स्वभावतः एक प्रश्न सम्मुख आ जाता है। इतिहास का निर्णय है कि

राष्ट्रों के संघर्ष में एक शक्ति तभी अपना आधिपत्य छोड़ सकती है जब दूसरी शक्ति उसे ऐसा करने पर विवश कर दे। औचित्य और नैतिकता के उच्च सिद्धान्त व्यक्तियों की कार्यप्रणाली को बदलते रहे है किन्तु आधिपत्य रखने वाले राष्ट्रों के स्वार्थों पर कभी प्रभाव नहीं डाल सके। आज भी हम ठीक २०वीं शताब्दी की मध्यावधि में देख रहे हैं कि योग्य नवीन प्रतिक्रियावादी राष्ट्रों ने किस प्रकार मानव के व्यक्तिगत और राष्ट्रीय हितों की समस्त अवधारणाओं को विनष्ट कर दिया और न्याय तथा औचित्य के स्थान पर बर्बर शक्ति का तर्क ही निर्णयों के लिए मात्र तर्क रह गया है। परन्तु साथ ही जहां दुनिया चित्र का यह निराशापूर्ण पक्ष उभार रही है वहीं आशा का एक दूसरा पक्ष भी है जिसकी अपेक्षा नहीं की जा सकती। हम देख रहे हैं कि बिना भेदभाव के दुनिया के असंख्य मनुष्यों की एक नवीन विश्वव्यापी जागृति भी है। जो अत्यन्त तीव्र गति से प्रत्येक दिशा में उभर रही है। यह दुनिया की पुरातन व्यवस्था की निराशाओं से थक गई है। और औचित्य, न्याय तथा शांति की एक नवीन व्यवस्था के लिए व्याकुल है। दुनिया की यह नवीन जागृति जिसमें पिछले युद्ध के पश्चात् मानवीय आत्माओं की गहराई में करवट बदलना आरम्भ कर दिया था अब प्रतिदिन मस्तिष्कों में उभर रही है और मुखरित हो रही है। वह इस प्रकार उभर रही है कि सम्भवतः इतिहास में कभी नहीं उभरी। ऐसी स्थिति में क्या यह बात समझ की परिधि से बाहर थी कि इतिहास में उसके पुरातन निर्णयों के विरुद्ध एक नवीन निर्णय की वृद्धि होती है? क्या सम्भव नहीं कि विश्व के दो बड़े राष्ट्र जिन्हें परिस्थिति की गति ने आधिपत्य और पराधीनता के सम्बन्धों में जोड़ दिया था वह भविष्य में औचित्य, न्याय और शांति के अन्तर्गत अपना नवीन सम्बन्ध जोड़ने के लिए तत्पर हो जाए? विश्व-युद्ध की निराशाएं किस प्रकार एक आशापूर्ण नवीन जीवन में परिवर्तित हो जाती हैं औचित्य और न्याय के युग का एक नवीन प्रभात किस प्रकार एक नवीन सूर्योदय का संदेश देने लगता, मानवता की कैसी अनुपम और विश्वव्यापी विजय होती, यदि आज बरतानिया का राष्ट्र सिर उठाकर दुनिया से कह सकता कि उसने इतिहास में एक नए उदाहरण की वृद्धि करने का कार्य सम्पन्न किया है।

निश्चय ही यह असम्भव नहीं है किन्तु संसार की समस्त कठिनाइयों से कहीं अधिक कठिन है।

समय के सम्पूर्ण फैले हुए तिमिर में मानवीय प्रकृति का यही एक उज्ज्वल पक्ष है जो महात्मा गांधी की महान आत्मा को कभी थकने नहीं देता। वह पारस्परिक सद्भाव का जो द्वार उनके लिए खोल जाता है उसमें वह बिना अपने पक्ष को तनिक भी दुर्बल महसूस किए बिना निःसंकोच कदम रखने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

बरतानिया के मंत्रिमंडल के विभिन्न सदस्यों ने युद्ध के पश्चात् दुनिया को यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया है कि बरतानिया साम्राज्य का पिछला युग समाप्त हो चुका और अब बरतानी राज्य केवल शांति और न्याय के उद्देश्यों के प्रति ही प्रतिबद्ध है। हिन्दुस्तान से अधिक और कौन सा देश हो सकता है जो आज किसी ऐसी घोषणा का स्वागत करता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि जिन घोषणाओं के होते हुए भी बरतानिया साम्राज्य आज भी उसी प्रकार शान्ति और न्याय का मार्ग अवरुद्ध किए खड़ा है जिस प्रकार युद्ध से पहले था। हिन्दुस्तान की मांग इस प्रकार समस्त दावों के लिए एक वास्तविक कसौटी थी दावे कसौटी पर कसे गये और अपनी सच्चाई का विश्वास हमें न दिला सके।

हिन्दुस्तान का राजनैतिक भविष्य और अल्पसंख्यक समुदाय

जहां तक युग की वास्तविक समस्या का सम्बन्ध है समस्या इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है जो मैंने संक्षेप में आपके सामने प्रस्तुत कर दी है। गत सितम्बर में जब युद्ध-घोषणा के पश्चात् कांग्रेस ने अपनी मांगें प्रस्तुत की तो उस समय उन में से किसी व्यक्ति की कल्पना मे भी यह बात नहीं आई थी कि इस स्पष्ट और सहज मांग में जो हिन्दुस्तान के नाम पर की गई है और जिससे देश के किसी साम्राज्य और किसी दल को भी विरोध नहीं हो सकता, साम्प्रदायिकता का प्रश्न उठाया जा सकेगा। निश्चय ही देश में ऐसे दल विद्यमान हैं जो राजनैतिक संघर्ष के मैदान में नहीं जा सकते। वहां तक कांग्रेस के कदम पहुंच गये हैं जो प्रत्यक्ष कार्यवाही की कार्यप्रणाली से, राजनैतिक हिन्दुस्तान के बहुसख्यक समुदाय ने ग्रहण कर लिया है सहमत है। परन्तु जहां तक देश की स्वतन्त्रता और उसके जन्मसिद्ध अधिकार की स्वीकृति का सम्बन्ध है मानसिक जागृति अब उन प्राथमिक चरणों से बहुत दूर निकल चुकी है कि देश का कोई दल भी इस उद्देश्य से विरोध करने का साहस कर सके। वह दल भी जो अपने वर्ग के विशिष्ट स्वार्थो की रक्षा के लिए विवश है कि वर्तमान राजनैतिक स्थिति के परिवर्तन के इच्छुक न हो, समय के व्यापक वातावरण की मांग में विवश हो रहे हैं और उन्हें भी हिन्दुस्तान की राजनैतिक मंजिल को स्वीकार करना पड़ता है। फिर भी जहां समय के परीक्षात्मक प्रश्न ने स्थिति के दूसरे पक्षों पर से पर्दे उठा दिए हैं वहीं इस पक्ष को भी अवगुंठन रहित कर दिया है। हिन्दुस्तान और इंगलैंड दोनो जगह एक के पश्चात् दूसरे इस प्रकार के प्रयत्न किये गये हैं कि युग के राजनैतिक प्रश्न को साम्प्रदायिक समस्या के साथ जोड़ कर प्रश्न की वास्तविक स्थिति को सदिग्ध बना दिया जाए। बार-बार दुनिया को यह विश्वास दिलाने की चेष्टा की गई कि हिन्दुस्तान की राजनैतिक समस्या के समाधान के मार्ग में अल्पसंख्यक समुदायों की समस्या अवरोध उत्पन्न कर रही है।

यदि पिछले डेढ़ सौ वर्षों में हिन्दुस्तान में बरतानिया साम्राज्य की यह नीति रह चुकी है कि देशवासियों के आन्तरिक मतभेदों को उभार कर नए-नए घटकों में उन्हें विभाजित किया जाए और फिर इन घटकों को अपने राज्य की सुद्रढ़ता के हेतू काम में लाए तो वह हिन्दुस्तान की राजनैतिक पराधीनता का एक स्वाभाविक परिणाम था और हमारे लिए अब निरर्थक है कि इसकी शिकायत से अपने मनोभावों में कड़वाहट उत्पन्न करें। एक विदेशी राज्य निश्चय ही इस देश की आन्तरिक एकता की इच्छुक नही हो सकती जिसकी आन्तिरिक मतभेद ही उस सरकार के अस्तित्व के लिए सबसे बड़ी ज़मानत है। परन्तु एक ऐसे युग में जबकि दुनिया को यह विश्वास कराने की चेष्टाएं की जा रही हैं कि बरतानिया साम्राज्य के हिन्दुस्तानी इतिहास का पिछला चरण समाप्त हो चुका है, निश्चय ही यह कोई बड़ी आशा न थी :यद्यपि हम बरतानिया के राजनीतिज्ञों से यह आशा रखते थे कि कम से कम इस क्षेत्र में अपनी नीति को वह पिछले युग की मानसिकता से बचाने का प्रयास करे। लेकिन ५ महीनों की घटनाओं की जो गति रह चुकी है उसने सिद्ध कर दिया कि अभी ऐसी आशायें रखने का समय नहीं आया, पर जिस काल के सम्बन्ध में दुनिया को विश्वास दिलाया जा रहा है कि वह समाप्त हो गया, अभी उसकी समाप्ति शेष है।

इसके चरण चाहे कुछ भी रहे हों किन्तु हम स्वीकार करते हैं कि दुनिया के समस्त देशों के समान हिन्दुस्तान की भी अपनी आन्तरिक समस्याएं हैं और इन समस्याओं में एक महत्त्वपूर्ण समस्या साम्प्रदायिक समस्या है। हम बरतानिया सरकार से यह आशा नहीं रखते और हमें रखनी भी नहीं चाहिए कि वह इस समस्या के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करेगी। यह समस्या

विद्यमान है और यदि हम आगे बढ़ना चाहते हैं तो हमारा कर्तव्य है कि इसके अस्तित्व को स्वीकार करते हुए कदम उठाएं। हम स्वीकार करते हैं कि हर कदम जो दूसरी उपस्थिति की उपेक्षा कर के उठेगा निश्चय ही एक अलग कदम होगा। परन्तु साम्प्रदायिक समस्या की उपस्थिति की स्वीकृति के अर्थ केवल यही होने चाहिए कि उसके अस्तित्व को स्वीकार किया जाए। उसके यह अर्थ नहीं होने चाहिए कि उसे हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय अधिकार के विरुद्ध एक उपकरण के रूप में उपयुक्त किया जाए। बरतानिया साम्राज्य सदैव इस समस्या को इसी उद्देश्य से उपयोग में लाती रही है ;यदि अब वह अपने हिन्दुस्तानी इतिहास के पिछले युग को समाप्त करना चाहती है तो उसे मालूम होना चाहिए कि सर्वप्रथम पक्ष जिसमें हम स्वभावतः उस परिवर्तन की झलक देखना चाहेंगे वह यही पक्ष है।

कांग्रेस ने साम्प्रदायिक समस्या के सन्दर्भ में अपने लिए जो जगह बनाई है, वह क्या है ? कांग्रेस का पहले दिन से दावा रहा है कि वह हिन्दुस्तान को समान रूप से अपने सामने रखती है और जो हिन्दुस्तानी राष्ट्र के लिए उठाना चाहती है हमें स्वीकार करना चाहिए कि कांग्रेस ने यह दावा करके दुनिया को इस बात का अधिकार दे दिया है कि वह जितनी भी कठोर कटु आलोचना के साथ चाहे उसकी नीति की विवेचना करे और कांग्रेस का कर्तव्य है कि इस विवेचन में अपने को उत्तीर्ण सिद्ध करे। मैं चाहता हूं कि समस्या के इस पक्ष को सामने रखकर हम आज कांग्रेस की नीति पर पुनः दृष्टिपात करें।

जैसा कि मैंने अभी आपसे कहा कि इस बारे में स्वाभाविक रूप से तीन बातें ही सामने आ सकती हैं—साम्प्रदायिक समस्या की उपस्थिति, उसकी महत्ता, उसकी निर्णय पद्धति।

कांग्रेस का सम्पूर्ण इतिहास इस बात का साक्षी है कि उसने इस समस्या की उपस्थिति को सदैव स्वीकार किया है। उसने इसकी महत्ता को घटाने की चेष्टा नहीं की। उसने इसके निवारण के लिए वही पद्धति स्वीकार की जिससे अधिक सन्तोषजनक पद्धति कोई नहीं बताई जा सकती और यदि बताई जा सकती है तो उसकी प्राप्ति में कांग्रेस के दोनों हाथ हमेशा बढ़े रहे और आज भी बढ़ रहे हैं।

इसकी महत्ता की स्वीकृति इससे अधिक हमारे मस्तिष्क पर क्या प्रभाव डाल सकती है कि हम इसे हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय मनोकांक्षा की प्राप्ति के लिए सबसे पहला प्रावधान समझें ! मैं इस बात को एक ऐसे सत्य में स्वीकार करूंगा जो नकारी नहीं जा सकती और वह यह है कि कांग्रेस का विश्वास सदैव से ऐसा ही रहा है।

कांग्रेस ने सर्वथा इस सम्बन्ध में दो मौलिक सिद्धान्त अपने सम्मुख रखे और जब भी कोई कदम उठाया तो इन दोनों सिद्धान्तों को स्पष्टतः और अन्तिम रूप में स्वीकार करके उठाया :

(१) हिन्दुस्तान का जो भी संविधान भविष्य में बनाया जाए उसमें अल्पसंख्यकों के अधिकारों और हितों की पूर्ण सुरक्षा होनी चाहिए।

(२) अल्पसंख्यकों के अधिकारों और हितों के लिए किन-किन सुरक्षाओं की आवश्यकता है ? इसके निर्णायक स्वयं अल्पसंख्यक समुदाय हों न कि बहुसंख्यक समुदाय। अतः सुरक्षाओं का निर्णय उनकी अनुमति से होना चाहिए न कि बहुमत से।

अल्पसंख्यकों की समस्या केवल हिन्दुस्तान में ही नहीं है, यह समस्या दुनिया के दूसरे देशों में भी रह चुकी है। मैं आज इस स्थान से दुनिया को सम्बोधित करने का साहस करता हूं। मैं जानता हूं कि क्या इससे भी अधिक स्पष्ट और असंदिग्ध नीति इस संबंध में ग्रहण की जा सकती है ? यदि ग्रहण की जा सकती है तो वह नीति क्या है ? क्या इस नीति में कोई ऐसी

गई है जिसके कारण कांग्रेस को उसका कर्तव्य याद दिलाने की आवश्यकता है ? कांग्रेस र्तव्य-निर्वाह की त्रुटियों पर विचार करने के लिए हमेशा तैयार रही है और आज भी ।

मैं उन्नीस वर्षों से कांग्रेस में हूं। इस पूरी अवधि में कोई ऐसा निर्णय नहीं हुआ जिसके में मुझे सम्मिलित रहने का सम्मान प्राप्त न रहा हो। मैं कह सकता हूं कि इन १९ वर्षों दिन भी ऐसा कांग्रेस की विचार-पद्धति में नहीं बीता जब उसने इस समस्या का निर्णय ातिरिक्त किसी अन्य ढंग से भी करने का विचार किया हो। यह केवल घोषणा ही न थी सुदृढ़ और संकल्पित कार्य-पद्धति थी। गत १५ वर्षों में बार-बार इस कार्य-प्रणाली की से कठिन परीक्षण की स्थितियां उत्पन्न हुईं किन्तु यह चट्टान अपनी जगह से कभी न हिल

आज भी इसने संविधान सभा के सम्बन्ध में इस समस्या को जिस प्रकार स्वीकार किया है के लिए पर्याप्त है कि इन दोनों को अधिक से अधिक स्पष्ट रूप में देख लिया जाए। । प्राप्त अल्पसंख्यकों को यह अधिकार प्राप्त है कि यदि वह चाहें तो केवल अपने मतों से ्रतिनिधियों को निर्वाचित करके उस सभा में भेजें। उनके प्रतिनिधियों को कामों पर सम्प्रदाय के मतों के अतिरिक्त और किसी के मत का बोझ न होगा। जहां तक ्यकों के अधिकारों और हितों की समस्याओं का संबंध है निर्णय का आधार संविधान ा बहुमत नहीं होगा, स्वयं अल्पसंख्यकों की अनुमति होगी। यदि किसी समस्या में न हो सके तो किसी निष्पक्ष पंचायत के द्वारा निर्णय कराया जा सकता है जिसे ्यकों ने भी स्वीकार कर लिया हो। अन्तिम प्रस्ताव केवल शंका निवारण के हेतु हैं। इसकी बहुत कम सम्भावना है कि इस प्रकार की स्थितियां सामने आयेंगी। यदि इस के स्थान पर कोई अन्य कार्यान्वयन योग्य योजना हो सकती है तो उसे ग्रहण किया जा है।

यदि कांग्रेस ने अपनी कार्यप्रणाली के लिए यह सिद्धांत स्वीकार कर लिए हैं और इस ो पूरी कोशिश कर चुकी है, तथा कर रही है कि इस प्रणाली पर स्थिर रहे तो इसके पश्चात् ौन सी बात रह गई है कि जो बरतानिया के राजनीतिज्ञों को इस पर विवश करती है कि ्यकों के इन अधिकारों की समस्या को वह हमें बार-बार याद दिलाए ? और दुनिया को ा में डाले कि हिन्दुस्तान की इस समस्या के समाधान के मार्ग में जो समस्या अवरोधक है ्संख्यकों की समस्या है। यदि वस्तुतः इस समस्या के कारण बाधा उत्पन्न हो रही है तो रतानिया सरकार हिन्दुस्तान के राजनैतिक भाग्य की सुस्पष्ट घोषणा करके हमें इसका नहीं दे देती कि हम सब मिलकर बैठें और इस बात की स्वीकृति से इस समस्या का के लिए निवारण कर लें ?

हममें भेदभाव उत्पन्न किये गये और हम पर दोष लगाया जाता है कि हममें मतभेद है। भेदों के मिटाने का अवसर नहीं दिया जाता और हम से कहा जाता है कि हमें मतभेद चाहिए। यह स्थिति है जो हमारे चारों ओर उत्पन्न कर दी गई है। यह बंधन हैं जो हमें (से जकड़े हुए हैं। फिर भी इस स्थिति की कोई विवशता भी हमें इस बात से नहीं रोक कि प्रयत्न और साहस का कदम आगे बढ़ाएँ क्योंकि हमारा मार्ग समस्त कठिनाइयों का और हमें प्रत्येक कठिनाई पर विजय प्राप्त करनी है।

हिन्दुस्तान के मुसलमान और हिन्दुस्तान का भविष्य

यह हिन्दुस्तान के अल्पसंख्यकों की समस्या थी। परन्तु क्या हिन्दुस्तान में मुसलमानों की स्थिति एक ऐसे अल्पसंख्यक समुदाय की है जो अपने भविष्य को शंकातुर और भय की दृष्टि से देख सकती है और वह समस्त आशंकाएं अपने सामने ला सकती है जो स्वभावतः एक अल्पसंख्यक समुदाय के मस्तिष्क को विचलित कर देती है।

मुझे ज्ञात नहीं कि आप लोगों में कितने व्यक्ति ऐसे हैं जो मेरी उन रचनाओं को देख चुके हैं जिन्हें आज से अट्ठाईस वर्ष पूर्व मैं 'अलहिलाल' के पृष्ठों पर लिखता रहा हूं। यदि कुछ व्यक्ति ऐसे भी उपस्थित हैं तो मैं उनसे निवेदन करूंगा कि वह उन बातों का स्मरण करें। मैंने उस समय भी अपने इस विश्वास को अभिव्यक्त किया था और इसी प्रकार आज भी करना चाहता हूं कि हिन्दुस्तान की राजनैतिक समस्या में कोई बात भी इतनी अनुचित नहीं समझी गई जितनी यह बात कि हिन्दुस्तान के मुसलमानों की स्थिति एक राजनैतिक अल्पसंख्यक की है और इसलिए उन्हें एक जनतांत्रिक हिन्दुस्तान में अपने अधिकारों और हितों की ओर से आशंकित रहना चाहिए। इस एक मौलिक गलती ने असंख्य भ्रमों के लिए द्वार खोल दिया। अनुचित बुनियादों पर अनुचित दीवारें चुनी जाने लगीं। इसने एक ओर से स्वयं मुसलमानों के लिए उसकी वास्तविक स्थिति को संदिग्ध बना दिया, दूसरी ओर दुनिया को एक ऐसे भ्रम में डाल दिया जिसके पश्चात् वह हिन्दुस्तान को उसकी वास्तविक स्थिति में नहीं देख सकती।

यदि समय होता तो मैं आपको सविस्तार बतलाता कि इस अनुचित और कृत्रिम रूप को गत साठ वर्षों से किस प्रकार रूपायित किया गया है और किन हाथों ने इसे यह रूप दिया है? वस्तुतः यह भी उसी फूट की उत्पत्ति है जिसका चित्र इंडियन नेशनल कांग्रेस के आंदोलन के प्रारम्भ होने के पश्चात् हिन्दुस्तान के सरकारी मस्तिष्कों में बनना आरम्भ हो गया था और जिसका उद्देश्य यह था कि मुसलमानों को इस नवीन जागृति के विरुद्ध प्रयोग करने के लिए तत्पर किया जाए। इस चित्र में दो बातें विशेष रूप से उभारी गई थीं। एक यह कि हिन्दुस्तान में दो भिन्न राष्ट्र रहते हैं–एक हिन्दू राष्ट्र है और एक मुसलमान राष्ट्र है। अतः संयुक्त राष्ट्रीयता के नाम पर यहां कोई मांग नहीं की जा सकती। दूसरी बात यह है कि मुसलमानों की संख्या हिन्दुओं की तुलना में बहुत कम है अतः यहां जनतांत्रिक संस्थाओं की स्थापना का अनिवार्यतः परिणाम यह निकलेगा कि हिन्दू बहुसंख्यक समुदाय का राज्य स्थापित हो जायेगा और मुसलमानों का अस्तित्व संकटग्रस्त हो जायेगा। मैं इस समय अधिक विस्तार में नहीं जाऊंगा। मैं केवल इतनी बात आपको याद दिला दूंगा कि यदि इस समस्या का प्रारम्भिक इतिहास आप जानना चाहते हैं तो आपको एक भूतपूर्व वायसराय लार्ड डफरिन और पश्चिमी उत्तरी प्रान्त और अब संयुक्त प्रान्त के एक भूतपूर्व उपराज्यपाल सर आक्लैंड कालविन के समय की ओर लौटना चाहिए।

बरतानिया साम्राज्य ने भारत-भूमि में समय-समय पर जो बीज बोये हैं उसमें से एक बीज यह था जिसमें तुरन्त ही फूल-पत्ते निकल आए और हालांकि पचास वर्ष बीत चुके हैं किन्तु अभी तक उसकी जड़ों की नमी शुष्क नहीं हुई।

राजनैतिक बोलचाल में जब कभी अल्पसंख्यक शब्द बोला जाता है तो उससे अभिप्राय यह नहीं होता कि गणित के साधारण जोड़-घटाने के नियम के अनुसार प्रत्येक ऐसी संख्या जो एक दूसरी संख्या से कम हो अनिवार्यतः 'अल्पसंख्यक' होती है और उसे अपनी सुरक्षा की ओर से विचलित होना चाहिए, बल्कि इससे अभिप्रेरित एक ऐसा कमजोर दल होता है जो

संख्या और योग्यता दोनों दृष्टियों से अपने को इस योग्य नहीं पाता कि एक बड़े और शक्तिशाली समुदाय के साथ रहकर अपनी रक्षा के लिए आत्मविश्वास कर सके। इस स्थिति के लिए केवल यही पर्याप्त नहीं कि एक समुदाय की संख्या दूसरे दल से कम हो बल्कि यह भी आवश्यक है कि संख्या अपने आप में कम हो और इतनी कम हो कि उससे अपनी रक्षा की आशा नहीं की जा सकती हो। साथ ही इसमें संख्या के साथ गुण का प्रश्न भी उपस्थित होता है। कल्पना कीजिये कि एक देश में दो समुदाय हैं। एक की संख्या एक करोड़ है, दूसरे की दो करोड़ है। अब, यद्यपि एक करोड़ दो करोड़ का आधा होगा और इसलिए दो करोड़ से कम होगा, किन्तु राजनैतिक दृष्टि से आवश्यक न होगा कि केवल इस आनुपातिक अन्तर के आधार पर हम उसे एक अल्पसंख्यक स्वीकार करके उसके अस्तित्व को दुर्बल मान लें। इस प्रकार का अल्पसंख्यक समूह होने के लिए संख्या के आनुपातिक अंतर के साथ दूसरी प्रक्रियाओं की उपस्थिति भी आवश्यक है।

अब तनिक विचार कीजिए कि इस दृष्टि से हिन्दुस्तान में मुसलमानों की वास्तविक स्थिति क्या है? आपको अधिक समय तक सोचने की आवश्यकता न पड़ेगी। आप केवल क्षण मात्र में जान लेंगे कि आपके सम्मुख एक विशाल समुदाय अपनी इतनी बड़ी और फैली हुई संख्या के साथ सिर उठाए खड़ा है कि उसके संबंध में 'अल्पसंख्यक' की कमज़ोरियां का आभास भी करना अपने को धोखा देना है।

मुसलमानों की कुल संख्या मुल्क में आठ-नौ करोड़ है। वह देश के दूसरे समुदायों के समान सामाजिक और नस्ली घेरों में बटी हुई नहीं है। इस्लामी जीवन की समानता और भ्रातृत्वपूर्ण एकता के सुदृढ़ संबंधों ने उसे सामाजिक विघटन की दुर्बलताओं से बड़ी सीमा तक सुरक्षित रखा है। यह संख्या निश्चय ही देश की संपूर्ण जनसंख्या के एक-चौथाई से अधिक नहीं है। परन्तु प्रश्न संख्या के अनुपात का नहीं है, स्वयं संख्या और उसकी गुणात्मकता का है। क्या मानवीय पदार्थ की इतनी विपुल राशि के लिए इस प्रकार की शंकाओं का कोई उचित कारण हो सकता है कि वह एक स्वतंत्र और जनतांत्रिक हिन्दुस्तान में अपने अधिकारों और हितों की रक्षा स्वयं नहीं कर सकेगी?

यह संख्या किसी एक ही क्षेत्र में सिमटी हुई नहीं है बल्कि एक विशिष्ट अनुपात के साथ देश के विभिन्न भागों में फैल गई है। हिन्दुस्तान के ११ प्रांतों में से चार प्रांत ऐसे हैं जहां बहुमत मुसलमानों का है और दूसरे धार्मिक समुदाय अल्पसंख्यक समूह के रूप में हैं। यदि बरतानिया के अधीन बिलोचिस्तान को भी इसमें जोड़ दिया जाए तो चार के स्थान पर मुस्लिम बहुमत के पांच प्रांत हो जायेंगे। यदि हम अभी विवश हैं कि धार्मिक मतभेद के आधार पर ही 'बहुसंख्यक' और 'अल्पसंख्यक' का विचार करते रहें तो भी इस अवधारणा में मुसलमानों की जगह केवल एक 'अल्पसंख्यक' ही दिखाई नहीं देगी। यदि वह सात प्रांतों में अल्पसंख्यक हैं तो पांच प्रांतों में उन्हें बहुसंख्यक का स्थान प्राप्त है। ऐसी स्थिति में कोई कारण नहीं कि उन्हें एक अल्पसंख्यक समूह होने का कारण विचलित कर सके।

हिन्दुस्तान का भावी संविधान अपनी विवरणात्मकता में चाहे जिस प्रकार का हो, किन्तु उसकी एक बात हम सबको ज्ञात है: वह पूर्ण अर्थों में एक अखिल भारतीय संघ का जनतांत्रिक संविधान होगा जिसकी समस्त ईकाइया अपने-अपने आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्र होंगी और संघीय केन्द्र के भाग्य में केवल वही बातें रहेंगी जिनका संबंध देश के सार्वजनिक और देशव्यापी समस्याओं से होगा—जैसे विदेश नीति, रक्षा, कस्टम आदि। ऐसी स्थिति में क्या संभव

है कि कोई मस्तिष्क जो एक जनतांत्रिक संविधान के पूर्णतया कार्यान्वित होने और समवैधानिक रूप में चलने का चित्र थोड़ी देर के लिए भी अपने सामने ला सकता है वह उन शंकाओं को स्वीकार करने के लिए तत्पर हो जाए जिन्हें बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक के इस भ्रामक प्रश्न ने उत्पन्न करने की चेष्टा की है? मैं एक क्षण के लिए भी यह विश्वास नहीं कर सकता कि हिन्दुस्तान के भावी मानचित्र में उन शंकाओं के लिए कोई जगह निकल सकती है। वस्तुतः यह समस्त संदेह इसलिए उत्पन्न हो रहे हैं कि एक बरतानी राजनीतिज्ञ की विख्यात उक्ति के अनुसार, जो उसने आयरलैंड के संबंध में कही थी कि हम अभी तक नदी के तट पर खड़े हैं और तैरना चाहते हैं किन्तु नदी में कूदते नहीं। इन आशंकाओं का केवल एक ही उपचार है कि हमें नदी में निर्भीक कूद जाना चाहिए। जैसे ही हमने ऐसा किया हम जान लेंगे कि हमारे समस्त संदेह निराधार थे।

हिन्दुस्तानी मुसलमानों के लिए मौलिक प्रश्न

लगभग तीस वर्ष हुए जब मैंने एक हिन्दुस्तानी मुसलमान के रूप में समस्या पर पहली बार सोचने की चेष्टा की थी। यह वह समय था जब मुसलमानों का बहुमत राजनैतिक संघर्ष के क्षेत्र से पूर्णतः अलग-अलग था और साधारणतया उसी मानसिकता के प्रभावाधीन था, जिसने १८८८ ई० में कांग्रेस से पृथकता और विरोध ग्रहण कर लिया था। समय का यह वातावरण मेरे चिंतन-मनन का मार्ग अवरुद्ध न कर सका। शीघ्र ही एक अंतिम निष्कर्ष पर मैं पहुँच गया और उसने मेरे सम्मुख विश्वास और क्रियाशीलता का मार्ग खोल दिया। मैंने सोचा कि हिन्दुस्तान अपनी समस्त परिस्थितियों सहित हमारे सम्मुख विद्यमान है और अपने भविष्य की ओर बढ़ रहा है। हम भी इस नाव में बैठे हैं और इसकी गति की उपेक्षा नहीं कर सकते। इसलिए आवश्यक है कि अपनी कार्य-प्रणाली का एक स्पष्ट और अन्तिम निर्णय कर लें। यह निर्णय हम किस प्रकार कर सकते हैं? केवल इस प्रकार की समस्या के ऊपरी तल पर न रहें, उसकी जड़ों की गहराई में उतरें और फिर देखें कि हम अपने आपको किस स्थिति में पाते हैं। मैंने ऐसा किया और देखा कि सारी समस्या का निवारण केवल एक प्रश्न के उत्तर पर निर्भर है। हम हिन्दुस्तानी मुसलमान हिन्दुस्तान के स्वतंत्र भविष्य को शंका और अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं या आत्मविश्वास और साहस की दृष्टि से? यदि पहली स्थिति है तो निश्चय ही हमारा मार्ग नितांत भिन्न हो जाता है। समय की कोई घोषणा, भविष्य से संबद्ध कोई वादा, संविधान का कोई संरक्षण, हमारे संदेह और भय का वास्तविक उपचार नहीं हो सकता। हम बाध्य हैं कि एक तीसरी शक्ति की उपस्थिति सहन करें। यह तीसरी शक्ति उपस्थित है और अपना स्थान रिक्त करने के लिए तत्पर नहीं तथा हमें भी कोशिश करनी चाहिए कि वह अपना स्थान न छोड़ सके। परन्तु यदि हम समझते हैं कि हमारे लिए संदेह तथा भय का कोई कारण नहीं है तो हमें आत्मविश्वास और साहस की दृष्टि से भविष्य को देखना चाहिए। ऐसी स्थिति में हमारी कार्य-प्रणाली नितांत स्पष्ट हो जाती है। हम अपने आपको बिलकुल एक दूसरी स्थिति में पाते हैं जहां संदेह, दुविधा, अकर्मण्यता और प्रतीक्षा की आपत्तियों की प्रतिच्छाया भी नहीं पड़ सकती। विश्वास, दृढ़ता, कर्मण्यता और क्रियाशीलता का सूर्य यहां कभी नहीं डूब सकता। समय का कोई उलझाव, परिस्थितियों का कोई उतार-चढ़ाव, समस्याओं की कोई चुभन हमारे कदमों को दिशाहीन नहीं कर सकती। हमारा कर्तव्य हो जाता है कि हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय उद्देश्यों के मार्ग में उठाए कदम बढे जाएं।

मुझे इस प्रश्न का उत्तर जानने में लेशमात्र भी देर नहीं लगी। मेरे शरीर के एक-एक रेशे ने पहली स्थिति को अस्वीकार किया। मेरे लिए असंभव था कि इसकी कल्पना भी कर सकूँ। मैं किसी मुसलमान के लिए यदि उसने इस्लाम की आत्मा को अपने हृदय के एक-एक कोने से ढूंढ़ कर निकाल न फेंकी हो तो यह संभव नहीं समझता कि वह अपने को प्रथम स्थिति में पाना सहन करेगा।

मैंने १९१२ में 'अलहिलाल' निकाला और अपना यह निर्णय मुसलमानों के सम्मुख प्रस्तुत किया। आपको यह याद दिलाने की आवश्यकता नहीं कि मेरी पुकारें प्रभावहीन नहीं हैं। १९१२ से १९१६ ई० तक का समय हिन्दुस्तानी मुसलमानों की नई राजनैतिक करवट का युग था। १९२० ई० के अन्तिम समय में जब चार वर्ष की नजरबन्दी के पश्चात् रिहा हुआ तो मैंने देखा कि मुसलमानों की राजनैतिक मानसिकता अपना पिछला सांचा तोड़ चुकी है और नया सांचा ढल रहा है। इस घटना को घटित हुए बीस वर्ष बीत चुके हैं। इस अवधि में नाना प्रकार के उतार-चढ़ाव होते रहे। परिस्थितियों में नई-नई धारायें बहीं। विचारों की नई-नई तरंगें उठीं। फिर भी एक वास्तविकता बिना किसी परिवर्तन के अब तक विद्यमान है। मुसलमानों का जनमत पीछे लौटने के लिए तत्पर नहीं।

हां, अब वह पीछे लौटने के लिए तैयार नहीं। परन्तु आगे बढ़ने का मार्ग उसके लिए पुनः दुविधाग्रस्त हो रहा है। मैं इस समय कारणों की चर्चा नहीं कर रहा। मैं केवल प्रभावों को रेखांकित करने की चेष्टा करूंगा। मैं अपने सहधर्मियो को याद दिलाऊंगा कि मैंने १९१२ ई० में जिस स्थान से उन्हें सम्बोधित किया था आज भी उसी जगह खड़ा हूं। इस सम्पूर्ण कालावधि ने परिस्थितियों का जो ढेर हमारे सामने लगा दिया है, उनमें से कोई स्थिति ऐसी नहीं जिससे मेरा परिचय न हो। मेरी आंखों ने देखने में, और मेरे मस्तिष्क ने सोचने में, कभी ग़लती नहीं की। परिस्थितियां मेरे सामने से केवल गुज़रती ही न रहीं, मैं उनके अन्दर खड़ा रहा और मैंने एक-एक स्थिति का परीक्षण किया। मैं विवश हूं कि अपने अवलोकन को न झुठलाऊँ, मेरे लिए सम्भव नहीं कि अपने विश्वास से लड़ूं। मैं अपने अन्तःकरण की आवाज़ को नहीं दबा सकता। मैं इस पूरे काल में उनसे कहता रहा हूं और आज भी उनसे कहता हूं कि हिन्दुस्तान के नौ करोड़ मुसलमानों के लिए केवल वही कार्य-प्रणाली हो सकती है जिसका आह्वान मैंने १९१२ में किया था।

मेरे सहधर्मियों ने १९१२ ई० में मेरे आह्वानों को स्वीकार किया था, किन्तु आज उन्हीं का मुझसे मतभेद है ; उनके इस मतभेद को लेकर मेरे मन में कोई दुर्भाव नहीं है। किन्तु मैं उनकी सत्यनिष्ठा और उनके निष्कपटता से प्रार्थना करूंगा। यह राष्ट्र और देशों के भाग्यों की बात है। हम इसे सामयिक भावुकता के प्रवाह में बहकर तय नहीं कर सकते। हमें जीवन की ठोस वास्तविकता के आधार पर अपने निर्णयों की दीवारें निर्मित करनी हैं। ऐसी दीवारें प्रतिदिन बनाई और ढाई नहीं जा सकतीं। मैं स्वीकार करता हूं कि दुर्भाग्यवश समय का वातावरण प्रदूषित हो रहा है। परन्तु उन्हें वास्तविकता के प्रकाश में आना चाहिए। वह आज भी प्रत्येक दृष्टि से समस्या पर विचार कर लें, वह इसके अतिरिक्त अन्य पथ अपने सामने नहीं पायेंगे।

मुसलमान और संयुक्त राष्ट्रीयता

मैं मुसलमान हूं और गर्व से महसूस करता हूं कि मुसलमान हूं। इस्लाम की १३०० वर्ष की वैभवशाली परम्परायें मुझे थाती के रूप में मिली हैं। मैं तत्पर नहीं हूं कि इसका कोई छोटे से

छोटा अंश भी नष्ट होने दूं। इस्लाम की शिक्षा, इस्लाम का इतिहास, इस्लामी ज्ञान-विज्ञान और कला, इस्लाम की सभ्यता मेरी सम्पत्ति की पूंजी है और मेरा कर्तव्य है कि इसकी रक्षा करूं। मुसलमान होने के कारण मैं धार्मिक और सांस्कृतिक परिधि में अपना एक विशिष्ट अस्तित्व रखता हूं और सहन नहीं कर सकता कि इसमें कोई हस्तक्षेप करे। परन्तु इन समस्त भावनाओं के साथ मैं एक अन्य भावना भी रखता हूं जिसे मेरे जीवन की वास्तविकताओं ने जन्म दिया है। इस्लाम की आत्मा मुझे उससे नहीं रोकती, वह इस मार्ग में मेरा पथ-प्रदर्शन करती है। मैं गर्व के साथ महसूस करता हूं कि मैं हिन्दुस्तानी हू। मैं हिन्दुस्तान की एक और अविभाज्य संयुक्त राष्ट्रीयता का एक तत्त्व हूं। मैं इस संयुक्त राष्ट्रीयता का एक ऐसा महत्त्वपूर्ण अंश हूं जिसके बिना दूसरी महानता का रूप अधूरा रह जाता है। मैं इसकी बनावट का एक आवश्यक तथ्य हूं। मैं अपने इस दावे को कभी छोड़ नहीं सकता।

हिन्दुस्तान के लिए विधाता का यह निर्णय हो चुका था कि उसकी भूमि पर मनुष्यों की विभिन्न नस्लें, विभिन्न सभ्यताएं और विभिन्न धर्मों के सार्थवाह आ कर बसें। अभी इतिहास के ऊषाकाल का आरम्भ नहीं हुआ था कि इन सार्थवाहों का आगमन आरम्भ हो गया और फिर एक के पश्चात् एक सार्थवाह आता रहा। इसकी विशाल धरती सबका स्वागत करती रही और इसकी दानशीलता ने सबके लिए जगह निकाली। इन्हीं सार्थवाहों में एक अन्तिम सार्थवाह हम इस्लामावलम्बियों का भी था। यह भी पिछले सार्थवाहो के पथ चिह्नों पर चलता हुआ यहां पहुंचा और सदैव-सदैव के लिए बस गया। यह संसार की दो भिन्न जातियों और सभ्यताओं का मिलन था। यह गंगा और यमुना की धाराओं के समान पहले एक दूसरे से अलग-अलग बहते रहे, किन्तु फिर जैसा कि प्रकृति का अटल नियम है, दोनों को एक संगम में मिल जाना पड़ा। इन दोनों का मेल इतिहास की एक महान घटना थी। जिस दिन यह घटना घटी उसी दिन प्रकृति के निर्दिष्ट हाथों ने पुराने हिन्दुस्तान के स्थान पर नए हिन्दुस्तान के ढालने का कार्य आरम्भ कर दिया।

हम अपने साथ अपना भण्डार लाए थे। यह भूमि भी अपने भण्डारों में समृद्धशाली थी। हमने अपनी सम्पत्ति उसको अर्पित कर दी और उसने अपने कोशों के द्वार हम पर खोल दिए। हमने उसे इस्लाम के भण्डार की वह सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु दे दी जिसकी उसे सबसे अधिक आवश्यकता थी। हमने उसे जनतन्त्र और मानवीय समानता और भ्रातृत्व का सन्देश पहुंचाया।

इसके पश्चात् ११ शताब्दियाँ बीत चुकी हैं। अब इस धरती पर इस्लाम का दावा उतना ही समीचीन है जितना कि हिन्दू धर्म का। यदि हिन्दू धर्म कई हजार वर्ष से यहां के लोगों का धर्म रहा है तो एक हज़ार वर्ष से इस देश में इस्लाम धर्म भी प्रचलित है। जिस प्रकार आज एक हिन्दू सगर्व कह सकता है कि वह भारतीय है और हिन्दू धर्म का अनुयायी है, उसी प्रकार एक मुसलमान सिर ऊंचा करके भारतीय होने और इस्लाम धर्म का अनुयायी होने का दावा कर सकता है। इसके अतिरिक्त मैं यह भी स्वीकार करूंगा कि भारतीय ईसाई भी आज सर उठाकर कह सकता है कि मैं हिन्दुस्तानी हूं और भारतवासियों के अनेक धर्मों में से ईसाई धर्म का अनुयायी हूं।

हमारे ११०० वर्ष के मिले-जुले इतिहास में हमारी समानधर्मी सर्जनात्मक और रचनात्मक उपलब्धियों ने हिन्दुस्तान को समृद्धिशाली बनाया है। हमारी भाषाओं, हमारे काव्य, हमारे साहित्य, हमारी संस्कृति, हमारी कला, हमारी वेशभूषा, हमारी जीवनचर्या और

रीति-रिवाजों पर इस समानधर्मी जीवन की छाप लगी हुई है। हमारी भाषायें भिन्न थीं किन्तु हम एक समान भाषा का उपयोग करने लगे, हमारे रीति-रिवाजों और आचरण में विभिन्नता थी किन्तु उन्होंने एक दूसरे को प्रभावित किया और परिणामतः एक नया रूप धारण कर लिया। हमारी वेशभूषा पुरातनकालीन चित्रों में ही देखी जा सकती है। उसे अब कोई पहनता नहीं है। यह साझी सम्पदायें हमारी साझी राष्ट्रीयता की थाती हैं और हम इन्हें छोडना नहीं चाहते और न उस युग में लौटना चाहते हैं जब मिले-जुले साहसी जीवन का आरम्भ हुआ था। यदि हममें से कोई ऐसा हिन्दू है जो हज़ार वर्ष या उससे अधिक काल की हिन्दू जीवन पद्धति को वापस लाना चाहता है तो वह केवल स्वप्नलोक में विचरण कर रहा है और इस प्रकार के स्वप्न यथार्थ नहीं बनते। इसी प्रकार यदि हममें से कोई मुसलमान अतीतकालीन अपनी सभ्यता और संस्कृति का पुनरुत्थान करना चाहता है जिसे मुसलमान एक हज़ार वर्ष पूर्व ईरान और मध्य एशिया से लाए थे तो वह भी स्वप्नलोक में विचरण करते हैं और जितनी जल्दी वह जाग जायें उतना ही अच्छा है। यह अस्वाभाविक कल्पनाएं हैं जिनकी जड़ें यथार्थ की भूमि में फैल नहीं सकतीं। मैं उन व्यक्तियों में से हूं जिनका विचार है कि धर्म का पुनरुत्थान आवश्यक है किन्तु संस्कृति के सन्दर्भ में पुनरुत्थान का अर्थ है प्रगति के पथ को अस्वीकार करना।

हमारे इस एक हज़ार वर्ष के मिले-जुले जीवन ने एक संयुक्त राष्ट्रीयता का सांचा ढाल दिया है, ऐसे साचे बनाए नहीं जा सकते। वह प्रकृति के अदृश्य हाथों से शताब्दियों में स्वतः निर्मित होते हैं। अब यह सांचा ढल चुका है और नियति ने इस पर अपनी मुहर लगा दी है। हमें रुचिकर हो या न हो किन्तु अब हमें एक हिन्दुस्तानी राष्ट्र और अविभाज्य हिन्दुस्तानी राष्ट्र से पृथकता का कोई कृत्रिम विचार हमारे इन एक होने को दो नहीं बना सकते। हमें ईश्वरीय निर्णय पर नतमस्तक होना चाहिए और अपने भाग्य निर्माण में संलग्न हो जाना चाहिए।

सज्जनो ! मैं अब आपका अधिक समय नहीं लूंगा। मैं अब अपना अभिभाषण समाप्त करना चाहता हूं परन्तु इसकी समाप्ति के पूर्व मुझे एक बात की याद दिलाने की अनुमति दीजिए। आज हमारी समस्त सफलताएं तीन बातों पर निर्भर हैं :—एकता, अनुशासन और महात्मा गांधी के नेतृत्व में विश्वास। यही एक मात्र नेतृत्व है जिसने हमारे आन्दोलन के भव्य अतीत का निर्माण किया है और केवल इसी से हम एक उज्ज्वल भविष्य की आशा कर सकते हैं।

हमारी परीक्षा का एक संकटपूर्ण युग हमारे सम्मुख है। हमने समस्त संसार की आंखों को, इस दृश्य को देखने का निमन्त्रण दे दिया है। चेष्टा करें कि हम इसके योग्य सिद्ध हों। □

भाग ३

समाहार : १९४७–१९५८

स्वतंत्र्योत्तर काल

शिक्षा एवं धर्म

"हमारी वर्तमान कठिनाइयाँ योरप के विपरीत भौतिकता के पागलपन से उत्पन्न नहीं हुईं बल्कि धार्मिक कट्टरपन का परिणाम हैं। यदि हम इन पर नियंत्रण करना चाहते हैं तो प्राथमिक चरणो में धार्मिक शिक्षा की अस्वीकृति उपाय नहीं है बल्कि इस समस्या का समाधान प्रत्यक्ष निर्देशन के अन्तर्गत उच्च कोटि की तथा स्वस्थ धार्मिक शिक्षा देने में है ताकि भ्रामक धार्मिक विश्वास बालकों को अत्यंत अल्पायु में प्रभावित न कर सके।"

शिक्षा एवं धर्म *

दोस्तो !

केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति के इस चौदहवें सम्मेलन में आपका मैं स्वागत करता हूं। मैंने इसे 'चौदहवां' सम्मेलन इसलिए कहा कि इससे पहले बोर्ड के तेरह जलसे हो चुके हैं। लेकिन मैं सोचता हूं, ज्यादा ठीक बात यह होगी कि हम इसे अपनी तरह की पहली बैठक कहें। इस बोर्ड के तेरह जलसे जिस हिन्दुस्तान में हुए थे वह पन्द्रह अगस्त सन् सैंतालिस में समाप्त हो गया और उसके साथ इतिहास की एक बहुत बड़ी कहानी की भी इति हो गई। आज हम एक नए हिन्दुस्तान में इकट्ठे हुए हैं जिसे अब अपना नया इतिहास बनाना है और जिसके नए बनने वाले इतिहास का एक पृष्ठ आज हम उलट रहे हैं।

मुझे आशा है कि आप इसे स्थिति के प्रतिकूल नहीं समझेंगे, यदि मैं आपको याद दिलाऊं कि स्थिति के इस परिवर्तन में उस काम के ढंग और स्वभाव को भी बहुत कुछ बदल दिया है जिसे पूर्ण करने के लिए आप यहां इकट्ठे हुए हैं। इस बोर्ड ने आज तक शिक्षा की समस्याओं को जिन तराजुओं में तौला था, वह आपके लिए पुराने हो गए। अब आपको नए तराजू बनाने पड़ेंगे और नए बट्टों से उनको तौलना पड़ेगा। अब आप तत्कालीन राष्ट्रीय समस्याओं की लंबाई-चौड़ाई उन फ़ीतों से नहीं नाप सकते जो कल तक आपको हर तरह की नपाई का काम देते रहे हैं। हिन्दुस्तान की नई मांगों का जवाब देने के लिए आपको नई बुद्धि और नए यन्त्रों की ज़रूरत होगी।

इस बोर्ड ने इस समय तक राष्ट्रीय शिक्षा के प्रश्न को ध्यान के कितने ही फैलाव और आंख की कितनी ही गहराई के साथ देखने की कोशिश की हो लेकिन इस तथ्य की परछाईं से वह अपने दिमाग़ को नहीं बचा सकता था कि एक राष्ट्रीय सरकार के बेरोक इरादे उसे सहारा देने के लिए मौजूद नहीं हैं। उसे पूरी तरह फैलने की इच्छा रखने पर भी अपने आपको कुछ-न-कुछ सिमटा और सिकुड़ा हुआ रखना पड़ता। लेकिन अब वह स्थिति नहीं रह गई। आप जिस राष्ट्र की शिक्षा की समस्याओं पर सोच-विचार करना चाहते हैं उसी की राष्ट्रीय सरकार अपने बेरोक इरादों और बंधन मुक्त कदमों के साथ आपको सहारा देने के लिए मौजूद है। वह आपसे आशा रखती है कि उद्देश्य की सक्रियता और ध्यान की गहराई का जो कांटा उसने अपने हाथ में ले रखा है आप अपने समस्त परामर्शों को भी उसी प्रकार के कांटे से तौलते हुए प्रस्तुत करें।

लेकिन आप इन नए इरादों और नई सरगर्मियों के साथ नए कदम उठाना चाहते हैं तो इसका यह मतलब कदापि नहीं होना चाहिए कि इस बोर्ड की पिछली सेवाओं के मूल्य का हमें पूरा आभास नहीं है। इस बोर्ड ने पिछले तेरह वर्षों के भीतर अपना कर्तव्य संलग्नता और सक्षमता के साथ निभाया है, उसका रिकार्ड उसकी रिपोर्टों के हज़ारों पृष्ठों में फैला हुआ है और

---

* केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति के चौदहवे सम्मेलन मे दिया गया अध्यक्षीय भाषण, नई दिल्ली, १३ जनवरी, १९४८

देश की आजकल की शैक्षणिक गतिविधि इसकी साक्षी हैं। संभवतः इतिहास में इसकी सबसे अधिक बहुमूल्य सेवा वह समझी जाएगी जो उसने चौवालिस ईस्वी में बेसिक एजुकेशन (प्राथमिक शिक्षा) की नई स्कीम (योजना) तैयार करके पूर्ण की थी। ब्रिटिश इंडिया के इतिहास में यह पहला अवसर था कि देश की बुनियादी तालीम (प्राथमिक शिक्षा) के प्रश्न को उसके वास्तविक रूप में देखने की चेष्टा की गई। और एक ऐसा चित्र बनाया गया जिसमें ध्यान का फैलाव और काम की उत्कंठा दोनों को हम विद्यमान पाते हैं, यद्यपि यही दो बातें हैं जो यहां बहुत कम मिला करती थीं। इस चित्र के बनाने में हमारे भूतपूर्व सलाहकार सर जान सार्जेण्ट ने जो बड़ा हिस्सा लिया था उसके कारण उनका नाम उचित रूप से इस योजना के साथ जुड़ गया। मुझे प्रसन्नता है कि वह अभी हमारे देश में मौजूद हैं और मौजूद रहेंगे। यद्यपि इस समय वह बाहर गए हुए हैं इसलिए इस बैठक में सम्मिलित न हो सके।

अब हमें विचार करना है कि इस योजना को किस प्रकार समय की इस बदली हुई स्थिति के अनुकूल बनाया जा सकता है और क्योंकर उन रुकावटों को जल्दी से जल्दी दूर किया जा सकता है जो इसका रास्ता रोके हुए हैं? लेकिन मैं यह सवाल यहां नहीं छेडूंगा। एक एजुकेशन कांफ्रेंस (शिक्षा सम्मेलन) जो इस तरह के प्रश्नों पर सोच-विचार करने के लिए बुलाई गई है, तीन दिन बाद इसी हाल में शुरू होगी और मुझे अवसर मिलेगा कि मैं वहां विस्तार के साथ अपने विचार रखूं।

लेकिन इस संबंध में समस्या का एक विशेष पहलू है जिस पर मैं आपका ध्यान दिलाए बिना नहीं रह सकता। बेसिक एजुकेशन के संबंध में धार्मिक शिक्षा का प्रश्न उठा था और बोर्ड की दो कमेटियो ने इस पर सोच-विचार किया था। लेकिन ये कमेटियां किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकीं। मैं चाहता हूं कि समय की इस बदली हुई स्थिति में फिर से नए सिरे से इस प्रश्न पर विचार किया जाए क्योंकि हमारे देश के लिए यह परिवेश बहुत अहमियत रखता है।

आपको मालूम है कि धार्मिक शिक्षा के बारे में उन्नीसवीं शताब्दी का जो लिबरल (उदारवादी) दृष्टिकोण था, अब साधारणतया अपना मूल्य खो चुका है। पहली बड़ी लड़ाई के बाद से ही एक दूसरा दृष्टिकोण बनना आरंभ हो गया था जिसे हमारी लड़ाई के क्रांतिकारी परिणामों ने पूरी तरह एक नए सांचे मे ढाल दिया है। पहले समझा जाता था कि राष्ट्रीय शिक्षा में धार्मिक शिक्षा को मिलाने से बच्चों के बेरोक अक्ली उभार को नुकसान पहुंचेगा। अब मान लिया गया है कि धार्मिक शिक्षा के बिना कोई उपाय नहीं है, राष्ट्रीय शिक्षा अगर इस बात से खाली रहेगी तो न तो सच्ची नैतिक आत्मा पैदा हो सकेगी, न मानवतावाद का सांचा ठीक तरह ढाला जा सकेगा। रूस को ठीक लड़ाई के दौरान जिस तरह अपने पिछले फैसले बदलने पड़े उनकी कहानी आप सुन चुके है और सन् ४४ में इंगलैंड की सरकार को अपने शैक्षणिक नक्शे में जो संशोधन करना पड़ा उसका हाल भी आप से छुपा हुआ नहीं है।

जहां तक हिन्दुस्तान का संबंध है, समस्या बिल्कुल एक-दूसरे रूप में हमारे सामने आ खड़ी होती है। योरोप और अमरीका में धार्मिक शिक्षा की ज़रूरत का नया एहसास इसलिए पैदा हुआ कि लोगों ने देखा कि अगर धार्मिक शिक्षा को अलग रखा जाता है तो लोग जरूरत से ज्यादा बुद्धि वाले बन जाते हैं। लेकिन हिन्दुस्तान मे धर्म का प्रभाव जिस तरह काम कर रहा है, उसे देखते हुए हमारे सामने यह भय नहीं है बल्कि एक दूसरा ख़तरा सामने आ गया है। हमें इसका डर नहीं है कि लोग ज़रूरत से ज़्यादा बुद्धि वाले बन जायेंगे। हमें इस संकट ने घेर लिया है कि लोग ज़रूरत से ज़्यादा मज़हब (धर्म) वाले बन जाते हैं। हमारी आजकल की कठिनाइयां यूरोप

की तरह भौतिकवादी पागलों ने पैदा नहीं कीं, बल्कि धार्मिक पागलों ने उत्पन्न कीं। अगर हम इस स्थिति से अपने देश को निकालना चाहते हैं तो इसका उपचार यह नहीं हो सकता कि धार्मिक शिक्षा को आजकल की स्थिति की अनुकम्पा पर छोड़ दें। हमें चाहिए कि पूरी तरह इसे अपनी देखभाल के अंतर्गत लें और अच्छे प्रकार की और सच्ची धार्मिक शिक्षा दिलाएं।

–इस प्रकार हम इस बात की रोकथाम कर लेंगे कि धर्म अपने गलत रूप में आकर बच्चों के दिमागों को पहले दिन से बिगाड़ देने का अवसर न पाए। बात साफ है कि हिन्दुस्तान के करोड़ों वासी अभी इसके लिए तैयार नहीं हो सकते कि अपने बच्चों को धर्म के लगाव से अलग रखें, और मैं समझता हूं कि स्वयं यह आपकी भी इच्छा न होगी। फिर यदि सरकार अपनी शिक्षा के मानचित्र में धार्मिक शिक्षा के लिए जगह नहीं निकालना चाहती तो सोचना चाहिए कि इसका नतीजा क्या निकलेगा? यही निकलेगा कि लोग अपने निजी उपायों से बच्चों को प्रारंभिक धार्मिक शिक्षा दिलाने की कोशिश करेंगे। यह निजी उपाय आजकल जिस तरह के हो सकते हैं उनका हाल आप से छिपा नहीं है। मैं पूरी जानकारी के साथ कह सकता हूं कि न केवल ग्रामों में बल्कि नगरों में भी बच्चों की प्राथमिक धार्मिक शिक्षा का काम जिन अध्यापकों के हाथों में आता है वह साधारणतया आधे पढ़े हुए जाहिल आदमी होते हैं और धर्म को केवल उसके बिगड़े हुए और संकीर्ण रूप में ही पहचानते हैं। उनकी पढ़ाई का ढंग भी ऐसा होता है जिसमें मस्तिष्क के खुलने और घाव के फैलने की बहुत जगह नहीं निकल सकती है। स्पष्ट है कि ऐसे हाथों में जिन बच्चों के मस्तिष्क का सबसे पहला सांचा ढलेगा उन्हें आगे चल कर कितना ही शिक्षा के नए सांचों में ढालने की चेष्टा की जाए लेकिन वह अपने प्लास्टिक के सांचे के प्रभाव से अपने आप को मुक्त नहीं कर सकते। अगर हम चाहते हैं कि देश के बौद्धिक जीवन को इस बुराई से बचायें तो हमारे लिए ज़रूरी हो जाता है कि प्राथमिक धार्मिक शिक्षा को लोगों के प्राइवेट उपायों पर न छोड़ दें। स्वयं अपनी देखभाल के साथ इसका प्रबंध करें। एक बाहर की सरकार को निश्चय ही यह बात सजती थी कि वह धार्मिक शिक्षा के दायित्व से अपने को अलग रखे। लेकिन एक राष्ट्रीय सरकार इस दायित्व से अलग नहीं रह सकती। उसका कर्तव्य है कि देश की राष्ट्रीय मानसिकता को ढालने के लिए एक ठीक सांचा बनाए। लेकिन हिन्दुस्तान में धर्म-मज़हब को छोड़ कर हम कोई ऐसा सांचा नहीं बना सकते।

अगर धार्मिक शिक्षा के लिए बेसिक एजुकेशन में जगह रखी जाए तो यह कितनी मात्रा में हो? और इसका प्रबंध किस प्रकार किया जाए? निस्संदेह इन प्रश्नों पर बहुत अधिक सोच-विचार की जरूरत है और इस मार्ग में कुछ कठिनाइयां भी हैं जिनके दूर करने का रास्ता हमें ढूंढ़ना है। लेकिन मेरे लिए इन बातों के विस्तार में जाना ज़रूरी नहीं। अगर वास्तविक प्रश्न तय कर लिया जाय तो फिर विवरण पर विचार करके एक नक्शा बनाया जा सकता है। इसलिए मैं आप से निवेदन करूंगा कि इस प्रश्न पर नए सिरे से सोच-विचार करने के लिए आप एक कमेटी बना दें और इसे अधिकार दें कि अपनी सिफ़ारिश सीधे सरकार को भेज दे।

एक और समस्या है जिस पर आपको अपना अंतिम मत निर्धारित कर लेना है वो यह है कि भविष्य में हमारी ऊंची शिक्षा का माध्यम कौन-सी भाषा हो? मैं समझता हूं कि इस बारे में दो बातें ऐसी हैं जिनमें आप ज़रूर सहमत होंगे। एक यह कि आगे चलकर अंग्रेज़ी भाषा शिक्षा का माध्यम नहीं रहेगी। दूसरे यह कि जो परिवर्तन भी इस संबंध में किया जाए वह अचानक न किया जाए, धीरे-धीरे किया जाए। मैं सोचता हूं कि जहां तक ऊंचे दर्जे की शिक्षा का संबंध है हमें अभी पांच वर्ष तक 'स्टेटस' (यथातथ्य स्थिति) को बनाये रखना चाहिए लेकिन इसके साथ

भावी परिवर्तनों की तैयारियों का काम भी आरम्भ कर देना चाहिए ताकि उस मुद्दत के बाद हम शिक्षा की समस्त शाखाओं की पढ़ाई का काम अपनी देशीय भाषा के माध्यम से कर सकें। मैं चाहता हूं, इस बारे में भी आप सोच-विचार के पश्चात् अपना परामर्श सरकार को दे दें।

इस संबंध में एक मौलिक प्रश्न यह भी उत्पन्न हो जाता है कि अंग्रेज़ी की जगह कोई एक भाषा अपनाई जाए या एक से अधिक? अर्थात् देश में यूनीवर्सिटी की भाषा एक रहे या हर प्रांत अपनी-अपनी स्थानीय भाषा को अपनाएं? अंग्रेज़ी भाषा हमारे लिए एक विदेशी भाषा थी। इसे पढ़ाई का माध्यम बनाने से हमें कई प्रकार की हानि हुई। लेकिन साथ ही एक बहुत बड़ा लाभ पहुंचा, अर्थात् देश के सारे पढ़े-लिखे व्यक्तियों के ध्यान में ज्ञान की एक भाषा हो गई और उससे पूरे देश को एकतायी (एकता) की एक डोरी में बांध दिया। यह लाभ इतना बड़ा है कि यदि विदेशी भाषा को माध्यम बनाने का मौलिक नुकसान मेरे सामने न होता तो मेरी बुद्धि इस ओर झुकने लगती कि अब अंग्रेज़ी भाषा को उसके शैक्षणिक स्थान से हटाना उचित न होगा। लेकिन मुझे इस दृश्य की ओर बढ़ने से अपने आपको रोकना पड़ता है। मैं आप से एक बात पूछना चाहता हूं अगर कल तक एक मद्रासी, एक बंगाली, एक पंजाबी, को इनमें कोई कठिनाई महसूस नहीं होती थी कि अपनी मातृभाषा रखते हुए भी एक विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा पाये तो यह बात क्यों उसके लिए कठिन हो जाएगी कि स्वयं अपने देश की एक भाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करे। अगर हम अंग्रेज़ी की जगह हिन्दुस्तानी ज़बान को तमाम देश के लिए उच्च शिक्षा का माध्यम ठहरा सकते हैं तो अंग्रेज़ी के कारण जो मानसिक एकता देश में उत्पन्न हो गई है, वह ज्यों की त्यों बनी रहेगी। लेकिन अगर हम ऐसा नहीं कर सकते तो फिर हमें दूसरा उपाय करना पड़ेगा। लेकिन मैं यह कहने से अपने आपको नहीं रोक सकता कि इनसे हमारी मानसिक एकतायी (एकता) की मज़बूती को ठेस ज़रूर लगेगी।

यह दूसरा उपाय यदि हो सकता है कि सारे प्रांत अपने-अपने क्षेत्रों की भाषाएं अपना लें और उसके साथ हिन्दुस्तानी भाषा की शिक्षा को भी एक बीच की भाषा के रूप में और एक इंटर प्रोविन्सल (अंतरप्रांतीय) भाषा के रूप में इसे ज़रूरी मान लें। मै चाहता हूं, कि इस समस्या पर भी आप नए सिरे से सोच-विचार करें और अपनी एक स्पष्ट राय निर्धारित करें।

दोस्तो! आज भारी एजेंडा आपकी प्रतीक्षा में है। मैं अब और अधिक बोझ आपके समय पर नहीं डालूंगा। मैं फिर एक बार आपका स्वागत करता हूं और अपनी बात समाप्त करता हूं।

अलीगढ़ और हिन्दुस्तानी र.ष्ट्रीयता

"एक धर्मनिरपेक्ष और जनतांत्रिक राज्य के लिए शैक्षणिक व्यवस्था धर्मनिरपेक्ष होनी चाहिए। इसे राज्य के समस्त नागरिकों को बिना किसी भेद-भाव के समान प्रकार की शिक्षा प्राप्त करानी चाहिए।"

अलीगढ़ और हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता *

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के वार्षिक दीक्षान्त समारोह को सम्बोधित करने के लिए आपके कुलपति महोदय का निमन्त्रण जब मैंने स्वीकार किया तो सुबह स्वभावतः मुझे वह युग याद आ गया जब इस विश्वविद्यालय से मेरा प्रथम सम्पर्क स्थापित हुआ था। यह छत्तीस वर्ष पहले की बात है जब परिस्थिति ऐसी थी कि मेरी गणना इस संस्था के विरोधियों में होती थी।

वास्तविकता आज से नितान्त भिन्न थीं। उस काल में हिन्दुस्तानी मुसलमान समस्त राजनैतिक आन्दोलनों से न केवल पृथक् थे बल्कि स्वतन्त्रता के संघर्ष के विरोध तक के लिए तत्पर थे। हिन्दुस्तानी मुसलमानों की इस राजनैतिक गतिरोध का सबसे बड़ा और एकमात्र कारण इस संस्था के संस्थापक स्वर्गीय सर सैयद अहमद खां का नेतृत्व था। जिसका भार १९वीं शताब्दी के अन्तिम २५ साल में उन्होंने उठाया था। अलीगढ़ पार्टी ने इंडियन नेशनल कांग्रेस से मुसलमानों को पृथक् रखने की सर सैयद अहमद खां की नीति को प्रचलित रखने की पूरी चेष्टा की, कुछ एक को और कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को छोड़कर इन्हें इसमें सफलता भी मिली।

इस पृष्ठभूमि में मैंने १९१२ ई० में 'अल-हिलाल' का प्रकाशन किया। मैंने अपने राजनैतिक जीवन के प्रारम्भ में ही इस तथ्य को स्वीकार कर लिया था कि हिन्दुस्तानी मुसलमानों को स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेना चाहिए और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्हें नेशनल कांग्रेस में सम्मिलित होना चाहिए। इसलिए यह बात अनिवार्य थी कि मैं राजनैतिक नेतृत्व पर कटाक्ष करूं जिसका दिग्दर्शन सर सैयद अहमद खां कर रहे थे और अलीगढ़ पार्टी जिसकी प्रतिनिधि थी। अतः इस राजनैतिक बिन्दु पर मेरे और पार्टी के बीच टकराव हुआ। इस मतभेद को पार्टी के सदस्यों ने उस राजनैतिक नीति के संस्थापक का विरोध समझा और कुछ लोगों के विचार में तो मैं स्वर्गीय सर सैयद अहमद खां और अलीगढ़ का शत्रु था।

परन्तु इस बात का वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि मेरी दृष्टि में सर सैयद अहमद खा मे राजनैतिक दिग्दर्शन में भयंकर और भीषण गलतियां हुई किन्तु इसी के साथ मैं उनको १९वीं शताब्दी की महान विभूतियों में समझता था और आज भी समझता हूं। परन्तु उनके शैक्षणिक और सामाजिक सुधारों की सराहना के साथ मैं राजनैतिक क्षेत्र में उनकी मुसलमानों के भ्रामक नेतृत्व को कभी भूल नहीं पाया।

इस बात को ३६ वर्ष बीत चुके हैं किन्तु मैं जब भी उस काल की घटनाओं पर विचार करता हूं तो इस सम्बन्ध में पुनः विचार करने का आज भी मुझे कोई कारण नहीं मिलता। उस समय भी मेरा यह मत था और आज भी है कि सर सैयद शैक्षणिक और महान समाज सुधारक थे किन्तु राजनीति मे उनके भ्रामक नेतृत्व ने बहुत से दुर्गण उत्पन्न किये और जिससे हमें अत्यधिक हानि पहुंची है। परन्तु आज यहां मेरा उद्देश्य उनकी राजनैतिक भूमिका पर टीका-टिप्पणी करना

---

* अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय मे २० फरवरी, १९४९ को आयोजित दीक्षात समारोह मे दिया गया भाषण।

नहीं बल्कि शैक्षणिक सुधारक सर सैयद अहमद खां की स्मृति को श्रद्धांजलि अर्पित करना है जिन्होंने मुसलमानों की आधुनिक शिक्षा का आधारशिला रखी थी।

पाश्चात्य शिक्षा आज हमारे राष्ट्रीय जीवन का अंग बन चुकी है। हम 'शिक्षा' की पारिभाषिकी उपयुक्त करते हैं और उस पर चिंतन-मनन करते हैं किन्तु आज उस विरोध का अनुमान नहीं कर सकते जिसका सामना इन सुधारकों को करना पड़ा और जिन्होंने संघर्ष करके देश में पाश्चात्य शिक्षा प्रचारित की। उन्होंने नया मार्ग ढूंढा, कदम-कदम पर रुकावटों और कठिनाइयों का सामना किया और उन तमाम विरोधों के सामने डटे रहे जिनसे प्रत्येक सुधारवादी आन्दोलन को सामना करना पड़ता है। दीर्घ काल से रूढ़ियों और अंधविश्वासों के बादल जन-मानस पर छाये हुए थे। तत्कालिक विश्वास और शताब्दियों की रूढ़िप्रियता इस परिवर्तन के विरुद्ध थी। प्रगति के विरोधियों के हाथ मे धर्म की दुहाई का अमोघ अस्त्र उठा। यद्यपि धर्म, ज्ञान और बुद्धि का विरोधी नहीं है किन्तु दुर्भाग्य यह है कि उसे बहुधा इसी रूप में प्रस्तुत किया जाता है। यह एक सामान्य नारा था कि पाश्चात्य शिक्षा, धार्मिक शिक्षा की विरोधी है और इसलिए जिन्हे धर्म प्रिय है उन्हें पुरातन शिक्षा से सम्बद्ध रहना चाहिए।

मनुष्य के विचारो को विभिन्न देशों के विभिन्न कालों में इस संघर्ष का सामना करना पड़ा। योरप १७वीं शताब्दी और १८वीं शताब्दी में संघर्षरत था जबकि प्राच्य देशों को इसमे १९वीं शताब्दी में संघर्ष करना पड़ा। हिन्दुस्तान के हिन्दुओं में यह द्वन्द्व शीघ्र आरम्भ हुआ और उनके यहां इसका अन्त भी शीघ्र हो गया। मुसलमानों में यह संघर्ष दीर्घ अवधि तक चलता रहा किन्तु अन्ततोगत्वा वही हुआ जो होना चाहिए था कि परिवर्तन की शक्तियां विजयी हुईं। पुरातन व्यवस्था का स्थान आधुनिक व्यवस्था ने ले लिया। जहां तक हिन्दुस्तान के मुसलमानों का प्रश्न है यह बात निर्विवाद कही जा सकती है कि जिस व्यक्ति ने जिस संघर्ष में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई वह इस विद्यालय का संस्थापक था। वह युद्ध यहीं अलीगढ़ में लड़ा गया और इस प्रकार अलीगढ़ प्रगति का प्रतीक बन गया।

हमारे कुछ विद्वानों ने सर सैयद अहमद खां की तुलना राजा राम मोहन राय से की है। कुछ सीमा तक यह तुलना उचित है। राजा राम मोहन राय ने बंगाल में जो कुछ किया था सर सैयद अहमद खां ने वही ४० वर्ष पश्चात् उत्तर भारत में और विशेष रूप से मुसलमानों के लिए किया था। इन दोनों में इतना ही भेद है कि राजा राम मोहन राय के सुधारों का क्षेत्र केवल धर्म था जब कि सर सैयद अहमद खां ने शिक्षा के क्षेत्र में भी सुधार किए। निश्चय ही इन दोनों ने बौद्धिक शिक्षाओं के ऊपर अपने व्यक्तित्व की छाप छोड़ी है। धर्म, शिक्षा, सामाजिक जीवन, भाषा, साहित्य और पत्रकारिता उनके सुधारात्मक प्रयत्नों और रचनात्मक शक्ति की साक्षी हैं।

सर सैयद अहमद खां ने यद्यपि कांग्रेस का विरोध किया किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उनके इस व्यवहार में साम्प्रदायिक राजनीति का लेशमात्र प्रभाव था। उनके कार्यों में यहां तक कि राजनीति में भी हिन्दू मुसलमान समान रूप से सम्मिलित थे। वह आजीवन हिन्दू-मुसलिम एकता के समर्थक रहे। उन्होंने हर उस बात का विरोध किया जो इन सम्प्रदायों के बीच वैमनस्य और मतभेद का कारण हो। उन्होंने अपने भाषण में बारम्बार इस सुन्दर उपमा का उपयोग किया है कि हिन्दू और मुसलमान मात्रभूमि के मुख पर दो नेत्रों के समान हैं।

'हिन्दू' पारिभाषिकी को उन्होंने जो महत्त्व दिया है उससे हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता के संबंध में उनके दृष्टिकोण को हम कुछ समझ सकते हैं। लाहौर में हिन्दुओं की एक संस्था को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा था कि मुझे खेद है कि आप ने "हिन्दू की परिभाषा को सीमित

कर लिया है। मेरे विचार में इसका यह उपयोग उचित नहीं है। मैं उन सबको हिन्दू मानता हूं जो इस देश में रहते हैं चाहे वह किसी धर्म और नस्ल से सम्बन्ध क्यों न रखते हों। यही कारण है कि मुझे इस बात पर गर्व है कि मैं हिन्दू हूं। यदि हिन्दुस्तान के हिन्दू और मुसलमान उनकी शिक्षा की आत्मा को समझ लेते और उसी पर कार्य करते तो अभी हाल में जो घटनाएं घटित हुई हैं उनका रूप दूसरा ही होता।"

सर सैयद अहमद खां ने इस संस्था की स्थापना एक विशेष अभिप्राय के हेतु की थी। वह अंग्रेज़ी शिक्षा की आत्मा को समझते थे और जानते थे कि उनकी गुणवत्ता यह है कि इसमें केवल पाठ्यक्रम पर आधारित शिक्षा ही नहीं होती बल्कि एक विशेष प्रकार का प्रशिक्षण किया जाता है और इस प्रशिक्षण का उद्देश्य नवयुवकों और नवयुवतियों का चरित्र निर्माण करना और उनको दूसरों से उच्च बनाना था। वह यह भी महसूस करते थे कि अंग्रेज़ी शिक्षा के साथ-साथ मुसलमानों की धार्मिक शिक्षा और प्रशिक्षण भी होना चाहिए। वह जानते थे कि इस बात के बिना आधुनिक शिक्षा मुसलमानों में लोकप्रिय नहीं हो सकती। उन्होंने यह महसूस किया कि इस उद्देश्य की प्राप्ति मे एक विशेष संस्था की स्थापना के बिना सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए उन्होंने अपने जीवन का शेष समय अलीगढ़ कालेज के निर्माण को अर्पित कर दिया। हमें याद रखना चाहिए कि यह वह प्रथम संस्था थी जहां बरतानिया पब्लिक स्कूलों का वातावरण उत्पन्न किया जा रहा था।

प्रारम्भ में उनके मन में यह योजना थी कि कैम्ब्रिज की प्रणाली पर ऐसा विश्वविद्यालय स्थापित किया जाए जिसके प्रांगण में विद्यार्थी निवास करें किन्तु अन्त में उन्हें एक कालेज की स्थापना पर संतोष करना पड़ा और इस काल की परिस्थितियों को देखते हुए यह भी कोई साधारण सफलता नहीं थी। उनके देहावसान के पश्चात् उनकी स्मृति के रूप में इसको विश्वविद्यालय बनाने का प्रयत्न आरम्भ हुआ और बीस वर्षों के अथक प्रयासों के पश्चात् इस उद्देश्य की पूर्ति में सफलता मिली।

सर सैयद ने अलीगढ़ में केवल एक कालेज ही स्थापित नहीं किया बल्कि युग की आधुनिक मांगों को सामने रखकर उसे बौद्धिकता और संस्कृति का केन्द्र बना दिया। इसका केन्द्र बिन्दु सर सैयद अहमद थे। अपने समय के उच्चतम बुद्धिजीवी उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनके चारों ओर एकत्रित हो गए। मेरे विचार में शायद ही किसी पत्रिका ने उस पीढ़ी को इतना प्रभावित किया हो जितना उनकी पत्रिका तहज़ीब-उल-अख़लाक़ ने किया है। इंगलिस्तान से वापसी पर उन्होंने इसका प्रकाशन किया था। वह और उनके साथी इस पत्रिका के महत्त्वपूर्ण लेखकों में थे, वस्तुतः इसी पत्रिका ने आधुनिक साहित्य की आधारशिला रखी और भाषा को ज्ञान के अमूर्त विचारों की अभिव्यक्ति के योग्य बनाया। और कदाचित् मुसलमानों में कोई ऐसी साहित्यिक विभूति न रही हो जो इस मंडल के लेखकों से प्रभावित न हुई हो। आधुनिक काल के श्रेष्ठतम मुसलमान साहित्यकारों ने यहां से उर्जा प्राप्त की। यहां मुस्लिम चिंतन के अनुसंधान, व्याख्या और पुनर्निर्माण की मंडलियों का जन्म हुआ। यद्यपि आधुनिक उर्दू कविता का जन्म लाहौर में हुआ था किन्तु इसके विकास के लिए उचित वातावरण यहां मिला। आधुनिक शैली की कविताएं मोहम्मडन एजुकेशनल कांफ्रेंस के लिए लिखी गईं और दूसरी सभाओं में पढ़ी गईं। यह उर्दू भाषण के अभ्यास का पहला मंच भी था। अपने समय के सभी महत्त्वपूर्ण वक्ताओं ने इसी मंच से अपनी भाषण वक्तृता का आरम्भ किया था। यहीं से ही इसका परीक्षण प्राप्त किया।

१९वीं शताब्दी में पूर्व के दूसरे देशों के समान हिन्दुस्तान में भी संक्रमण काल था।

पुरातन जीवन पद्धति की दृष्टि समाप्त हो रही थी और आधुनिक जीवन पद्धति उसका स्थान ले रही थी। हिन्दुस्तान की प्राचीन धरती एक नए रूप में नया चोला ग्रहण कर रही थी। जहां तक हिन्दुस्तानी मुसलमानों का संबंध है प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि यह अलीगढ़ ही था जहां सुधार के आन्दोलन संभव हुए। इसकी गणना हिन्दुस्तान के उन स्थानों में से है जहां नवीन भारत के निर्माण में मार्गदर्शन किया गया। १९वीं शताब्दी हिन्दुस्तान में पुनर्जागरण का काल था और अलीगढ़ उसका सबसे बड़ा केन्द्र।

यह बात सत्य है कि सर सैयद अहमद खां के देहावसान के पश्चात् अलीगढ़ की बहुत सी विशेषताएं शेष न रहीं। यद्यपि कालेज को विश्वविद्यालय का सम्मान मिल गया किन्तु यहां जो प्रारम्भिक काल की भव्य परम्पराएं थीं वह जीवित नहीं रह पाई। परन्तु आप को यह नहीं भूलना चाहिए कि यह वैभवशाली थाती आपकी है और आप ही लोग हैं जिन्हें अलीगढ़ के उज्ज्वल अतीत की परंपरा का आधुनिकीकरण करना है। यह अन्तर्लेख जो आपके स्ट्रैची हाल की दीवारों पर अंकित है, हो सकता है कि समय के साथ धुंधला जाये किन्तु वह अन्तर्लेख जो अलीगढ़ ने हिन्दुस्तान के आधुनिक काल में अंकित किये हैं वह कभी नहीं धुंधला सकते। भावी इतिहासकार अलीगढ़ में आधुनिक भारत के निर्माण के स्रोत खोजेंगे।

एक शिक्षा संस्था जिसका अतीत इतना गौरवपूर्ण रहा हो उसका भविष्य भी उतना ही भव्य होना चाहिए। मैं नहीं जानता कि आपकी मनःस्थिति क्या है? मुझे नहीं ज्ञात है कि भविष्य के कौन से रंग आपके सामने हैं? क्या इन द्वारों को बन्द करने का संदेश देंगे या नये दरवाज़े खोलने का आह्वान करेंगे। जिनके द्वारा आप अपने अनुभवों के नवीन परिप्रेक्ष्यों से परिचित है। मुझे नहीं मालूम कि आप के सम्मुख कौन से परिप्रेक्ष्य हैं किन्तु मैं आपको बताना चाहता हूं कि मैंने कौन से दृश्य देखे हैं। हो सकता है आप सोचेंगे वह द्वार जो खुले हुए थे अब बन्द हो चुके हैं किन्तु मैंने देखा है कि जिन द्वारों पर ताले लगे हुए थे वह अब खुल गये हैं। एक फारसी कवि ने कहा था—

तफावत अस्त मानी शुनीदन-ए-मनो तू।
तूबस्तनेदर, व मन फातहे बाब मी श्वम

मैंने और तुमने जो सुना वह भिन्न है। तुमने द्वारों के बन्द होने की आवाज़ सुनी और मैंने खुलने की।

मैं आप से बिना पूर्वग्रह के स्पष्टतः बात करना चाहता हूं और मुझे विश्वास है कि आप की आशा भी मुझसे यही होगी। आप यदि अभी तक इसी साम्प्रदायिक राजनीति के वातावरण में रह रहे हैं जो १५ अगस्त १९४७ से पहले था तो मैं बिना किसी संकोच के यह कहूंगा कि आप का भविष्य वैसा नहीं होगा जो मेरी दृष्टि में एक हिन्दुस्तानी मुसलमान का होना चाहिए। मुझे प्रसन्नता है कि तब से बहुत बड़ा परिवर्तन हो चुका है और एक नये युग की संभावनाएं दिन-प्रतिदिन प्रकाशवान होती जा रही हैं। आपने इस बात को जान लिया है कि वर्तमान परिवर्तित परिस्थितियों में इस संस्था का शैक्षणिक वातावरण कैसा होना चाहिए। आपको नए युग की मांगों को समझ कर परिवर्तित दृष्टिकोण के अनुसार परिस्थितियां उत्पन्न करनी चाहिए। मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि आपने समय के साथ अनुकूलता उत्पन्न करके केवल इस संस्था की ही नहीं बल्कि इंडियन यूनियन के समस्त मुसलमानों की एक महत्त्वपूर्ण सेवा की है, इसके लिए मैं अपनी ओर से हार्दिक बधाई देता हूं।

मैं संक्षेप में आपको यह बताना चाहता हूं कि राष्ट्रीय शिक्षा के संबंध में केन्द्रीय सरकार

की क्या योजनाएं और कार्यक्रम हैं, और इस नवीन योजना में अलीगढ़ विश्वविद्यालय जैसी संस्थाओं का क्या स्थान होगा। मेरे विचार में आप भी इस बात से सहमत होंगे कि एक धर्मनिरपेक्ष और जनतांत्रिक राज्य की शिक्षा प्रणाली भी धर्मनिरपेक्ष होनी चाहिए। उसको देश के समस्त नागरिकों के लिए बिना किसी भेदभाव के समान रूप से शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए। इस प्रणाली की अपनी पद्धति और राष्ट्रीय चरित्र होना चाहिए। परन्तु इसी के साथ यह बात भी स्वीकार की गई है कि शिक्षा संस्थाओं को इसका अवसर भी दिया जायेगा कि वह किसी विशिष्ट शिक्षा पर बल दें और उसके द्वार सब लोगों के लिए खुले रहेंगे जो इस प्रकार की शिक्षा में रुचि रखते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा वह क्षेत्र है जिसमें आपकी संस्था युगानुकूल अपना उचित स्थान प्राप्त कर सकती है और इसी प्रकार आप अपने विचित्र चरित्र सहित शिक्षा की सार्वजनिक योजना का भाग बन जायेंगे और कई एक महत्त्वपूर्ण सेवा करेंगे। इसके लिए विशाल पैमाने पर सर्वांगीण सहिष्णुता का प्रदर्शन करना होगा। कहा जाता है कि अफलातून ने अपनी अकादमी पर यह उक्ति लिखवाई थी कि "वह जो रेखागणित नहीं जानते हैं उनके लिए यहां कोई स्थान नहीं है।" आपकी संस्था को ऐसा कोई प्रतिबन्ध नही लगाना चाहिए बल्कि आपको तो यह कहना चाहिए कि आप दोनों का स्वागत करेंगे जो रेखागणित जानते हैं और वह जो नही जानते।

हमें ज्ञात है कि आपकी संस्था के प्रबंधात्मक स्थान प्रारम्भ से ही भेद-भाव से मुक्त और उदारमन हैं। जब आपके कालिज की स्थापना हुई तो उसके सबसे पहले कई शिक्षार्थियों में मुसलमानों के साथ हिन्दू भी थे। आप के विश्वविद्यालय के अध्यापकों में प्रत्येक सम्प्रदाय के लोग सम्मिलित रहे हैं।

अनेक हिन्दू प्रोफेसरों के नाम आपकी संस्था के इतिहास का एक अंग हैं। मुझे विश्वास है कि यह परम्परायें विकसित होंगी और समय के साथ-साथ यह अधिक बलवती होंगी।

इस्लामी धर्मशास्त्र और इस्लामी इतिहास का अध्ययन और उसका अनुसंधान आप की परम्परा का एक अंग है, यद्यपि मैं यह भी कहना चाहता हूं कि सर सैयद के स्वर्गवास के पश्चात् इस क्षेत्र में वह क्रियाशीलता नहीं रही जो उनके काल में परिलक्षित होती थी। विश्वविद्यालय की स्थापना से भी वे आशाएं पूर्ण नहीं हुई : आज आपका कर्तव्य है कि इन पुरातन परम्पराओं का नवीनीकरण करें और अपने विश्वविद्यालय में ज्ञान-विज्ञान के हर क्षेत्र में अनुसंधान-और ज्ञान का एक वातावरण उत्पन्न करें।

मैं इससे पूर्व भी आपको याद दिला चुका हूं कि अलीगढ़ वह स्थान है जहां आधुनिक उर्दू साहित्य का विकास हुआ। यह एक महत्त्वपूर्ण कार्य है जिस पर आपके विश्वविद्यालय को गर्व होना चाहिए। आपका कर्तव्य है कि आप इस थाती की रक्षा करें और इसको अधिक समृद्धिशाली बनायें। मैं आपका ध्यान इस ओर भी आकृष्ट करना चाहता हूं कि अतीत की तुलना में आज साहित्यिक गतिविधियों के लिए क्षेत्र अधिक विस्तृत है। आप को हिन्दी साहित्य में भी इतनी ही रुचि लेनी चाहिए। मुसलमानों को हिन्दी भाषा और साहित्य के अध्ययन से सदैव लगाव रहा है। हिन्दी साहित्य पर हिन्दुस्तान के हिन्दुओं के समान मुसलमानों का भी अधिकार है। दोनों समुदायों ने उर्दू और हिन्दी की प्रगति में समान रूप से भाग लिया है। ब्रज भाषा में नवीन साहित्य का प्रारम्भ मुगल काल में अकबर और जहांगीर जैसे सम्राटों के संरक्षण में हुआ। जिसमें मलिक मुहम्मद जायसी, खान-ए-खाना और अब्दुल जलील बिलग्रामी जैसे असाधारण प्रतिभा के साहित्यकारों ने साहित्य-सर्जना की। हम देखते हैं कि १८वीं शताब्दी के अंत में ब्रज भाषा में काव्य रचना करने वाले मुसलमान कवियों की पर्याप्त संख्या है। अब

समय आ गया है कि आप अपनी पुरातन परम्परा पुनः जीवित करें। मेरी इच्छा है कि यह संस्था ऐसे बहुत से रचनाकार उत्पन्न करें जो उर्दू और हिन्दी दोनों में साहित्य सर्जन कर सकें।

इस काल में लिपि संबंधी द्वन्द्व उत्पन्न हो गया है। आप इस संबंध में गांधीजी के मत से परिचित हैं। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि हर हिन्दुस्तानी उर्दू और देवनागरी दोनों लिपियां जाने। इसलिए जब उन्होंने हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की स्थापना की तो उसके कार्यकर्ताओं के लिए यह अनिवार्य कर दिया कि वह दोनों लिपियां सीखें। बरसों से मेरा भी यही मत है और मैं समझता हूं कि वर्तमान स्थिति में इसका यही सम्भाव्य समाधान है। मुझे आशा है कि उर्दू साहित्य के प्रेमी हिन्दी साहित्य के प्रचारकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा नहीं करेंगे बल्कि वह स्वयं ऐसे कार्य करेंगे जो उनकी दृष्टि से देश हित में उच्चतम होंगे। जीवन के दूसरे क्षेत्रों में इस बात की प्रतीक्षा की जा सकती है कि दूसरे क्या कर रहे हैं किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में हम दूसरों की प्रतीक्षा केवल अपने विश्वास को संकटग्रस्त करके ही कर सकते हैं। यदि दूसरे इस पर सन्तुष्ट हैं कि वह केवल एक लिपि जानते हैं तो उन्हें इस बात पर दुःखी होने की आवश्यकता नहीं है कि हम दो लिपियां सीख रहे हैं। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि हिन्दुस्तान का प्रत्येक मुसलमान दोनों लिपियां सीखे और इस प्रकार देश के सम्मुख एक उदाहरण प्रस्तुत कर दे। यह गांधी जी का संदेश था और मुझे विश्वास है कि मुसलमान इस पर उत्साहपूर्वक कार्य करेंगे। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि इस कार्य की महत्ता को चारों ओर स्वीकार किया जा रहा है और उर्दू में ऐसी पुस्तकें लिखी गई हैं जिनकी सहायता से देवनागरी लिपि सुविधापूर्वक सीखी जा सकती है और जो हिन्दी साहित्य से परिचय प्राप्त करने में सहायक हैं। कुछ संस्थायें इस उद्देश्य से देश के विभिन्न भागों में स्थापित की जा चुकी हैं और उन्होंने अपना कार्यक्रम आरम्भ कर दिया है। मुझे विश्वास है कि आप इस कार्य की महत्ता को समझते हैं और आपकी संस्था इस कार्य के अत्यनत सक्रिय केन्द्रो में से अपना एक अलग पहचान बनाएगी।

अब मैं परामर्श के रूप में कुछ वाक्य उन नवयुवक स्नातकों से कहूंगा जो आज अपना प्रमाणपत्र ले रहे हैं और जीवन के दायित्व को स्वीकार करने जा रहे हैं। मुझे इसमें संदेह है कि आपने उन परिवर्तनों का संपूर्ण आभास किया है जो आपके प्रवेश के पश्चात् उत्पन्न हुए हैं। आप जब इस संस्था में प्रविष्ट हुए थे तो पराधीन राष्ट्र के व्यक्ति थे और आज जब इस विश्वविद्यालय को छोड़ रहे हैं तो आप स्वतन्त्र भारत के नागरिक हैं। मुझे विश्वास नहीं कि आप में से सब लोगों ने इस बड़े परिवर्तन की महत्ता का पूर्ण अनुमान किया है। पूर्व में पराधीन राष्ट्र का व्यक्ति होने के कारण आपको बहुत सी विवशताओं का सामना करना पड़ा था। परन्तु अब एक स्वतन्त्र देश के नागरिकों के रूप में आप पर नये दायित्व आ गये हैं। स्वतन्त्रता ने आपकी उन्नति के लिए विस्तृत अवसर प्रदान किए हैं। इसलिए कि अब अपने आपको देश का सेवक और उसके प्रति निष्ठा का प्रमाण दें। आज आप जो चाहें प्राप्त कर सकते हैं और यही स्वतन्त्रता आप पर कुछ कर्तव्य भी लादती है।

आप स्वतंत्र भारत के नागरिक हैं। एक ऐसे देश के नागरिक हैं जो धर्मनिरपेक्ष और जनतांत्रिक मार्ग पर अपने राजनैतिक और सामाजिक जीवन को चलाने का संकल्प कर चुका है। एक धर्मनिरपेक्ष और जनतात्रिक राज्य की आत्मा यह है कि नस्ल, धर्म, जाति-पाति के भेद के बिना हर व्यक्ति को आगे बढ़ने के अवसर प्राप्त हों। ऐसे राज्य के नागरिक होने के कारण आपको यह अधिकार है कि आप इस की आशा करें कि राजनीति, व्यापार, उद्योग या अन्य नौकरियों और व्यवसायों के समस्त द्वार आपके लिए खुले हुए हैं यदि आप अपने आचरण और

योग्यता से उनकी आवश्यक शर्तों को पूर्ण करते हों।

इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि अतीत में इस संस्था से शिक्षा प्राप विद्यार्थियों का उद्देश्य केवल सरकारी नौकरियां प्राप्त करना था। स्वतंत्रता से मानसिकता में विशालता और साहस में उच्चता उत्पन्न होनी चाहिए और स्वतंत्र आपको अपनी इन योग्यताओं को कार्यान्वित करना चाहिए जो हर प्रकार आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकें। मेरे मन में कोई संदेह नहीं है कि यदि आप राष्ट्रीय प्रगतिशील अवधारणा को आत्मसात कर लेंगे जो हमारे धर्मनिरपेक्ष जनतांत्रिक राज्य है, तो जीवन के क्षेत्र में कोई स्थान ऐसा नहीं होगा जो आपको प्राप्त न हो सके। मे कि आप अपने व्यक्तित्व का निर्माण करें, उसको सुदृढ़ बनाएं तथा वह ज्ञान अर्जित भविष्य में अपने देश को उन्नति और समृद्धि के मार्ग पर ले जाने में अपनी उचित भूमि सकें।

प्रस्तावना

प्राच्य एवं पाश्चात्य दर्शन का इतिहास

"ज्ञान समस्त प्रकार की सीमाओं और बंधनों से परे है। इसका विकास चाहे संसार के किसी भी क्षेत्र में हुआ हो किन्तु यह समस्त मानवजाति की थाती होती है। समस्त मानवों को इस पर समान अधिकार प्राप्त होता है चाहे वह जिस भी देश और राष्ट्र से संबंध रखते हों।"

प्रस्तावना *

सृष्टि की तुलना एक फारसी कवि ने ऐसी पाण्डुलिपि से की है जिसका आख़िरी पृष्ठ गायब है। अब यह बताना संभव नहीं है कि पुस्तक कैसे शुरू हुई उ यह जानते हैं कि यह कैसे पूरी होगी।

मज़ आग़ाज़-ओ-ज़ा अंजाम-ए-जहाँ बेख़बरेम
अव्वल-ओ-आख़िर ईं इक कुहना किताब उफ़्तादस्त

(मैं इस दुनिया के आदि और अन्त से अनभिज्ञ हूँ। यह वह पुरातन पुस्त प्रथम और अन्तिम पृष्ठ खो गया है।)

जबसे मनुष्य ने चेतना पायी है तबसे वह इन खोये हुए पन्नों की तलाश कर करता रहा है। इस खोज और उसके परिणामों का नाम ही दर्शन है। एक दार्शनिक में दर्शन और इसकी प्रकृति की व्याख्या करता है लेकिन कवि ने सिर्फ एक दोहे में दिया है।

इस खोज का उद्देश्य जीवन और उसके अस्तित्व को जानना है। जैसे ह आत्मज्ञान प्राप्त हुआ और उसने सोचना शुरू किया, उसके मस्तिष्क में दो प्रश्न पैद जीवन का अर्थ क्या है, और जो सृष्टि वह चारों तरफ देख रहा है उसका स्वरूप क्या कब तक वह यूं ही विभिन्न दिशाओं में भटकता रहा। पर अंततः उसने एक निश्चि कर ली तथा विचार और तर्क के मार्ग पर बढ़ना प्रारम्भ किया। यह व्यवस्थित शुरुआत थी। मानवीय प्रज्ञा जिस दिन इस स्थिति में पहुंची तभी दर्शन का जन्म हु दिन से दर्शन का इतिहास प्रारम्भ होता है।

दर्शन का इतिहास : पाश्चात्य दर्शन के इतिहासों में १८वीं शताब्दी तक का अनुकरण किया गया है वह अरब दार्शनिकों और इतिहासकारों द्वारा मध्यकाल गयी पद्धति के समान ही थी। उन्होंने दर्शन के विकास का अध्ययन दार्शनिक दृष्टि का प्रयास नहीं किया, बल्कि इसके विपरीत उन लोगों के लिए, दार्शनिकों और उन का संकलन तैयार किया, जिन्हें इसमें दिलचस्पी थी। दरअसल ये दर्शन के इति बल्कि दार्शनिकों के इतिहास हैं। जैसा कि विदित है, दर्शन का इतिहास लिखने सर्वप्रथम १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ से होती है और जो पद्धति उस समय अपनाय भी, हम उसी का अनुसरण करते चले आ रहे हैं।

दर्शन के इतिहास का अध्ययन आज बहुत आगे बढ़ गया है। अनेक देशों

---

* १९४७ ई० मे दिल्ली में आयोजित शैक्षणिक सम्मेलन में मौलाना ने आधुनिक दृष्टिकोण से दर्शन के आवश्यकता की चर्चा की थी। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए भारत के उपराष्ट्रपति डा०एस० राधाकृष्णन की सपादक मडल नियुक्त किया गया था। इस प्रकार **दर्शन का इतिहास** दो खण्डो में लिखा गया जिसमें मौ यह प्रस्तावना सम्मिलित है। मौलाना ने ४ मई, १९५३ को लदन के प्रकाशक एलेन और उन्विन से इसे हि प्रकाशित कराने के लिए अनुमति मांगी थी।

महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं। परन्तु उन्हें पढ़कर एक तथ्य की ओर बराबर मेरा ध्यान गया है। मैंने महसूस किया है कि दर्शन की शुरुआत का वर्तमान स्वरूप और विभिन्न श्रेणियों में उसका विभाजन उसके आधार की पूर्ण और यथार्थ तस्वीर पेश नहीं करता। इसलिए दर्शन के सामान्य इतिहास के और अधिक व्यापक अध्ययन की आवश्यकता है।

देख-भाल के उचित साधनों के अभाव में इस इतिहास के कुछ पृष्ठ खो गए हैं। अब उनकी जानकारी देने वाले स्रोतों का पता लगाना सभव नहीं है। हम जानते हैं कि यूनान से बहुत पहले मिस्र और ईराक में सभ्यता का विकास हो चुका था। हम यह भी जानते हैं कि मिस्र के प्राचीन ज्ञान का प्रारम्भिक यूनानी दर्शन पर गहरा प्रभाव था। प्लेटो की रचनाओं में ज्ञान के प्रतीकों के रूप में मिस्र की कहावतों का उल्लेख मिलता है। अरस्तू ने तो और भी आगे कहा है कि मिस्र के मौलवी विश्व के प्रथम दार्शनिक थे। पर मिस्र और यूनान के बीच परस्पर संबंधों के बारे में हमारे पास विस्तृत जानकारी नहीं है। उनके बारे में अब तक न केवल हम अनभिज्ञ हैं बल्कि आगे भी इस विषय में जानकारी मिलने की आशा कम है। इसी तरह हम यह भी निश्चित नहीं जानते कि बाबूल और नैनेवा की सभ्यताओं में विकसित दार्शनिक चिंतन का स्वरूप कैसा था। हम यह भी नहीं जानते कि यूनानी दर्शन के जन्म के पीछे इस चिंतन की क्या कोई भूमिका थी। दर्शन के इतिहास की ये कमियां हमारे ज्ञान की अपूर्णता की द्योतक हैं, जो अपनी प्रकृति के कारण कभी दूर नहीं की जा सकतीं।

फिर भी प्राचीन इतिहास के कुछ दूसरे ऐसे क्षेत्र भी हैं जिनके बारे में हमारे पास आज पूरी जानकारी है। इस आधार पर हम दर्शन के विकास की अधिक स्पष्ट तस्वीर खींच सकते हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास के हमारे ज्ञान में आज बहुत वृद्धि हुई है। इसमें प्राचीन दर्शन के विकास से सम्बन्धित हमे नयी जानकारियां भी मिली हैं। अब यूनान से पूर्व दर्शन की क्या स्थिति थी इसका पता लगाना आसान हो गया है। साथ ही हम यह भी जान सकते हैं कि यूनानी दर्शन से पूर्व दर्शन के विकास का स्वरूप और क्षेत्र क्या था। लेकिन अभी तक हम दर्शन के इतिहास के उस एकांगी दृष्टिकोण पर टिके हुए हैं जो १९वीं शताब्दी तक प्रचलित था और इस विकास की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दे पाये।

पाश्चात्य दर्शन की शुरुआत यूनान के दार्शनिक अन्वेषण से हुई। ईसाइयत के प्रसार के पश्चात् इसका विकास समाप्त हो गया और एक ऐसी स्थिति आयी जब पाश्चात्य परिदृश्य से दर्शन लुप्त हो गया। कुछ शताब्दियों के अंतराल के पश्चात् ईस्वी सन ८वीं सदी में अरब के विचारकों ने यूनानी दर्शन का अध्ययन किया। बाद में स्वयं यूरोप में इसका अध्ययन शुरू हुआ और कुछ समय बाद इन अध्ययनों से ज्ञान का वह आंदोलन शुरू हुआ जिसको आमतौर पर 'पाश्चात्य रेनेसां' कहा जाता है। यूरोप जो अब तक अरब के अनुवादकों और टीकाकारों के प्रयासों द्वारा ही यूनानी पाठ्य-पुस्तकों से परिचित था, अब उनके सीधे सम्पर्क में आया। रेनेसां के पश्चात् वह बौद्धिक आंदोलन शुरू हुआ जिससे आधुनिक दर्शन के विकास का गहरा सम्बन्ध है। इस तरह पाश्चात्य दर्शन का इतिहास चार कालों में विभाजित है : (१) प्राचीन काल (२) मध्यकाल (३) रेनेसां, और (४) आधुनिक काल।

१९वीं शताब्दी में पाश्चात्य विद्वानों ने जब दर्शन के इतिहास की सामान्य रूपरेखा तैयार करने का प्रयत्न किया तो यही काल-विभाजन उनके समक्ष था। इस प्रकार के विभाजन के पीछे पाश्चात्य विचारों पर ईसाइयत का प्रभाव भी एक कारण था। पाश्चात्य विद्वानों ने सम्पूर्ण

मानव-विकास को ईसाइयत के अभ्युदय के दृष्टिकोण से व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। इस तरह सम्पूर्ण मानव इतिहास को वे दो मुख्य कालों में विभाजित करते हैं– (१) ईसापूर्व और (२) ईसा बाद। ईसा बाद को वे पुनः पूर्व और पुनरुत्थान-युग में बांटते हैं। एर्डमैन जैसे इतिहासकारों ने इसी आधार पर दर्शन के विकास का काल-निर्धारण किया है। एर्डमैन के अनुसार दर्शन का काल-विभाजन है–(१) ईसाइयत-पूर्व यूनान, (२) ईसाइयत-बाद मध्यकालीन और (३) पुनरुत्थान-बाद आधुनिक काल।[१]

स्पष्टतः यह दर्शन के सामान्य इतिहास की रूपरेखा नहीं थी बल्कि केवल पाश्चात्य दर्शन के इतिहास की रूपरेखा थी। फिर भी जब तक भारतीय और चीनी दर्शन पूर्णतः प्रकाश में नहीं आ गया, यही एकांगी तस्वीर सामान्य इतिहास मानी जाती रही। १९वीं शताब्दी के दौरान लिखे गए दर्शन के सभी इतिहासों में यही कहानी दोहरायी गयी है ;चाहे वे विद्यार्थियों के लिए पाठ्य-पुस्तक हों अथवा सामान्य पाठकों के लिए। यह सीमित तस्वीर हमारे मस्तिष्क में ऐसी छा गयी है कि बाद के अनुसंधानों से नयी जानकारी मिलने के बावजूद भी हम उसे निकाल नहीं पाये। जब भी हम दर्शन के इतिहास के बारे में सोचते हैं तो यही सीमित तस्वीर हमारे सामने आती है। हम इसके बिना यह नहीं समझ सकते कि कैसे इस शताब्दी के दूसरे दशक में लिखने वाले थिल्ली जैसे विद्वान पूरब के योगदान को नकारते हैं और व्यवस्थित दर्शन के विकास की चर्चा को यूनान के साथ जोड़ते हैं।[२]

दर्शन की यह रूपरेखा इसके प्रारंभ के संदर्भ में ही नहीं बल्कि बाद के विभिन्न कालों के संदर्भ में भी अधूरी है। दर्शन की प्रगति के बारे में हमारा दृष्टिकोण तीन या चार कालों तक पश्चिमी अवधारणा से इस प्रकार प्रभावित रहा है कि हम दूसरे किसी परिप्रेक्ष्य में इसे देख ही नहीं पाते। ऐतिहासिक रूप से सामान्यतः यह माना जाता है कि ईसाकाल के शुरू होने से बहुत पहले बौद्ध तात्विक-चिंतन दर्शन के पूर्ण सम्प्रदाय के रूप में उभरकर सामने आ चुका था। यदि हम इन कालों के दर्शन के विकास का अध्ययन करना चाहे तो यूनान के साथ-साथ भारत में हुए इन परिवर्तनों पर भी ध्यान देना आवश्यक है। इन शताब्दियों के दौरान भारत और यूनान के दार्शनिक प्रवचनों के स्वरूप और उनकी व्यापकता का तुलनात्मक अध्ययन बहुत दिलचस्प होगा। दर्शन के अधिकांश प्रमुख इतिहासों में केवल पाश्चात्य दर्शन की चर्चा ही अधिक मिलती है। उनमें इन सभी बातों का उल्लेख नहीं मिलता। बल्कि पूरब के योगदान को अनदेखा कर दिया गया है। २०वीं शताब्दी के आरंभ के बाद हमारा ज्ञान यूनान की चारदीवारी के अंदर तक सीमित नहीं रह गया है। इस बीच चीनी और भारतीय दर्शन की अधिकांश सामग्री हमारे सामने आ चुकी है। पर फिर भी, यह जानकारी अब तक कुछ विशेषज्ञों तक ही सीमित रही है। दर्शन के सामान्य इतिहासों में जो स्थान इसको मिलना चाहिए, वह नहीं मिला है।

निस्संदेह बाद के कुछ लेखकों ने पुरानी अवधारणा की सीमाओं को पहचाना है। दर्शन के पुराने अधूरे इतिहासों की जगह अधिक पूर्ण-सामग्री प्रस्तुत करने की कोशिश की जा रही है। हाल ही में लिखा बर्टेण्ड रसेल का 'दर्शन का इतिहास' यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दी के अन्य इतिहासों की तरह ही है लेकिन उन्होंने पाश्चात्य दर्शन का इतिहास नाम देकर उसकी सीमाओं को रेखांकित भी किया है। फिर भी, यह नहीं कहा जा सकता कि दर्शन के इतिहास की पुरानी सीमित अवधारणा का स्थान नयी और अधिक संतुलित रूपरेखा ने ले लिया है। और न ही हम यह कह सकते हैं कि दर्शन के सामान्य इतिहास में पूर्व के दर्शन को जो जगह मिलनी चाहिए वह मिल गयी है। अब समय है कि हमें अपने पास उपलब्ध सामग्री से दर्शन का व्यापक इतिहास

लिखना चाहिए जिसमें पूर्व और पश्चिम के योगदान को उपयुक्त समान स्थान मिले।

दर्शन के प्रारंभिक स्रोत: इस संबंध में एक मूल प्रश्न उठता है और वह है दर्शन की शुरुआत का। इसकी शुरुआत हम कहां से मानें। यूनान से अथवा भारत से। दूसरे शब्दों में, दर्शन के विकास के प्रारंभिक सूत्र किस देश में मिलते हैं।

जहां तक यूनान के दर्शन का प्रश्न है हम इसके कुछ प्रारंभिक आयामों से परिचित हैं। प्रायः माना जाता है कि यूनान में दर्शन की शुरुआत ६वीं शताब्दी ई०पू० से पहले नहीं मिलती। पहला विचारक थेलस था जिसे हम वस्तुतः दार्शनिक मान सकते हैं। एक विशेष घटना उसके नाम से जुड़ी है। यह माना जाता है कि उसने अपनी गणना द्वारा ५८५ ई०पू० के सूर्यग्रहण के ठीक समय का पूर्वानुमान कर लिया था। थेलस के पश्चात् यूनान में पाइथागोरस और सुकरात ने दार्शनिक विकास को नया स्वरूप प्रदान किया। पाइथागोरस लगभग ५३२ ई०पू० तक जीवित रहा और सुकरात का निधन ३९९ ई०पू० में हुआ।

फिर भी जब हम ६ठी शताब्दी ई०पू० के भारत पर दृष्टि डालते हैं, तो यहां पूर्णतः भिन्न तस्वीर देखते हैं। भारत में यह समय दार्शनिक विचारों के आरंभ का नहीं है बल्कि इस समय यहां उनका विकास हो रहा था। यह यूनान की तरह दर्शन का उषा काल नहीं था बल्कि यहां दर्शन का पूर्ण विकास हो चुका था। यह दर्शन संबंधी जिज्ञासा के दुर्गम-मार्ग पर मानव-प्रतिभा के लड़खड़ाते हुए प्रथम कदम की तरह नहीं था, बल्कि ऐसी स्थिति थी जिसे लम्बी यात्रा के पश्चात् ही पाया जा सकता है।

इस समय के दार्शनिक चिंतन पर बात करते हुए दो तथ्य प्रमुख रूप से उभर कर हमारे सामने आते हैं।

(१) बौद्ध और जैन-मत का उदय इसी काल में हुआ।

(२) बुद्ध और महावीर के आगमन के पूर्व भारत में दार्शनिक विचारों का पर्याप्त विकास पहले से हो चुका था और ऐसी पद्धतियां विकसित हो चुकी थीं जिनसे लम्बे समय के व्यापक और गहन दार्शनिक-चिंतन का पता चलता है।

विश्व के महानतम लोगों में गौतम बुद्ध का स्थान है। यह विवादास्पद है कि हम उन्हें दार्शनिक की श्रेणी में रखें या पैगम्बर मानें। दूसरे शब्दों में, उनके उपदेशों का अभिप्राय क्या था? यह नया रहस्योद्घाटन था अथवा नयी दार्शनिक खोज? लम्बे विवाद के बावजूद दर्शन और धर्म दोनों ही बुद्ध पर अपना अधिकार जमाये रहे। मैं उस विवाद को दोहराना नहीं चाहता, लेकिन अवतार की जगह दार्शनिक के रूप में उन्हें देखना मुझे अधिक स्वाभाविक लगता है। उन्होंने अपनी जिज्ञासाओं में जीवन की समस्याओं का समाधान खोजने का प्रयास किया है, ईश्वर के अस्तित्व की खोज नहीं। इसी तरह उसी समस्या के समाधान के साथ उनकी जिज्ञासा समाप्त हो जाती है, प्रकृति अथवा भगवान के अस्तित्व से उसका लेना-देना नहीं था। असंख्य देवियों और देवताओं में विश्वास करने वाली भारत की धार्मिक ज़िंदगी से वे पूरी तरह अलग रहे। ईश्वर की मध्यस्थता के बिना ही उन्होंने अपनी जिज्ञासा के समाधान की खोज की और उसे प्राप्त किया। जिस सिद्धांत को उन्होंने अपनी चिंतन-संबंधी जिज्ञासाओं का आधार बनाया, वह स्वयं में दार्शनिक था। उनका विश्वास था कि मानवीय क्रिया-कलापों का लक्ष्य जीवन की समस्या का समाधान खोजना है। और यह किसी परम-सत्ता की शरण लिए बिना भी हो सकता है। यह सच है कि उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके अनुयायियों ने उनके उपदेशों को शीघ्र ही पूर्णतः एक धार्मिक सम्प्रदाय का रूप दे दिया। जब उन्होंने देखा कि धर्म में ईश्वर का स्थान

खाली है तो ईश्वर के खाली सिंहासन पर उन्होंने स्वयं बुद्ध को आसीन कर दिया। फिर भी, यह एक ऐसी स्थिति थी जिसके लिए बुद्ध को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।

जैनमत का उदय भी लगभग उसी समय हुआ और ईश्वर की सत्ता के प्रति यह और भी अधिक उदासीन था। बुद्ध की भांति महावीर ने भी ईश्वर की सत्ता की चर्चा किए बिना ही सत्ता के रहस्य का हल जानने का प्रयास किया। जैनों की बौद्धिक व्याख्याओं का आधार वे सिद्धांत हैं जो वस्तुतः विश्वदर्शन का हिस्सा हैं।

मेरा विचार है कि पाठकों को सिर्फ महावीर या गौतम बुद्ध के व्यक्तित्व पर ही विशेष ध्यान नहीं देना चाहिए बल्कि चिंतन की उस पृष्ठभूमि पर भी विचार करना चाहिए जिसमें उनका उदय संभव हुआ। यह इसी पृष्ठभूमि का अध्ययन है जो दर्शन के इतिहासकारों के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। भारत में छठी शताब्दी ई०पू० में ही गौतम बुद्ध और महावीर के सिद्धांत और उनकी व्याख्याएं सामने आ चुकी थीं। यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि देश में व्यापक और गहन दार्शनिक दृष्टिकोण विकसित हो चुका था। ऐसा वातावरण मौजूद था जिसमें जीवन के रहस्य के विभिन्न सिद्धांतों और व्याख्याओं का विकास हुआ। ऐसी स्थिति भी पैदा हो गयी जहां ईश्वर के अस्तित्व को माने बिना अथवा उसकी शक्ति का रहस्योद्‌घाटन किए बगैर इन समस्याओं का समाधान हो सका।

ऐसा दार्शनिक वातावरण यूनान में बहुत बाद तक भी नहीं बन पाया था। आयोनिश दर्शन जो यूनान के सबसे प्राचीन दर्शनों में से एक है, ग्रहों, तथा अन्य तारों और नक्षत्रों की सूचना देने वाले आत्माओं के सिद्धान्त में विश्वास करता है। ये प्रसिद्ध पौराणिक कथाओं के देवियों और देवताओं के समान है। ओलम्पस पर्वत की चोटी पर रहने वाले ये धर्म के ईश्वर थे। फिर भी जब इन्हीं देवताओं को दार्शनिक रूप देकर स्वर्गारूढ़ किया जाता है तो वे तारों के ज्ञान की दार्शनिक उपाधि प्राप्त कर लेते हैं। आयोनिश दर्शन की यह प्रवृत्ति यूनानी-चिंतन के सभी बाद के सम्प्रदायों में विद्यमान रही। यदि अरस्तू की स्वर्गीय आत्माओं की पूरी छानबीन की जाय तो पता चलेगा कि वे पुराने सौंदर्य देवताओं से बहुत भिन्न नहीं हैं। यह सच है कि सुकरात ने देवताओ की उपासना का विरोध किया, परन्तु फिर भी वह ईश्वर की प्रचलित अवधारणा के प्रभाव को नहीं मिटा सका।

दूसरे स्थानो पर धर्म और दर्शन के इतिहास का सामान्य सर्वेक्षण करने के पश्चात् यदि हम उस माध्यम का अध्ययन करें जिसके द्वारा भारतीय प्रतिभा ने अपनी समस्याओं पर प्रतिक्रिया व्यक्त की है तो हम अपने सामने पूर्णतः एक नयी दृष्टि पाते हैं। दूसरे स्थानों पर धर्म और दर्शन ने विशिष्ट और भिन्न मार्ग अपनाये : हालांकि उन्होंने एक दूसरे को प्रभावित किया पर दोनों एक दूसरे में घुल-मिल नहीं गये। दूसरी ओर भारत में हमेशा दोनों के बीच अंतर करना संभव नहीं है। भारत में दर्शन यूनान की तरह अकादमियों की चार-दीवारी तक सीमित नहीं था, बल्कि करोड़ों का धर्म बन गया।

जैसा कि हम जानते हैं कि अस्तित्व की समस्याओं के जो हल गौतम बुद्ध और महावीर ने खोजे, वे मूलतः दार्शनिक थे। लेकिन उनकी शिक्षाओं ने उसी तरह धार्मिक सम्प्रदाय निर्मित किए जैसे कि पैगम्बरों के प्रवचनों से होते हैं। यूनानी दार्शनिकों में सुकरात अनेक तरह से एक विशिष्ट व्यक्तित्व था। यद्यपि वह मूलतः एक दार्शनिक था, पर मात्र दार्शनिक कहने से उसका व्यक्तित्व पूरी तरह उजागर नहीं होता। जब हम उसके विषय में सोचते हैं तो बरबस हमें जीसस क्राइस्ट की याद आती है। उसके जीवन की घटनाएं इसराइल के पैगम्बरों और भारत के

योगियों के जीवन की घटनाओं से बहुत मिलती-जुलती हैं। वह प्रायः समाधि की स्थिति में पहुंच जाता था। वह देववाणी या अन्तर्वाणी में भी विश्वास करता था जो संकट के सभी क्षणों में उसकी मदद करती थी। अपने अंतिम दिनों में जब वह एथेंस के राजदरबार को संबोधित कर रहा था तो वह इसी अंतर्वाणी के आदेश द्वारा निर्देशित हो रहा था। फिर भी सुकरात को दार्शनिकों की कोटि में रखा जाता है। उसके अनुयायियों ने उसके व्यक्तित्व अथवा उसकी शिक्षाओं के आधार पर धार्मिक सम्प्रदाय खड़ा करने का प्रयास नहीं किया। इस तथ्य से भारतीय और यूनानी चिंतन के बीच अंतर का साफ़ पता चलता है। यूनान में धर्म ने दर्शन की विशेषताओं को अपनाया, भारत में दर्शन को ही धर्म का रूप दे दिया गया।

इसलिए धर्म और दर्शन के बीच जो अंतर हमने स्थापित किया है, वह भारत की स्थिति को सही-सही नहीं दर्शा सकता। यदि हम दर्शन को धर्म से अलगाने वाले मानदण्ड को भारत पर लागू करते हैं तो हमें या तो मानदण्ड को बदलना होगा या फिर यह मानना होगा कि भारत में धर्म और दर्शन ने एक ही रास्ता अपनाया।

दर्शन और रहस्यवाद : प्रारंभिक भारतीय दर्शन उपनिषदों में मिलता है और उपनिषदों का एक विशिष्ट धार्मिक और रहस्यवादी रूप रहा है। इस बात से ज़ेलर और एर्डमैन की भांति हमें यह भ्रामक निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिए कि प्रारंभिक भारतीय दर्शन को अनुभवजन्य या बुद्धिसंगत दर्शन के विवरण से बाहर रखना चाहिए। यह सच है कि जब तक रहस्यवाद एक वैयक्तिक अनुभव है, हम इस पर दार्शनिक जांच के परीक्षणों को लागू नहीं कर सकते। लेकिन जब उस अनुभव के आधार पर चिंतन की एक तर्क-संगत पद्धति बनाने का प्रयास किया गया है तो इसे मात्र दर्शन के क्षेत्र में शामिल ही नहीं किया जाना चाहिए बल्कि उसका एक महत्त्वपूर्ण अंग बनाया जाना चाहिए। दर्शन के अतिरिक्त और कोई अन्य नाम इसकी व्याख्या नहीं कर सकता।

दर्शन का तात्पर्य क्या है ? जीवन की प्रकृति और उसके अस्तित्व का अन्वेषण ही दर्शन है। सत्य को दो तरह से समझा जा सकता है। एक का आदि और अंत परम्परा और रहस्योद्घाटन में है : हम इसे धर्म कहते हैं। दूसरा तर्क और विचार के स्वतंत्र व्यवहार पर निर्भर है और यह दर्शन कहलाता है।

प्रारम्भ से ही दार्शनिक अन्वेषण ने अपनी समस्याओं की व्याख्या के दो विकल्पों में से एक को अपनाया है। पहला है मानव के अंतर्जगत के माध्यम से और दूसरा उसके बाह्यजगत के द्वारा। भारतीय चिंतन की विशिष्टता रही है कि उसने व्यक्ति के बाह्यजगत की अपेक्षा उसके अंतर्जगत पर बहुत अधिक ध्यान दिया है। यह किसी तथ्य की जांच-पड़ताल से शुरू होकर आंतरिक यथार्थ की ओर नहीं जाता। बल्कि उलटा अंतर्जगत की अनुभूति से आरम्भ होता है और वस्तुजगत तक पहुंचता है। उपनिषद-दर्शन में स्वयं यही दृष्टिकोण मिलता है। यूनान में भी दर्शन के प्रारंभिक सम्प्रदायों ने यही पद्धति अपनायी या कम से कम यह उनके सामान्य दृष्टिकोण से अलग नहीं थी। जैसा कि हम जानते हैं कि ऑरफिक अथवा पाइथागोरियन दर्शन से इस मत की पुष्टि होती है। सुकरात की द्वन्द्वात्मक पद्धति निस्सन्देह तर्कसंगत थी, लेकिन उसने घोषणा की थी कि वह अन्तर्वाणी द्वारा निर्देशित होता था। भारतीय दर्शन की तरह कुछ यूनानी दार्शनिकों का भी संदेश था कि 'अन्तरात्मा को जानो'। प्लेटो के आदर्शवाद में अन्तरात्मा के ज्ञान के साथ-साथ रहस्यवाद के विकास के लक्षण भी हम देख सकते हैं। परन्तु उसके शिष्य अरस्तू ने चिंतन के इन दृष्टिकोणों में किसी का भी विकास नहीं किया। फिर भी, रहस्यवाद अंततः सिकन्दर के समय फलीभूत हुआ और नव-प्लेटोवादी दर्शन में चरमोत्कर्ष को पहुंचा। हम

यह निश्चित तौर पर नहीं कह सकते कि इस सिकन्दरिया सम्प्रदाय का विकास भारतीय उपनिषद-दर्शन से हुआ। लेकिन हम जानते हैं कि उस युग में सिकन्दरिया पूर्व और पश्चिम के धर्मों और सभ्यताओं के लिए सम्पर्क बिन्दु बन गया था। जैसे कि विभिन्न धर्मों के ईश्वर इस सम्पर्क स्थल पर मिल गये थे और सेरेपियम (मिस्र और यूनानी देवताओं का पवित्र स्थान) की स्थापना की हो, ऐसा लगता है कि मानवीय चिंतन और अन्वेषण की विभिन्न धाराएं इस जगह मिलीं और एक प्रवाह में घुल-मिल गयी।[६]

रहस्यवाद का मूल सिद्धांत क्या है? यह यथार्थ का वह ज्ञान है जिसे इंद्रियों के द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता। यदि हमें सत्य तक पहुंचना है तो हमें ऐन्द्रिय-जगत से आंतरिक-अनुभव पर आना होगा। पाइथागोरस से प्लेटो तक यही सिद्धांत किसी न किसी रूप में मान्य रहा। प्लेटो ने विचार-जगत और ऐन्द्रिय-जगत को बिल्कुल अलग-अलग माना। इन दोनों के मध्य अन्तर को स्पष्ट करने के लिए उसने संध्या के धूमिल प्रकाश और दोपहर के उज्ज्वल प्रकाश का उदाहरण दिया। प्लेटो के अनुसार इन्द्रियों के द्वारा हम जो कुछ ग्रहण करते हैं वह सांध्य प्रकाश में ग्रहण किए हुए की भांति होता है। बुद्धि के द्वारा हम जो कुछ ग्रहण करते हैं वह दिन के उजाले में ग्रहण किए हुए की भांति स्पष्ट होता है। यथार्थ और छायाभास के बीच भेद पर उसने बार-बार बल दिया। उसका कहना था कि इन्द्रियों के माध्यम से हम केवल छाया-जगत तक पहुंच सकते हैं, यथार्थ-जगत तक नहीं। अच्छे को ही उसने पूर्ण-सत्य के रूप में अभिव्यक्त किया है। ज्ञान, विज्ञान और सत्य विचार का विश्लेषण करते हैं जो सत्य की तरह हैं : लेकिन मात्र अच्छा ही पूर्ण यथार्थ है। हम ऐन्द्रिय-बोध द्वारा यथार्थ तक नहीं पहुंच सकते। रिपब्लिक में उद्धृत गुफानिवासियों का प्रसिद्ध दृष्टांत उसके दर्शन का अंतिम वक्तव्य है। हालांकि वह सहजानुभूत तर्क की बात नहीं करता जिस पर उपनिषद-दर्शन आधारित है, परन्तु जिस तरह इन्द्रिय-बोध द्वारा प्रदत्त अनुभव की वस्तुओं को नकारता है वह उसे ऐन्द्रिय-जगत के प्रति रहस्यवादियों के व्यवहार के बहुत पास ला देता है।

भारतीय और यूनानी दर्शन के बीच दूसरा साम्य भी है जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता। यूनानी दर्शन में जो बुद्धि की अवधारणा है वह भारतीय दर्शन के आत्मा से बहुत भिन्न नहीं है। प्लेटो ने एनक्सागोरस के विचारों का खण्डन करते हुए दो आत्माओं में अन्तर स्थापित किया। उसने एक को अमर और दूसरे को नश्वर कहा। नश्वर आत्मा शरीर के प्रभाव से मुक्त नहीं है और इसे अहंकार कहा जा सकता है। अनश्वर आत्मा सृष्टि की धारणा है और शरीर के सभी प्रभावों से मुक्त है। इस अनश्वर जीव को उसने सर्वव्यापक आत्मा कहा है। इसलिए यदि हम प्लेटो के नश्वर जीव की अवधारणा की तुलना उसके अनश्वर जीव के साथ करें तो यह भारतीय दर्शन के आत्मा और परमात्मा से बहुत भिन्न नहीं है।

इसलिए रहस्य के आधार पर उपनिषद-दर्शन को सामान्य दर्शन से बहिष्कृत करना उचित नहीं है। यदि हम ऐसा करते हैं तो हमें यूनानी दर्शन के भी एक बड़े हिस्से को सामान्य दर्शन से बाहर कर देना होगा।

हमें यह भी याद रखना चाहिए कि दर्शन और गैर दर्शन के बीच अंतर विषय-सामग्री के कारण नहीं है बल्कि पद्धति और विश्लेषण के कारण है। यदि किसी व्यक्ति के निष्कर्ष रहस्योद्घाटन अथवा एकान्त-साधना पर आधारित हैं तो उसकी खोज को दर्शन के बजाय रहस्यवाद अथवा धर्मशास्त्र कहना अधिक संगत होगा। फिर भी, यदि वह बौद्धिक व्याख्या की पद्धति अपनाता है और मानता है कि अस्तित्व के रहस्य को बौद्धिक आधार पर हल किया जाना

चाहिए तो हम उसे दार्शनिकों की श्रेणी से अलग नहीं कर सकते। भले ही वह धार्मिक या रहस्यवादी विश्वासों से प्रभावित हो। वस्तुतः दर्शन की कुछ बहुत महत्त्वपूर्ण सामग्री ऐसे प्रवचनों पर आधारित है।

ईसाइयत और इस्लाम में ऐसे सम्प्रदाय विकसित हुए हैं जिन्होंने दर्शन को धर्म के अधीन माना। पर उनके अपने विश्लेषण सामान्य तौर पर दार्शनिक लेखन के अंतर्गत शामिल किए गये हैं। इसका कारण यह है कि उन्होंने बौद्धिक आक्षेपों से धर्म की रक्षा करने के लिए बौद्धिक पद्धतियों का सहारा लिया। इसलिए सेंट आगस्टाइन और बाद के ईसाई विचारकों के प्रवचनों को दार्शनिक साहित्य से अलग नहीं किया जा सकता। यही बात मुस्लिम विचारकों के लेखन के बारे में भी है। जहां तक अरब-दर्शन का संबंध है, यदि इस शास्त्रीय साहित्य को छोड़ा जाय तो एक बहुत महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय को बाहर कर देना होगा। अरब दार्शनिकों में इब्नसिना (एवेसिना) और इब्न-अल-रश्द (एवरोज) के नाम सर्वविदित हैं, लेकिन वे अरब-दर्शन के प्रवक्ता नहीं थे। ये वस्तुतः अरस्तू के टीकाकार और अनुयायी थे। यदि हम अरब-दर्शन की ठीक से पड़ताल करना चाहते हैं तो हमें इन पर से दृष्टि हटाकर उन विद्वानों के कार्य का अध्ययन करना चाहिए जिनको प्रायः यूनानी-दर्शन का विरोधी कहा जाता था। दिलचस्प बात है कि धर्म के सत्य को स्थापित करने के क्रम में जो बिशप बर्कले आधुनिक काल में दार्शनिक-चिंतन पर छा गया, उसे सदैव दार्शनिकों में गिना जाता है और उसके लेखन को शामिल किये बिना किसी दर्शन का इतिहास पूरा नहीं माना जाता।

इसी प्रकार जेलर की यह आलोचना भी न्यायसंगत नहीं है कि भारतीय-दर्शन का संबंध धर्म से कभी नहीं टूटा ओर यह कभी स्वतन्त्र नहीं हुआ। ऐसा कहते समय जेलर के ध्यान में शायद वह आदर है जो वेदों को सामान्यतः मिलता रहा, लेकिन वह संभवतः इस बात को नहीं जानता था कि कम से कम तीन सम्प्रदायों ने वेदों के वर्चस्व को अस्वीकार किया। बौद्ध, जैन और चारवाक-दर्शन में से कोई भी उनके निष्कर्षों की प्रामाणिकता या उनकी परम्परा पर अवलंबित नहीं है। इतना ही नहीं बल्कि रूढ़िवादी सम्प्रदायों में न्याय और सांख्य दर्शनों ने तो वेदों की सत्ता के प्रति मात्र दिखावटी प्रेम ही प्रदर्शित किया। अतः हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि बुद्ध के समय ही भारतीय दर्शन धर्म से पृथक् स्थिति बना चुका था।

भारत और यूनान के बीच दार्शनिक सम्पर्क : मैं एक दूसरे प्रश्न की ओर संक्षेप में ध्यानाकर्षित करना चाहूंगा। यदि यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि यूनान से पहले ही भारत में दर्शन की शुरुआत हो चुकी थी तो क्या यह मानना न्यायसंगत नहीं होगा कि ग्रीक-दर्शन की शुरूआत पर भारतीय दर्शन का कुछ प्रभाव रहा होगा? हम जानते हैं कि नील और फरात नदियों की सभ्यता यूनान से बहुत पहले विकसित हो चुकी थी। हमारे पास इस बात के भी प्रमाण हैं कि प्रारम्भिक यूनानी दर्शन के विकास में इन सभ्यताओं का योगदान रहा है। क्या हम प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष ऐसा ही संबंध भारत और यूनान के बीच नहीं खोज सकते?

वर्तमान-युग के कुछ इतिहासकारों ने इस समस्या पर विचार किया है लेकिन अभी तक वे प्रामाणिक निष्कर्षों तक नहीं पहुंचे। यह सच है कि यूनानी दर्शन के कुछ प्रारंभिक सम्प्रदायों में ऐसी विशिष्टताएं मिलती हैं जो भारतीय विचारों से बहुत मेल खाती हैं। इन समानताओं से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संभवतः ये भारतीय प्रभाव के कारण हैं। ऐसा विशेषकर ऑरफिक सम्प्रदाय के बारे में है। इतिहासकार सामान्यतः सहमत हैं कि इसमें कुछ ऐसी बातें मिलती हैं जो निश्चित रूप से यूनानी नहीं हैं और एशियाई मूल को दर्शाती हैं। शरीर से आत्मा

की मुक्ति के रूप में मोक्ष की अवधारणा ऑरफिक सम्प्रदाय की केन्द्रीय विषय-वस्तु है। ज़ेलर का मानना है कि यह विचार मूलतः भारत का है। पर वह मानता है कि यूनानियों ने इसको फारस से ग्रहण किया।६ लेकिन बाद की खोजों से यह संकेत नहीं मिलता कि मोक्ष या मुक्ति का ऐसा कोई विचार जराथुष्ट्र के विश्वास का जरूरी तत्त्व था। इसलिए यह मानना अतार्किक नहीं होगा कि यह अवधारणा यूनान में भारत से पहुंची और प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इसने प्रारंभिक यूनानी सम्प्रदायों को प्रभावित किया।

यूनान में यह एक स्वीकृत विश्वास था कि बुद्धि और ज्ञान की प्राप्ति के लिए पूर्व की ओर जाना आवश्यक है। बहुत से दार्शनिकों के अध्ययन से पता चलता है कि उन्होंने ज्ञान की खोज में पूर्व की यात्रा की। हमने देमोक्रितस के बारे में पढ़ा है कि उसने मिस्र और फारस में काफी समय व्यतीत किया। पाइथागोरस के बारे में कहा जाता है कि सामोस में अपना घर छोड़ते समय उसने मिस्र की यात्रा की थी। यह सर्वविदित है कि सोलोन और प्लेटो ने भी व्यापक रूप से पूर्व की यात्राएं की थीं। इसलिए इसमें आश्चर्य नहीं होगा यदि पाइथागोरस या इस प्रारंभिक-युग के किसी अन्य यूनानी दार्शनिक ने भारत की यात्रा की हो। परन्तु ऐसी किसी यात्रा के ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलते। फिर भी यह सामान्यतः माना जाता रहा है कि पाइथागोरस के दर्शन में ऐसे तत्त्व हैं जो विशिष्ट रूप से भारतीय हैं। समानता कुछ इस तरह की है कि यदि हम बिना उसका नाम लिए उसके दर्शन की व्याख्या करें तो भारतीय दर्शन का विद्यार्थी आसानी से इसे भारतीय दार्शनिक का विवरण समझ सकता है। न जाने क्यों और कैसे अब तक दर्शन के इतिहास की इस समस्या का समाधान नहीं हो सका है।

सिकन्दर के लेखन से यह पता चलता है कि उसके गुरु अरस्तू ने अनुरोध किया था कि वह भारत में ज्ञान की क्या स्थिति है इसका पता लगाये। यह स्वयं इस बात का प्रमाण है कि भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व ही यूनान तक भारतीय ज्ञान की ख्याति पहुंच चुकी थी। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् उसके बारे में किंवदंतियां बन गयी थीं। यद्यपि वे यूनानी में लिखी गयी थीं लेकिन कुछ का मिस्री भाषा में अनुवाद किया गया था और बाद में सीरियन से अरबी में। उनमें भारतीय दार्शनिकों के साथ सिकन्दर के वार्तालापों का उल्लेख मिलता है। उसने दार्शनिक समस्याओं के बारे में भारतीय दार्शनिकों से बहसें कीं और स्वीकार किया कि भारत में दर्शन का स्तर यूनान की अपेक्षा बहुत ऊँचा है। ये कहानियां यद्यपि ऐतिहासिक नहीं हैं पर इनसे कम से कम यह संकेत अवश्य मिलता है कि भारतीय मनीषा की ख्याति इन क्षेत्रों में फैल चुकी थी। यह यूं भी सिद्ध होता है कि इस तरह की कथाएं काफी प्रचलित थीं और लोग उन्हें विश्वास और दिलचस्पी के साथ सुनते थे। ये दंतकथाएं ईसा-पूर्व पहली शताब्दी और ई० सन् पहली शताब्दी के बीच की लिखी मानी जाती हैं।

हम जानते हैं कि अपनी सभी जीती हुई जगहों में यूनानी उपनिवेश बनाना सिकन्दर की नीति थी—अपनी इसी नीति के तहत उसने इण्डस के किनारे इस प्रकार के उपनिवेश स्थापित किए। हम यह भी जानते हैं कि संदेह दर्शन के संस्थापक पेरो (मृत्यु २७५ ई०पू०) सेना में थे जो उसके साथ भारत आये थे। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् सिल्यूकस निकेतर ने चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित किए और मेगास्थनीज को उसके दरबार में राजदूत बनाकर भेजा। अतः अशोक के समय के पूर्व ही भारत और यूनान के बीच संबंध स्थापित हो चुके थे। इससे इस धारणा को बल मिलता है कि उनके बीच बौद्धिक स्तर पर आदान-प्रदान भी हुआ था। आज मौजूद एक शिलालेख से भी हम अशोक के बारे में जानते हैं कि उसने मकदूनियां के सभी

राजाओं और भूमध्यसागरीय देशों तक अपने धर्म-प्रचारक भेजे थे, हालांकि दुर्भाग्यवश इन प्रयासों का कोई पाश्चात्य लेखा-जोखा आज नहीं मिलता।

अब हम उन निष्कर्षों को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं जिनके प्रमाण उपलब्ध हैं। अशोक के शिलालेखों में जिन देशों का उल्लेख है उन देशों तक निश्चित रूप से बुद्ध का संदेश पहुंचा था। संभव है कि यह और भी दूर तक पहुंचा हो क्योंकि बौद्ध-मत उन दिनों एक तेजी से उभरता हुआ धर्म था। यह भी संभव है कि भारत का प्रभाव यूनान में अशोक के समय के बहुत पहले पहुंच गया हो। भारतीय चिंतन और कुछ प्रारंभिक यूनानी सम्प्रदायों, विशेषकर पाइथागोरस के दर्शन के बीच विशिष्ट समानताओं की तरफ़ हम पहले ही संकेत कर चुके हैं। या तो हम यह मान लें कि ये समानताएं पूरी तरह से आकस्मिक हैं। वरना निश्चित रूप से यूनान और भारत के बीच सम्पर्क रहे हैं। इस सम्पर्क के परिणामस्वरूप भारतीय चिंतन ने यूनानी चिंतन को प्रभावित किया। इस समय भारतीय दर्शन का व्यापक विकास हो चुका था और यूनानी दर्शन के प्रारंभिक सम्प्रदायों की तुलना में यह बहुत आगे बढ़ा हुआ था। इन सब से इस धारणा की पुष्टि होती है कि भारतीय चिंतन ने प्रारंभिक यूनानी दर्शन के विकास में योगदान दिया। हालांकि हमें इस बात की पक्की जानकारी नहीं है कि यह योगदान कितना और किस तरह का था।

अब तक यूनानी दर्शन पर भारतीय दर्शन के संभावित प्रभाव के बारे में चर्चा की गयी है। अब हमें प्रश्न के दूसरे पक्ष पर भी विचार करना चाहिए कि क्या यूनानी विज्ञान और दर्शन ने भी भारत को प्रभावित किया है? ऐसा कोई विस्तृत लेखा-जोखा देना तो कठिन है जिसको निर्णायक कहा जा सके; फिर भी यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि कम से कम ई० सन् चौथी शताब्दी और उसके बाद का भारतीय गणित-ज्योतिष यूनानी गणित-ज्योतिष से प्रभावित था। वस्तुतः कुछ यूनानी शब्दावली भारत में प्रचलित हो गयी थी। एक प्रसिद्ध भारतीय ज्योतिषी वाराहमिहिर जिसकी मृत्यु ५८७ ई० सन् में हुई, ने अपनी पुस्तक 'बृहत् संहिता' में यूनानी ज्योतिषविदों का उल्लेख किया है। इस समय के एक दूसरे लेखक ने, जिसको अलबरूनी ने इण्डिका में उद्धृत किया है, यूनानी विचारकों की बहुत प्रशंसा की है। इन सब से हम निश्चित कह सकते हैं कि ईसवी सन् तीसरी शताब्दी के पश्चात् भारत यूनानी ज्ञान से परिचित हो चुका था और विद्वत-मण्डली के बीच इसका प्रभाव अनुभव किया जा रहा था। फिर भी जहां तक भारतीय दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों का प्रश्न है यह विश्वास के साथ नहीं कहा जा सकता कि ये यूनानी चिंतन द्वारा कितना प्रभावित थे।

संक्षेप में, यदि हम ईसवी सन् पूर्व और ईसवी सन् बाद के दो कालों को चुनें तो हमारे निष्कर्ष तर्कसंगत होंगे। हम कह सकते हैं कि ईसवी सन् पूर्व में यूनानी दर्शन अपने प्रारंभिक दौर में संभवतः भारतीय दर्शन द्वारा प्रभावित था। जहां तक ईसवी सन् बाद का प्रश्न है, ऐसे कारण मौजूद हैं जिनसे यह कहा जा सकता है कि भारतीय चिंतन के कुछ पक्षों पर यूनानी ज्ञान का प्रभाव पड़ा था।

भारत और यूनान : मैं यह स्पष्ट करना चाहूंगा कि सामान्य दर्शन के एक व्यापक इतिहास की आवश्यकता पर मेरे बल देने के ऐतिहासिक कारण हैं। किसी भी देश अथवा राष्ट्र के योगदान को घटाने अथवा बढ़ा कर देखने का कोई प्रश्न नहीं है। हमने मानवता को भौगोलिक सीमाओं पर आधारित समूहों में विभाजित कर दिया है और विश्व के मानचित्र पर विभिन्न रंगों में पश्चिम, एशिया और अफ्रीका चित्रित कर दिया है। फिर भी मानव-ज्ञान के

मानचित्र को क्षेत्रों और विभिन्न रंगों में विभाजित नहीं किया जा सकता है। ज्ञान सभी सीमाओं और बाधाओं से ऊपर है। पृथ्वी का चाहे कोई भी कोना हो जहां यह सबसे पहले विकसित हुआ, वह सम्पूर्ण मानव-जाति की मिली-जुली विरासत है। सभी मानव जातियाँ, चाहे किसी भी देश अथवा राष्ट्र की हों, इस पर बराबर अधिकार रखती हैं। यह तथ्य कि सुकरात यूनान में जन्मा था और उपनिषदों के रचयिता भारत में, उनकी अपनी जीवनियों के विचार से महत्त्वपूर्ण हो सकता है लेकिन जहां तक मानव-ज्ञान के इतिहास का संबंध है यह अप्रासंगिक है। यह सच है कि सुकरात यूनानी था और उपनिषदों के लेखक भारतीय थे। फिर भी मानव-ज्ञान के क्षेत्र में उन्होंने जो योगदान दिया है वह न तो यूनानी है और न भारतीय, बल्कि सम्पूर्ण मानवता का उस पर अधिकार है। यदि दर्शन भारत में यूनान से पहले आरम्भ हुआ तो इसका मतलब सिर्फ इतना है कि दर्शन के इतिहास की व्याख्या करते समय हम इसकी शुरुआत भारत से करें। फिर भी इससे भारत को विशेष महत्त्व नहीं मिल जाता और न ही यूनान की महानता कम हो जाती है। बनु-अम्र की जन-जाति के बारे में अरब कवि ने जो कहा वह मानव-ज्ञान के बारे में भी काफी सार्थक है:–

मत कहो कि उसका घर नजद के पूर्व में है, सब जानते हैं कि नज्द ही बनु अम्र की जनजाति का निवास है।

विश्व-दर्शन : मैं पहले ही एक मुख्य कारण का उल्लेख कर चुका हूँ जो इस कार्य का संकलन करने के पीछे निहित रहा है। एक दूसरा कारण भी है जो अत्यधिक महत्त्व का है। अब तक दर्शन की विभिन्न श्रेणियों में विभाजित करने से सच्चे विश्वव्यापी दृष्टिकोण से दार्शनिक समस्याओं का सर्वेक्षण नहीं किया जा सका है। हमारे सामने दर्शन के ऐसे इतिहास हैं जिनमें एक देश अथवा काल का अध्ययन किया गया है। लेकिन एक भी ऐसा अध्ययन नहीं है जिसमें सभी स्थानों और कालों के दार्शनिक परिवर्तनों को शामिल किया गया हो। इसलिए दर्शन का ऐसा इतिहास लिखने का समय आ गया है जिसमें प्राचीन, मध्य और आधुनिक काल के भारत, चीन और यूनान के योगदानों को शामिल किया जाय।

प्राकृतिक शक्तियों पर बढ़ते हुए नियंत्रण ने विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को एक दूसरे के पास ला दिया है। इससे विभिन्न संस्कृतियाँ एक-दूसरे के घनिष्ठ सम्पर्क में आयी हैं। घनिष्ठ सम्पर्कों से ऐसी स्थितियां बनी हैं कि विभिन्न लोगों के योगदानों को मानव-ज्ञान के एक समान धरातल पर लाया जा सकता है। इनसे विभिन्न सभ्यताओं के दृष्टिकोण में निहित विभिन्न सिद्धांतों के बीच मेल-मिलाप करने की दर्शन की भूमिका में सहायता भी मिलेगी। विश्व-दर्शन का विकास सैद्धांतिक दिलचस्पी का ही विषय नहीं है बल्कि इसका बड़ा व्यावहारिक महत्त्व है।

इस दृष्टि से भी दर्शन का इतिहास फिर से लिखा जाना चाहिए। विभिन्न देशों और कालों के योगदानों को न केवल पूरी तरह से स्वीकार किया जाना चाहिए बल्कि सामूहिक विश्व-दर्शन के विकास में उन्हें उचित स्थान दिया जाय। उदाहरण के लिए, ज्ञान की समस्या का अध्ययन करते हुए अब तक हमने या तो भारतीय विचारकों के विचारों का अध्ययन किया है अथवा यूनानी विद्वानों या अरब-दार्शनिकों का। परिणामस्वरूप दार्शनिक समस्याओं को हमने उनके पूरे आलोक में नहीं देखा बल्कि राष्ट्रीय और भौगोलिक दृष्टिकोण के चश्मे से देखा है। अब हम इन विभिन्न पद्धतियों द्वारा अन्तर्दृष्टियों को ध्यान में रखते हुए समस्याओं के समाधान का प्रयास करना होगा। केवल इसी तरह हम विशुद्ध दार्शनिक दृष्टिकोण से दर्शन की समस्याओं तक पहुंच सकते हैं।

यही सही है कि इस प्रयास में भी दर्शन की समस्याओं का सर्वेक्षण इस दृष्टिकोण से नहीं किया गया है। लेकिन विभिन्न कालों में विभिन्न लोगों ने जो ज्ञान प्रस्तुत किया कम से कम उसे एक समान परिधि में आस-पास लाने का प्रयास इसके द्वारा अवश्य किया गया है। मुझे आशा है कि एक सामान्य एकत्रीकरण में सामग्री का यह संचयन विश्वदर्शन के उस इतिहास को लिखने की दिशा में पहले प्रयास के रूप में होगा जो वर्तमान स्थिति में अकेला ही मानवता की ज़रूरतों को पूरा कर सके।

निष्कर्ष : हमने इस प्रस्तावना की शुरुआत फ़ारसी कवि के एक उद्धरण से की थी जिसमें कहा गया है कि अस्तित्व की पुस्तक के पहले और आखिरी पन्ने खो गये हैं। दर्शन इन खोये हुए पन्नों को पुनः पाने के लिए की गई खोज है। इस अन्वेषण में लगभग तीन हज़ार वर्ष बीत गये हैं। परन्तु खोए हुए पृष्ठ पुनः प्राप्त नहीं हो सके और न ही कोई आशा है कि उन्हें कभी पुनः प्राप्त किया जा सकेगा। दर्शन का इतिहास इस अन्वेषण का लेखा-जोखा है। भले ही यह लक्ष्य की प्राप्ति के बारे में कुछ नहीं कहता पर इसने हमें यात्रा और अन्वेषण की उस मनोहर कहानी से परिचित अवश्य कराया है।

दर्शन के तीर्थयात्री अपनी खोज के लक्ष्य को पाने में सफल नहीं हुए, पर अपनी यात्रा के दौरान उन्होंने बहुत महत्त्वपूर्ण कुछ और भी हासिल किया है। दर्शन की अपनी खोज में उन्होंने विज्ञान को खोजा। विज्ञान ने मनुष्य के लिए नयी शक्ति दी है पर उसे शांति नहीं दी। पहले यह निर्माण के एक साधन के रूप में सामने आया पर अब यह विनाश का हथियार बनता जा रहा है। अब समय आ गया है कि जब दर्शन को मानव-शांति की ओर अपना ध्यान देना चाहिए। यदि यह अपनी इस खोज में सफल होता है और मनुष्य की खोई हुई शांति पुन: तलाश लेता है तो भले ही यह दो खोए हुए पन्नों को पुनः नहीं लिख सकता, पर मानवता के लिए एक नयी पुस्तक लिख सकेगा। तब इसे दूसरे फारसी कवि के शब्दों में यह कहने का अधिकार होगा कि :—

जो प्रेम की राह पर चलते हैं कभी नहीं थकते।
क्योंकि यह मार्ग और मंज़िल दोनों हैं।

टिप्पणियाँ :

१. अरब लेखकों ने दो विशिष्ट प्रकार की पुस्तक लिखी हैं। एक श्रेणी मुख्यतः उन जीवनीपरक पुस्तकों की है जिनमें दार्शनिकों के जीवन को अध्ययन का विषय बनाया गया है इसलिए इन पुस्तकों में उनके दर्शन का शामिल होना मात्र आकस्मिक था। दूसरी श्रेणी की पुस्तकों के लेखकों की मुख्य रुचि दर्शन के सम्प्रदायों का अध्ययन करने में रही है और उनमें जीवनीपरक लेखा-जोखा मात्र संयोगवश ही मिलता है। पहले वर्ग की पुस्तकों को 'तारीख-उल-हुकाम' या तारीख़-उल-फलसफा (दार्शनिकों का इतिहास) कहा गया। दूसरे वर्ग की पुस्तकों को किताब-उल-मिलाने वान नहल (धार्मिक और दार्शनिक सम्प्रदायों की पुस्तकें) अथवा अल आरा वन मकालत (मत और प्रवचन) ऐसी भी पुस्तकें थीं जो दर्शन के विशेष युगों से सम्बद्ध हैं। इस तरह अल फराही(जन्म ९२५) ने एक पुस्तक लिखी जिसमें अरस्तू-पूर्व और अरस्तू-बाद के दर्शन का वर्णन है। इन अध्ययनों को हम संभवतः दर्शन का एक व्यवस्थित इतिहास लिखने के प्रथम प्रयास के रूप में व्याख्यायित कर सकते हैं।
२. दर्शन का इतिहास—जे० इ० एर्डमैन (पी०पी० ९)
३. दर्शन का इतिहास—फ्रेंक थिल्ली (पी०पी० ३)

४. जे० इ० एर्डमैन—दर्शन का इतिहास (पी०पी० १३)
५. यूनानी दर्शन के इतिहास की रूपरेखा—बी० ज़ेलर (पी०पी० २)
६. यूनानी दर्शन के इतिहास की रूपरेखा—बी० ज़ेलर (पी०पी० १६)
७. "और महामहिम की राय में यह मुख्यतम विजय है, अर्थात् कानून द्वारा विजय, ये है जिसे महामहिम ने अपने राज्य और ६ सौ मील के घेरे में बने हुए आस-पास के र लागू किया और इसको प्रसारित किया, यूनानी राजा के निवास-स्थान तक और उ एंटियोकस तक जहां चार राजा निवास करते हैं और जिनके नाम हैं टोलेमी, एण्टि मागस और एलेक्जेण्डर..... और इसी प्रकार राजा के राज में बसे यवनों (पंजाब के पर भी इसे लागू किया गया।" —बेवन की पुस्तक 'सिल्यूकस परिवार'—खण्ड २९८) से उद्धृत।

सांस्कृतिक दृष्टि
संगीत नाटक अकादमी
ललित कला अकादमी
साहित्य अकादमी
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

"कला वस्तुतः पल्लवित नहीं हो सकती जब तक शक्तिशाली गैरसरकारी संस्थाएँ उसके लिये कार्य न करें। अकादमियों की स्थापना का यही मुख्य कारण है। इनकी स्थापना यद्यपि सरकार द्वारा हुई है किन्तु यह स्वायत्त संस्थाएँ होंगी जो किसी भी प्रकार के सरकारी हस्तक्षेप के स्वतंत्ररूप से कार्य करेंगी।"

सांस्कृतिक दृष्टि *

संगीत नाटक अकादमी **

स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् जिन समस्याओं पर तुरन्त ध्यान देने की आवश्यक
उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण यह थी कि सांस्कृतिक गतिविधियों का आधुनिकीकरण किया
पिछले डेढ़ सौ वर्षों में ललित कलाओं को चाहे वह नृत्य हो या नाटक, संगीत हो या साहि
संरक्षण और प्रोत्साहन नहीं मिला, जो उसके सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक

यह बात सत्य है कि हिन्दुस्तान में पुनर्जागरण १९वीं शताब्दी के मध्य से आरंभ ह
था किन्तु इसका प्रारम्भ सामाजिक मांगों के दबाव के फलस्वरूप हुई थी और इसमें कुछ
तक राज्य का भी हाथ था। इसीलिए इसमें न गहराई थी और न इसके परिणाम दीर्घकालि
यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब राज्य से उसे यथासंभव सहायता मिलती। मुगल रा
पतन के पश्चात् ललित कलाओं की विभिन्न विधाओं को राजकीय स्तर पर उत्साहित किय
और पुरातन परंपराओं का अंत कर दिया गया।

निस्संदेह ही हिन्दुस्तानी देसी राजाओं ने जो लगभग भारत के एक तिहाई भाग पर फै
हैं, क्षेत्रीय स्तर पर अपने आप इन ललित कलाओं के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा
हमें इनका आभारी होना चाहिए परन्तु इनकी चेष्टाए इन कलाओं की संपूर्ण उन्नति और वि
के लिए अपर्याप्त थीं। और फिर रजवाड़ों का अंत हो जाने के साथ वह संरक्षण जो स
व्यवस्था के अंतर्गत ललित कला को प्राप्त हुआ था, वह भी शेष नहीं रहा। जनतांत्रिक व्य
में ललित कला का विकास जनता की अभिरुचि से होता है और राज्य के संरक्षण से होत
क्योंकि राज्य जनता की आकांक्षाओं की व्यवस्थित अभिव्यक्ति होता है। इसलिए ल
कलाओं को विकसित करना सरकार के दायित्वों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। एक दश
प्रगतिशील जनता ने इस तथ्य को जान लिया। २६ जनवरी १९५६ को बंगाल की एशिय
सोसाइटी ने एक विशिष्ट प्रस्ताव द्वारा यह विचार रखा कि एक 'नेशनल कल्चरल ट्रस्ट' स्थ
किया जाए जो एक स्वतत्र और स्वायत्त संस्था हो और उसे देश के सांस्कृतिक विकास
कार्यक्रम सौंपा जाए। इस ट्रस्ट में तीन अकादमियां होंगी। एक साहित्य अकादमी, जि
संबंध भारतीय भाषाओं, साहित्य, दर्शन और इतिहास से होगा। दूसरी कला अकादमी
जिसमें ग्राफिक्स, प्लास्टिक और स्लाइट कला और वास्तुकला सम्मिलित होंगे, तीसरी अक
नृत्य, नाटक और संगीत के संबद्ध होगी। इसी के साथ यह इच्छा प्रकट की गई कि
अकादमियों का उद्देश्य यह होगा कि यह संस्कृति के संपूर्ण विभागों का प्रबंध करें और उ
स्तर को सुधारें।

---

* मौलाना की सांस्कृतिक दृष्टि तीन अकादमियों – साहित्य अकादमी, संगीत नाटक अकादमी और ललित कला अकाद
की जन्मदात्री है। इसी के आधार पर भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद की स्थापना हुई। उपर्युक्त अंश मौलाना के उन भा
से उद्धृत हैं जो उन्होंने इन में से प्रत्येक के उद्घाटन के अवसर पर दिए थे। समग्ररूप से यह अकादमियाँ उन सांस्कृतिक
का प्रतिनिधित्व करती हैं जो ललित एवं मंचीय कलाओ के लिए मौलाना ने स्थापित किए थे। यह संपादित अंश भारत स
के प्रकाशन विभाग द्वारा संकलित मौलाना आज़ाद के भाषणो से लिए गए हैं।

**संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली में उद्घाटन समारोह के अवसर पर स्वागत भाषण, २८ जनवरी, १९५

आत्मसात और समन्वय करने की भावना ही हमेशा से भारतीय सभ्यता और संस्कृति की विशेषता रही है और इसकी अभिव्यक्ति सगीत से अधिक किसी अन्य क्षेत्र में परिलक्षित नहीं होती।

मध्य युग में ईरानी और भारतीय शास्त्रीय संगीत के मिश्रण से जो संगीत-कला उत्पन्न हुई उसमें इन दोनों धाराओं की सूक्ष्मता और सुकुमारता विद्यमान है। जब मुसलमानों का भारत में आगमन हुआ तो भारतीय संगीत विकास के उच्च शिखर तक पहुंच चुका था। अतः मुसलमानों को भारतीय संगीत की विशेषताओं को प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। उन्होंने न केवल उसे अपना लिया बल्कि तत्पश्चात् भारत में दोनों संगीत-परंपराओं का अलग-अलग विकास होने के स्थान पर उन दोनों के मिलन से जिस संगीत-कला का जन्म हुआ उसका ही विकास हुआ और यहाँ तक हुआ कि यह अपनी सूक्ष्मता और सुकुमारता में अपने वास्तविक स्रोतों से आगे निकल गयी।

अमीर ख़ुसरो का नाम भारतीय इतिहास के विद्यार्थी के लिए अपरिचित नाम नहीं है। यद्यपि वो एक महान कवि थे किन्तु उनकी असाधारण सर्जनशीलता की गहरी छाप ललित कलाओ पर भी गहरी है। ईरानी और हिन्दुस्तानी संगीत के मिश्रण से उन्होंने नए-नए राग आविष्कृत किए। ऐमन, तराना, कौल, सुहैला और दूसरे राग, जो आज भी करोड़ों भारतवासियों को आनन्दविभोर करते हैं, और भारतीय वाद्य संगीत उनकी असाधारण प्रतिभा और मिश्रण करने की क्षमता के उदाहरण हैं। बाजों में 'सितार', उन्हीं का आविष्कार है। उन्हें आभास हुआ कि 'वीणा' बहुत लंबा-चौड़ा तथा जटिल बाजा है, तो उन्होंने उसे सरल बनाने के लिए उसके तारों की संख्या कम करके केवल तीन कर दी। 'सितार' फ़ारसी भाषा का शब्द है, जिसका अभिप्राय तारों से है। इसीलिए इसको यह नाम दिया गया है। यह नाम ही इस तथ्य का परिचायक है।

संगीत को भी उन्होंने इसी प्रकार सरल और सहज बना दिया। जयपुर के राजा मानसिंह और सुल्तान शर्क़ी संगीत के रसिया थे। उन्होंने भारतीय संगीत में 'ख़याल' को प्रचलित किया। 'ध्रुपद' की पुरातन शास्त्रीय पद्धति अत्यधिक कठिन है और बेलोच थी जिससे भावों की प्रांजल अभिव्यक्ति बहुत कठिन थी। उन्होंने 'ख़याल' (ध्रुपद) के वैभव को सुरक्षित रखा किन्तु इसकी कठोरता को समाप्त कर दिया और इस प्रकार यह भारतीय संगीत का सबसे लोकप्रिय राग बन गया।

भारतीय वाद्यों के विकासक्रम में भी पूर्णतः भावविह्वल करने की क्षमता और उनमें मिश्रण की स्थिति परिलक्षित होती है। विभिन्न प्रकार के तानपुरे ईरान में लोकप्रिय थे। भारत ने उन्हें अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तित करके अपना लिया। एक अन्य ईरानी वाद्य 'कानुन', जिसे आजकल कश्मीरी बजाते हैं, भारतीय गंगा-जमनी संस्कृति के उदाहरण संगीत मे अधिक और कहीं नहीं मिलते। लगभग सहस्र वर्ष से अधिक समय में हिन्दू और मुसलमानों की संयुक्त चेष्टाओं ने संगीत को उस उत्कर्ष बिन्दु पर पहुंचा दिया कि शायद ही दुनिया में कोई इसके सन्मुख खड़ा हो सके। ड्रामे के संबंध में यूनानियों का उद्गम-स्रोत कुछ भी हो, किन्तु इसमें शंका नहीं कि उन्होंने नाटक को उस स्थान पर पहुंचा दिया जहां उनके समान कोई नहीं है, यद्यपि इन बातों में तुलना करना कोई अच्छी बात नहीं है।

फिर भी हम यह कह सकते हैं कि कालिदास की गणना यूनानी नाटककारों की पंक्ति में हो सकती है। इसके अतिरिक्त भवभूति, भास आदि ने भारतीय नाटक को इतने उच्च शिखर तक पहुंचा दिया है कि वो किसी प्रकार भी यूनानी नाटक से कम नहीं है। जहां तक

नाट्य-सिद्धांत का प्रश्न है, इस मैदान में भी हिन्दुस्तानियों की सेवाएं उत्कृष्ट हैं और जो आज भी अनुकरण-योग्य समझी जाती हैं।

नृत्य के क्षेत्र में भी हिन्दुस्तानी नृत्य की विविधता ने सदैव कला एवं संस्कृति के विद्यार्थियों को अपनी ओर आकृष्ट किया है। शुद्ध भारतीय शास्त्रीय नृत्य का विकास मंदिरों में हुआ है। इसमें अभिव्यक्ति की असंख्य पद्धतियां, आरोहण-अवरोहण, अद्भुत संगीतात्मकता और सुर-ताल इस भूमि के विभिन्न क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय नृत्य की विविधता और सुकुमारता का उदाहरण संपूर्ण विश्व में शायद ही कहीं मिले। इस परंपरा का प्रवाह और शक्ति, जिसकी अभिव्यक्ति आज तक हो रही है, सराहनीय है।

नृत्य, संगीत और नाटक की यह बहुमूल्य धरोहर है। इसको विकसित करना है और इसमें वृद्धि करना है। अपने लिए ही नहीं, बल्कि हमें यह कार्य इसलिए भी करना है कि यह मानव-मात्र की धरोहर है। यह बात कला-क्षेत्र से अधिक अन्य कहीं और चरितार्थ नहीं होती। सुरक्षित रखने का अर्थ है सर्जन करना। इन अकादमियों का यही उद्देश्य होगा कि वो सुव्यवस्थित संस्थाओं के माध्यम से हमारी इन परंपराओं को सुरक्षित करें और इसको विकसित करें।[1]

ललित कला अकादमी *

यहां हिन्दुस्तान में हमने सदैव ही इस बात को स्वीकार किया है कि कला व्यक्ति और जाति दोनों को सुसंस्कृत बनाने का एक अनिवार्य अंग है। हमारी सीधी-सादी ग्रामीण महिलाएं कितनी सुंदरता से कल्पना द्वारा अपने घरों को सजाती हैं। हमारे यहां ऐसे कारीगर हैं जो कपड़े में ऐसे डिज़ाइन बुनते हैं कि जिन पर यूरोप तथा अमरीका जैसे विकसित देशों के प्रशिक्षण-प्राप्त कुशल कारीगर ईर्ष्या करते हैं। यदि हम से यह प्रश्न किया जाए कि हमारे देश, हिन्दुस्तान जैसे निर्धन देश, की जनता में कला की यह अभिरुचि कैसे उत्पन्न हो तो मेरे मस्तिष्क में इसका उत्तर यह है कि हमारे धार्मिक भवनों की वैभवशाली वास्तुकला और मूर्तिकला के कारण आदि प्राचीन काल से मंदिरों में केवल पूजा-पाठ ही नहीं होता था बल्कि यह सौंदर्योपासना के केन्द्र भी होते थे। मध्य युग में वैभवशाली मस्जिदें निर्मित हुईं जिनमें वैभव और सादगी का सुदर मिश्रण था। एक आदमी और तो कुछ नहीं कर सकता था किन्तु इन अद्भुत कलाकृतियो को निरंतर देखते रहने से उसमें शुद्ध कलात्मक अभिरुचि उत्पन्न हो गई। एक देश जिसमें कोणार्क या भुवनेश्वर का मंदिर अथवा ताजमहल का निर्माण हुआ तो वो केवल उसकी कल्पनाशीलता की उच्चता ही नहीं है बल्कि उसकी अद्वितीय कला-कौशल की भी अभिव्यक्ति है। वो मस्तिष्क जिसने सोचा, वो हाथ जिन्होंने इसका निर्माण किया, वो संरक्षण जिसके फलस्वरूप यह भवन रूपायित हुए, उन सबकी सराहना हम आज भी करते हैं और निस्संकोच इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते रहेंगे।

आज यह बात स्वीकार कर ली गई है कि कोई भी शिक्षा उस समय तक पूर्ण नहीं हो सकती जब तक वो मानवीय भावनाओं के विकास और उन्हें सुसंस्कृत बनाने पर ध्यान केन्द्रित न करे और इसकी प्राप्ति का उच्चतम ढंग यह है कि बुद्धिबल के प्रशिक्षण की सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं, ललित कला की किसी एक शाखा का अभ्यास कराया जाए, इस साधारण प्रश्न के अतिरिक्त कि कला की शिक्षा के माध्यम से मानवीय व्यक्तित्व के सूक्ष्म पक्षों का प्रशिक्षण होता

---

१. संगीत नाटक अकादमी के उद्घाटन समारोह मे अभिभाषण, २८ जनवरी, १९५३

* ललित कला अकादमी, नई दिल्ली की प्रथम बैठक में दिए गए भाषण से, ५ अगस्त, १९५४.

है यह इसलिए भी आवश्यक है कि इसके द्वारा हाथों के कामों में कुशलता प्राप्त होती है। बच्चे की कल्पनाशक्ति को कार्यशील होने का अवसर मिलता है। अब यह बात मान ली गई है कि प्राथमिक शिक्षा अथवा नर्सरी की शिक्षा के प्रशिक्षण की उच्चतम पद्धति यह है कि बच्चों को रंग मिलाने, विभिन्न आकारों और बनावटों की वस्तुओं को पहचानने और उनकी सहायता से अन्य वस्तुएं बनाने का प्रशिक्षण दिया जाए। इससे बच्चे की रचनात्मक प्रवृत्ति की सन्तुष्टि होगी और इसके अतिरिक्त शक्ति तोड़-फोड़ के स्थान पर रचनात्मक कार्यों में लग जाएगी तथा इस प्रकार का रचनात्मक दृष्टिकोण आगे चल कर वह समाज में भी अपनायेगा और सुसंस्कृत तथा सुसभ्य बनेगा। अतः कला की शिक्षा चाहे भावनाओं के प्रशिक्षण के लिए दी जाए अथवा आभासों का संस्कार करने के लिए या बच्चे की रचनात्मकता की इच्छा पूर्ति के लिए या हाथ के कामों में कुशलता-प्राप्ति के लिए दी जाए, शिक्षा के अनिवार्य तत्त्व के रूप में इसकी महत्ता प्रमाणित है।

साहित्य अकादमी *

मैं कुछ समय से सोच रहा था कि विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य के प्रसार के लिए कौन-सा उचित उपाय किया जाए। इसमें कोई संदेह नहीं कि कुछ राज्य इस संबंध में अपने ढंग से काम कर रहे हैं परन्तु मेरे विचार में कुछ ऐसे उपाय किए जाने चाहिए जिससे संपूर्ण भारत की विभिन्न भाषाओं के साहित्यकारों को प्रोत्साहित किया जा सके और उनकी रचनाओं को मान्यता प्रदान की जा सके।

साहित्य-अकादमी का उद्देश्य है कि वह जनता की साहित्यिक अभिरुचि का निरीक्षण करे और साहित्य की उन्नति में सहायक हो और यह उसी समय संभव है जब हम साहित्यिक स्तर को सुरक्षित रखें। अतः भारतीय साहित्यकारों का लक्ष्य यह होना चाहिए कि वह अपनी समस्त क्षमताएं उत्कृष्ट साहित्य की रचना में लगाएँ जो मानव की धरोहर में एक वृद्धि है।

कुछ महानुभावों ने जिनमें कुछ सीमा तक हमारे प्रधानमंत्री भी सम्मिलित हैं, यह विचार व्यक्त किया है कि अकादमियां सरकार की ओर से न बनाई जाएं। इनके मतानुसार यह ऊपर से लादने वाली बात होगी। इनके विचार मे अकादमियों की स्थापना लोगों की ओर से होनी चाहिए और इसके लिए सरकार को उस समय तक प्रतीक्षा करनी चाहिए जब देश इतनी उन्नति कर ले कि संस्थाएं अथवा व्यक्ति जिनके पास आवश्यक अधिकार हों, अकादमियां स्थापित करें और जब इस प्रकार की अकादमियां स्थापित हो जाएंगी तो सरकार का केवल यह कार्य रह जाएगा कि वह इनको मान्यता प्रदान करे। मुझे खेद है कि मैं इस मत से सहमत नहीं हूं। पुनर्जागरण काल के पश्चात् यूरोप में अनेक अकादमियां स्थापित हुई हैं। आज पाश्चात्य देशों में शायद ही कोई ऐसा देश हो जहां एक या उससे अधिक अकादमियां स्थापित न हुई हों। यह सब अकादमियां शासकों के प्रतिनिधियों या संवैधानिक सरकारों ने स्थापित की हैं। इसलिए कोई कारण नहीं कि हिन्दुस्तानी सरकार अकादमियों की स्थापना में बढ़कर हिस्सा न लें। वास्तविकता तो यह है कि यदि अकादमियों की स्थापना के लिए इस बात की प्रतीक्षा की जाए कि वह निम्नस्तरीय आधार पर स्थापित हो तो इसकी प्रतीक्षा हमें प्रलयकाल तक करनी पड़ेगी।

यह बात मेरे मानसपटल में सदैव से रही है कि कला के प्रसार में सरकार की भूमिका निम्नस्तरीय होनी चाहिए किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि सरकार को कला-प्रसार में गहरी

---

* साहित्य अकादमी के पहले जलसे में दिए गए भाषण से, १२ मार्च, १९५४

दिलचस्पी लेनी चाहिए। यह बात भी सत्य है कि देश में कला का प्रसार उस समय तक नहीं हो सकता जब तक स्वयंसेवी संस्थाएं इसकी उन्नति में प्रयत्नशील न हों। इसीलिए इन अकादमियों की स्थापना का यही उद्देश्य है कि सरकार द्वारा स्थापित किए जाने पर भी यह उसके हस्तक्षेप के बिना स्वायत्त संस्था के रूप में कार्य करेंगी। सरकार ने इन्हें स्थापित किया है, क्योंकि इसके लिए किसी को तो आगे बढ़ना ही था। अकादमियां स्थापित हो गईं, अब सरकार का कार्य समाप्त हो गया। अब यह आप का काम है कि आप इसके सदस्य के रूप में संपूर्ण देश के साहित्यकारों में सृजनात्मकता का आंदोलन चलाएँ।

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् *

आप सज्जनों को याद होगा कि जब भारत स्वाधीन हुआ तो अधिकांश लोगों ने इस बात पर बल दिया कि हमें संसार के अन्य देशों से निकट सांस्कृतिक संबंध स्थापित करने चाहिए और इस बात की भी आवश्यकता महसूस की गई कि इस कार्य को उचित ढंग से करने के लिए एक संस्था की आवश्यकता है जो संसार में सांस्कृतिक दृष्टि से भारत का प्रतिनिधित्व कर सके। इसका सबसे बड़ा काम यह हो कि दुनिया के विभिन्न भागों में हिन्दुस्तान के संबंध में जो भ्रांतियां उत्पन्न हुई हैं और जो विरोध फैले हुए हैं, उनको दूर करें। यह इसलिए भी आवश्यक है कि गत दो शताब्दियों से हिन्दुस्तान के स्वाधीन न होने के कारण आधुनिक संसार के मंच पर उसने अपनी कोई भूमिका नहीं निभाई है। इस काल में वो अंग्रेज़ों के आधीन था इसलिए वो विश्व के सम्मुख इस प्रकार प्रस्तुत हुआ जैसा अंग्रेज़ों ने चाहा। स्पष्ट है कि यह प्रतिनिधित्व स्वयं भारत का नहीं था बल्कि यह अंग्रेज़ सरकार के हित-पूर्ति के लिए था और उन की इच्छानुसार था। परन्तु अब हिन्दुस्तान स्वाधीन है। उसे ठीक ढंग से अब अपनी विशेषताओं के साथ दुनिया के सामने आना चाहिए।

१९४९ में हमने इस प्रश्न को उठाया और अप्रैल १९५६ में सांस्कृतिक संबंधों की भारतीय परिषद् स्थापित हुई। इसके संविधान में यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि इसका उद्देश्य समस्त देशों में भारत के सांस्कृतिक संबंधों का प्रसार करना है और इसका कार्य-क्षेत्र संपूर्ण विश्व तक फैला हुआ होगा। यह बात स्पष्ट है कि जो कार्य इतने विस्तृत पैमाने पर होना है, वह एकदम तो हो नहीं सकता। इसका श्रीगणेश करने से पूर्व इस बात के आश्वासन की आवश्यकता है कि इसकी प्रारंभिक चेष्टाएं व्यर्थ नहीं जाएँगी, हमने निर्णय किया कि परिषद् के कार्यों को विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित कर दिया और अपने कार्य का आरंभ मध्य-पूर्व के देशों, तुर्की और मिस्र से किया।

कुछ मित्र मुझसे पूछ सकते हैं कि परिषद् के कार्य का आरंभ इस विशिष्ट विभाजन के आधार पर ही क्यों हुआ? प्रश्न बिल्कुल उचित है और इसका कारण भी स्पष्ट है। आपको याद होगा कि भारत को देश-विभाजन के आधार पर स्वतंत्रता प्राप्त हुई है जिसके परिणामस्वरूप सांप्रदायिक और घृणात्मक वातावरण उत्पन्न हो गया है। पाकिस्तान में हिन्दुओं और सिक्खों को भारी मात्रा में अत्याचार का निशाना बनाया गया, उनका वध किया गया और हिन्दुस्तान में असंख्य मुसलमानों के साथ भी यही हुआ। सीमाओं पर शरणार्थियों का अनुमान से अधिक समूह एकत्रित था, विदेशों के सम्मुख यह वीभत्स सत्य वस्तुपरक दृष्टि से प्रस्तुत किया जाता तो

---

* भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् के सार्वजनिक जलसे में दिए गए भाषण से, १४ फ़रवरी १९५८

हमें कोई शिकायत नहीं थी किन्तु खेद यह है कि नवनिर्मित देश पाकिस्तान ने ससार के सम्मुख चित्र का एक ही पक्ष प्रस्तुत किया और भारत के विरुद्ध अनुचित प्रचार का अभियान आरंभ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम देशों को यह बात समझाई गई कि हिन्दुस्तान का विभाजन साम्प्रदायिक आधार पर हुआ है और अब हिन्दुस्तान केवल हिन्दुओं का देश है। उनको यह भी विश्वास दिलाया गया कि अब हिन्दुस्तान में जो मुसलमान शेष रह गए हैं उन्हें न तो नागरिक अधिकार प्राप्त है, न ही धार्मिक स्वतंत्रता। अब मुझे आपको यह बताते हुए हर्ष हो रहा है कि सांस्कृतिक संबंधों की भारतीय परिषद की स्थापना के तुरंत पश्चात्, परिस्थिति में नाटकीय परिवर्तन उत्पन्न हो गया है और इन सब देशों ने इस वास्तविकता को स्वीकार कर लिया है कि उनके यह संकुचित विचार और भ्रांतियां नितांत निराधार थीं। उन्होंने यह भी जान लिया है कि हिन्दुस्तानी सरकार केवल हिन्दुओं की नहीं है, यह सब हिन्दुस्तानियों की है।

मौलाना संसद में

शिक्षा, प्राकृतिक संसाधन और वैज्ञानिक शोध के मंत्रालय की अनुदान मांगों पर संसद में बहस

''चालीस वर्ष पूर्व मैंने अपने देश की सेवा में अपना जीवन समर्पित करने का संकल्प किया था। मैं १९०७ ई० की बात कर रहा हूँ जब मैं अट्ठारह या उन्नीस वर्ष का था... तबसे मेरा संपूर्ण जीवन खुला ग्रंथ है जो दुनिया के सम्मुख है। अब मेरी कोई इच्छा शेष नहीं है... मुझे कह लेने दीजिए कि जो मनुष्य निजी स्वार्थों से मुक्त हो जाता है वह असीम हो जाता है, बंधनमुक्त हो जाता है। ऐसे मनुष्य को हानि-लाभ की चिंता नहीं रहती। उसे कोई शस्त्र नहीं काट सकता क्योंकि उसे तभी तक आघात पहुंच सकता है जब तक वह स्वार्थों में लिप्त है।''

मौलाना संसद में *

जनाब, परसों बहस मेरे दोस्त आचार्य कृपलानी ने शुरू की थी। उन्होंने अपनी तक (भाषण) में इस बात पर ज़ोर दिया कि तालीम (शिक्षा) का जो सिस्टम (व्यवस्था) इस वक्त मु में जारी है वह नीचे से लेकर ऊपर तक दुरुस्त नहीं है और इसमें रिफोर्म्स (सुधार) होने चाहि जिस वक्त उन्होंने यह बहस शुरू की तो मुझे ख़याल हुआ कि गालिबन (संभवतः) वह यह चा हैं कि एजुकेशन मिनिस्टरी (शिक्षा मत्रालय) ने इधर रिफोर्म्स (सुधार) का जो क़दम उठाया है : अभी जनवरी में सैंट्रल एडवाइजरी बोर्ड आफ़ एजुकेशन (केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड) ने कार्यवाइयां की हैं, उस पर बहस करें और इस बारे में कुछ अपनी तजवीजें पेश करें। लेकि मुझको यह देखकर ताज्जुब हुआ कि उन्होंने यह कहा कि हमने एक कमीशन (आयोग) बिठ था युनिवर्सिटी एजुकेशन (विश्वविद्यालय शिक्षा) के लिए, फिर एक कमीशन बिठाया ग सेकेण्डरी एजुकेशन (माध्यमिक शिक्षा) के लिए और अब शायद चन्द दिनों के बाद एक कमी बिठाया जाएगा प्राइमरी एजुकेशन (प्राथमिक शिक्षा) के लिए। इससे मालूम हुआ कि गवर्न जिस ढंग पर एजुकेशन का कार्य कर रही है उसका उसे कोई आईडिया नहीं है। शायद उ मौका नहीं मिलता कि वह इन चीज़ों को पढ़ें, वरना उनका कहना कि अब एक कमीशन बिट जाएगा इब्तादाई तालीम (प्राथमिक शिक्षा) पर गौर करने के लिए कितना बेमानी (निरर्थक) क्योंकि जहा तक इब्तादाई तालीम (प्राथमिक शिक्षा) का ताल्लुक है, आज नहीं, आज से ' बरस पहले गवर्नमेन्ट यह फैसला कर चुकी है कि वह बेसिक पैटर्न की होगी। तमाम र गवर्नमेन्टों (राज्य सरकारों) ने यह चीज़ मंजूर कर ली है और इसी पर अमल कर रही हैं। अब सवाल था वह युनिवर्सिटी एजुकेशन (विश्वविद्यालय शिक्षा) और सेकेण्डरी एजुकेशन (माध्यि शिक्षा) का था। युनिवर्सिटी एजुकेशन से भी ज्यादा अहम सवाल था सेकेण्डरी एजुकेशन व क्योंकि हकीकतन (वस्तुतः) असली खराबी जो हमारे मौजूदा शिक्षण प्रणाली में है वह हम वहीं ढूंढनी चाहिए। ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने यह सिस्टम (प्रणाली) इसलिए जारी नहीं किया था मुल्क के अवाम को तालीम दी जाए। बल्कि इसलिए जारी किया था कि उनको खास तरह अंग्रेज़ी जानने वालों की अपने दफ्तर का कारोबार चलाने के लिए ज़रूरत थी। इसके लिए उन युनिवर्सिटियां कायम कीं। युनिवर्सिटी की तालीम कायम नहीं रह सकती थी जब तक सेकेण्डरी एजुकेशन (माध्यमिक शिक्षा) भी न हो और प्राइमरी एजुकेशन (प्राथमिक शिक्षा) न इसलिए सेकेण्डरी एजुकेशन की तालीम कायम की गई। लेकिन वह सिर्फ इसलिए कायम की थी कि युनिवर्सिटी में जाने का एक ज़रिया है, 'मीन्स' (साधन) है। यह नहीं सोचा गया कि ग के लाखों करोड़ों बाशिन्दे जो युनिवर्सिटी तालीम तक नहीं जा सकते उनके लिए सेके

---

* विपक्ष द्वारा उनके मत्रालय (शिक्षा, प्राकृतिक ससाधन और वैज्ञानिक शोध) के सम्बन्ध में लगाये गये अभियोग के उत्तर मे मौल आजाद ने यह भाषण २९ मार्च १९५४ को लोक सभा में दिया था।

एजुकेशन महज तालीम में एक 'मिन्स' (साधन) की जगह नहीं रखेगी, 'इन्ड' (साध्य) होगी और इसलिए सेकेण्डरी एजुकेशन का ढंग ऐसा होना चाहिए और इसमे ऐसे एलिमेन्ट्स (तत्त्व) होने चाहिए कि जो सौ में नब्बे आदमियों के लिए तालीम में 'इन्ड' (साध्य) का काम दें महज 'मिन्स' (साधन) का काम न दें। नतीजा इसका यह हुआ कि हमारी तालीम का पूरा सिस्टम गलत हो गया। बहरहाल सबसे ज़्यादा ज़रूरी चीज़ यह थी कि सेकेण्डरी एजुकेशन के मुताल्लिक (सम्बन्ध में) इन्क्वायरी (जांच) की जाये और इसके बाद सेकेण्डरी एजुकेशन को नए सिरे से आर्गेनाइज़ (व्यवस्थित) किया जाए। चुनांचे कमीशन कायम किया। नौ महीने के अन्दर उसने अपनी रिपोर्ट पेश कर दी। अब वह रिपोर्ट सेन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड (केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड) के सामने आयी। सेन्ट्रल एडवाइज़री बोर्ड ने नवम्बर में एक कमेटी क़ायम की कि वह इस रिपोर्ट पर गौर करे और गौर करने के बाद जनवरी में बोर्ड के जलसे के सामने अपनी सिफारिशें रखे। चुनांचे जनवरी में बोर्ड का फिर जलसा हुआ, उसके सामने वह सिफारिशें आईं। बोर्ड ने उनको मंजूर किया और मंजूर करने के बाद अपना प्रोग्राम बनाया। यह कह देना कि जहां तक एजुकेशन के रिफोर्म्स (शिक्षा सुधार) का ताल्लुक है, कुछ नहीं हो रहा ; यह बिल्कुल गलत और बेमानी है और यह भी एक आजकल फैशन हो गया है कि जो शख़्स खड़ा होता है, निहायत ही सस्ती सी बात सामने रख लेता है कि एजुकेशन का सिस्टम ठीक नहीं है, रिफोर्म्स होना चाहिए। लेकिन बातों के तोता-मैना बनाने से तो कुछ होता नहीं। गौर करना चाहिए कि रिफोर्म्स हो तो किस तरीके से हो। एजुकेशन मिनिस्टरी ने इस पर गौर किया और यह दावे से कहा जा सकता है कि जो प्रोग्राम उसने इस वक्त रिफोर्म्स का अपने सामने रखा है वही सही प्रोग्राम है और हमें स्टेट गवर्नमेन्टों (राज्य सरकारों) ने पूरी तरह से कॉपरेशन (सहयोग) दिया तो हम थोड़े अरसे के अन्दर सेकेण्डरी एजुकेशन को रिआर्गेनाइज (पुनर्व्यवस्थित) करेंगे। और इसके बाद जहां तक युनिवर्सिटी एजुकेशन का ताल्लुक है इसके लिए भी ज़रूरत थी कि कोई न कोई एजेंसी ऐसी कायम हो कि जिसके जरिये से रिफोर्म्स (सुधार) प्रेक्टिस में (कार्यान्वित) लाये जाए। चुनाचे आपको मालूम है कि युनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन मुकर्रर किया जा चुका है। वह काम शुरू कर दिया गया है और उम्मीद है कि जहां तक युनिवर्सिटी एजुकेशन का ताल्लुक़ है अब निहायत तेज़ी के साथ इस तरफ कदम उठेगा।

इसके बाद श्री पुरुषोत्तम दास टंडन ने तकरीर की। चूंकि एजुकेशन रिफोर्म्स (शिक्षा सुधार) का तज़किरा (चर्चा) शुरू हो गया था इसलिए उन्होंने भी कुछ अल्फाज़ इस बारे में कहे। लेकिन दरअसल (वस्तुतः) उनका असली मकसद (मुख्य उद्देश्य) वह नहीं था, इसलिए मैं भी इस पर ज्यादा तवज्जो नहीं करता। मैं उनसे भी कहूंगा कि जहां तक एजुकेशन रिफार्म्स का ताल्लुक़ है आप अपने दिमाग को तकलीफ न दीजिए। इसे दूसरों के लिए छोड़ दीजिए.......

श्री टंडन : (ज़िला इलाहाबाद पश्चिम) मगर दूसरे बहुत गलत सोच रहे हैं, छोड़ कैसे दूं।

मौलाना आज़ाद : इसे भी दूसरों पर छोड़ दीजिए। दूसरे मौजूद हैं जो गलती को पकड़ेंगे, इसके लिए आप नहीं हैं।

श्री अलबुराय शास्त्री : (ज़िला आजमगढ़.... पूर्व वजीरावलिया.... पश्चिम) यह आपका ग़लत ख्याल है।

मौलाना आज़ाद : बहरहाल वह हिन्दी के मसले (समस्या) पर और दरअसल उसके लिए वह तैयार हो कर आए थे। हिन्दी के मुताल्लिक मैं तसलीम (स्वीकार) करता हूँ कि यह एक अहम मामला है। कांस्टीट्यूसन (संविधान) में इसका भरोसा दिलाया गया है कि १५ साल के

बाद अंग्रेज़ी हटेगी और इसकी जगह हिन्दी जबान देवनागरी स्क्रिप्ट (लिपि) में आएगी हमारा फ़र्ज़ है कि हम इस पर गौर करें। मैं निहायत खुश होता अगर श्री टंडन हमें ब एजुकेशन मिनिस्टरी ने जो प्रोग्राम अपने सामने रखा है और कामों का जो एक नक्शा उसके मुताल्लिक़ उनकी क्या तजवीज है। वह अपनी कुछ तजवीजें पेश करते। ले अफसोस के साथ कहना पड़ता है कि जिस तरीके से उन्होंने इस बहस को शुरू किया, ही यह चीज़ बिल्कुल वाज़े (स्पष्ट) हो गई कि उनके सामने यह नहीं है कि वह कोई व (रचनात्मक) तजवीज़ पेश करें। पहले उन्होंने एजुकेशन मिनिस्टरी के ख़िलाफ़ अपने एक मुखालफाना (विरोधी) नक्शा बनाया और नक्शा बनाने के बाद वो अपना एक के चाहते हैं और इसका मेटिरियल (सामग्री) जमा करना चाहते हैं। ख़्वाह (चाहे) वह स ग़लत हो। चुनांचे मैं अभी आपको बतलाऊंगा कि उन्होंने क्या नक्शा बनाया। न बनाया कि इन एजुकेशन मिनिस्टर (शिक्षा मंत्री) के मुताल्लिक़ हमें मालूम है कि क असेम्बली (संविधान सभा) में जब बहस शुरू हुई थी तो वह हिन्दुस्तानी के हक़ (पक्ष चुनांचे अब भी एजुकेशन मिनिस्टर जो कुछ काम कर रहे हैं, जो कुछ मदद दे रहे हैं, वह लिए नहीं दे रहे हैं बल्कि हिन्दुस्तानी के लिए दे रहे हैं, यह उन्होंने नहीं ब

श्री टंडन : मौलाना मुझे माफ़ करें, अगर मैं उनसे कहूं कि जिस सुस्पष्टता के कहा था, आप ज़रा उसी सुस्पष्टता से बात कीजिए। मैंने यह नहीं कहा कि वह ि चाहते। मैंने तो कुछ सेन्स आप परपोर्सन (अनुपात) को सामने रख कर कहा था कि उ झुकाव है। महज गुस्से में अपना संतुलन खो मत दीजिए। धैर्य रखिये, और धैर्य रख कीजिए।

मौलाना आज़ाद : मेरे गुस्से की फिक्र मत कीजिए...... टंडन जी ने अभी यह मैंने यह नहीं कहा। मेरा मकसद यह नहीं था कि एजुकेशन मिनिस्टरी हिन्दी के लिए करती, हिन्दुस्तानी के लिए करती है बल्कि मेरा मकसद (अभिप्राय) यह था कि मिनिस्टरी का ज़्यादा झुकाव हिन्दुस्तानी की तरफ है। ठीक है, लेकिन मैं आपको चाहता हूं कि यह अज-सर-ता-पा (आद्योपान्त) ग़लत है। इसके लिए उन्होंने दलील (पेश की। आप यह बात देखें कि कहां तक ईमानदारी के साथ उन्होंने अपना नक्शा दलील में उन्होंने पहली चीज़ यह पेश की कि एजुकेशन मिनिस्टरी वर्धा की हिन्दुस्त सभा को मदद दे रही है। अब यह जाहिर है कि हिन्दुस्तानी प्रचार सभा के नाम में लफ़्ज़ नहीं है। हिन्दुस्तानी का लफ़्ज़ है। इसको एजुकेशन मिनिस्टरी मदद दे रही है, वालों के दिमाग़ पर यही असर पड़ेगा कि वाकई एजुकेशन मिनिस्टरी का झुकाव हिन्दु तरफ है क्योंकि वह हिन्दुस्तानी प्रचार सभा वर्धा को मदद दे रही है। मैं आपको बतला हूं कि इसके अन्दर एक पुरफरेब तख़ैयु (भ्रामक कल्पना) है। वाकया (स्थिति) क्या है, मैं बतलाता हूं।

श्री टंडन : डिप्टी स्पीकर साहब, मंत्री को मुझसे सबक लेना पड़ेगा कि शब्द कै चाहिए। पुरफरेब (धोखेबाज) का लफ़्ज़ मेरे लिए इस्तेमाल कर रहे हैं, ग़लत है। पुरफरेब रहे हैं।

मौलाना आज़ाद : बहस में पुरफरेब (भ्रामक) का लफ़्ज़ कहना हरगिज़ पार्लिय ज़बान के खिलाफ नहीं है। पुरफरेब के माने (अर्थ) यह है कि बहस में एक शख्स कह कि दूसरे आनरेबुल मेम्बर ने एक चीज को जिस रूप में पुट (प्रस्तुत) किया और पेश कि

साफ नहीं, पुरफरेब है। पुरफरेब के माने यह हैं कि ज़रा सफाई नहीं है और इसलिए मैं यह नहीं मानता कि इस लफ़्ज़ का कहना पार्लियामेन्टरी ज़बान के खिलाफ है। बहरहाल (फिर भी) मुझको इस लफ़्ज़ पर इसरार (आग्रह) नहीं है...... बहरहाल आप गौर कीजिए कि हिन्दुस्तानी प्रचार सभा जो है उसका मामला किस तरह मिनिस्टरी के सामने आया। यह सभा दरअसल गांधी जी ने बनाई थी। जैसा कल श्री टंडन जी ने बयान किया कि जब गांधी जी का हिन्दी साहित्य सम्मेलन से इख़तलाफ़ (विरोध) हुआ आप उससे अलग हो गए और उन्होंने एक सभा बनाई। डा० राजेन्द्र प्रसाद इसके चेयरमैन हुए, काका साहब कालेलकर और बहुत से दूसरे लोग इसके मेम्बर हुए। गांधी जी की ज़िन्दगी में ही जितने आदमी गांधी जी की तरफ देखने वाले थे वे इसके सदस्य थे। जब गांधी जी का इन्तकाल (स्वर्गवास) हो गया तो डा० राजेन्द्र प्रसाद ने इसकी मिटिंग बुलाई। एक यह सवाल पैदा हुआ कि इसको कायम रखा जाए या न रखा जाए। डा० राजेन्द्र प्रसाद की और दूसरे मेम्बरों की भी यही राय थी कि यह गांधी जी की यादगार है, इसको कायम रखा जाए। चुनांचे इसको कायम रखा गया। फिर इसके बाद इसका एक जलसा हुआ। उसमें यह सवाल उठा कि इसकी आमदनी का जरिया जो था वह बाकी नहीं रहा। अगर इसको कायम रखना है तो इसको मदद मिलनी चाहिए। चुनांचे डा० राजेन्द्र प्रसाद ने इस चीज़ पर गवर्नमेन्ट की तवज्जो दिलाई। मैंने पूछा कि हमें मालूम हो कि क्या इसकी योजना है और कितने रुपये की ज़रूरत है, तो एक स्कीम बनाकर पेश की गई थी, जिसके लिए बहुत ज़्यादा रुपये की ज़रूरत थी। कहा गया कि दिल्ली में इसका आफिस लाया जाए। इसके साथ एक प्रेस भी हो। जिसके माने थे कि कई लाख रुपये की नानरेकरिंग (अनावृत्ति) मदद की जाय और तकरीबन एक लाख रुपये की रेकरिंग (आवृत्ति) मदद की जाए। एजुकेशन मिनिस्टरी ने इससे इन्कार किया। लेकिन इससे उसने इत्तफ़ाक (सहमति) किया कि इसको कायम रखने के लिए जो ज़रूरी रकम हो गवर्नमेन्ट आफ इंडिया (भारत सरकार) उसको देने के लिए तैयार हो जाएगी। चुनांचे एक रकम मंजूर की गई। ये बात भी आप याद रखिये कि हालांकि इसका नाम अभी तक हिन्दुस्तानी प्रचार सभा है लेकिन प्रैक्टीकली (व्यवहार में) काम वह जो कुछ कर रही है हिन्दी के लिए कर रही है। चुनांचे वह रकम मंजूर की गई। अब मैं अपने दोस्त से पूछता हूँ कि डा० राजेन्द्र प्रसाद की निम्बत (संबंध) में उनकी क्या राय है। वह हिन्दी के विरोधी हैं या उसके हामी ? बहरहाल जिस चीज़ पर मैं आपका ध्यान दिलाना चाहता हूँ वह यह है कि यहां तक हिन्दी सभा का ताल्लुक है जो मदद उसको दी गई उससे यह नतीजा निकाल लेना कि एजुकेशन मिनिस्टरी का झुकाव हिन्दुस्तानी की तरफ है हिन्दी की तरफ नहीं, सही नहीं है। क्योंकि यह एक ऐसी बाडी (संस्था) है जो खास हालात में कायम की गई थी। समझा गया था कि यह गांधी जी की यादगार है। उन्होंने मरने से पहले यह कहा था कि मैं इसको हमेशा कायम रखूंगा चाहे मैं तन्हा ही रह जाऊं। इसलिए यह मुनासिब (उचित) नहीं समझा गया कि इसको खत्म किया जाए। और वह जो काम करती है हिन्दी के लिए करती है। हिन्दुस्तानी का सवाल नहीं है। तो मैं यह तवज्जो दिलाना चाहता था कि जो मेरे दोस्त ने यह ज़ोर दिया और यह नतीजा निकालना चाहा कि एजुकेशन मिनिस्टरी का झुकाव हिन्दुस्तानी की तरफ है, यह सही नहीं है...... इसके बाद फिर टंडन जी ने एक दूसरे आइटम का ज़िक्र किया और इस पर बहुत ज़ोर दिया वह यह कि शिबली एकेडमी को इस वर्ष साठ हज़ार रुपये की नॉनरेकरिंग ग्रांट (अनावृत्ति अनुदान) दी गई है। यह एकेडमी तीस-चालीस वर्ष से कायम है। यह सही है कि उसने जितनी किताबें शाये (प्रकाशित) की हैं उर्दू ज़बान में की

है और इसकी किताबों को गांधी जी ने पसंद किया था। इसकी सरपरस्ती की थी और व
आरटिकल (लेख) इसके मुताल्लिक लिखे थे। बहरहाल उसने उर्दू ज़बान में एक मुफ़ी
(लाभदायक) और कीमती काम किया है। चूँकि शिबली एकेडमी में जो लोग काम करते हैं व
कांग्रेस मूवमेन्ट (आन्दोलन) में शरीक थे तो कांग्रेस के लोगों से भी उनकी मुलाकात अ
मिलना-जुलना है। कुछ आठ महीने हुए कि वह बतौर एक डेपुटेशन के पंडित जवाहरलाल ने
के पास आए और उन्होंने अपनी एकेडमी की हालत बयान की और यह कहा कि पार्टीश
(विभाजन) के पहले उनकी ज्यादातर किताबें पंजाब और सिंध में जाती थीं अब वह बन्द हो ग
हैं। और रुपये की किल्लत (कमी) की वजह से भी बड़ा उलझाव पैदा हो गया है और अ
हालात यह पैदा हो गए हैं कि अगर इसको कोई फौरी (तुरंत) मदद नहीं मिलती है तो इस
हम बन्द करने पर मजबूर हो जायेंगे। उन्होंने फौरी मदद मांगी, यह नहीं कहा कि हमको रेकरि
ग्रांट (आवृत्ति अनुदान) दी जाए और हर वर्ष मदद की जाए। उन्होंने कहा कि हमारे शुमार अ
फिगर (आँकड़े) इस तरह के हैं। अगर हमको साठ हज़ार की मदद मिल जाए तो हम एडजे
कर लेंगे और यह सुसायटी कायम रह जायेगी। प्राइम मिनिस्टर (प्रधानमंत्री) ने एक चि
फाइनेंस मिनिस्टरी (वित्त मंत्रालय) को लिखी, एक चिट्ठी एजुकेशन मिनिस्ट्री को लिखी और य
खयाल जाहिर किया कि यह सुसायटी कायम रहे और इसी तरह काम करती रहे। यह अच्छी ब
नहीं होगी कि इस थोड़ी सी रकम की वजह से यह मजबूर होकर बन्द हो जाए। इसलिए इस प
गौर करना चाहिए। मिनिस्ट्री ने भी उस वक्त यह खयाल किया कि यह चीज़ बेहतर नहीं
अगर यह थोड़ी सी रकम इसको न दी गई तो यह सुसायटी बन्द हो जायेगी और पाकिस्तान य
इसका प्रोपेगेंडा करेगा कि पार्टिशन (विभाजन) के बाद अब हिन्दुस्तान की ऐसी हालत हो गई
कि वहां कोई इस तरह की सुसायटी ज़िन्दा नहीं रह सकती। तो मैंने भी इससे इत्तफाक कि
कि साठ हज़ार की एड (सहायता) नॉनरेकरिंग ग्रांट (अनावृत्ति अनुदान) लम्प सम (इकट्ठा)
उसको दी जाए।

अब मैं इस तरफ आपकी तवज्जो दिलाना चाहता हूँ और चाहता हूँ कि आप मामले प
ठंडे दिल से गौर करें। क्योंकि इस मामले का हमेशा के लिए फैसला होना चाहिए कि इस तर
की बातों में हमारा दिमाग किस तरफ जाता है। हालत यह है कि सैंट्रल गौरमेंट (केन्द्री
सरकार) करीब साढ़े चौदह करोड़ रुपया हर साल खर्च करती है। इस रकम में से जो f
एजुकेशन मिनिस्ट्री खर्च करती है अगर एक मरतबा साठ हज़ार रुपये की रकम उर्दू की ए
सुसायटी को दे दी गई तो क्या यह कोई ऐसी चीज़ है कि इस पर इस दर्जे शिकायत की ज
और इसकी इतनी मुखालफत की जाए। गौर करें कि हमारा दिमाग कितना तंग है कि इ
मुल्क की दूसरी ज़बान को अगर साठ हज़ार रुपया दिया गया तो हम इसको बरदाश्त नहीं क
सकते और इसकी हम शिकायत करते हैं।

उर्दू ज़बान किसी एक मजहबी ग्रुप की ज़बान नहीं है। जो लोग इसको बोलते हैं उन
हिन्दू भी हैं, मुसलमान भी हैं, ईसाई भी हैं। लेकिन मैं इसमें नहीं जाना चाहता। मान लीजि
कि सिर्फ मुसलमान ही उर्दू बोलते हैं गोया कि यह सही नहीं है। फिर भी आख़िर साढ़े च
करोड़ मुसलमान हिन्दुस्तान में बसते हैं; अगर ऐसी सुसायटी को जो उर्दू की एक कीमत
खिदमत (सेवा) अंजाम दे रही है एक मरतबा साठ हज़ार रुपया देते हैं तो यह कौन सी ऐस
चीज़ है जिसको इस कदर महसूस किया जाए कि यह इस्लामिक कलचर (इस्लामी संस्कृति) व
तरक्की के लिए किया जा रहा है। यह जो उन्होंने इसकी शिकायत की तो क्या इस वजह से f

उनको हिन्दी से मुहब्बत है। नहीं। हिन्दी से किसको इखतलाफ है। हिन्दी से मुहब्बत में और हिन्दी की तरक्की देने में तो सब एक राय हैं। तो वह इसलिए यह नहीं कहते कि उनको हिन्दी से मुहब्बत है बल्कि इसलिए कि वह नहीं देखना चाहते कि दूसरी कोई ज़बान आगे बढ़े। यह जजबा काम कर रहा है। अगर आप चाहते हैं तो ज्यादा से ज्यादा अपना कद ऊँचा कर लीजिए। लेकिन आप यह क्यों चाहते हैं कि दूसरा ठिगना हो जाए। अपने कद को ऊँचा करने का यह तरीका नहीं है कि दूसरों को ठिगना बनाया जाए। जहां तक हिन्दी का ताल्लुक़ है मैं आपको यकीन दिलाना चाहता हूँ कि कोई एक आदमी भी ऐसा नॉर्थ इंडिया (उत्तरी भारत) में नहीं है जो हिन्दी की तरक्की न चाहता हो या हिन्दी का मुखालिफ हो। जहां तक नार्थ इंडिया का ताल्लुक है जो लोग खुद हिन्दी नहीं जानते वह भी अपने बच्चों को हिन्दी पढ़ाते हैं। अगर हिन्दी की तरक्की के रास्ते में कोई रुकावट है तो मैं आपसे कहूँगा कि वह इस तरह के दिमागों की रुकावट है।

अभी सन् १९४९ की बात है कि मद्रास में एक सुसायटी तमिल (तामिल) ज़बान की इनसाइक्लोपीडियां (विश्वकोश) बना रही थी। उसने गौरमेन्ट आफ इंडिया से मदद के लिए दरख्वास्त (प्रार्थना) की। गौरमेन्ट आफ इंडिया ने ख्याल किया कि यह एक मुफ़ीद और अच्छा काम है और अस्सी हज़ार रुपया इसके लिए मंजूर किया। मुझे याद है कि उस वक्त क्या शोर मचा था और क्या-क्या कहा गया। अब यह चीज़ कि हमने तामिल ज़बान की इन्साइक्लोपीडिया के लिए अस्सी हज़ार रुपया दिया यह कोई ऐसी चीज़ नहीं थी कि जिस पर किसी को परेशानी हो जाती। लेकिन इसके अन्दर भी यही जज्बा था। हिन्दी की मुहब्बत नहीं बल्कि यह दूसरी ज़बानों को क्यों आगे बढ़ने का मौका दिया जाता है—चाहने हैं कि वह बाकी न रहें। इसके माने यह हैं कि आप हिन्दी की तरक्की नहीं चाहते। दूसरी ज़बानों की गिरावट चाहते हैं, यह जज्बा ग़लत है। वाकया यह है कि इस जज्बे की वजह से हिन्दी इस तेजी से तरक्की नहीं कर रही है जिस तेजी से उसको तरक्की करनी चाहिए। जो मुखालफत और साउथ में (दक्षिण) हो रही है उसकी तह में क्या चीज़ है। हमें देखना चाहिए कि हम हिन्दुस्तान की किसी भी ज़बान की मुखालफत न करें। हम हर ज़बान को फलते-फूलते देखना चाहते हैं। लेकिन हां इसके साथ-साथ हमको यह खयाल है कि हिन्दी हिन्दुस्तान की कौमी जबान है और हमारा फर्ज है और हर हिन्दुस्तानी का फर्ज है कि वह इस पर कायम रहे और वफादारी के साथ हिन्दी को ऊँचा करने की कोशिश करे। लेकिन यहां इस तरह की एटीट्यूड (दृष्टिकोण) अख्तयार की जाती है जैसी कि कल मेरे दोस्त ने अख्तयार की कि अगर किसी सुसायटी को साठ हज़ार की रकम दी गई तो उन्होंने इस बात पर खास तौर पर ज़ोर दिया कि यह सब इस्लामिक कल्चर के लिए किया जा रहा है। यह बिल्कुल गलत है। इसमें इस्लामी कलचर का कोई सवाल नहीं है। मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि आप मुझसे यह तवक्को (आशा) न रखें कि मैं लीपा-पोती या लल्लो-चप्पो की बातें करूँगा। लीपा-पोती की बातें वह करता है कि जिसके अन्दर स्वार्थ होती है। मुझसे यह भी खुश रहे, वह भी खुश रहे। मेरी मिनिस्ट्री न चली जाए। मेरा कोई स्वार्थ नहीं है। मैंने आज से चालीस वर्ष पहले : जब इन चारों तरफ बैठने वाले लोगों को पता भी नहीं था अपनी ज़िंदगी का प्रोग्राम मुल्क की खिदमत का बनाया था। यह मैं बात कह रहा हूँ सन् १९०७ की, जब मेरी उम्र १८-१९ वर्ष से ज़्यादा न थी। जब मैं बंगाल की रेवेल्यूश्नरी पार्टी (क्रांतिकारी दल) में शरीक हुआ था। उस वक्त से लेकर आज तक मेरी ज़िन्दगी एक खुली हुई किताब है जो दुनिया के सामने है। कोई ख्वाहिश (इच्छा) मेरे अन्दर नहीं है। जिन्दगी का

बड़ा हिस्सा खत्म हो गया। जो थोड़ा बाकी है वह न मालूम कब खत्म हो जाएगा। क्या चीज़ है जिससे मुझे गरज हो। मैं आपको बतलाना चाहता हूँ कि जब एक शख़्स ने गरज़ अपने अन्दर से निकाल दी तो वह बेपनाह (असीम) हो जाता है। बेपनाह आप मुझे नहीं समझें। बेपनाह का मतलब यह है कि ऐसे आदमी को कोई तलवार काट नहीं सकती क्योंकि हथियार की काट तो उस जिस्म (शरीर) पर चलती है, उस बॉडी (शरीर) पर चलती है कि जिसके अन्दर गरज़ हो, गरज़ की कमजोरी पर। अगर गरज़ नहीं है तो कोई उसको नहीं काट सकता, बल्कि मैं आपसे साफ-साफ कहूँगा कि हिन्दुस्तान पर, मुल्क पर जो मुसीबत आई 'टू नेशन थ्योरी' (द्विराष्ट्री सिद्धांत) और पाकिस्तान बनाने का पॉइंट आफ व्यू(दृष्टिकोण) और फिर पाकिस्तान के कारण। इस मुसीबत की जितनी जिम्मेदारी गुमराह मुसलमानों पर और मुस्लिम लीग पर है उतनी ही जिम्मेदारी इस तरह के दिमागों पर भी है........

इस तरह के दिमागों पर भी है क्योंकि आप इस तरह एक तंगदिली की जगह अख्तयार करते हैं कि दूसरी ज़बान के लिए कोई जगह नहीं है, दूसरी जमात के लिए कोई जगह नहीं है। दूसरों के हुकूक (अधिकारों) के लिए कोई जगह नहीं। तो कुदरती तौर पर उन लोगों को कि जो अलग होना चाहते हैं उनको मौका (अवसर) मिलेगा और वह एक्सप्लाइट (दुरुपयोग) करेंगे और कहेंगे ऐसे लोगों के हाथ हुकूमत कैसे दे सकते हैं। आप को मालूम है कि इस चीज़ का मैंने मुकाबला किया। मैंने कहा कि हिन्दुस्तान का हिन्दू दिमाग जो है, हिन्दू मांइड जो है वह इस तरह के दिमाग को रिप्रेजेंट (प्रतिनिधित्व) नहीं करता है। इसको गांधी जी रिप्रेजेंट करते हैं और वह लोग जो उनके साथ खड़े हैं। मैंने इस चीज़ पर मुसलमानों की तवज्जो दिलाई, मैं लड़ा, कई लाख मुसलमानों के दिमाग में इन्कलाब पैदा किया। लेकिन बहरहाल मैं इस मसले में जज्बात को कन्ट्रोल नहीं कर सका। इसलिए मैं आपसे कहूंगा कि इन चीज़ों में जब तक आप इस तरह एक तंग दिमाग बना रखेंगे आप अपने मक़सद को कामयाब नहीं कर सकते, बल्कि आप के मक़सद को रोज़-बरोज़ नुकसान होगा।

तो बहरहाल अब मैं कुछ थोड़ा वक्त आपका और लूंगा। इसके बाद सेठ गोविन्द दास जी ने तकरीर की। उन्होंने तकरीर करनी शुरू की कि हिन्दी के रास्ते में अब कोई रुकावट नहीं है मगर दो रुकावटें हैं। एक तो अंग्रेजी है और उन्होंने कहा कि जो लोग अंग्रेज़ी पसंद करते हैं मैं उनको नाजायज पैदा किया हुआ बच्चा समझता हूँ....इसके बाद उन्होंने कहा कि उर्दू। मेरी समझ में यह बात नहीं आई कि उर्दू का यहां ताल्लुक क्या है....मैं नहीं समझता कि उर्दू का क्या ताल्लुक था। एजुकेशन मिनिस्ट्री का जहां तक ताल्लुक है उसने उर्दू का सेक्शन कायम नहीं किया है हिन्दी का सेक्शन कायम किया है। जो उसका प्रोग्राम है वह हिन्दी के लिए है। उर्दू के लिए नहीं। उर्दू का क्या ताल्लुक...... अब मैं और वक्त नहीं लूंगा। मैं आपको यकीन दिलाऊं ताकि दो मिनट के लिए भी आप यह न समझें कि एजुकेशन मिनिस्ट्री ने अपना दिमाग़ बन्द किया है। उसका दिमाग़ खुला है, उसने हर कोशिश की है और आइन्दा भी करेगी। इसकी सलाह करने या उसका सुधार करने के लिए आप जो तजवीज पेश करेंगे वह उसको खुशदिली के साथ वेल्कम (स्वागत) करेगी। लेकिन आप से दरख्वास्त की जाती है कि अगर आपको बदगुमानियां पैदा हों, और चीज़े सुनाई पड़ें तो आप मेरे पास आएं, मैं दूर नहीं हूं। मैं इस हाल से पांच गज़ की दूरी पर बैठता हूँ, आप मुझसे मिल सकते हैं और पूछ सकते हैं कि मामला क्या है और मैं यकीन दिलाता हूँ कि जहां तक हिन्दी की तरक्की का ताल्लुक है एजुकेशन मिनिस्ट्री अपनी ड्यूटी (कर्तव्य) समझती है। वह इस ड्यूटी में कोताही नहीं करेगी।

यूनेस्को

अभिभाषण

"आधुनिक दुनिया का सबसे बड़ा अन्तर्विरोध यह है कि यद्यपि प्रत्येक राष्ट्र शांति का इच्छुक है और उसकी बात करता है किन्तु लगभग सभी सरकारें शांति बनाए रखने की तुलना में युद्ध की तैयारी पर कहीं अधिक धन व्यय करती हैं।"

यूनेस्को में भाषण *

मित्रो,

भारत सरकार और भारतीय जनता, भारतीय राष्ट्रीय आयोग तथा अपनी ओर से यूनेस्को के सार्वजनिक सम्मेलन के इस नवें सत्र में आपका स्वागत करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है। हमें इस बात की प्रसन्नता है कि हमारे निमंत्रण पर दिल्ली में इस सम्मेलन को आयोजित करने के हमारे प्रस्ताव को यूनेस्को ने स्वीकार कर लिया और इसमें भाग लेने के लिए समस्त संसार के प्रतिनिधि यहां एकत्रित हुए हैं। मैं आप को विश्वास दिलाता हूं कि स्वागतार्थ जो शब्द मेरे मुख से निकले है वह औपचारिकता मात्र नहीं है बल्कि गहरी और हार्दिक भावनाओं की अभिव्यक्ति हैं।

यह दूसरा अवसर है जब यूनेस्को एशिया में अपना सम्मेलन कर रहा है। यूनेस्को के सार्वजनिक सम्मेलन की तीसरी बैठक १९४८ में लेबनान में आयोजित हुई थी। यह बैठक हालांकि दिल्ली में हो रही है किंतु पूर्ण आशा है कि इसका प्रभाव क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होगा और संपूर्ण एशिया तथा विशेष रूप से दक्षिण पूर्वी एशिया के देश यूनेस्को के उद्देश्यों और कार्यक्रम से लाभान्वित होंगे।

हम थोड़े समय के लिए पीछे मुड़ कर देखें और कुछ दसाब्दियों पूर्व की दुनिया का अनुमान करें तो हमको यह मानना पड़ेगा कि इस प्रकार का सम्मेलन जो इन दिनों आयोजित हो रहा है, संभव नहीं था। उन दिनों संसार दो भागों में विभक्त था, एक तथाकथित श्रेष्ठ यूरोपीय संसार और दूसरे एशिया और अफ्रीका के दलित देश। यह विभाजन तो वर्तमान दसाब्दी में प्रथम महायुद्ध के पश्चात् इस दृष्टि से समाप्त हो गया है कि अब प्राच्य और पाश्चात्य के भेद के बिना दुनिया के समस्त देश एक साथ संयुक्त मंच पर एकत्रित हो सकते हैं। इस प्रकार का सम्मेलन जिसे सम्बोधित करने का सम्मान मुझे आज प्राप्त हुआ है पिछले युद्ध से पूर्व संभव नहीं था। उस समय हम निम्न जाति के थे, पराधीन थे। आज हम स्वतंत्र और समान अधिकार प्राप्त राष्ट्रों की समान बिरादरी के अंग हैं और केवल यही बात वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय प्रजाति को संभव बना सकती है। संसार ने व्यर्थ ही कष्ट सहन नहीं किया। युद्ध की पीड़ा से नवीन और उभरते हुए एशिया का जन्म हुआ है। इसी का फल है कि आज एक एशियाई राजधानी में यह तारक मंडली एकत्रित हुई है, जहां यूरोप और अमरीका के प्रतिनिधि एशिया और अफ्रीका के प्रतिनिधियों से पूर्व समानता के आधार पर संसार की समान समस्याओं पर विचार विनिमय करने के लिए मिल रहे हैं।

मै उन ऐतिहासिक परिस्थितियों से पूर्णतः अवगत हूं जिन्होंने भूतकाल में पाश्चात्य और प्राच्य के बीच वैमनस्य उत्पादक दीवार खड़ी कर दी थी और जो पूर्णतः हटी नहीं है। इसके अवशेष अब भी पाये जाते हैं जो तनाव तथा दुर्भावना के कारण हैं। परन्तु वह पुरातन

* नई दिल्ली में आयोजित यूनेस्को के ९वें सार्वजनिक सत्र में दिया गया भाषण, ५ नवम्बर, १९५६

दृष्टिकोण और मूल्यों का प्रभुत्व मानव के मस्तिष्क से विलुप्त हो चुका है जिन्होंने विभाजन भित्ति को खड़ा किया था और सदृढ़ बनाया था। अब यह बात स्पष्ट है कि देर या सबेर इन्हें वास्तविक रूप में आधुनिक और जनतांत्रिक मूल्यों के लिए स्थान रिक्त करना पड़ेगा। उपनिवेशवाद जो किसी समय पुरानी दुनिया का स्तम्भ और प्रतीक था अब इतना असम्मानित हो गया है कि वह लोग भी जो किसी न किसी रीति में इसको व्यवहार में लाते हैं इसके संबंध में क्षमाप्रार्थी हैं।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका ने विश्व शांति के हित में दो कार्य किए हैं। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् मुख्यतः राष्ट्रपति विलसन के आदर्शवाद के प्रभावाधीन 'राष्ट्र संघ' की स्थापना हुई थी। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने श्री चर्चिल और मार्शल स्टालिन के सहयोग से 'संयुक्त राष्ट्र संघ' के विचार का प्रायोजन किया था। राष्ट्रपति विलसन अपने देश से आगे थे जहां मानरो सिद्धांत के प्रभाव के अन्तर्गत पृथकतावादी दृष्टिकोण अब भी प्रचलित था इसीलिए संयुक्त राष्ट्र अमरीका इस संघ में सम्मिलित नहीं हुआ। परिणाम यह हुआ कि संघ के नेतृत्व का भार बरतानिया और फ्रांस पर पड़ा जो स्वयं उपनिवेशी शक्तियां थीं और शीघ्र ही सत्ता की राजनीति में संघ को अपने आधीन करना आरंभ कर दिया। इस विद्वत मंडली को यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि राष्ट्र संघ इस प्रकार शनैः-शनैः अपनी शक्ति खोता गया और अन्ततोगत्वा अंत को प्राप्त हुआ।

राष्ट्र संघ ने भी सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के समाधान के लिए विभिन्न समितियां और आयोग नियुक्त किए थे। किन्तु इस संघ का मुख्य बल राजनैतिक समस्याओं पर रहा। संयुक्त राष्ट्र संघ ने प्रारम्भ में ही इस बात का आभास कर लिया था कि वह अपने राजनैतिक उद्देश्यों में सफल नहीं हो सकता यदि वह सामाजिक और आर्थिक समस्याओं पर उचित ध्यान नहीं देता। इसी कारण से उसने अपने कार्यों को सम्पन्न करने के लिए विशिष्ट एजेंसियां बनाईं। उनमें से यूनेस्को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसका संविधान इस बात को स्पष्ट कर देता है कि समस्त तनाव मनुष्य के मस्तिष्क में जन्म लेते हैं। इसलिए मनुष्य के मस्तिष्क की शांति की सुरक्षा का उपाय किया जाना चाहिए। यही यूनेस्को का विशिष्ट परम उद्देश्य और दायित्व है।

यूनेस्को का जन्म लगभग ठीक १० वर्ष पूर्व ४ नवम्बर १९४६ को हुआ था और यह बात कहना समीचीन होगी कि इसके जीवन की प्रथम शताब्दी में इसके कार्यों का भी विवेचन किया जाए। इस प्रकार का सर्वेक्षण स्थिति के अनुकूल संक्षिप्त और सिंहावलोकन मात्र ही होना चाहिए। अतः यह इसके कार्यक्रमों के कुछ उज्ज्वल बिन्दुओं को ही प्रस्तुत कर सकता है। जैसा कि आप सब जानते ही हैं कि राष्ट्रों की असमानता को दूर करना यूनेस्को का एक मुख्य उद्देश्य है ताकि संसार भर के पुरुष और नारियां वास्तविक जनतंत्र के वातावरण में जीवन व्यतीत कर सकें। साथ ही संघ मानव मस्तिष्क की शांति की सुरक्षा को शक्तिशाली बनाने के लिए शिक्षा विज्ञान और संस्कृति को प्रसारित करने का भी प्रयत्न किया है।

यूनेस्को के कार्यक्रमों में मौलिक शिक्षा के उन कार्यक्रमों को प्राथमिकता और महत्ता प्राप्त है जो कई देशों में उसके नेतृत्व के अन्तर्गत अथवा उसकी प्रेरणा से आरंभ किए गए हैं। सारे संसार में इस बात की मान्यता बढ़ रही है कि शिक्षा का अर्थ केवल मस्तिष्क और बुद्धि को सुसंस्कृत बनाना ही नहीं है इसके अन्तर्गत समाज की सामाजिक और आर्थिक उन्नति के संदर्भ में सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास भी आता है। उस विचार का यह विस्तार जिसे पूर्व में प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम कहा जाता था मुख्यतः यूनेस्को द्वारा प्रारम्भ किए गए अध्ययनों का ही फल है। भारत में हम यूनेस्को के इन अध्ययनों से लाभान्वित हुए हैं और हमने सामाजिक शिक्षा का पांच

सूत्रीय कार्यक्रम निधारित किया है जिसका उद्देश्य सबके व्यक्तिगत और सामूहिक जीवन को समृद्ध करना है। यूनेस्को ने न केवल इन अध्ययनों का सूत्रपात किया है बल्कि प्रशिक्षण के कार्यक्रम चलाने के लिए कई सदस्य देशों की सहायता भी की है और अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर विशेषज्ञ भी दिए हैं। हम यूनेस्को के इस प्रयास को विस्मृत नहीं कर सकते कि इसने संसार के समस्त देशों में तमाम बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का प्रबंध किया है। यूनेस्को ने सदैव इस बात पर बल दिया है कि आर्थिक उन्नति शिक्षा के अधिक से अधिक प्रसार पर निर्भर है। इसीलिए उसने सदस्य राज्यों को इस बात की ओर प्रेरित करने का अत्यधिक प्रयास किया है कि वह शीघ्रातिशीघ्र ऐसे कार्यक्रमों को स्वीकार कर ले। उसके प्रस्तावित दो वर्षीय कार्यक्रम का एक मुख्य बिन्दु यह है कि दक्षिण अमरीका के देश यूनेस्को की प्रत्यक्ष सहायता लेकर ऐसी शिक्षा को प्रसारित करें।

यूनेस्को के सहयोग का दूसरा विशिष्ट महत्त्वपूर्ण क्षेत्र तकनीकी सहायता है जो वह अल्पविकमित और अविकसित देशों को प्रदान करती है। अपने कार्यक्रमों को रूपायित करने के माध्यम से यूनेस्को को विदित हुआ है कि अल्पविकसित और अविकसित देशों की परिभाषाएं निर्धारित अर्थ नहीं रखती हैं और जो सहायता प्रदान की जाए वह वास्तविक रूप से तभी प्रभावशाली होगी जब यह लेन-देन दोनों ओर से हों। हम भारत में विज्ञान और प्रविधि के विभिन्न क्षेत्रों में तकनीकी सहायता प्राप्त करते रहे हैं और हम शिक्षा और संस्कृति से संबंधित विशेषज्ञ सहायता के रूप में उन देशों को भेजते रहे हैं जिन्हें इसकी आवश्यकता थी। तकनीकी सहायता के इसी कार्यक्रम से जुड़ी हुई वैज्ञानिक और तकनीकी पाठ्यक्रम की पुस्तकें और उपकरण उपलब्ध कराने की यूनेस्को की एक योजना है जो कूपनों द्वारा सहायता प्रदान करती है। इस योजना से मुद्रा कानूनों की कुछ बाधाओं को दूर करने में सहायता मिली है जो मुद्रा विनियमन को आज की दुनिया में अत्यन्त कठिन बना देते हैं। मैं ऊसर भूमि की समस्याओं के अध्ययन की भी चर्चा करूंगा जिसका सूत्रपात वर्षो पूर्व किया गया था और जिसे अब एक महत्त्वपूर्ण परियोजना के रूप मे विकसित करने का प्रस्ताव है।

एक दूसरा क्षेत्र विभिन्न राष्ट्रों और भूखण्डों में सुन्दर सांस्कृतिक आदान-प्रदान के प्रचार-प्रसार का है जिसमें यूनेस्को का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गया है। अन्तर्राष्ट्रीय तनाव और वैमनस्य के मुख्य कारणो में से एक अज्ञान और पूर्वाग्रह है। एक शताब्दी से अधिक समय से यूरोपवासियों का विचार था कि सभ्यता का अर्थ केवल पाश्चात्य सभ्यता है। पाश्चात्य देशों के उच्च सैनिक बल को उच्च नैतिक और सांस्कृतिक पराकाष्ठा स्वीकार किया गया था। दो विश्व युद्ध के धक्के और शनैः-शनैः उपनिवेशवाद के ह्रास ने दुनिया के लोगों में समानता का भाव अधिक मात्रा में उत्पन्न करने में सहायता प्रदान की है। सर्वनिष्ट मानवता की यह भावना ठोस आधार तब तक प्राप्त नहीं कर सकती जब तक विभिन्न देशों के लोग एक दूसरे की संस्कृति को अधिक से अधिक न जानें और उसका आदर न करें। प्राचीन साहित्य के अनुवादों, चित्र पुस्तिकाओं का प्रकाशन, संगीत की रिकार्डिंग और दुनिया के विभिन्न लोगों के बीच सांस्कृतिक कर्मियों के आदान-प्रदान के द्वारा सांस्कृतिक अर्थापन का कार्यक्रम यूनेस्को की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रणालियों में से एक है। जिसके द्वारा राष्ट्रों के बीच सद्भावना स्थापित की जा सकती है। मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि निकट भविष्य के लिए एक विशाल परियोजना के रूप में इस कार्यक्रम को प्रस्तावित किया गया है।

इसी साध्य की प्राप्ति के लिए ही यूनेस्को इतिहास पढ़ाने की प्रणाली पर विचार कर रही

है। अधिकांश देशों में इतिहास राष्ट्रीय आत्मश्लाघा का बहुधा दूसरा नाम है। जो बात इसे अत्यधिक कुत्सित बना देती है वह यह है कि इस प्रकार की आत्मश्लाघा की अभिव्यक्ति साधारणतः दूसरे लोगों और राष्ट्रों के योगदान को नकारने और उनके अंत करने के द्वारा होती है। कुछ परिस्थितियों में तो दूसरे देशों और अन्य संस्कृतियों के प्रति घृणा का सक्रिय प्रचार भी किया जाता है। स्पष्ट है कि वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण उस समय तक उत्पन्न नहीं हो सकता जब तक बच्चों को उनके प्रारंभिक जीवन में दूसरे राष्ट्रों को निम्न कोटि का बताकर उनके अपने राष्ट्रों की उच्चता का पाठ पढाया जायेगा। अधिकांशतः इतिहासों ने अभी तक शत्रुता और संघर्ष के तत्त्वों पर ही बल दिया है। व्यक्तियों और राष्ट्रों के बीच होड़ पर बल देने पर ही इनकी दृष्टि रही हैं और इस बात पर ध्यान नहीं गया कि सहयोग ने ही मानव की अतिजीविका को संभव बनाया है, प्रतिस्पर्धा ने नहीं। यूनेस्को ने अपने प्रारम्भ काल से ही इस बात पर बल दिया है कि इतिहास के पठन पाठन को नया दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और इस संबंध में कदम उठाना चाहिए। मानव जाति की वैज्ञानिक और सांस्कृतिक इतिहास की परियोजना जब परिपूर्ण हो जाएगी तो दुनिया भर के स्त्री और पुरुषों के बीच अधिक सद्‌भावना उत्पन्न करने और मित्र-भाव जागृत करने में यह एक महत्त्वपूर्ण योगदान होगा।

युग-युगान्तर से हो रहे मानव सहयोग के विशाल अध्ययन के अतिरिक्त यूनेस्को ने कुछ विशिष्ट विचारों के अध्ययन का काम करना आरम्भ किया है, जो व्यक्तियों और राष्ट्रों में तनाव का कारण बनते हैं। नस्ली दर्प आज की मानवता के ललाट पर कलंक है। यूनेस्को सदैव नस्ली दर्प के विरुद्ध लड़ती रही है। इसके द्वारा प्रारम्भ किए गए अनुसंधानों से कई लोकप्रिय अन्धविश्वासों का खंडन हुआ है। संसार में इस बात का एहसास बढा है कि नस्ली श्रेष्ठता और हीनता का विचार वस्तुतः निराधार है किन्तु दुर्भाग्यवश दुनिया के कुछ भूखण्ड आज भी ऐसे हैं जहां नस्ली भेदभाव का प्रचलन है। यह बुराई जहां भी विद्यमान हो उसके विरुद्ध यूनेस्को को अपनी भरसक शक्ति द्वारा लड़ना चाहिए। राष्ट्रों के बीच अधिक सद्‌भावना प्राप्ति के अपने प्रयत्नों में यूनेस्को ने कुछ मौलिक सामाजिक और राजनैतिक चिंतनधाराओं के वैज्ञानिक अध्ययन का कार्य आरम्भ किया है। १९४७ में इसके मानवीय अधिकारों के विचार के अध्ययन का आयोजन किया था और इसके द्वारा मनुष्य के मौलिक अधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा को स्थापित करने में सहायता प्रदान की थी। इसके पश्चात् उसने जनतंत्र की अवधारणा के अध्ययन का कार्य आरम्भ किया था और सम्भवतः प्रथम बार जनतंत्र के आवश्यक तन्तुओं के लिए मिले-जुले प्रयास में साम्यवादी और पूंजीवादी देशों के विचार को एकत्रित करने में सफल हुई थी। इन अध्ययनों और अन्य अनुसंधानों के द्वारा वैमनस्य को दूर करने और उस प्रणाली की ओर संकेत करने में सहायता मिली है जिसमें विभिन्न विचारधाराएं समान परिभाषाओं के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त कर सकें।

मैं इस सूची में और अधिक बातें जोड़ सकता था किन्तु मैं आपको और अधिक थकाना नहीं चाहता था। इस अपूर्ण और सरसरी सर्वेक्षण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि चाहे यूनेस्को हमारी सारी आशाओं को पूर्ण न कर सका हो किन्तु इसकी सफलताए अत्यधिक हैं। हमारा उद्देश्य उच्च था और अब भी है और यह भी संभव नहीं है कि हमारे तमाम आदर्श तुरन्त पूर्ण हो जाएं। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि उद्देश्य प्राप्ति के मार्ग में पूर्वाग्रह की बाधाएं खड़ी हैं, अविश्वास और सबसे अधिक वित्तीय साधनों की कमी है और इसलिए इन परिस्थितियों मे यूनेस्को जो भी कर पायी उस पर असन्तुष्ट होने का कोई कारण नहीं है। यह आधुनिक काल का

विरोधाभास है कि हर राष्ट्र शांति का इच्छुक है और शांति की बातें करता है किन्तु लगभग सारी सरकारें शांति और स्थिरता के लिए व्यय किए जाने वाले धन में युद्ध की तैयारियों पर अधिक धन व्यय कर रही हैं। यूनेस्को का बजट केवल दस करोड़ डालर है। किन्तु जब भी हम इसकी तुलना उन हजारों करोड़ डालरों से करते हैं जो केवल एक देश सामरिक शस्त्र निमार्ण पर व्यय करता है तो हम आश्चर्य-चकित रह जाते हैं और यह सोचने पर विवश हो जाते है कि क्या संसार सामूहिक रूप से पागलपन में लिप्त हो चुका है ? यह बात भी विचारणीय है कि जब हम कहते हैं कि यूनेस्को का बजट दस करोड़ डालर है तो हमें यह भी याद रखना चाहिए कि इसका अधिकतर भाग शासनिक कार्यों पर व्यय हो जाता है। यह मैं जानता हूँ कि कोई संस्था उस समय तक नहीं चल सकती जब तक उसका प्रबंध करने वाले व्यक्ति न हों। किन्तु इस बात को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि प्रबंधात्मक कार्यों पर व्यय करने के पश्चात् यूनेस्को के पास उसके वास्तविक कार्यों के लिए जो भाग शेष रह जाता है वह बहुत कम है। यदि हमें नक्षत्रों को देखना है तो हमें निश्चय ही दूरबीन प्राप्त करनी चाहिए किन्तु दूरबीन में हमें इतना तल्लीन नहीं हो जाना चाहिए कि नक्षत्रों को देखना ही भूल जाएं। इसके पूर्व मैं कई अवसरों पर इस संबंध में सविस्तार विचार-विनिमय कर चुका हूं और यहां पिष्टपेषण करना नहीं चाहूंगा। मुझे विश्वास है कि यूनेस्को के समस्त सदस्य इस समस्या की महत्ता से पूरी तरह अवगत हैं और समान रूप से चिंतित हैं कि समस्त शासनिक व्यय को घटाने के लिए समस्त संभव उपाय किए जाएं।

आज मेरी चिंता का मुख्य कारण यूनेस्को के बजट का वह अंश नहीं है जो प्रशासनिक कार्यों पर व्यय होता है बल्कि संसार के बजट का वह अंश है जो यूनेस्को के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए व्यय किया जाता है। यह उद्देश्य क्या हैं ? यही न कि शिक्षा, वैज्ञानिक अनुसंधान और सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा संसार भर में मनुष्य को प्रतिष्ठावान बनाया जाना चाहिए। यूनेस्को का उद्देश्य राष्ट्रों और व्यक्तियों के बीच की उन असमानताओं को भी घटाना है जो आधुनिक जगत में अत्यधिक दृश्यमान हैं। यही समस्त राष्ट्रों का समान उद्देश्य है अतः इस समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक धन-राशि की पूर्ति समस्त राष्ट्रों को करनी चाहिए। परन्तु हम देखते हैं कि इस अनिवार्य कर्तव्य की समान स्वीकृति के होते हुए भी इस साध्य की प्राप्ति के व्यावहारिक उपाय कम ही दृष्टिगोचर होते हैं।

इस स्थिति का मुख्य कारण यह है कि आज शस्त्रों पर संसाधन अधिक व्यय किए जाते हैं जिसका कारण युद्ध का भय है। अतीत में भी इस प्रकार के टकराव का मुख्य कारण दूसरे के क्षेत्र पर अधिकार प्राप्ति और आर्थिक रहे हैं। विगत कालों में युद्ध बहुधा क्षेत्र, धर्म या जाति के कारण लड़े गए थे। किसी समय जीविका के लिए युद्ध हुए थे क्योंकि खाद्य पदार्थों की पूर्ति सीमित थी और जनसंख्या-वृद्धि संकट की स्थिति उत्पन्न कर देती थी। इस प्रकार जीविका के साधन जुटाने के लिए लोग एक देश से दूसरे देश में जाते थे। १८वीं और १९वीं शताब्दी में राष्ट्रीयता या भाषा के आधार पर यूरोप में युद्ध हुए थे। यूरोप से बाहर कई युद्ध हुए जो पाश्चात्य देशों की उपनिवेशवादी आकांक्षा के फल थे। शीघ्र ही संसार "सम्पन्न और विपन्न" राष्ट्रों में विभाजित हो गया था। इस उपनिवेशवादी संघर्ष का अंत प्रथम विश्वयुद्ध के रूप में हुआ।

आज की दुनिया में युद्ध के पूर्वकालिक कारण साधारणतः समाप्त हो गए हैं। वैज्ञानिक और प्राविधिक विकास के कारण आज कोई कारण नहीं है कि सब को सुखपूर्वक जीवन व्यतीत

करने के लिए पर्याप्त सामग्री प्राप्त न हो। यदि ससार की जनसख्या मे वृद्धि को सुव्यवस्थित कर दिया जाए और इसके लिए शिक्षा को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए, तो व्यक्तियो और राष्ट्रों के बीच संघर्ष के आर्थिक कारण दूर हो जाएंगे। उपनिवेशवाद भी अब कोई महत्त्वपूर्ण शक्ति नहीं है। संसार के अधिकांशतः भागों में यह प्रायः लुप्त हो चुका है। जहा यह विद्यमान भी है वहां भी इसके दिन लद चुके हैं। संसार के विभिन्न भूखण्डो में स्वराज्य के सिद्धांत की बढ रही मान्यता के कारण भौगोलिक और भाषाई आधारों पर युद्ध साधारणतः पुरानी बातें हो चुकी हैं।

मनुष्य यदि बुद्धिमत्ता से कार्य करे तो शांति के जितने अच्छे अवसर आज हैं इससे पहले कभी नहीं थे। परन्तु आज भी दुनिया का वातावरण तनाव, आशका, भय और घृणा से युक्त है। वर्तमान परिस्थितियों का मूल कारण फिर क्या है? मैं समझता हूं कि आप सब इस बात से सहमत होंगे कि इसका कारण विचारधारा है। द्वन्द्व आज लोगों के मस्तिष्क मे है, भौतिक वस्तुओं में नहीं। हमारे एक ओर पूंजीवादी और दूसरी ओर एक समाजवादी कैम्प है। यह दोनो कैम्प न केवल राष्ट्रों के आधार पर विभक्त हैं बल्कि कुछ सीमा तक वैचारिक टकराव व्यक्तियो को ही विभाजित करते हैं। प्रत्येक देश में हमें विरोधी कैम्प के समर्थक मिलते हैं जो वर्तमान संघर्ष को गृहयुद्ध का प्रारूप देते हैं और अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष का भी अंग बना देते हैं। अतः यह बात आश्चर्यजनक नहीं है कि वर्तमान संघर्ष से प्रत्येक पक्ष इतनी कटुता उत्पन्न करे। इसका आधार चूंकि विचारों के द्वन्द्व पर है अतः विचारों के आधार पर ही इस लड़ाई को लड़ा जाना चाहिए। इसलिए यूनेस्को इस द्वन्द्व की अनदेखी नहीं कर सकती। विचारों के इस सघर्ष को समाप्त करने और इसका समाधान खोजने तथा संसार के राष्ट्रों के सम्मुख उसे प्रस्तुत करना यूनेस्को का कर्तव्य समझता हूँ। यह वास्तविक समस्या है। इसका सामना हमें करना चाहिए। इसकी अनदेखी हम उसी स्थिति में कर सकते हैं जब हम जोखिम उठाने के लिए तैयार हो।

जहां तक सयुक्त राष्ट्र संघ और उसकी विशिष्ट एजेंसियों का संबध है हमें मानना पड़ेगा कि उनकी प्रतिबद्धता किसी भी विचारधारा से नहीं है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका और सोवियत यूनियन दोनों संयुक्त राष्ट्र सघ के संस्थापक सदस्य हैं। यूनेस्को में भी ऐसे सदस्य राष्ट्र हैं जो अनेकानेक विभिन्न विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं।

फिर संयुक्त राष्ट्र सघ और यूनेस्को से चीन को पृथक् रखने की सार्थकता क्या है? इसका आधार चिंतनधारा तो हो नहीं सकती क्योंकि सोवियत यूनियन, युगोस्लाविया और कई दूसरे कम्युनिस्ट राष्ट्र संघ यूनेस्को के सदस्य हैं। अतः चीन का अपवर्जन अन्यायपूर्ण भी है और बुद्धिमत्ता के विरुद्ध भी है। मैं जानता हूँ कि इस सबध में यूनेस्को सम्भवतः संयुक्त राष्ट्र सघ के निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा है किन्तु बात इतनी स्पष्ट है कि मैं नहीं समझता कि संयुक्त राष्ट्र संघ चीन को राष्ट्रों की बिरादरी में उसका उचित स्थान प्रदान करने में अधिक विलम्ब कर सकती है। स्थिति यह है कि चीन को मान्यता न देना सयुक्त राष्ट्र सघ के इस दावे को नकारना है कि वह वास्तविक विश्व-सगठन है क्योंकि चीन के अपवर्जन का अर्थ है कि मानवता का लगभग एक-चौथाई भाग उससे अपवर्जित है।

चीन की यूनेस्को की सदस्यता के सबंध मे जो भी तकनीकी आपत्तिया हों किन्तु उस प्रस्ताव पर किसी प्रकार की तकनीकी या अन्य प्रकार की आपत्ति नहीं हो सकती कि वह उन वैचारिक मतभेदों को दूर करने में पहल करे जिसने आधुनिक युग को विभाजित कर रखा है। वैचारिक समस्याएं इसके विशिष्ट सरोकार के क्षेत्र में आती है और इसके संविधान ने

मानव-मस्तिष्क में शांति के प्रतिरक्षक होने का दायित्व इसको सौंपा है। यूनेस्को इस कर्तव्य निर्वाह कैसे कर सकती है जब तक उन वैचारिक द्वन्द्वों का समाधान न खोज ले जो अ विश्व-शांति और मनुष्य के अस्तित्व के लिए ही संकट उत्पन्न कर रहे हैं। यूनेस्को का यह कर्तव्य होना चाहिए क्योंकि संयुक्त राष्ट्र की समस्त एजेंसियों में से केवल उसी का संबंध म मानसिकता की समस्या से है।

इसका समाधान खोजने के संबंध में प्रथम उपाय यह होना चाहिए कि वास्तविकता स्वीकार किया जाए। हमें खुलेमन और असंदिग्ध रूप से स्वीकार कर लेना चाहिए कि दे विचारधाराओं में किसी का भी संसार से विलोप नहीं किया जा सकता और न ही उन्हें पददलि किया जा सकता है। कोई भी मनुष्य जिस में लेशमात्र भी विवेक होगा क्षणिक मात्र को भी बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका और रूस में से कोई भी अ विरोधी के दृष्टिकोण को मान लेगा। वास्तविकता यह है कि विचारों में पूर्ण समानता न अव और न इससे पहले कभी रही है। शताब्दियों से विभिन्न देशों ने विभिन्न विश्वासों उ दृष्टिकोणों का अनुसरण किया है फिर आज धर्म और विश्वासों के विभिन्नता के समान वैचारिक मतभेदों को क्यों न स्वीकार कर लिया जाए।

आधुनिक पूंजीवादी समाज का विकास औद्योगिक क्रांति के पश्चात् हुआ है। इ मनुष्य की उत्पादन-क्षमता को अत्यधिक बढ़ाया है किन्तु वितरण की मूल समस्या का समा प्रस्तुत करने में यह विफल रहा है। इसीलिए नवीन समाधानों की मांग हुई और उनके फलस्व समाजवाद की विभिन्न शाखाएं उत्पन्न हुई। यूरोप के संबंध में कहा जा सकता है कि पूंजीवाद प्राचीन रूप पुरातन हो चुके हैं। संपूर्ण पश्चिमी यूरोप तीव्रगति से सामाजिक नियंत्रण उ कल्याणकारी विधि की ओर बढ रहा है। निजी कारखाने निश्चय ही वर्तमान हैं किन्तु वह नियंत्रण द्वारा आरोपित सीमाओं के भीतर कार्य करते हैं।

इस बात का प्रत्यक्ष अपवाद केवल अमरीका में ही परिलक्षित हो सकता है। ऐसा ज्ञात ह है कि अमरीकी महाद्वीप में ही पूंजीवाद का भविष्य उज्ज्वल है किन्तु यह बात सत्य है अमरीका में भी श्रम के शोषण पर आधारित पूंजीवाद के पूर्वकालिक और भद्दे रूपों में अ परिवर्तन आ चुके हैं फिर भी अमरीका में पूंजीवाद और निजी कारखानें अब भी शक्तिश और जीवन्त शक्ति हैं। और लोगों का बहुमत इस स्वरूप से सन्तुष्ट लगता है। जीवन- अत्यधिक उच्च हो गया है और लगभग संपूर्ण जनता को सुख-सुविधा का आश्वासन मिल है।

अमरीकी पूंजीवाद यदि शक्तिशाली है और विकसित हो रहा है तथा उसको परिव करने की इच्छा लोगों के मन में नहीं है और न इसकी संभावनाएं ही दृष्टिगोचर होती हैं, ठीक यही बात सोवियत व्यवस्था के संबंध में भी कही जा सकती है। रूस के लोगों को संकटों और समस्याओं का सामना करना पड़ा उसका समाधान उन्होंने केवल समाजवाद सूरत में ही ढूंढा। हमें यह याद रखना चाहिए कि ज़ार के शासन काल में रूसी जनता को जन का कोई वास्तविक अनुभव नहीं हुआ था। मतदान पेटियों से उनका परिचय लगभग शून्य और राजनैतिक अधिकारों और स्वातन्त्र्य को गुप्तचर विभाग का भय लगा रहता था। उ सोवियत व्यवस्था में राजनैतिक जनतंत्र के अभाव ने रूसी जनता के लिए कोई कष्ट उत्पन्न किया और सामाजिक तथा आर्थिक जनतंत्र की प्रस्तुति ने उनकी भाषाओं और विश्वासों

पूर्ति की। सोवियत व्यवस्था से उनकी वफादारी को देशभक्ति ने और अधिक सुदृढ़ किया। क्योंकि क्रांति के तुरन्त पश्चात् जो गृहयुद्ध प्रारम्भ हुआ उसमें विदेशी हस्तक्षेप होने लगा और जनमानस में सरकार विरोधी तत्त्वों के विदेशी शक्तियों से संबंध स्वीकृत हो गए। पिछले चालीस वर्षों में रूस की असाधारण उन्नति से ऐसा लगता है कि उसने उनके विश्वास को दृढ़ कर दिया कि समाजवाद के आधार पर ही अत्यधिक उन्नति हो सकती है। व्यक्तियों और घटकों में समाजवाद के पक्ष में उनके निर्णय में निःसंदेह छोटे-मोटे भेद और परिवर्तन हो सकते हैं किन्तु सोवियत यूनियन और पूर्वी यूरोप के कई देशों के जनसमूह ने उतनी ही निष्ठा से समाजवादी जीवन पद्धति को स्वीकार किया है जितना कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका के लोगों ने पूंजीवाद और स्वतंत्र व्यवसाय को स्वीकार किया है।

मैं इसके पूर्व कह चुका हूं कि चूंकि दोनों व्यवस्थाओं में संघर्ष वैचारिक है अतः इस द्वन्द्व का समाधान निकालने का प्रयत्न करने का यूनेस्को पर विशिष्ट दायित्व है। पहली बात तो यह है कि समाधान वैचारिक धरातल पर ही खोजा जाना चाहिए और इस मान्यता पर आधारित होना चाहिए कि दोनों व्यवस्थाएं उपस्थित हैं और रहेंगी। इसके अतिरिक्त हमें स्वीकार करना चाहिए कि प्रत्येक व्यवस्था को उस समय तक अपने दृष्टिकोण को प्रचारित करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए जब तक शांतिपूर्ण और अनुशासनबद्ध ढंग से ऐसा किया जाता है। यूनेस्को मताभिव्यक्ति की अत्यधिक स्वतंत्रता का समर्थक है और दोनों व्यवस्थाओं की ओर से इस संबंध में जो दावा किया जाता है वह यूनेस्को की भावना के पूर्णतः अनुकूल है। अतः अपने दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता तो होनी चाहिए किन्तु किसी भी व्यवस्था को हिंसात्मक अथवा तोड़-फोड़ की पद्धति अपनाने का अधिकार नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति सिद्धांततः स्वीकार करता है कि प्रत्येक राष्ट्र को अपने भाग्य का निर्णय करने का अधिकार है। इसका निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक देश को समाज और सरकार के स्वरूप का चयन करने का अधिकार है और इस संबंध में किसी अन्य देश को आदेश देने का अधिकार नहीं है। इस दृष्टिकोण को यदि एक बार संसार के महान राष्ट्रों ने बिना किसी मानसिक आरक्षण के स्वीकार कर लिया तो वह न केवल एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता की भावना रखेंगे बल्कि अनेक क्षेत्रों में एक दूसरे से सहयोग करेंगे।

मैंने दोनों कैम्पों के मित्रों से बात की है। वह मैंने जो कुछ कहा है उसकी सार्थकता को अस्वीकार नहीं करते किन्तु मुझे लगा कि प्रत्येक व्यवस्था के समर्थक इस बात से भयभीत हैं कि दूसरा पक्ष कहीं धोखे और विध्वंसात्मक पद्धति का उपयोग न कर रहा हो या न कर ले। यदि विचारधारा के आधार पर स्वतंत्र रूप से विचार-विनिमय के अधिकार को स्वीकार कर लिया जाए और इसकी अनुमति दे दी जाए तो इस प्रकार के भय और गलतफहमी के बहुत से कारण पारस्परिक वार्तालाप के द्वारा समाप्त हो सकते हैं और इस प्रकार धोखे से विध्वंसात्मक कार्यवाहियों के कारण आप ही आप समाप्त हो जाएगा। यदि कोई पक्ष इस तथ्य की अपेक्षा करके हिंसात्मक गुप्त कार्यप्रणाली का उपयोग करे तो इस बात को शीघ्र ही संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मुख प्रस्तुत होना चाहिए। और मेरे विचार में इस संबंध में संयुक्त राष्ट्र संघ को यह अधिकार होना चाहिए कि प्रत्यक्ष और स्वतंत्र विचार-विनिमय के संबंध में जो पारस्परिक समझौता हुआ है उसकी उपेक्षा करने वालों के विरुद्ध वह कार्यवाही कर सके।

पिछले दिनों में अन्य देश जिस कारण से सोवियत के प्रति आशंकित थे उनमें से एक कोमिंटर्न के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन की उपस्थिति थी। सोवियत राज्य की

स्थापना के प्रारम्भिक चरणों में यह बात निःसंकोच कही गई थी कि कम्युनिस्ट पार्टी विश्व-व्यापी क्रांति के लिए कार्य करेगी। ट्रोस्की का विचार था कि जर्मनी और दूसरे देशों में कम्युनिस्ट क्रांति का होना अनिवार्य है। परन्तु शनैः-शनैः सोवियत नेताओ और विशेषकर स्टालिन ने एक ही देश में समाजवाद के निर्माण की बात कहनी आरम्भ की। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय जब बरतानिया और संयुक्त राष्ट्र अमरीका सोवियत यूनियन के मित्र बन गए तो कोमिंटर्न का विसर्जन कर दिया गया। यह बात भी स्मरणीय है कि युद्ध के अंतिम चरण में स्टालिन ने चीन की कम्युनिस्ट पार्टी को मार्शल शियांग काईशेक से सहयोग करने का परामर्श दिया था। धीरे-धीरे यह चेतना विकसित हुई कि सोवियत यूनियन अपने नागरिकों के जीवन-स्तर को अत्यधिक उच्च बनाकर समाजवादी समाज के जो दृष्टान्त प्रस्तुत करेगा उससे साम्यवाद की अत्यधिक सेवा हो सकेगी। स्टालिन के देहान्त के पश्चात् तात्कालिक नेताओं ने निःसंदेह रूप से इस बात की घोषणा की कि किसी भी देश को अन्य देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है। यदि किसी देश में समाजवादी व्यवस्था स्थापित होगी तो वह उस देश की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रयासों के फलस्वरूप होगी। तात्कालिक रूसी नेताओं के इस समय के व्यवहार से दूसरे देशों के आन्तरिक मामलों में गुप्त रूप से कम्युनिस्ट हस्तक्षेप के भय का विचार मस्तिष्क से निकल जाना चाहिए।

हमें अब उस नवीन परिवर्तन पर विचार करना चाहिए जो पिछले दो-तीन वर्षों से सोवियत यूनियन में उत्पन्न हो रहा है। वहां विस्तृत परिवर्तन हुए हैं जिनसे आशा होती है कि वैचारिक टकराव का शांतिपूर्ण समाधान सम्भव है। कुछ समय पूर्व पाश्चात्य राजनैतिक जनतंत्र के समर्थक बहुधा इस बात की शिकायत करते दृष्टिगोचर होते थे कि रूस में स्वतंत्र रूप से विचार-विनिमय का अधिकार नहीं है और मत का निर्धारण ऊपर से दिए गए आदेश के अनुसार होता है। उनका कहना था कि यह बात केवल नागरिकों पर व्यक्तिगत रूप से लागू नहीं होती है बल्कि अन्य देशों की राजनैतिक शासन-पद्धति पर भी लागू होती है और उससे इन्कार नहीं किया जा सकता है। इस बात में औचित्य है और इस तथ्य के औचित्य को नकारा नहीं जा सकता। स्टालिन के काल में युगोस्लाविया और रूस में इस बात के आधार पर द्वन्द्व उत्पन्न हुआ था कि युगोस्लाविया साम्यवाद के अपने नमूने का चयन करना चाहता था। मार्शल टीटो का कहना था कि युगोस्लाविया को सोवियत पद्धति के अनुसरण की आवश्यकता नहीं है और वह विशिष्ट आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर समाजवाद की अपनी रूपरेखा तैयार कर सकता है। स्टालिन ने इस बात को स्वीकार नहीं किया और हम सब जानते हैं कि युगोस्लाविया कुछ वर्षों तक किस प्रकार रूस की शत्रुता और कटु आलोचना का शिकार होता रहा परन्तु इस संबंध में सोवियत दृष्टिकोण में अब प्रत्यक्ष परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। रूस की कम्युनिस्ट पार्टी की पिछली कांग्रेस में रूसी नेताओं ने निःसंकोच रूप से इस बात को स्वीकार किया था कि समाजवाद के विभिन्न आधार हो सकते हैं। इससे हमने देखा कि रूस और युगोस्लाविया के बीच का द्वन्द्व समाप्त हो गया। पोलैण्ड में घटित तात्कालिक घटनाएं पुनः इस दृष्टिकोण की पुष्टि करती हैं कि रूसी नेता अब इस बात के पक्ष में हैं कि अन्य देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों को आदेश देना अनावश्यक है। संसार के सब प्रगतिशील व्यक्तियों ने दुखपूर्वक इस बात को महसूस किया कि अतीत में रूस में समाजवादी व्यवस्था का अर्थ समझा गया लोगों के जीवन पर नियंत्रण करना और व्यक्ति की स्वतंत्रता को अपहरित करना। इसमें कोई शंका नहीं कि रूस के लोगों को राजनैतिक स्वतंत्रता और अपने नागरिक अधिकारों का कोई पूर्व अनुभव नहीं था।

इसलिए यह बात सराहनीय है कि रूसी नेता वर्तमान व्यवस्था को जनतांत्रिक बनाने का प्रयास कर रहे हैं। रूस में औद्योगिक और आर्थिक जनतन्त्र पहले से ही है। किन्तु वह दिन रूस और समस्त संसार के लिए अत्यन्त हर्षोल्लास का होगा जब अपनी समस्त सफलताओं के साथ वहां व्यक्ति की स्वतंत्रता और राजनैतिक जनतंत्र की स्थापना भी होगी। मैं समझता हूं कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लि सोवियत रूस इस दिशा में ठोस कदम उठा रहा है। इसलिए आवश्यक और उचित है कि जनमत इस परिवर्तन का स्वागत करे और इस प्रकार से इसका प्रोत्साहन करे। यह एक मानवीय कर्तव्य है कि लोग अपने मतों की अभिव्यक्ति विभिन्न पद्धतियों से निःसंकोच रूप से करें। चूंकि इससे किसी न किसी रूप में स्वतन्त्रता और जनतन्त्रता को बल मिलता है। इन दोनों व्यवस्थाओं ने इस तथ्य को स्वीकार कर लिया है कि दोनों साथ-साथ रह सकते हैं और पारस्परिक सहिष्णुता को प्रदर्शित करने को तत्पर है तो इसका शीघ्रतम परिणाम यह होगा कि यह एक दूसरे के निकट आ जाएंगे और इनमें पारस्परिक सद्भावना बढ़ेगी। एक बार जब पारस्परिक वैमनस्य और आशंकाग्रस्त स्थिति समाप्त हो जायेगी तो प्रत्येक व्यवस्था के अनुयायी दूसरे के अनुभवों से लाभान्वित हो सकते हैं। एक दूसरे से अधिक से अधिक परिचय प्राप्त करने के कारण पारस्परिक संकट भी बढ़ेगा। मैं जैसा कि अभी निवेदन कर चुका हूं, इनमें से कोई व्यवस्था समाप्त होने वाली नहीं हैं और फिर दोनों के बीच के मतभेद भी उपस्थित रहेंगे। किन्तु यह मतभेद पर्याप्त मात्रा मे कार्यपद्धति और प्राविधि में है तथा मानवता और संस्कृति के उच्च मूल्यों में नहीं है जो तीव्रता से सम्पूर्ण मानवजगत के लिए एक जैसे हो रहे है।

यूनेस्को का यह विशिष्ट दायित्व है कि वह दो ऐसी व्यवस्थाओं के बीच पारस्परिक सद्भावना और सहिष्णुता पैदा करने का प्रयत्न करे जिनकी शत्रुता मानवीय कल्याण के लिए घातक है और इस दिशा में काम करे कि वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के समाधानों तक भी पहुंच सकता है।

एक बार युद्ध का भय और पारस्परिक संदेह का अन्त हो जाए तो वह भारी धन-राशि जो आज सामरिक अस्त्र-शस्त्र बनाने के काम में व्यय हो रही है, यूनेस्को के रचनात्मक कार्यों में उपयुक्त हो सकती है। यही इस संस्था का वास्तविक कार्य है। युद्ध और मृत्यु से नितान्त रिक्त संसार में ही यूनेस्को से विश्वव्यापी आधार पर शिक्षा, स्वास्थ्य और जीवन-स्तर को उन्नत बनाने की आशा की जा सकती है जिसका वादा इस संस्था ने संपूर्ण विश्वास के साथ अत्यन्त साहसपूर्वक किया है।

मैं यह अभिलेख जब लिपिबद्ध कर चुका था तो अकस्मात् मिस्र से युद्ध की सूचना प्राप्त हुई। इस त्रासदी का प्रभाव इतना भयंकर है कि मैं इसकी चर्चा किए बिना यहां नहीं रह सकता। अभी कुछ क्षण पहले मैंने यह आशा व्यक्त की थी कि युद्ध के पुरातन कारण जो अधिकांशतः भूभागीय, धार्मिक और राष्ट्रीय समस्याओं से संबंध रखते थे वे इस आधुनिक युग में उपस्थित नहीं रहे हैं। किन्तु अब मैं अत्यन्त दुखःपूर्वक इस बात को स्वीकार करता हूं कि वह मेरी बुद्धि का भ्रम था। पिछले दिनों मिस्र में जो घटनाएं घटीं उनसे ज्ञात होता है कि हम अब तक पुराने तरीकों और पुरातन रीतियों पर चल रहे हैं और अपने स्वप्नलोक तक पहुंचने के लिए हमें अब भी एक लम्बी यात्रा करनी है।

यूनेस्को का राजनैतिक समस्याओं से प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। किन्तु हम इनकी उपेक्षा इसलिए नहीं कर सकते हैं कि यह हमारी अभिरुचि के कार्यों और विशेष रूप से विश्व-शान्ति और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना से संबद्ध कार्यों को प्रभावित करते है। मै अत्यन्त विनम्रता से

निवेदन करूंगा कि शीघ्रातिशीघ्र गंभीरता पूर्वक इस समस्या पर विचार किया जाए। यह समस्या है क्या? इस्राइली सेना ने मिस्री सीमा पार करके इस देश पर आक्रमण कर दिया और इंगलिस्तान तथा फ्रांस चुनौती देकर काहेरा पर चढ़ दौड़े। मैं आपसे पूछता हूं कि इस दुःखदायक परिवेश में संयुक्त राष्ट्र संघ की भूमिका क्या है? यह बात मेरे गले नहीं उतरती कि इंगलिस्तान और फ्रांस जैसे दो बड़े राष्ट्रों को जो यूनेस्को के संस्थापक सदस्य भी हैं मिस्र के विरुद्ध यह कदम उठाना चाहिए था। ऐसा ज्ञात होता है कि जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ और सुरक्षा परिषद का अस्तित्व ही नहीं है। यहां तक कि संयुक्त राष्ट्र संघ के उस प्रभावशाली प्रस्ताव को भी पारित नहीं होने दिया गया जो संभवतः इस समस्या के निवारण का समाधान खोजने में सहायक होता। इस स्थिति को देखकर यह दुखद आभास होता है कि आज भी विश्व-शांति और मानव जाति के भविष्य को अपनी संकुचित राष्ट्रीय और व्यापारिक हितों के सम्मुख निम्न कोटि का समझा जा रहा है और इस बात को महसूस करने के पश्चात् मैं सोच रहा हूं कि इन परिस्थितियों में यूनेस्को के कार्यों का अर्थ क्या है? हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे बिना नहीं रह सकते कि अभी उस मानसिकता को उत्पन्न करने में सफल नहीं हो सका है जिसके फलस्वरूप मनुष्य के हृदय में तीव्र प्रेमभाव और आसक्ति उत्पन्न हो और जिसके बिना समस्त प्राविधि और वैज्ञानिक प्रगति एक भयंकर तलवार के समान है जो हमारे सिरों पर लटक रही है। इसके लिए पुरुषों और स्त्रियों के मन में उस विख्यात "शांति की सुरक्षा को स्थापित करने के लिए हमें अपने प्रयासों में और बृद्धि करनी चाहिए जो अब तक हम से बहुत दूर है और इसकी पूर्ति के लिए इस महान संस्था का जन्म हुआ था। यूनेस्को को संकट के क्षण में भी मानवता का अन्तःकरण बन जाना चाहिए नहीं तो यह मानव-कल्याण के लिए क्रियात्मक शक्ति के रूप में काम करने में विफल रहेगा।

हिन्दुस्तान छोड़ो

भारत की स्वाधीनता

'मैं समझता हूँ कि पन्द्रह मिनट से अधिक मैं नहीं सोया हूंगा कि किसी ने मेरे पैर हिलाए। मैंने आँखें खोलीं तो देखा कि भोलाभाई देसाई के सुपुत्र धीरूभाई देसाई हाथों में कागज़ का एक पत्रा पकड़े खड़े हैं। धीरूभाई के बताने के पूर्व ही मैं समझ गया कि बंबई का पुलिस आयुक्त मेरी गिरफ्तारी का वारंट लाया है।''

हिन्दुस्तान छोड़ो *

कार्यकारिणी समिति का प्रस्ताव प्रकाशित हुआ तो पूरे देश में बिजली की एक लहर दौड़ गई। लोगों ने इस पर विचार नहीं किया कि इस प्रस्ताव के क्या परिणाम निकल सकते हैं। उनको तो बस यह दिखाई पड़ रहा था कि अन्ततोगत्वा कांग्रेस बरतानिया को हिन्दुस्तान से निकालने के लिए जन आंदोलन प्रारम्भ कर रही है। जनता और सरकार दोनों ही अत्यन्त शीघ्रता से इस प्रस्ताव "हिन्दुस्तान छोड़ो" के नाम से प्रचारित करने लगे। कार्यकारिणी समिति के अनेक सदस्यों के समान जनता भी गांधी जी के प्रति अविच्छिन्न श्रद्धा रखती थी और उसे विश्वास था कि महात्मा जी ने कोई ऐसी योजना सोच रखी है जो सरकारी व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर देगी और वह परिणामतः समझौता करने पर विवश हो जायेगी। मैं यहां इस बात को स्वीकार करना चाहता हूँ कि कुछ व्यक्ति ऐसे भी थे जो सोचते थे कि गांधी जी हिन्दुस्तान को किसी जादू के द्वारा या ऐसे उपायों से स्वतन्त्रता दिला देंगे जो मानवीय बुद्धि से परे हैं। इसलिए वह आवश्यक नहीं समझते थे कि तुरन्त इसके लिए कोई विशेष प्रयास करें। प्रस्ताव पारित करने के पश्चात् कार्यकारिणी समिति ने यह निर्णय किया कि ये देखेंगी कि सरकार पर इसका क्या प्रभाव पड़ना है। यदि सरकार ने मांगों को स्वीकार कर लिया या कम से कम समझौता करने की दृष्टि अपनायी तो आगे बातचीत के लिए संभावना बनी रहेगी और यदि इसके विपरीत सरकार ने मांगों को ठुकरा दिया, तो गांधी के नेतृत्व में उसके विरुद्ध एक आन्दोलन प्रारम्भ किया जायेगा। मुझे इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं था कि सरकार यह बात सहन न करेगी कि उसको डरा-धमका के बातचीत की जाये। जो घटनाएं घटित हुईं उन्होंने मेरे इस अनुमान को प्रमाणित कर दिया।

वर्धा में विदेशी पत्रकारों की भीड़ लग गई थी, इन्हें कार्यकारिणी समिति का निर्णय जानने की अत्यधिक उत्सुकता थी। पन्द्रह जुलाई को गांधी जी ने एक पत्रकार सम्मेलन बुलाया। एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा कि यदि आन्दोलन प्रारम्भ किया गया तो वह बरतानिया सरकार के विरुद्ध एक अहिंसात्मक क्रांति होगा।

प्रस्ताव की स्वीकृति के पश्चात् गांधी जी के सचिव महादेव देसाई ने (कुमारी स्लेड) मीरा बहन से कहा कि वायसराय से मिलकर इन्हें प्रस्ताव के उद्देश्य का स्पष्टीकरण करना चाहिए। कुमारी स्लेड बरतानिया निवासी एक जल-सेनानायक की बेटी थी किन्तु उन्होंने गांधी जी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर भारतीय जीवन-पद्धति ग्रहण कर ली थी। वह साधारणतयः मीरा बहन कहलाती थी और गांधी जी के घनिष्ठतम श्रद्धालुओं में से थी और उनके आश्रम में कई

* यह लेख मौलाना की पुस्तक **भारत की स्वाधीनता** का एक अध्याय है। यह पुस्तक उनके मरणोपरान्त प्रकाशित हुई। पुस्तक की लिखी गई अपनी प्रस्तावना मे हुमायू कबीर ने लिखा है कि मौलाना को अपनी आत्मकथा लिखने के लिए तत्पर करने मे उन्हे अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पडा। कबीर का यह भी कहना है कि अपनी मृत्यु से कुछ दिन पूर्व उन्होने सम्पूर्ण पाण्डुलिपि को स्वीकृति प्रदान की थी। कबीर के कथनानुसार मौलाना की इच्छा थी कि पुस्तक के तीस पृष्ठो को उनके देहावसान के तीस वर्ष पश्चात् जनता के सम्मुख लाया जाए। परिणामत तीस पृष्ठो को १९८८ मे प्रकाशित किया गया।

वर्ष रह चुकी थी। उनसे यह भी कहा गया कि वे वायसराय की प्रस्तावित आन्दोलन के चरित्र और उसकी कार्य-प्रणाली को समझाने का प्रयास करें। मिस स्लेड ने वायसराय से मिलने के लिए वर्धा प्रस्थान किया और भेंट करने का निवेदन किया। वायसराय के निजी सचिव ने उत्तर दिया कि गांधी जी विद्रोह की बातें करते है इसलिए वायसराय से मिल नहीं सकते। उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि सरकार युद्धकाल में किसी प्रकार के विद्रोह को सहन नहीं कर सकती, चाहे वे हिंसात्मक हों या अहिंसात्मक। उन्होंने यह भी कहा कि सरकार किसी ऐसे दल के प्रतिनिधि से मिलने और वार्तालाप करने के लिए तत्पर नहीं है जो इस प्रकार की बातें करता है। इस अस्वीकृति के पश्चात् मीरा बहन वायसराय के निजी सचिव से मिलीं और उनसे विस्तार से बातचीत की। उस समय मैं देहली में था। उन्होंने इस बातचीत के विवरण से मुझे अवगत कराया, फिर वर्धा वापस गयीं और गांधी जी को इस भेंट का वृत्तांत सुनाया।

तत्पश्चात् महादेव देसाई ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया कि लगता है कि गांधी जी के संबंध में कुभ्रान्तियां उत्पन्न हो गई हैं। यह कहना उचित नहीं है कि गांधी जी ने बरतानिया के विरुद्ध खुले हिंसात्मक विद्रोह का निर्णय किया है। मुझे कहना पड़ता है कि महादेव देसाई के इस वक्तव्य पर मुझे कुछ आश्चर्य भी हुआ। वास्तविकता यह है कि 'अहिंसात्मक क्रांति' की परिभाषा जवाहरलाल नेहरू ने प्रचारित की थी और फिर जो अहिंसात्मक क्रांति की बातें करने लगे थे। संभव है कि उनके मन में इसका कोई विशिष्ट अर्थ रहा हो, किन्तु जनसाधारण ने उनके इस वक्तव्य का अभिप्राय यह समझा था कि कांग्रेस ने अब निर्णय कर लिया है कि वह हिंसा के अतिरिक्त हिन्दोस्तान में बरतानिया सरकार को विवश करने के समस्त उपयुक्त उपाय करेगी ताकि वह सत्ता से वंचित हो जाये। मैं कह चुका हू कि मैंने पहले से अनुमान कर लिया था कि अंग्रेज पर हमारे निर्णय का क्या प्रभाव पड़ेगा और मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ जब वायसराय ने गांधी जी या उनके प्रतिनिधि से मिलना अस्वीकार कर दिया। कार्यकारिणी समिति के निर्णयानुसार १७ अगस्त १९४२ ई० को अखिल भारतीय कांग्रेस समिति का अधिवेशन स्थिति पर विचार करने के लिए बंबई बुलाया गया।

१९ जुलाई से ५ अगस्त तक मेरा पूरा समय देश के विभिन्न भागों के कांग्रेसी नेताओं से भेंट करने में बीता। मैं उनके मन में बैठा देना चाहता था कि यदि सरकार ने हमारी मांगें मान लीं या कम से कम हमें काम करने का अवसर दिया तो आंदोलन चलाने में गांधी जी के निर्देशों का दृढ़ता से पालन किया जायेगा। यदि सरकार ने गांधी जी को बंदी बना लिया तो जनता को अधिकार होगा कि सरकार की ओर से की गई हिंसा का सामना करने के लिए जो कार्यप्रणाली उचित समझे अपनाए, चाहे तो प्रणाली हिंसात्मक हो या अहिंसात्मक। जब तक नेता स्वतंत्र हैं और अपने कर्तव्यों का निर्वाह कर सकते हैं तब तक देश में जो कुछ होगा वह उसके उत्तरदायी होंगे। परन्तु यदि सरकार उनको बन्दी बना लेती है तो इसके परिणामों का दायित्व उसी पर होगा। इन निर्देशों को गुप्त रखा गया था और उनका प्रचार कभी नहीं किया गया। इस समय की परिस्थिति का जो मानचित्र मेरे सम्मुख था वह यह था कि बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रांत, बम्बई और दिल्ली पूर्णतया तत्पर हैं और वहां आंदोलन में तीव्रता और शक्ति होगी। आसाम उस समय बरतानिया की सामरिक गतिविधियों का केन्द्र था और सैनिक पदाधिकारियों और सिपाहियों से भरा पड़ा था। इसलिए वहां किसी प्रकार का व्यावहारिक कार्यक्रम चलाना संभव ही नहीं था। परन्तु आसाम जाने के समस्त मार्ग बंगाल और बिहार से जाते थे, इसलिए इन दोनों प्रांतों में कार्यक्रम की महत्ता दुगुनी हो गई। शेष प्रांतों में अनुकूल वातावरण उत्पन्न

करने का मैंने अत्यधिक प्रयास किया किन्तु इस बात को स्वीकार करता हू कि वास्तविक स्थिति की रूपरेखा मेरे सम्मुख स्पष्ट नही थी।

वायसराय ने मीरा बहन से मिलना अस्वीकार कर दिया तो गांधी जी ने महसूस किया कि सरकार आसानी से झुकने वाली नहीं है। इस बात से उनके विश्वास को धक्का लगा। किन्तु अब भी उनको विश्वास था कि सरकार कोई कठोर कार्यवाही नही करेगी। उनका विचार था कि अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन के पश्चात् कार्यक्रम को स्थापित करने के लिए पर्याप्त समय मिल जायेगा और वह शनैः-शनैः आन्दोलन की गति को तीव्र कर सकेंगे। मै उनके इस भ्रम को उचित नही समझता था। २८ जुलाई को मैंने उनको एक विस्तृत पत्र में लिखा कि सरकार पूर्णतया तत्पर है और बंबई में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति अधिवेशन के तत्पश्चात् कोई कार्यवाही करेगी। गांधी जी ने उत्तर दिया कि निष्कर्ष निकालने मे मुझे उतावली से काम नहीं लेना चाहिए। वो भी परिस्थिति का निरीक्षण कर रहे हैं और उन्हें अब भी विश्वास है कि कोई न कोई उपाय अवश्य निकल आएगा।

३ अगस्त को मैंने कलकत्ते से बम्बई के लिए प्रस्थान किया। मुझे पूर्ण विश्वास तो न था किन्तु मन यह कहता था कि मैं कलकत्ते से एक दीर्घ काल के लिए अलग हो रहा हू। मुझे इस बात की भी सूचनायें प्राप्त हुई थीं कि सरकार ने सभी प्रकार के प्रबंध कर लिये हैं और इसका संकल्प है कि प्रस्ताव पारित होते ही समस्त नेतागण पकड़ लिये जाए।

कार्यकारिणी समिति की बैठक ५ अगस्त को सम्पन्न हुई, जिसमे ७ अगस्त को अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए प्रस्ताव का एक प्रतिरूप तैयार किया गया। मैंने अपने उद्घाटन भाषण में समिति की पिछली बैठक से इस समय तक स्थिति मे जो परिवर्तन हुए थे उनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया और पर्याप्त विस्तार सहित उन कारणो की व्याख्या की जिन्होंने कार्यकारिणी को अपना दृष्टिकोण परिवर्तित करने और हिन्दुस्तान को स्वतंत्र करने के लिए आन्दोलन आरंभ करने पर कटिबद्ध किया था। मैंने कहा कि इस समय उसके भाग्य का निर्णय हो रहा है और हमारा राष्ट्र हाथ पर हाथ रखकर बैठ नहीं सकता। हिन्दुस्तान ने जनतांत्रिक देशों के साथ सहयोग करना चाहा था। किन्तु बरतानिया सरकार ने सम्मानपूर्ण सहयोग के मार्ग अवरुद्ध कर दिये हैं। अब स्थिति यह है कि जापानी आक्रमणकारी द्वार तक आ गया है, इसलिए राष्ट्र आक्रमणकारी का सामना करने के लिए आत्मबल उत्पन्न करना चाहता है। बरतानिया यदि उचित समझे तो हिन्दोस्तान को छोड़ सकता है, जैसे उसने सिंगापुर, मलाया और बर्मा को रिक्त कर दिया, किन्तु हिन्दुस्तानी देश को छोड़ नहीं सकते। क्योंकि यह उनकी मातृभूमि है। इस कारण से वह अपने में इतनी शक्ति उत्पन्न करना चाहते हैं कि बरतानिया की श्रृंखलाओं को तोड़ सकें और नये आक्रमणकारी को मुंहतोड़ उत्तर दे सकें।

कुछ कम्युनिस्टों के अतिरिक्त जिन्होंने इस आन्दोलन का विरोध किया था अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के समस्त सदस्यों ने कार्यकारिणी समिति के द्वारा प्रस्तुत किये गए प्रस्ताव का स्वागत किया। गांधी जी ने भी बैठक को संबोधित किया और दो दिन के विचार-विनिमय के पश्चात् ८ अगस्त को रात गये यह प्रस्ताव भारी बहुमत से स्वीकृत हो गया। प्रस्ताव का पूर्ण पाठ परिशिष्ट में अंकित है।

मैं बंबई जाता तो साधारणतया स्वर्गीय भोला भाई देसाई के यहां ठहरा करता था। इस अवसर पर भी मैं वहीं ठहरा था। इस समय वे रुग्ण थे और उनका स्वास्थ्य कुछ समय से ठीक नहीं था, इसलिए जब मैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक से बाहर आया और ज्ञात

हुआ कि वह मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं तो कुछ आश्चर्य हुआ। रात्रि का समय पर्याप्त मात्रा में बीत चुका था, मैं थका हुआ था और मेरा अनुमान था कि वह सो गये होंगे। मैंने उनके इतनी देर तक जागने पर अपनी हल्की सी अप्रसन्नता व्यक्त की किन्तु उन्होंने बतलाया कि मेरे एक संबंधी मोहम्मद ताहिर जिनका बंबई में कारबार था मुझसे मिलने आए थे और बहुत देर तक मेरी प्रतीक्षा करते रहे किन्तु जब मैं वापस नहीं आया तो वह मेरे नाम एक संदेश छोड़कर चले गये हैं। मोहम्मद ताहिर के एक मित्र बंबई पुलिस में थे। उनसे उन्हें ज्ञात हुआ था कि प्रातःकाल समस्त कांग्रेसी नेतागण पकड़ लिए जाएंगे। ताहिर के मित्र ने यह भी बतलाया था कि उसे निश्चित रूप से तो नहीं ज्ञात है किन्तु सूचना यह है कि हम सबको हिन्दुस्तान के बाहर संभवतः दक्षिण अफ्रीका भेज दिया जायगा।

इस प्रकार की बातें कलकत्ते से चलने के पूर्व सुनने में आई थीं। इसके पश्चात् ज्ञात हुआ कि यह बातें नितांत निराधार न थीं जब सरकार ने हम सबको बंदी बनाने का निर्णय किया था तो उसे यह भी विचार आया होगा कि हमको हिन्दुस्तान में रखना नीति के विरुद्ध है। अतः यह वास्तविकता है कि इस संबंध में दक्षिण अफ्रीका की सरकार से वार्ता आरम्भ की गई थी, किन्तु ज्ञात होता है कि ठीक समय पर कोई बाधा उत्पन्न हो गई जिसके कारणवश यह निर्णय बदलना पड़ा। तुरंत ही हमें विदित हो गया कि सरकार ने निर्णय किया है कि गांधी जी को पूना में नजरबंद किया जायेगा और हम लोगों को अहमद नगर दुर्ग में बंद किया जायेगा।

भोलाभाई इस सूचना से अत्यन्त चिंतित थे और इसी कारण अब तक मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं बहुत ही थका हुआ था इसलिए इस प्रकार की गप्पें बैठकर सुनने को जी नहीं चाहता था। मैंने भोलाभाई से कहा कि यदि यह सूचना सत्य है तो मेरे पास स्वतंत्रता के केवल कुछ घंटे ही शेष हैं, इसलिए उचित है कि मैं शीघ्र ही खाना खाकर सो रहूँ ताकि प्रातः जो कुछ होने वाला है उसके लिए तत्पर हो जाऊं। स्वतंत्रता के इन कुछ घंटो को गप्पों के संबंध में अनुमान लगाने से कहीं अधिक उचित है कि सो रहूं। भोलाभाई ने इससे सहमति व्यक्त की और मैं तुरंत बिस्तर पर लेट गया।

मैं सदैव से प्रातः उठने का अभ्यस्त हूं। अगली प्रभात को भी मैं यथानियम चार बजे उठा। परन्तु मेरी थकान अब भी नही गई थी और सर भारी सा हो गया था। मैंने स्पिरिन की दो गोलिया खाई, चाय की एक प्याली ली और बैठ गया। निर्णय किया गया था कि स्वीकृत प्रस्ताव की एक प्रतिलिपि पत्र के साथ संलग्न करके राष्ट्रपति रूजवेल्ट को भेज दी जाएगी। हमने सोचा कि राष्ट्रपति रूजवेल्ट हिन्दुस्तानी 'स्वतंत्रता' के संबंध में जितनी रुचि दिखा रहे हैं उसके देखते हुए कम से कम इतना तो होना ही चाहिए। मैंने राष्ट्रपति रूजवेल्ट के नाम पत्र लिखना आरंभ किया। किन्तु उसे समाप्त न कर सका। संभवतः थकावट के कारण या हो सकता है 'स्पिरिन' के कारण नींद आने लगी और मैं सोने के लिए लेट गया। मैं अधिक से अधिक पंद्रह मिनट सोया हूंगा किसी ने चुपके से मेरा पांव दबाया। मैंने आखें खोलीं तो भोलाभाई देसाई के सुपुत्र धीरूभाई देसाई एक कागज़ लिये खड़े थे। मैं समझ गया कि वह क्या है। धीरूभाई के बतलाने के पूर्व ही मैं जान गया कि बंबई का डिप्टी कमिश्नर मेरी गिरफ्तारी का वारंट लाया है। उन्होंने कहा कि डिप्टी कमिश्नर बरामदे मे प्रतीक्षा कर रहा है। मैंने धीरूभाई से कहा कि कमिश्नर से कह दे कि मुझे तैयार होने में थोड़ा सा समय लगेगा।

मैंने स्नान किया और कपड़े पहने। मैंने अपने निजी सचिव मोहम्मद अजमल खा को आवश्यक निर्देश दिए, क्योंकि वह उस समय तक सोते से उठकर मेरे पास आ चुके थे। इसके

पश्चात् मैं बरामदे में आया। भोलाभाई और उनकी बहू डिप्टी कमिश्नर से बातें कर रही थ
मैंने मुस्कराकर भोलाभाई से कहा कि उनके मित्र गत संध्या को जो सूचना लाए थे, स
निकली। फिर मैंने डिप्टी कमिश्नर को संबोधित करते हुए कहा कि "मैं तैयार हूं?" उस स
पांच बजे थे।

मैं डिप्टी कमिश्नर की कार में बैठा, एक दूसरी कार में मेरा सामान रखा गया और
हमारे पीछे-पीछे चली। हम सीधे विक्टोरिया टर्मिनस आये। यह स्थानीय गाड़ियों का समय
किन्तु स्टेशन बिल्कुल खाली था, शायद तमाम गाड़ियां और यात्री कुछ समय के लिए रोक दि
गए थे। जैसे ही मैं कार से उतरा, अशोक मेहता दिखाई पड़े। वह भी गिरफ्तार कर लिए गये
और विक्टोरिया टर्मिनस लाये गये थे। इससे मैं समझ गया कि सरकार ने केवल कार्यकारि
समिति के सदस्यों को ही नहीं बल्कि बंबई के स्थानीय नेताओं को भी पकड़ लिया है और स
देश में यही किया जा रहा होगा। प्लेटफार्म पर खड़ी गाड़ी हमारी प्रतीक्षा कर रही थी, मुझे उस
पास लाये। उस समय एक इंजन गाड़ी में डायनिंग कार लगा रहा था। वह कॉरीडोर वाली ग
थी, जैसी कि साधारणतया बंबई और पूना के बीच चलती थी। मैं एक डिब्बे में पहुचा दि
गया, जहां मैं खिडकी के पास ही सीट पर बैठ गया। तत्पश्चात् ही जवाहरलाल, आसिफ अ
और डा० महमूद दृष्टिगोचर हुए। जवाहरलाल ने मुझे बतलाया कि गांधी जी को भी स्टेशन ल
हैं और वे दूसरे डिब्बे में बिठाये गये हैं। एक यूरोपीय फौजी अफ़सर ने आकर मुझसे पूछा
आप चाय तो न पियेंगे? मैं चाय पी चुका था किन्तु और मंगवा ली।

थोड़ी ही देर में एक दूसरा फौजी अफ़सर आया और उसने हम लोगों की गण
आरम्भ कर दी। वह किसी कारण चकराया हुआ सा था क्योंकि उसने हम लोगों को कई ब
गिना। जब वह हमारे डिब्बे में आया तो थोड़ी ऊंची आवाज़ से कहा "तीस"। जब उसने दो ब
ऐसा ही किया तो मैंने उतनी ही ऊंची आवाज़ में कहा "बत्तीस"। इससे वह और चिन्तित
गया और उसने पुनः गिनना आरम्भ किया। इसके पश्चात् ही गार्ड ने सीटी बजाई और ग
चल पड़ी। मैंने श्रीमती आसिफ अली को प्लेटफार्म पर खड़े देखा। वह अपने पति को बिदा क
आयी थीं। जब गाडी चलने लगी तब उन्होंने मेरी ओर देखा और कहा "मेरी चिन्ता
कीजिएगा, मैं अपने लिए कोई न कोई काम निकाल लूंगी, बेकार न बैठूंगी।" इसके पश्चात् ह
वाली घटनाओं ने सिद्ध कर दिया कि उन्होंने जो कुछ कहा था वह कर दिखलाया

मैं अभी बता चुका हूं कि हमारी गाड़ी मैं कॉरीडोर था। श्रीमती नायडू हमारे डिब्बे
आईं और कहा कि गांधी जी हमसे मिलना चाहते हैं। हम कॉरीडोर में होते हुए उनके डिब्बे
गये, जो कुछ दूरी पर ही था। गांधी जी अत्यंत मलिन चित्त दिखाई पड रहे थे। मैंने कभी उन
उदास और दुःखी नहीं देखा था। मैं समझ गया कि उनको इस अकस्मात् गिरफ्तारी की आश
नहीं थी, अनुमान यह था कि सरकार कोई कठोर कार्रवाई नहीं करेगी। यद्यपि मैंने उन
बारंबार अवगत कराया था कि वह बहुत अधिक भ्रम में न रहें किन्तु स्पष्ट है कि इनको अ
मत पर अधिक विश्वास था। अब चूंकि उनके अनुमान ठीक नहीं निकले थे इसलिए वह नि
नहीं कर पाये थे कि उनको क्या करना चाहिए।

हमने अभी बात आरंभ ही की थी कि गांधी जी ने कहा कि "तुम अपने ठिकाने
पहुंचते ही सूचित करना कि तुम कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन करते र
चाहते हो। इस उद्देश्य के लिए तुमको अपने निजी सचिव और दूसरी सुविधाओं की मांग क
चाहिए। जब तुम पिछली बार गिरफ्तार हुए थे और नैनी जेल में बंद थे तो सरकार ने तुमको

सुविधाएं उपलब्ध करायी थीं। इस प्रकार की सुविधाओं की तुमको फिर माग करनी चाहिए और यदि आवश्यकता पड़े तो इसे एक समस्या बना लेनी चाहिए"। मैं गांधी जी से सहमत न हो सका। मैंने कहा कि वर्तमान स्थिति नितान्त भिन्न है। हमने अपना मार्ग जानबूझ कर चुना है। इसलिए इसके परिणामों को भी सहन करना चाहिए। यह बात तो मेरी समझ में आ सकती थी कि यदि वह किसी ऐसे मुद्दे के सबंध में लड़ने को कहें जो कांग्रेस ने उठाया हो, किन्तु यह कैसे हो सकता था कि मैं इतने साधारण मुद्दे पर कि मुझे विशिष्ट सुविधाएं दी जाएं, लड़ने के लिए तत्पर हो जाता। मैं इस माग को उचित नहीं समझता था कि कांग्रेस के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए निजी सचिव रखने की अनुमति मिले। तात्कालिक परिस्थितियों में यह बात इस योग्य नहीं थी कि इस पर लड़ाई की जाए।

हम यह बातें कर ही रहे थे कि बंबई का पुलिस कमिश्नर जो हमारे साथ ही चल रहा था, अदर आया। उसने हमसे अपने डिब्बे मे जाने के लिए कहा। उसने मुझसे कहा कि केवल श्रीमती नायडू गाधी जी के साथ रह सकती हैं। जवाहरलाल और मैं अपने डिब्बे में आ गये। हमारी गाड़ी उस समय तीव्र गति से कल्यान की ओर जा रही थी। परन्तु वह कल्यान में नहीं रुकी और पूना के मार्ग पर चल पड़ी। मैंने सोचा कि संभवतः हम लोग नज़रबंद किए जाएंगे और जब वहां गाड़ी रुकी तो मुझे विश्वास हो गया कि मेरा अनुमान ठीक है।

लगता है हमारी गिरफ्तारी की सूचना किसी प्रकार पूना पहुच गई थी। प्लेटफार्म पर हर ओर पुलिस थी और जनसमूह मे से किसी को आने की अनुमति नहीं थी। परन्तु पुल के ऊपर बहुत बड़ी भीड़ एकत्रित थी। जैसे ही गाड़ी स्टेशन पर पहुची तो लोगों ने "महात्मा गांधी की जय" करना आरम्भ कर दिया। जैसे ही लोगों ने नारे लगाए, कमिश्नर ने पुलिस को लाठी बरसाने का आदेश दे दिया। उसे आदेश मिला था कि किसी प्रकार के प्रदर्शन या नारे की अनुमति न दी जाये।

जवाहरलाल खिडकी के निकट बैठे थे। जैसे ही उन्होंने देखा कि पुलिस लाठी बरसा रही है तो डिब्बे से बाहर कूद पड़े और चिल्लाते हुए आगे बढ़े कि "तुम्हे लाठी बरसाने का कोई अधिकार नहीं है। पुलिस कमिश्नर उनके पीछे लपका और उन्हे उनके डिब्बे में लाने की चेष्टा की। जवाहरलाल ने उसका कहना नहीं माना और आक्रोश मे बातें करने लगे। इस बीच कार्यकारिणी समिति के अन्य सदस्य शकरराव देव भी प्लेटफार्म पर उतर पड़े। चार सिपाहियों ने उनको घेर लिया और गाड़ी मे वापस जाने के लिए कहा। जब उन्होंने जाना अस्वीकार किया तो पुलिस वाले उनको बलपूर्वक उठाकर डिब्बे में लाये और मैंने जवाहर लाल से पुकार कर कहा कि वह अन्दर आ जाएं। जवाहर लाल क्रोध से भरे हुए लग रहे थे किन्तु उन्होंने मेरा निवेदन स्वीकार कर लिया। पुलिस कमिश्नर मेरे पास आया और दो तीन बार उसने क्षमा याचना की। कहने लगा कि "श्रीमान, मुझे अत्यन्त खेद है, किन्तु मुझे इन बातों का आदेश दिया गया है और मैं उनके पालन के लिए विवश हूं।"

मैंने अपनी खिड़की से देखा कि श्रीमती नायडू और गांधी जी गाड़ी से उतार लिए गये हैं। यह बात हमें बाद में पता चली कि आग़ा खां के घर में जो आग़ा खां महल के नाम से विख्यात है, उन्हें नज़रबंद किया गया है। एक अन्य व्यक्ति भी जो बम्बई में गिरफ्तार किया गया था गाड़ी से उतरा और प्लेटफार्म पर जाना चाहता था। परन्तु पुलिस ने उसे रोक दिया। फिर भी वह उस समय तक हठ करता रहा जब तक कि पुलिस ने उसको पकड़कर बलपूर्वक नहीं रोका। मेरा विचार है कि वह गांधी जी के आदेशानुसार व्यवहार करने का प्रयत्न कर रहा था।

आप को याद होगा कि गांधी जी ने कहा था कि वर्तमान आंदोलन में लोगों को चाहिए कि व
अपने को स्वेच्छा से गिरफ्तार न करायें। बल्कि जब कड़ाई की जाए और बल का उपयोग कि
जाए तभी वह जेल में जाने पर तत्पर हों।

जब गांधी जी उतार लिए गये तो गाड़ी फिर चल पड़ी। अब मैं समझा कि हमें अहम
नगर ले जाया जा रहा है। हम दिन के डेढ़ बजे स्टेशन पहुंचे। कुछ पुलिस अधिकारियों और ए
फौजी अफ़सर के अतिरिक्त प्लेटफार्म पर कोई न था। हमसे उतरने के लिए कहा गया अं
कारों में बैठा दिया गया, जो हमारी प्रतीक्षा कर रही थीं। कारें तुरंत चल पड़ीं और सीधी जाव
दुर्ग के भीतरी फाटक पर रुकीं। वहां एक फौजी अफसर प्रतीक्षा में खड़ा था। पुलिस कमिश्नर
एक सूची निकाल कर उसे दे दी। वह एक-एक नाम पुकारता गया और हमें दुर्ग में प्रवि
कराता गया। वस्तुतः इस प्रकार पुलिस कमिश्नर हमको सैनिक विभाग को सौंप रहा था। अब
हम सैनिक कारावास में आ गये।

अंतिम भाषण

परेड ग्राउंड, दिल्ली

"देखना तक़दीर की लज़्ज़त कि जो उसने कहा
मैंने यह जाना कि गोया ये भी मेरे दिल में है।"

— ग़ालिब

अंतिम भाषण *

अध्यक्ष महोदय और मित्रो,

मैं समझता हू कि यह सम्मेलन इसलिए आयोजित किया गया है कि आप यह चाहते है कि हिन्दुस्तान के जीवन में उर्दू का जो वास्तविक स्थान है वो उसे दिया जाए। आप यह नहीं चाहते कि किसी भाषा का स्थान रिक्त किया जाए और वह उर्दू को मिल जाए। आप उर्दू के समर्थक हैं किन्तु हिन्दुस्तान की अन्य किसी भाषा के विरोधी नहीं हैं। जैसा कि अभी मेरे मित्र पंडित सुंदर लाल जी ने कहा कि यहां एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं है जो हिन्दी का विरोधी हो। यही उचित भावना है, इसी भावना से समस्या के समाधान का मार्ग स्पष्ट होता है।

मुझे याद है कि ३०-४० वर्ष पहले भाषा के संबंध में यह झगड़ा था कि देश की भाषा क्या हो ? जो लोग उर्दू समर्थक थे, वो चाहते थे कि उर्दू देश की भाषा हो और जो लोग हिन्दी का समर्थन करते थे उनकी इच्छा थी कि हिन्दी। ये समस्या उस समय गहराई तक पहुंच गई थी क्योंकि दोनों भाषाएं एक-दूसरे की प्रतिद्वंद्वी बन कर खड़ी हो गई थीं। उर्दू वाले कहते थे कि यदि हिन्दी को देश की भाषा स्वीकार कर लिया गया तो उर्दू समाप्त हो जाएगी और हिन्दी वाले कहते थे कि यदि उर्दू को देश की भाषा मान लिया गया तो हिन्दी का अंत हो जाएगा। लोग इस प्रश्न को हर समय इसी दृष्टि से देखते थे और इसी के अभ्यस्त हो गए थे। अतः जब यह प्रश्न उठता तो उसे इसी तुला में तौला जाता। इसी परिस्थिति में देश स्वतन्त्र हुआ और संविधान बनने का समय आया। संविधान-सभा ने पर्याप्त विचार-विनिमय के पश्चात्... बहुमत से यह निर्णय किया कि "इस देश की भाषा हिन्दी होगी।"

इसके परिणामस्वरूप उर्दू की स्थिति मे एक मौलिक परिवर्तन आ गया और उर्दू की प्रतिद्वंद्वी... की स्थिति समाप्त हो गई। अब जबकि इस पर हमारे संविधान की मोहर लग चुकी है तो हर हिन्दुस्तानी जो संविधान के प्रति निष्ठा रखता है—का कर्त्तव्य हो जाता है कि उसे मानें और वह इसके विरुद्ध नहीं जा सकता। तब प्रश्न उठता है कि देश में उर्दू का क्या स्थान है ? अब उसका स्थान वही है जो संविधान की अन्य १४ भाषाओं का है। बहुत से लोग इसे अब भी प्रतिद्वंद्वी के रूप में देखते हैं क्योंकि पिछले दिनों की कटुता अभी तक चली आ रही है। यद्यपि अब यह बात नही है। अब यह प्रश्न तो उठता ही नहीं कि पूरे देश की भाषा क्या होगी। हिन्दी

---

* अंजुमन-तरक्की-ए-उर्दू हिन्द की ओर से १५-१७ फरवरी १९५८ को हिन्दुस्तान में उर्दू की स्थिति पर विचार करने के लिए एक सम्मेलन आयोजित किया था। यह सम्मेलन परेड ग्राउड पर हुआ था जिसके निकट देहली का ऐतिहासिक लाल किला स्थित है। इस सम्मेलन में मौलाना का आशा से परिपूर्ण उद्घाटन भाषण मच पर बैठे पडित जी सुन रहे थे। पडित नेहरू के अतिरिक्त इस सम्मेलन मे कर्नल बशीर हुसैन जैदी, पडित सुदर लाल, मौलाना हिफ्जुर रहमान (सासद) और डॉ० ताराचद (सासद) ने भाषण दिए थे। इसी मैदान में जहा मौलाना ने उर्दू के भविष्य के सबध मे आशा और विश्वास प्रकट किया था और लोगों से भाषाई आधार पर पारस्परिक शत्रुता के भावों से ऊपर उठने का निवेदन किया था। ठीक एक सप्ताह पश्चात् २२ फरवरी को वहीं उन्हें चिरनिद्रा निमग्न होना था।

को जो स्थान मिलना था वो मिल चुका और हमने इस पर संविधान की मुहर लगा दी। अब प्रत्येक हिन्दुस्तानी का कर्त्तव्य है कि इसके आगे सर झुकाए किन्तु इसके साथ ही उर्दू का जो उचित स्थान है वो भी उसे मिलना शेष है। इसका यह अधिकार उसे मिलना चाहिए। किसी भाषा को मानने का मतलब यह है कि इसे सरकार भी माने और लोग भी मानें।

उर्दू एक ऐसी भाषा है जो देश में आमतौर पर बोली जाती है। न केवल उत्तर में बल्कि दक्षिण में भी इसके बोलने वाले पर्याप्त संख्या में हैं। आपको मालूम है कि हैदराबाद और तिलंगाना के क्षेत्र में उर्दू बोली जाती है। मैसूर में लाखों आदमी उर्दू बोलते हैं। इसी तरह आन्ध्र प्रदेश और मद्रास में विभिन्न स्थानों पर उर्दू बोली और समझी जाती है। उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली और पंजाब में तो कहने की जरूरत ही नहीं, यहां लाखों-हजारों आदमी उर्दू बोलते हैं।

मुझे विश्वास है कि जिस उद्देश्य के लिए यह सम्मेलन बुलाया गया है उसमें इसे सफलता प्राप्त होगी और अब जब प्रधानमंत्री ने इसका उद्घाटन किया है तो निश्चय ही यह अपने उद्देश्य की पूर्ति में असफल नहीं रहेगी।

भाग ४

पत्रावली

पत्र और तार *

महात्मा गांधी के नाम पत्र

"अल-बलाग"
मुद्रण एवं प्रकाशन गृह,
४५, रिपन लेन,
कलकत्ता
तिथि-६ दिसबर, १९२१

प्रियवर महात्मा जी,

मैं इस महीने की दूसरी को यहा आया। यहां आने पर मुझे अपने सहकर्मी और **पैग़ाम** के उप-संपादक मौलवी अब्दुल रज़्ज़ाक मलीहाबादी की गिरफ्तारी का पता चला। मेरी अनुपस्थिति में पुलिस ने तलाशी भी ली थी और उन सारी पाडुलिपियों तथा महत्त्वपूर्ण ज्ञापनो को उठा ले गई थी जिन्हें मैंने तैयार किया था। यह अत्यन्त दुखद घटना होगी यदि मैं इनसे वंचित कर दिया गया। कलकत्ते मे जो दमन हो रहा है वह उससे कहीं अधिक है जिसके सबध में मैंने बंबई में सुना था। सरकार आंदोलन को दबाने और जड़मूल से उसका अत करने पर तुली हुई है। आंदोलन को दबाने के लिए प्रांतीय सरकार द्वारा उठाये गये प्रत्येक कदम का पूर्ण समर्थन करने की घोषणा वायसराय ने भी की है। परन्तु जनता शात है और मुझे विश्वास है कि कोई भी हानिकारक कार्य नही होगा।

कांग्रेस और खि़लाफत कमेटी दोनो ने मिस्टर दास को अपना डिक्टेटर नियुक्त किया है और उन्हें पूर्ण अधिकार दे दिए है। खि़लाफत कमेटी ने ऐसा इस अनुमान के अंतर्गत किया है कि मैं यहां समय पर नही लौट पाऊगा। इन व्यवस्थाओं मे अब हस्तक्षेप को मैं बुद्धिमत्ता नहीं समझता क्योंकि इस अवसर पर किसी भी प्रकार का परिवर्तन लक्ष्य के लिए हानिकारक होगा। अब 'सविनय अवज्ञा' का कार्यक्रम तैयार करने का दायित्व मिस्टर दास का है, जिसके लिए कलकत्ता पूर्णतया तत्पर लगता है। लगता यह है कि होने वाली कांग्रेस की समाप्ति के पूर्व मिस्टर दास इस प्रकार के किसी कार्यक्रम के पक्ष में नहीं हैं और इस तरह समय बिता रहे हैं। कांग्रेस कमेटी की ओर से यहां कोई वास्तविक कार्यक्रम नहीं चल रहा है। केन्द्रीय कांग्रेस समिति के

---

* मौलाना पत्र-लेखन में पारगत थे। इसका सुन्दरतम उदाहरण वे बीस पत्र है जो उन्होंने अहमद नगर जेल मे लिखे थे और जो **गुबार-ए-ख़ातिर** नामक पुस्तक मे सकलित है। आजाद के अध्येताओं ने पत्रों के दूसरे सकलन भी सपादित किए है जिनमें मौ० अब्दुल शाहिद खा के सकलन **'कारवाने-ए-ख़याल'** और, अबुसलमान शाहजहापुरी द्वारा सपादित **मकातीब-ए-अबुल कलाम** और गुलाम रसूल मेह द्वारा सकलित **'नक्श-ए-आज़ाद'** सम्मिलित है। मौलाना आजाद के १०७ अप्रकाशित और हस्तलिखित पत्रो और ज्ञापनो का एक सकलन राष्ट्रीय सग्रहालय, नई दिल्ली, के पाडुलिपि अनुभाग में सुरक्षित है। कुछ मौलिक पत्र जवाहरलाल नेहरू सग्रहालय और पुस्तकालय के विशेष सकलन में उपलब्ध है। इस चयनिका मे उन पत्रो को सम्मिलित किया गया है जो मौलाना आजाद ने महात्मा गाधी और जवाहरलाल नेहरू को लिखे है और इन लोगो ने मौलाना को लिखे है। इनमें से अधिकाश का प्रकाशन प्रथम बार हो रहा है।

पास लगभग कोई भी स्वयंसेवक नहीं है। अब तक सारा कार्यक्रम खिलाफ़त के स्वयंसेवक चला रहे हैं, जिनकी संख्या चार हज़ार है। इन स्वयंसेवकों की सेवाएं अब मिस्टर दास के अधीन कर दी गई हैं और जैसा वे उचित समझें, वह इनका उपयोग कर सकते हैं। मैंने बिना किसी हस्तक्षेप के अपनी राय दे दी है।

मैंने जब यहां चौबीस को सफल हड़ताल संगठित करनी चाही और चाहा कि शांति और व्यवस्था बनी रहे तो सरकार की इच्छा इसके विपरीत हुई। इस संबंध में मैंने मुस्लिम समुदाय के बीच कार्य किया और उससे मैं सन्तुष्ट हूं।

मैं यह जानने का इच्छुक हू कि क्या मुझे कांग्रेस के अधिवेशन तक कलकत्ते में रुका रहना चाहिए। मैं यहा केन्द्रीय खिलाफ़त कमेटी का पर्याप्त मात्रा में कार्य पीछे छोड़ कर आया था।

तार द्वारा उत्तर दीजिए।

सादर मैं हू,

आपका प्यारा भाई,

ए० के० आज़ाद

महात्मा गांधी के नाम तार

अहमदाबाद
६.५.२६

कृपया हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न पर विचार करने के लिए जुलाई अथवा अगस्त में कांग्रेस का विशेष इजलास बुलाए जाने के लिए प्रयत्न कीजिए। ये अंतिम अवसर है, यदि इसकी अवहेलना की गई तो दीर्घकाल के लिए समस्त प्रयास व्यर्थ हो जाएंगे और परिणामतः राष्ट्रीयता और देशभक्ति के स्थान पर सम्पूर्ण देश सांप्रदायिक एवं धार्मिक दंगों में लिप्त हो जाएगा।

अबुल कलाम

मौलाना के नाम गांधी जी का पत्र

आश्रम
साबरमती
८.५.२६

प्रिय मौलाना साहब,

आपका तार मिला। यह अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के इजलास के बाद प्राप्त हुआ। आप क्या सोचते हैं कि कांग्रेस का विशेष इजलास बुलाने से किसी उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है? यह बात उपयोगी तभी हो सकती है जब कोई नीति अथवा कार्यक्रम हो जिसे इस इजलास की स्वीकृति की आवश्यकता हो। परन्तु दुर्भाग्यवश न तो हमारी कोई नीति है और न ही कोई कार्यक्रम। इसके विपरीत बड़े-बड़े महानुभाव एक-दूसरे के प्रति अविश्वास रखते हैं। और यदि कहीं अविश्वास नहीं है तो भी तथ्यों अथवा मत के संबंध में सहमति भी नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में कांग्रेस का इजलास केवल वर्तमान निराशा को और बढ़ाएगी। मुझे ऐसा लगता है कि समय ही इस कठिनाई का समाधान कर सकेगा जिसने हमें व्याकुल कर रखा है। मेरी इच्छा है कि कम से कम प्रत्येक दंगे के कारणों को जानने और उसके परिणामों को रेखांकित करने का उपाय हम ढूंढ सकें। परन्तु लगता ऐसा है कि इस अत्यन्त सरल कार्य के लिए भी हम सक्षम नहीं रह गए हैं।

आपका
एम०के० गांधी

महात्मा गांधी के नाम तार

कलकत्ता

अक्टूबर १९, १९३२

सम्मेलन के मुस्लिम नेतागण एकमत, यदि दूसरी माँगें मान ली जाएं तो प्रथम मतदान पर
देंगे। वर्तमान स्थिति में इससे अच्छा समाधान संभव नहीं। आप की अनुपस्थिति सफलता
। संदेश द्वारा आशीर्वाद दीजिए। सरकार पर इतना विश्वास कीजिए कि उसे आपत्ति नहीं

अबुल कलाम

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के नाम तार

कलकत्ता
२० अक्तूबर १९३२

तार के लिए धन्यवाद। इस समय जब मैं इस एकान्त स्थान पर हूं, केवल यही कह सकता हूं कि ईश्वर हमारी सहायता करे कि हम हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खों के बीच वास्तविक एकता उत्पन्न करने में सफल हों, यह पूरे भारत की एकता का लक्षण है जिसके लिए आप, मैं और हमारे कांग्रेसी साथी दीर्घकाल से इच्छुक हैं और प्रार्थना कर रहे हैं।

मैं सही स्थिति और वास्तविक घटनाओं से अनभिज्ञ हू। उचित और अनुचित का निर्णय नहीं कर सकता हूं। इतना कह सकता हूं कि जहां तक मेरा संबंध है, सम्बद्ध पक्ष जिस समाधान को स्वीकार करेंगे, वह मुझे स्वीकार होगा। मेरी शुभकामनाएं आपके और उन सब मित्रों के साथ है जो लंबे समय से व्याकुलता के शिकार इस देश में खोई हुई शांति को प्राप्त करने में सलग्न है। इन भावो की अभिव्यक्ति में मेरे साथ सरदार पटेल भी सम्मिलित हैं।

आपका
एम०के० गांधी

मौलाना आज़ाद के नाम पत्र

बारदौली
३० दिसम्बर, १९४१

लाना साहब,
कार्यकारिणी समिति के विचार-विनिमय से मुझे यह अनुभव हुआ कि मैंने बंबई प्रस्ताव
ख्या में भयकर भूल की है। मैंने इसका यह अर्थ समझा कि कांग्रेस ने वर्तमान युद्ध या
द्धों में अहिंसा के सिद्धांतों के आधार पर भाग लेने से इनकार कर दिया है। मैं
चकित था कि सारे सदस्य मेरी इस व्याख्या का विरोध क्यों कर रहे हैं और इस बात पर
आग्रह क्यों है कि युद्ध का विरोध अहिंसा के आधार पर नहीं होना चाहिए। बबई प्रस्ताव
के पश्चात् मुझे ज्ञात हुआ कि वह बिल्कुल ठीक कह रहे थे। मैंने उसका जो अर्थ समझा
का अभिप्राय था ही नहीं। इस भूल को जानने के पश्चात् मेरे लिए इस सबंध में कांग्रेस
दर्शन करना संभव नहीं है जिसमें युद्ध को रोकने के प्रयास इस प्रकार किए जाएं जिनमें
आवश्यक न हो। मै यह नहीं कर सकता। उदाहरणतया मैं अंग्रेज के प्रति शत्रुता के
पर सामरिक गतिविधियों में हिस्सा लेने वालों में स्वयं को सम्मिलित करना नहीं चाहता।

आपका
एम०के० गांधी

जवाहरलाल नेहरू के नाम पत्र

२७ मार्च, १९४०

प्रिय जवाहरलाल,

जब १५ मार्च के प्रातःकाल (रेल में) तुमने मेरे अभिभाषण का अंग्रेज़ी अनुवाद मुझे दिया तो मैंने ऐसे ही उस पर एक सरसरी निगाह डाली थी। इसके पश्चात् अब तक मुझे इसे अच्छी तरह देखने का अवसर नहीं मिला था। अब कुछ कम व्यस्त हूं। मैंने इसे अब अच्छी तरह देखा और इसे देख कर अनायास मेरा मन चाहा कि अपने स्वभाव के विशिष्ट सन्तुलन को तिलांजलि देकर तुम्हारी बौद्धिकता और असाधारण विद्वत्ता को अपना हार्दिक अभिनन्दन प्रस्तुत करूं। अंग्रेजी भाषा की तुम्हारी योग्यता और उस पर जो तुम्हें अधिकार प्राप्त है, वह इससे कहीं अधिक है जितना अब तक मैं समझता था। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि हमारे युग के अन्य उच्च कोटि के लेखकों को इस कार्य को संपन्न करने के लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता होती, जबकि तुमने इसे बिना किसी विशेष प्रयास के कुछ घंटों में ही पूर्ण कर दिया।

अनुवाद कार्य कुछ दृष्टियों से रचनात्मक कार्य से अधिक कठिन है क्योंकि इसमें रचनाकार की रचना-शैली के साथ लेखन के साहित्यिक गुणों को भी शेष रखना होता है और यह कार्य वही व्यक्ति कर सकता है जो दोनों भाषाओं पर समानरूपेण अधिकार रखता हो। तुम्हारे अनुवाद में विशेष रूप से मैंने यह बात महसूस की है कि तुमने मेरी रचना की विशेषताओं और उर्दू में मेरी साहित्यिक शैली को इस सुंदरता से सुरक्षित रखा है कि आश्चर्य नहीं........ यदि पाठक यह समझे कि वस्तुतः यह अभिभाषण उर्दू में नहीं बल्कि अंग्रेज़ी में ही लिखा गया है। इसी प्रकार तुम्हारी रचनात्मक कल्पना की पकड़ सराहनीय है। तुमने विवरणों को भी अपनी दृष्टि में रखा जिसके कारण लेख में प्रवाह और प्रांजलता सुरक्षित रही। तुम पूर्ण रूप से मेरी मानसिकता को समझ सके, जिसका सबंध मेरी लेखनशैली से, वाक्य-रचना और शब्द-विन्यास से है। तुमने जब यह कार्य आरम्भ किया तो वस्तुतः तुम्हारे मस्तिष्क में इस विषय का संपूर्ण चित्र था। यह कार्य निश्चय ही अत्यंत कठिन था, विशेष रूप से इसलिए कि मेरी लेखनशैली से भी प्रत्यक्षतः कोई सहायता नहीं मिली।

कुछ स्थानों पर तुमने मेरी उर्दू रचना को भी थोड़ा-सा संशोधित कर दिया है, कहीं उसे विस्तृत कर दिया है, कहीं उसे संक्षिप्त कर दिया है। यह अंग्रेजी शैली के लिए समीचीन था। मैंने इन सब स्थानों को ध्यानपूर्वक देखा जहां-तहां तुमने संशोधन किये हैं और यह देखकर प्रसन्नता हुई कि तुमने कुछ स्थानों पर मेरी रचना को सुंदर बना दिया है किन्तु मेरी शैली को कहीं नहीं बदला। उदाहरणतः वायसराय के घोषणापत्र पर मत अभिव्यक्त करते हुए मैंने लिखा था:

"पृष्ट के पश्चात् पृष्ठ पढ़ जाने पर कठिनाई से इतना ही बता पाता है....", यहां 'कठिनाई से' मेरी लाक्षणिक शैली में मुख्य शब्द है, तुमने मेरे लाक्षणिक प्रयोग की पृष्ठभूमि को सुरक्षित रखा है और इसका प्रयोग इस प्रकार किया है:

मैं 'कठिनाई' के द्वारा जो कहना चाहता था तुमने उसमें वृद्धि करके उस बात पर और अधिक बल दे दिया है। मैं इस बात को स्वीकार करता हूं कि मेरे लेखन की तुलना में तुम्हारा अनुवाद अधिक समीचीन और उचित है। तुमने जिस प्रकार मेरी रचना को सुंदर रूप प्रदान किया है, यह तो उसका एक उदाहरण मात्र है। ऐसे बहुत से उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

मैं संभवतः इलाहाबाद २० को पहुंचूंगा। मुझे आशा है कि तुम उस समय तक वहां रुकोगे।

तुम्हारा
ए० के० आज़ाद

पंडित जवाहरलाल नेहरू
इलाहाबाद।

जवाहरलाल नेहरू के नाम पत्र

प्रिय जवाहरलाल,

मंत्रिमंडल में जब विश्वविद्यालय अनुदान आयोग बिल के प्रारूप पर विचार किया गया था तो आपने कहा था कि संसद में इसके प्रस्तुत करने के पूर्व इसे विश्वविद्यालयों को उनके विचार जानने के लिए भेजा जाना चाहिए।

इस पर विचार करने के पश्चात् मैं महसूस करता हूं कि बिल के प्रारूप को पुनः विश्वविद्यालयों को भेजना अनावश्यक है। हम यदि ऐसा करते हैं तो परिणाम यह होगा कि जो बात निश्चित समझ ली गई थी वह पुनः अनावश्यक वाद-विवाद का विषय बन जाएगी।

आप जानते ही हैं कि बिल पर विचार-विनिमय के लिए मैंने समस्त उप-कुलपतियों को बुलाया था, उन्होंने दो दिन के विचार-विनिमय के पश्चात् तीन प्रस्ताव पारित किये थे। बिल का प्रारूप उन्हीं प्रस्तावों के अनुकूल तैयार किया गया है। उप-कुलपतियों को आशा भी नहीं है कि उनसे परामर्श किया जायेगा। वह जानते हैं कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के नाम से बिल पारित होगा।

इस संबंध में एक मौलिक प्रश्न है कि जिस पर हमें स्वयं विचार करना है। राज्यों के विश्वविद्यालयों की शैक्षणिक और प्रशासनिक दोनों स्थितियां अत्यन्त दयनीय है। उनमें महत्त्वपूर्ण परिवर्तन तुरन्त किये जाने चाहिए। यदि प्रभावशाली ढंग से ऐसा नहीं किया जाता तो राष्ट्रीय जीवन पर इसके हानिकारक प्रभाव प्रतिदिन बढ़ते जाएगें। संविधान के अनुसार विश्वविद्यालयीय स्तर की शिक्षा का दायित्व केन्द्रीय सरकार पर है। केन्द्रीय सरकार इस दायित्व की पूर्ति केवल तभी कर सकती है जब इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए स्वतन्त्र संस्था स्थापित हो। यदि आप महसूस करते है कि सरकार को आगे कदम केवल तब उठाना चाहिए जब प्रत्येक उप-कुलपति उससे सहमत हो तो मुझे कहने दीजिए कि इस प्रकार की सर्वसम्मति सभव नहीं है क्योंकि व्यक्तिगत रूप से कई उपकुलपति और कार्यकारिणी समिति के सदस्य विश्वविद्यालयों की समस्याओं के लिए स्वयं ज़िम्मेदार हैं। वह किसी सुधार पर कभी सहमत नहीं होंगे। ऐसी परिस्थितियों में 'बिल' को पुनः विश्वविद्यालयों में उनका मत जानने के लिए भेजना व्यर्थ है।

यदि हम ऐसा करते हैं तो हमें विश्वविद्यालयी स्तर की शिक्षा संबंधी सुधार गुडबाई कहना होगा और बिल को सदा के लिए भूल जाना होगा।

हस्ताक्षर नहीं हैं।

اس سلسلہ میں ایک بنیادی سوال یہ ہے جس پر ہمیں غور کرنا
چاہیے۔ یونیورسٹیوں کی حالت اکیڈمک اور ایڈمنسٹریشن دونوں
کے لحاظ سے سخت خراب ہو رہی ہے۔ یونیورسٹی ایجوکیشن میں
اہم تبدیلیاں فوراً ہونی چاہییں اور اگر یہ موثر طریقہ پر نہیں
ہوئیں تو نیشنل لائف روز بروز سخت نقصانات سے دوچار
ہوتا جاتا ہے۔ کانسٹی ٹیوشن میں یونیورسٹی ایجوکیشن کی دیکھ بھال
کا اختیار سنٹرل گورنمنٹ کو دیا گیا ہے اور سنٹرل گورنمنٹ
ہی اپنا فرض ادا کر سکتی ہے کہ ایک انڈیپنڈنٹ باڈی اس
غرض سے قائم ہو۔ اب اگر آپ دعویٰ کرتے ہیں کہ گورنمنٹ
کو کوئی قدم اس بارے میں جبھی اٹھانا چاہیے جب یونیورسٹیوں
کے موجودہ وائس چانسلروں میں سے ایک ایک آدمی اس سے
اتفاق کرے تو میں یہ کہنا چاہتا ہوں کہ اس طرح کا اتفاق کبھی
نہیں ہو سکتا کیونکہ وائس چانسلروں اور اکزیکیٹو باڈیز کے

ممبروں میں کافی تعداد ایسے لوگوں کی ہے جو یونیورسٹیوں
کی خرابیوں کے لیے ذمہ دار ہیں اور کبھی اس اتفاق نہیں کر سکتے
کہ کوئی دروازہ ریفارم کا کھلے۔ اس صورت میں بل بنانا
اور اسے بار بار رائے کے لیے یونیورسٹیوں کو بھیجنا بیکار سے
ہیں۔ یونیورسٹی ایجوکیشن ریفارم کے مقصد کو گڈ بائی کہنا ہے
اور بل کو سیشن کے لیے ڈراپ کر دینا چاہیے۔

(मौलाना का अपने हाथों से लिखा प्रारूप जिस पर तिथि अंकित नहीं है)

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के नाम पत्र

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद
महल, नैनीताल

वर्धा, १६ मई, १९४०

प्रिय मौलाना,

आपका तार मिला। कार्यकारिणी समिति की बैठक की तिथि १५ जून को आपने स्वीकार कर ली। आभारी हूं। इस तिथि में सुविधा यह है कि मैं सीमाप्रान्तों के दौरे पर जा सकूंगा और २१ जून को बम्बई वापस आ जाऊंगा। यह बात बिल्कुल ठीक है कि कार्यकारिणी समिति की बैठक किसी व्यक्ति की सुविधा के लिए स्थगित नहीं करनी चाहिए, इसको इन सब बातों का विचार किए बिना निर्धारित समय पर होना चाहिए। विवशता की बात और है। मेरा विचार है और महात्मा गाधी भी इससे सहमत हैं कि अभी हमें कुछ प्रतीक्षा करनी चाहिए कि वर्तमान स्थिति क्या रूप धारण करती है, स्थिति परिवर्तन की गति अत्यन्त तीव्र है। एक महीने में बहुत कुछ परिवर्तन हो जाते हैं, इस दृष्टि से भी यह बात उचित है कि कार्यकारिणी समिति की बैठक शीघ्र न हो।

मैं यहां आज ही आया हू और महात्मा जी से बातचीत हुई है। मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं में जो परिवर्तन हुए हैं, उन पर उनकी प्रतिक्रिया भी न्यूनाधिक वही है जो मेरी है। शायद मेरा वह वक्तव्य आपने पढ़ा हो जो पांच छः दिन पूर्व मैंने अखबारों को दिया था, इसकी प्रतिलिपि भेज रहा हूं। राजेन्द्र बाबू का उस दिन का वक्तव्य पढ़ कर मुझे दुःख हुआ। अब मुझे रेडियो से ज्ञात हुआ है कि आसिफ अली ने भी इसी प्रकार की कोई अपील राजनैनिक पार्टियों से की है कि वह एक साथ मिलकर रक्षा-उपायों में अंग्रेजों की सहायता करें। मेरे विचार में आसिफ अली ने यह बहुत अनुचित बात की है। कार्यकारिणी के सदस्य होने के कारण उनके वक्तव्य का यह अर्थ लिया जाएगा कि कार्यकारिणी समिति इस नीति को ग्रहण करने के लिए तत्पर हैं जबकि, जहां तक मुझे ज्ञात है, ऐसा कभी नहीं होगा।

राजेन्द्र बाबू का एक पत्र १४ मई का लिखा हुआ आया, उसकी एक प्रति आपको भेजी गई। गाधी जी के मतानुसार इसका जवाब मैंने लिखा है। इसकी प्रतिलिपि भी आपको भेज रहा हू। इससे आप कुछ अनुमान लगा सकेंगे कि मैं क्या सोच रहा हूं। मुझे आशा है कि उत्तर प्रदेश कांग्रेस समिति अपनी दिनाक १८ वाली बैठक में इसे दृष्टि में रखते हुए एक प्रस्ताव पारित करे। मेरी बुद्धि इस संदर्भ में बिल्कुल निर्भ्रम है कि हमारी नीति में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिए। हमें पहले की तरह अपनी संगठनात्मक और दूसरी तैयारियों को जारी रखना चाहिए। सत्याग्रह के परीक्षण और उसके लिए नये नामों के पंजीकरण का कार्य चलता रहना चाहिए। मेरा विचार है कि हमें सत्याग्रह तुरन्त प्रारम्भ नहीं करना चाहिए चाहे हम इसके लिए तैयार ही क्यों न हों। परन्तु केन्द्रीय सत्ता के दुर्बल होने की स्थिति में जो भी स्थितियां उत्पन्न हों, हमें उनका सामना करने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

हिन्दुस्तान के रक्षा-प्रयासों में सहयोग की बात हास्यास्पद है। रक्षा-प्रयास किसके विरुद्ध? अंग्रेजी राज्य की सहायतार्थ? मेरे विचार में यह अनुचित और अपमानजनक है। इस बात के अतिरिक्त हम इस समय इस स्थिति में नहीं हैं कि इस संबंध में कोई प्रभावशाली कार्य कर सकें।

हिन्दुस्तान की रक्षा भी हम, सत्याग्रह आंदोलन को आगे बढ़ा कर, उसके अंतर्गत कर सकते हैं। मुझे तो विदेशी आक्रमण का कोई भय नहीं है। मुझे तो आंतरिक उपद्रव की आशंका है और इसका भी हमारे पास इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है कि हम स्वयं को सत्याग्रह के द्वारा संगठित करें।

मेरे मस्तिष्क में इस संबंध में कोई भ्रम नहीं है कि हमने जो नीति अपनाई है, उससे एक इंच भी हमें नहीं हटना चाहिए। अधिक से अधिक क्या होगा कि नई अंग्रेज़ सरकार या वायसराय जो जाल बिछाएगा, हम उसमें नहीं फसेंगे। मेरे विचार में वह कुछ न कुछ करने पर विवश होंगे। गांधी जी और अन्य व्यक्तियों को आमंत्रित करेंगे या फिर कुछ अस्पष्ट वक्तव्य देंगे। उस सब बातों का हमारी ओर से स्पष्ट उत्तर होना चाहिए कि हम किसी प्रकार साम्राज्यवाद की रक्षा में सहयोग करने को उद्यत नहीं हैं। हिन्दोस्तान की स्वतन्त्रता स्वीकार की जानी चाहिए, अंग्रेज़ों के उपनिवेश के रूप में या अन्य किसी प्रकार से नहीं। भारतीय जनता अपना संविधान भी संविधान सभा के द्वारा बनाएंगी और इस कार्य के लिए लोगों का कोई छोटा-सा दल स्वीकृत नहीं होगा। हम केवल इसी आधार पर बात करने को तत्पर है और यदि इसी आधार पर वार्तालाप नहीं हो सकती तो बेकार की बातों से क्या लाभ। अंग्रेज़ राज्य का अब अन्त होने को है, निकट भविष्य में यह एक पुरातनकालीन कहानी बनने वाला है। अब केवल यह मूर्खता और दर्प ही तो है कि इसके पश्चात् भी अंग्रेज़ सरकार हिन्दोस्तान में तानाशाही दृष्टि अपनाए हुए है, इसके आचरण में तनिक भी परिवर्तन नहीं है। अंग्रेज़ी संसद के सदस्यों का व्यवहार हमारे साथ एक अभिभावक और एक सत्ताधारी का है तथा वह जिस ढंग से हमारे साथ व्यवहार कर रहे हैं, वह हमारे लिए असहनीय है। विनाश के ऐसे लक्षण भी उनकी आंखे नहीं खोल सकते और उनकी दृष्टि वास्तविकता का सामना नहीं कर सकती तो हम फिर ऐसे नेत्रहीन लोगों का साथ क्यों दें !

यह कहना कि नाज़ीवाद अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद से अधिक बुरा है इसलिए हम अंग्रेज़ी राज्य को प्राथमिकता देते हैं तो यह हमारा अत्यधिक अपमान है। यदि हम इतने विवश और निस्सहाय हैं कि अपनी रक्षा स्वय नहीं कर सकते तो उचित यही है कि शीघ्रातिशीघ्र हमारा अस्तित्व समाप्त हो जाए। हम स्थितियों को परिवर्तित नहीं कर सकते किन्तु हम हर प्रकार की राजसत्ता और आधिपत्य के विरुद्ध लड़ेंगे।

गांधी जी ने मुझे आपका वह पत्र दिखाया जो आपने उन्हें डाक्टर गोपीचन्द और सरदार सम्पूर्ण सिंह के पंजाब विधानसभा में पार्टी के नेता नियुक्त करने के संबंध में लिखा था। मैं आप से पूर्णतया सहमत हूं कि यह अनुचित था किन्तु मेरे मस्तिष्क में यही है कि अब क्या करना चाहिए। मैं शीघ्र ही दो दिन के लिए सत्याग्रह शिविर में सम्मिलित होने के लिए लाहौर जा रहा हूं। इफ्तिखार ने मुझे बुलाया है। यदि आप मुझे कुछ निर्देश देना चाहें तो उसे तुरन्त भेज दीजिए। गांधी जी के पत्र के उत्तर में मैंने जो पत्र लिखा है उसकी एक प्रति भेज रहा हू। इसका भी संबध कांग्रेस और अकालियों से है। मेरा कार्यक्रम यह है, किन्तु बिल्कुल ठीक तिथियों का निर्धारण अभी तक नहीं हुआ है।

लखनऊ में प्रांतीय कांग्रेस समिति की बैठक के लिए मई १८, १९, २०।
इलाहाबाद में प्रांतीय कांग्रेस समिति की बैठक के लिए मई २१, २२, २३।
लाहौर मे प्रांतीय कांग्रेस समिति की बैठक के लिए मई २४, २५।

पेशावर आदि में प्रांतीय कांग्रेस समिति की बैठक के लिए मई २६, २७, २८, २९, ३०।

श्रीनगर और कश्मीर प्रांतीय कांग्रेस समिति की बैठक के लिए मई ३१ से एक सप्ताह तक।

आपका शुभचिन्तक,
जवाहरलाल

मौलाना अबुल कलाम आजाद के नाम पत्र

इलाहाबाद
५ मार्च, १९४२

प्रिय मौलाना साहब,

मुझे आपका आल इंडिया कांग्रेस कमेटी के कार्यालय की महिला शाखा के संबंध में ३ मार्च का लिखा हुआ पत्र प्राप्त हुआ। मैं आपको तार नहीं भेज रहा हूं क्योंकि थोड़े-से शब्दों में अधिक बात कहना कठिन है।

सलाहकार समिति बनाने का आपका विचार उचित है। परन्तु इस समिति में संपूर्ण भारत से लोग लिए जायेंगे, उसकी बहुत ही कम बैठकें हो पाएंगी। फिर भी मूल समस्याओं पर विचार करने के लिए कभी भी इसकी बैठकें हो सकती थीं। जहां तक इस प्रकार की समिति की नियुक्ति का प्रश्न है, वह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि इसके गठन के संबंध में हमारा दृष्टिकोण क्या होगा। इसमें न्यूनाधिक प्रांतीय प्रतिनिधि होंगे या फिर कम से कम हिन्दुस्तान के बड़े हिस्सों के प्रतिनिधियों को इसमें सम्मिलित किया जाएगा। यद्यपि यह बात सैद्धांतिक रूप से उचित प्रतीत होती है किन्तु समस्या वही है कि इन लोगों का पारस्परिक मिलन कम होगा। इस समस्या के समाधान का एक उपाय संभव है, इसमें ऐसे क्षेत्रों के प्रतिनिधि हों जो एक सलाहकार समिति में लिए जाएँ और इन प्रतिनिधियों की नियुक्ति के लिए स्थानीय या प्रांतीय लोगों से परामर्श किया जा सकता है, यद्यपि सदैव ही ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है। आपकी प्रस्तावित समिति से संभव है कि सुधार हो और यह श्रीमती कृपलानी के लिए सहायक सिद्ध हो। आपने जो नाम प्रस्तावित किए हैं, ठीक हैं। कुछ और नाम भी प्रस्तुत किए जा सकते है किन्तु इनमें उचित नामों का चयन करना कठिन होगा। क्या इस प्रकार की समिति में सरोजनी नायडू को सम्मिलित करना उचित नहीं होगा? कार्यकारिणी समिति के सदस्य के रूप में निश्चय ही उन्हें सलाहकार समिति में सम्मिलित होने की आवश्यकता नहीं है, जब भी आवश्यकता हो उनको सलाहकार समिति में सम्मिलित किया जा सकता है।

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की महिला शाखा के संबंध में मेरा विचार यह है कि उसे हिन्दोस्तान भर में हो रहे महिला संबंधी कार्यक्रमों का लेखा-जोखा एकत्रित करना चाहिए और उसे हिन्दोस्तान के समस्त महिला संगठनों से संपर्क रखना चाहिए तथा विशेष रूप से कांग्रेसी महिलाओं के कार्यों का लेखा-जोखा रखना चाहिए, जो उन्होंने कांग्रेस के तत्वावधान में किये हैं और उसे ऐसी योजनाएं प्रस्तुत करनी चाहिए जो उनके विभिन्न कार्यों में संपर्क स्थापित करे। प्रांतीय कांग्रेस कमेटी की ओर से इस संबंध में महिला शाखा को निर्देश दिया जाए कि वह स्वतः न कोई काम कर सकती है, न कोई संगठन बना सकती है। मैं कहूंगा कि वर्तमान संकटपूर्ण स्थिति में दीर्घकालिक कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान नहीं देना चाहिए बल्कि तत्कालिक समस्याओं पर अधिक ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है। कांग्रेस ने कार्यक्रम की रूपरेखा निर्धारित की थी, उसके अन्तर्गत महिलाएं स्वयं अपनी सुरक्षा के हेतु अपनी योग्यता के अनुकूल स्थानीय कार्यक्रमों को स्वतः कार्यान्वित करें। यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि ऐसे प्रयास किए जाएं कि महिलाएं इसी दिशा में सोचने लगें, क्योंकि जनता की नैतिक स्थिति बहुत कुछ इस बात पर निर्भर होती है कि महिलाएं क्या सोचती हैं और क्या करती हैं। यदि उनको अपने क्षेत्रों में काम

का अवसर दिया जाएगा तो उनमें विवशता और दुर्बलता का भाव कम होगा और वह यह अनुभव करेंगी कि वह स्वयं इन महत्त्वपूर्ण सहकारी कार्यों का एक अंग हैं। कुछ क्षेत्रों में सामाजिक समस्या यह है कि महिलाओं के साथ छेड़खानी की जाती है। यह बातें नैतिक पतन के कारण बढ़ती हैं, क्योंकि मूलरूप से यह एक मनोवैज्ञानिक समस्या है। मैं अपने थोड़े से अनुभव के आधार पर यह कह सकता हूं कि महिलाएं यह जानने के लिए विचलित हैं कि वर्तमान स्थिति में वह क्या करें। यदि थोड़ा-सा भी उनका मार्गदर्शन किया जाए तो इसके अच्छे परिणाम निकल सकते हैं। मैं इस बात के नितांत विरुद्ध हूं कि महिलाओं को विवश और निस्सहाय समझा जाए, जो स्वयं अपनी देखभाल नहीं कर सकती हैं, इनको संकट के स्थानों से भाग जाना चाहिए, किसी भी युग के लिए यह अत्यन्त अनुचित नीति है। इससे वह और अधिक विवश और दुर्बल हो जाएंगी जितनी कि वह हैं। वर्तमान युग में तो यह बात नितांत निरर्थक है, क्योंकि संकट के स्थानों को आप सीमाबद्ध नहीं कर सकते, संकट तो हर स्थान पर हैं, यहां तक कि घर की चारदीवारी में भी संकट उत्पन्न हो सकता है। इसलिए इस समस्या के समाधान का एकमात्र उपाय यही है कि महिलाओं को महसूस कराया जाए कि समस्या यह है और वह इनका सामना कर सकती हैं, मानसिक दृष्टि से इन्हें इसके लिए और इसी प्रकार की अन्य समस्याओं के लिए तत्पर रहना चाहिए। मेरी बहन विजय लक्ष्मी पंडित आज देहली जा रही हैं। वह इस समस्या पर अरुणा आसिफ अली से विचार-विनिमय करेंगी। मैं इस पत्र की प्रतिलिपि श्रीमती कृपलानी को भी भेज रहा हूं।

आपको ज्ञात ही है कि मेरी बहन इस वर्ष अखिल भारतीय महिला कांफ्रेंस की अध्यक्षा हैं। वह और अन्य कांग्रेसी महिलाएं इस महिला कांफ्रेंस के तत्वावधान में काम कर रही हैं। कुछ प्रांतों और विशेष रूप से गुजरात में कांग्रेसी महिलाएं महिला कांफ्रेंस चला रही हैं। यह अच्छा होगा कि हम यथासंभव हर प्रकार का सहयोग महिला कांफ्रेंस को उन कार्यों में दें जो हमारे विचार में संपन्न होने चाहिए। हो सकता है कि यह बात हिन्दुस्तान के अन्य भागों में संभव न हो। कहने का तात्पर्य यह है कि एक ही प्रकार के संगठन बनाने में हमारी शक्ति और हमारा श्रम व्यर्थ न होना चाहिए।

आपका
जवाहरलाल नेहरू

विविधिका

विशिष्ट पत्र, ज्ञापन और वक्तव्य

जलियांवाला बाग की पुण्यस्मृति के अवसर पर मौलाना द्वारा लिखित संदेश और उसका हिन्दी रुपान्तर। इन संकलनों से मौलाना के व्यक्तित्व के विचित्र और रोचक तथ्य सामने आते हैं। इन्हें राष्ट्रीय संग्रहालय, राष्ट्रीय गांधी संग्रहालय एवं पुस्तकालय, जवाहरलाल नेहरू संग्रहालय एवं पुस्तकालय तथा भारतीय सांस्कृतिक परिषद् संबंध परिषद् के पुस्तकालय में संचित अप्रकाशित पाण्डुलिपियों से संकलित किया गया है।

جدوجہد

اور سکھوں

یہی زمین ہے جہاں موت کی خونآشامی نے ہماری نئی قومی

~~بیداری کا~~ ہنگامہ بیداری تھا — ہندوؤں، مسلمانوں

سکھوں کا خون ایک ساتھ اور ایک ہی وقت بہا اور

اسی موت کے خون نے ~~ہماری قومی زندگی~~

~~اور زندگی کا خون دوڑایا تھا~~

سے ہم نے اپنے لیے زندگی کا خون بہم پہنچایا تھا —

بیس سال گزر گئے — ہر سال ہم ۱۳ اپریل کو

اس واقعہ کی یاد میں جمع ہوتے ہیں اور آج بھی

اسی تاریخ نے ہمیں یہاں جمع کر دیا ہے

میں آج اسی سرزمین پر اسی مہینے اور تاریخ میں

ہر ہندو، مسلمان اور سکھ سے درخواست کروں گا کہ اس واقعہ

کی یاد اپنے دل کے ایک ایک ریشہ میں

تازہ کرے اور پھر اپنے اعتقاد اور عمل کا احتساب

کرے اور دیکھے کہ اس واقعہ نے زندگی اور

حرکت کا جو پیام ہمیں دیا تھا وہ ہمارے

دل و دماغ پر ثبت ہے یا محو ہو گیا ہے

जलियां वाला बाग की पुण्यस्मृति के अवसर पर संदेश

१३ अप्रैल, १९३९ *

यही ज़मीन है जहां मौत के सुकून (मौनता) ने हमारी नई क़ौमी जद्दोजहद (राष्ट्रीय आंदोलन) का हंगामा बेदार (जाग्रत) किया था। हिन्दुओं, मुसलमानों, सिखों का खून एक साथ और एक वक्त (समय) बहा, और इसी मौत के खून से हमने अपने लिए ज़िंदगी का खून बहम (उपलब्ध) पहुँचाया। बीस बरस गुज़र गए। हर साल हम १३ अप्रैल को इस वाक़ेआ (घटना) की याद में जमा होते हैं और आज भी इस तारीख़ में हर हिन्दू, मुसलमान और सिख से दरख़्वास्त (निवेदन) करूंगा कि इस वाक़ेआ की याद अपने दिल के एक-एक रेशे के अंदर ताज़ा करें और फिर अपने एतेक़ाद (निष्ठा) और कर्म का एहतेसाब (लेखा-जोखा) करके देखें कि इस वाक़ेआ ने ज़िंदगी और हरकत (गति) का जो प्याम हमें दिया था, वह हमारे दिलोदिमाग पर सब्त (अंकित) है या मह्व (लुप्त) हो चुका है।

*मौलाना का अपने हाथो से लिखित।

विद्यार्थियों को संदेश *

The children of today are the citizens of the future. They must therefore prepare themselves so that they can perform their ordinary tasks with honour and dignity to themselves and glory to their country and their nation.

वाइसरीगल लॉज
शिमला

आज के बच्चे कल के नागरिक हैं। इसलिए उन्हें स्वयं को इस प्रकार से तत्पर करना चाहिए कि वो दुष्कर कर्त्तव्यों का निर्वाह इस तरह करें जिससे उन्हें सम्मान और गरिमा प्राप्त हो और उनके देश तथा राष्ट्र का गौरव बढ़े।

उर्दू से हिन्दी में अनुवाद

तुल्लबा (विद्यार्थी) हिन्दुस्तान की कौमी जद्दोजहेद (राष्ट्रीय आंदोलन) में सबसे ज़्यादा अहम् और जरूरी कन्ट्रीब्यूशन जो कर सकते हैं, वो है कि कम्यूनल इतिहाद (एकता) का नमूना बनें, और इस नमूने से वक्त की तमाम बाहेमी बेऐतेमादियों (पारस्परिक अविश्वास) को नेशन के लिए फतह करें।

मुझे उम्मीद है कि आपकी यूनियन इस बारे में पूरी कोशिश करेगी।

* १३ और १४ अप्रैल १९४० को राजकोट मे आयोजित काठियावाड और कच्छ प्रान्त के विद्यार्थियो के सम्मेलन के नाम सदेश। अग्रेजी मे जवाहरलाल नेहरू द्वारा लिखित है।

विद्यार्थियों को संदेश*

[illegible]

---

* १३ और १४ अप्रैल १९४० को राजकोट में आयोजित काठियावाड़ और कच्छ प्रान्त के विद्यार्थियों के सम्मेलन के नाम मौलाना का संदेश।

प्रेस वक्तव्य

हिन्दुस्तान टाइम्स
१७ अगस्त, १९४५

बेग़म आज़ाद कोष

मुझे प्रेस रिपोर्ट से ज्ञात हुआ है कि देश के विभिन्न भागों में स्वर्गीय बेग़म आज़ाद की स्मारक के लिए धन इकट्ठा किया जा रहा है। मैं उन सभी मित्रों का हृदय से आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने इस प्रेमपूर्वक कार्य को करने का बीड़ा उठाया है। लेकिन मेरे मत में इस मामले से संबंधित विचार और भावनाओं को बताना मेरा कर्त्तव्य है। मुझे विश्वास है कि जन स्मारकों को बनाने का निश्चय करना किसी की याद को शाश्वत करना है। हमें इस बारे में निश्चित सिद्धांत ध्यान में रखने चाहिए। स्मारक केवल उन व्यक्तियों की याद में बनाने चाहिएं, जो देशसेवा में अद्वितीय वैयक्तिक विशेषता के कारण विशेष स्थान के अधिकारी हों। प्रस्तावित स्मारक की कसौटी के विरूद्ध कोई निर्णय लेना कदाचित उचित नहीं होगा। मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि मैं उन सभी मित्रों से प्रार्थना करूँ जिन्होंने इस उद्देश्य के लिए धन इकट्ठा किया है, धन जमा करना बंद कर दें और एकत्रित किए हुए धन को 'कमला नेहरू स्मारक हस्पताल इलाहाबाद' को हस्तांतरण कर दें। एक बार फिर उन सभी मित्रों के प्रति मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूं।

प्रेस वक्तव्य

१७ अप्रैल, १९४६

पाकिस्तान मुस्लिम हितों के विरुद्ध

जैसा कि जाना जाता है कि मिस्टर जिन्ना की पाकिस्तान योजना दो राष्ट्रों के सिद्धांत पर आधारित है। उनका विचार है कि भारत भिन्न-भिन्न धर्मो पर आधारित अनेक उपराष्ट्रों का समूह है। उनमें से दो प्रमुख राष्ट्रों, हिन्दू और मुस्लिम का अलग राष्ट्र और राज्य होना आवश्यक है। जब डॉ० एडवर्ड थामसन ने एक बार मिस्टर जिन्ना से कहा है कि भारत में हजारों शहरों, गांवों और बस्तियों में हिन्दू, मुस्लिम एक साथ जीवन यापन करते हैं तो मिस्टर जिन्ना ने उत्तर दिया कि उनका पृथक राष्ट्र होने पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जिन्ना के अनुसार दो राष्ट्र हर बस्ती, गाव और शहर में, एक-दूसरे से मिल-जुल कर नहीं रह रहे हैं अतः इच्छा व्यक्त की कि उनका दो भिन्न राज्यों में बंटवारा कर देना चाहिए।

मैं समस्या के अन्य समस्त पहलुओं की उपेक्षा करके इसे एकमात्र मुस्लिम हितों की दृष्टि से देखने के लिए तत्पर हूं। मैं इससे भी अधिक यह कहूंगा कि यदि यह बात सिद्ध कर दी जाए कि पाकिस्तान की परियोजना किसी प्रकार से भी मुसलमानों के लिए लाभप्रद हो सकती है तो मैं स्वय इसे स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाऊंगा और दूसरों से स्वीकृत करवाने के लिए भी कार्य करूंगा। परन्तु सच्चाई यह है कि अगर मैं मुसलमानों के साम्प्रदायिक हित को मद्दे नज़र रखते हुए योजना का निरीक्षण करूंगा तो मुझे इसी निष्कर्ष पर पहुंचना पड़ेगा कि यह उन्हें किसी प्रकार से लाभान्वित नहीं कर सकती या उनकी उचित आशंकाओं का शमन नहीं कर सकती है।

आइए, ठंडे मन से उन परिणामों पर विचार करें, जो यदि पाकिस्तान योजना लागू कर दी जाए तो उत्पन्न होंगे। भारत दो राज्यों में बंट जाएगा। एक में मुसलमानों का और दूसरे में हिन्दुओं का बहुमत होगा। हिन्दुस्तान में साढ़े तीन करोड़ मुसलमान रह जाएंगे जो छोटी-छोटी अल्पसंख्यक इकाइयों में सारे देश में बिखरे होंगे। उत्तर प्रदेश में १७ प्रतिशत, बिहार में १२ प्रतिशत और मद्रास में ९ प्रतिशत मुसलमान रह जाएंगे जो इससे भी अधिक शक्तिहीन हो जाएंगे जितने वो आज हिन्दू बहुमत प्रांतों में हैं। लगभग १,००० वर्ष से ये क्षेत्र उनका जन्मस्थान है और उन्होंने मुस्लिम संस्कृति और सभ्यता के अत्यन्त विख्यात केन्द्र वहां निर्मित किए हैं।

एक ही रात में वे महसूस करेंगे और जान जाएंगे कि वे अनागरिक और विदेशी हो गए हैं, औद्योगिक शैक्षणिक और आर्थिक क्षेत्र में पिछड़ गए हैं। वो इसके पश्चात् जो शुद्ध हिन्दू राज स्थापित होगा, उस की दया-भावना पर वे आश्रित होंगे।

अखबारों को भेजा गया वक्तव्य, जो सूचना-पत्रो मे १६-१७ अप्रैल १९४६ को प्रकाशित हुआ। इस वक्तव्य का जो रूप यहा प्रस्तुत किया गया है वो एसोसिएटिड प्रैस द्वारा पत्र-पत्रिकाओ को प्रेषित किया गया था।

दूसरी तरफ, पाकिस्तान राज्य में उनकी स्थिति मर्माक और कमजोर हो जाएगी। पाकिस्तान में कहीं भी उनका बहुमत इतना नहीं होगा जितना हिन्दुस्तान राज्य में हिन्दुओं का बहुमत होगा। वास्तव में उनका बहुमत इतना कम होगा कि वो उस आर्थिक, शैक्षणिक और राजनीतिक लाभ के सम्मुख टिक न पाएगा जो इन क्षेत्रों में मुस्लिम इतर समुदायों को प्राप्त हैं। यदि ऐसा न हुआ होता और पाकिस्तान में अधिकांशतः मुस्लिम होते तो फिर भी हिन्दुस्तान में मुसलमानों की इस समस्या का यह समाधान नहीं हो सकता था। दो राज्य जो एक-दूसरे के विरोध में खड़े हुए हैं, एक-दूसरे के अल्पसंख्यकों की समस्या का समाधान प्रस्तुत नहीं कर सकते, बल्कि अल्पसंख्यकों को बंदी बनाकर रखने की एक प्रणाली प्रचलित करके आपसी मतभेदों द्वारा प्रतिशोध और दमन की भावना को बढ़ावा देंगे। अतः पाकिस्तान योजना मुसलमानों की किसी समस्या का समाधान नहीं करती। जहाँ अल्पसंख्यक वर्ग हैं वहाँ भी वह उनके अधिकारों को सुरक्षित नहीं रख सकती। पाकिस्तान का नागरिक होने के नाते न तो भारत में उसका स्तर सही होगा और न ही संसार के किसी भी मामले में वह भारत संघ राज्य की तरह एक बड़े राज्य का नागरिक होकर भाग ले सकेगा। यह न तो उस स्थान पर उनके अधिकारों की रक्षा कर सकती है, जहाँ वे अल्पसंख्यक हैं और न ही पाकिस्तानी नागरिक के रूप में हिन्दुस्तान या विश्व में उनकी उस स्थिति को दृढ़ कर सकती हैं जो हिन्दुस्तान संघ जैसे बड़े राज्य के नागरिक होने के रूप में उन्हें प्राप्त होती।

कहा जा सकता है कि यदि पाकिस्तान स्वयं मुसलमानों के हितों के इतना विपरीत है तो मुसलमानों की इतनी बड़ी जनसंख्या और उसके प्रति इतना मोह क्यों रखती? इसका उत्तर सांप्रदायिक उग्रवादी हिन्दुओं के व्यवहार में ढूंढ़ा जा सकता है। मुस्लिम लीग ने जब पाकिस्तान की बात करनी आरंभ की तो उन्होंने इस योजना में अखिल इस्लामी क्षेत्र बनाने के भयंकर षड्यन्त्र का आभास किया और भयभीत होकर इसका विरोध इसलिए करने लगे कि यह हिन्दुस्तानी मुसलमानों के देशी राज्यों से हिन्दुस्तानी मुसलमानों को मिलाने का प्रयास है। इस विरोध ने लीग के अनुयायियों को प्रोत्साहन प्रदान किया। सीधे-सादे यद्यपि अविश्वसनीय तर्क द्वारा कहा गया कि यदि हिन्दू पाकिस्तान के इतने विरोधी हैं तो निश्चय ही इसे मुसलमानों के लिए लाभदायक होना चाहिए। भावावेश का ऐसा वातावरण उत्पन्न हो गया था जिसने उचित विवेचन असंभव बना दिया था और मुसलमान नवयुवकों और तुरन्त प्रभाव ग्रहण करने वाले व्यक्तियों को विशेष रूप से यह भाव बहा ले गया लेकिन इस बात में मुझे कोई संदेह नहीं कि जब वर्तमान भावावेश समाप्त हो जाएगा और इस समस्या पर ठंडे मन से विचार किया जा सकेगा तो वे लोग भी इसे मुस्लिम हितों के लिए हानिकारक कह कर इसकी निन्दा करेंगे जो आज पाकिस्तान के समर्थक हैं।

मैं जिस योजना को कांग्रेस द्वारा स्वीकृत कराने में सफल हुआ हूं उसमें पाकिस्तान योजना की समस्त मूल बातें आ गई हैं और इस योजना के समस्त दुर्गुण और त्रुटियां समाप्त हो गई हैं। पाकिस्तान का आधार मुस्लिम बहुसंख्यक क्षेत्रों में केन्द्र द्वारा हस्तक्षेप का भय है क्योंकि केन्द्र में हिन्दुओं का बहुमत होगा। कांग्रेस इस भय का निवारण करने के लिए प्रांतीय इकाइयों को पूर्ण स्वायत्तता प्रदान करने और प्रांतों को संपूर्ण सत्ता देने के लिए तत्पर है। उसने केन्द्र के आधीन विषयों की दो सूचियां बनाई हैं जिनमें से एक अनिवार्य है और दूसरे ऐच्छिक ताकि यदि कोई प्रांतीय इकाई चाहे तो उन नवीनतम अधिकारों को छोड़कर जिसे उसने केन्द्र को सौंप दिया है शेष सभी विषयों का प्रबंध स्वयं कर सकती है। कांग्रेस योजना अतः इस बात को सुनिश्चित करती है कि मुस्लिम बहुमत के प्रांतों को अपने प्रशासन को चलाने में स्वतन्त्रता प्राप्त होगी और

वो अपनी इच्छानुसार विकास कर सकेंगे किन्तु साथ ही साथ उन समस्त प्रश्नों पर वो केन्द्र पर प्रभाव डाल सकेंगे जिनका संबंध संपूर्ण भारत से है।

हिन्दुस्तान में स्थिति कुछ ऐसी है कि केन्द्रीयकृत एवं एकात्मक सरकार स्थापित करने के प्रयास अवश्य ही विफल होंगे। ठीक इसी तरह हिन्दुस्तान को दो राज्यों में विभाजित करने की चेष्टा का विफल होना अनिवार्य है। समस्या के सारे पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुचा हूं कि कांग्रेस सूत्र में जो दृष्टि अपनाई गई है एक मात्र उसी के द्वारा इस समस्या का समाधान हो सकता है क्योंकि इस सूत्र में प्रांतों और संपूर्ण भारत दोनो के विकास के लिए स्थान रखा गया है। कांग्रेस सूत्र मुस्लिम बहुमत के क्षेत्रों की उस आशंका का निवारण करने में सफल हुआ है। जिसे पाकिस्तान योजना ने उत्पन्न कर दिया था। दूसरी ओर पाकिस्तान की योजना के उन दुर्गुणों से यह सुरक्षित रहती है जो उन क्षेत्रों के मुसलमानों को जहाँ वो अल्पसंख्यक हैं, शुद्ध हिन्दू प्रशासन के अंतर्गत लाती है।

मैं उन व्यक्तियों में से हूं जो समझते हैं कि सांप्रदायिक कटुता और मतभेद का यह वर्तमान अध्याय भारतीय जीवन का ऐसा पक्ष है जो बीत जाएगा। मेरा निश्चित विचार है कि जब हिन्दुस्तान अपने भाग्य का दायित्व संभाल लेगा तो ये लुप्त हो जाएंगे। मुझे मिस्टर ग्लैडस्टोन की यह उक्ति याद पड़ रही है कि पानी से भयभीत होने वाले मनुष्य का उत्तम उपचार यही है कि उसे पानी में धक्का दे दिया जाए, तभी वो तैरना सीख जाएगा और महसूस करेगा कि पानी इतना घातक नहीं है जितना उसकी कल्पना ने उसे समझ लिया था। इसी प्रकार हिन्दुस्तान को अपना दायित्व संभालना चाहिए और अपनी समस्याओं की व्यवस्था करनी चाहिए। हिन्दुस्तान जब अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा तो वह सांप्रदायिक संदेह और टकराव के वर्तमान अध्याय को विस्मृत कर देगा तथा आधुनिक जीवन की समस्याओं का सामना आधुनिक दृष्टिकोण के द्वारा करेगा।

मतभेद निश्चय ही रहेंगे किन्तु इनका आधार सांप्रदायिकता न होकर के आर्थिक होगा। राजनैतिक दलों के बीच का विरोध चलता रहेगा किन्तु वो धर्म पर आधृत नहीं होंगे बल्कि आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं से संबद्ध होंगे। भविष्य में वर्गों के बीच एकता प्रस्फुटित होगी और इसका आधार समुदाय कदापि नहीं होगा और इसी मेल के अनुसार नीतियां निर्धारित होंगी। यदि यह कहा जाए कि यह केवल विश्वास मात्र है जिसे घटनाएं शायद सिद्ध न कर पाएं पर मैं कहूंगा कि चाहे जो कुछ भी हो नौ करोड़ मुसलमान एक ऐसा तथ्य है जिसकी उपेक्षा कोई नहीं कर सकता और परिस्थितियां चाहे जो कुछ भी हो मुसलमान इतने सशक्त होंगे कि वो अपने भाग्य की रक्षा स्वयं कर सकते हैं।

एशियाई संबंधों के सम्मेलन की महत्ता
मार्च १९४७

एशियाई संबंधों के सम्मेलन का जो अधिवेशन अब दिल्ली में हो रहा है वो लिखित इतिहास में अद्वितीय है। निश्चय ही बौद्धकालीन भारत में भिक्षुओं के महान् समागम आयोजित हुए हैं जिनमें लंका, बर्मा और सुदूर इंडोनेशिया के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। परन्तु उनका उद्देश्य नितांत धार्मिक था और वह भी बौद्ध-धर्म के अनुयायियों तक सीमित था। उनके उद्देश्यों में विविधता नहीं थी और न ही उनमें विभिन्न प्रकार के ऐसे सांस्कृतिक, धार्मिक और राष्ट्रीय समूहों का प्रतिनिधित्व हुआ था जैसा कि वर्तमान दिल्ली सम्मेलन में हो रहा है।

१८वीं शताब्दी में नादिरशाह ने भी मुस्लिम धर्माचार्यों का एक महासमागम आयोजित करने की बात सोची थी। उस समय शियों और सुन्नियों के मतभेद के कारण इस्लामी एकता के लिए संकट उत्पन्न हो गया था। सुन्नियों में नाना-प्रकार के संप्रदाय और उपसंप्रदाय स्थापित थे और शिया भी अनेकानेक दलों में विभाजित थे। प्रतिद्वंद्वियों में समझौता कराने और उनके विरोधी दावों में समन्वय उत्पन्न करने के हेतु बगदाद में धर्माचार्यों का एक महासमागम आयोजित किया गया था।

इसमें ईरान, इराक, बुखारा, समरकंद और मुस्लिम धर्मशास्त्र के पठन-पाठन के अन्य केन्द्रों से प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। परन्तु प्राचीन भारत के बौद्ध भिक्षुओं के सम्मेलन के समान ही यह भी एक धार्मिक समागम था जो एक ही धर्म के अनुयायियों तक सीमित था। इसमें भी मानवीय जीवन की उस विविधता का अभाव था जो एशियाई संबंधों के सम्मेलन में परिलक्षित होता है।

इस प्रकार यह प्रथम अवसर है जब एशिया के लोग एक संयुक्त मंच पर अपने समान समस्याओं पर विचार करने के लिए एकत्रित हुए हैं। वो राष्ट्रीय स्वाधीनता के पक्षों और उसके लिए अपनी आंतरिक प्रेरणाओं की तुलनात्मक विवेचन करेंगे। वे अपनी संस्कृतियों की समानता की जड़ों की खोज करेंगे और मित्रता तथा भाईचारे के कारणों पर प्रकाश डालेंगे। ये प्रतिनिधि उस आर्थिक शक्ति को समझने का प्रयास करेंगे जिसने उनके सामाजिक जीवन में विविधता उत्पन्न की है और उन समान उपायों की व्याख्या करेंगे जिनके द्वारा जन-साधारण को स्वतन्त्रतापूर्वक संपूर्ण जीवन व्यतीत करने का अवसर प्राप्त हो सकेगा।

प्रतिनिधियों में अनेक देशों की महिलाएं भी सम्मिलित हैं और वो लिखित इतिहास में प्रथम बार एशिया की महिलाओं के रूप में अपनी समस्याओं पर विचार करेंगी।

इस प्रकार के सम्मेलन इससे पूर्व कभी आयोजित नहीं हुए और यह अत्यन्त दुःख की बात होगी यदि यह सम्मेलन, इसमें सम्मिलित लोगों के सहयोग के लिए, किसी अस्थायी ढांचे का शिलान्यास किए बिना समाप्त हो जाए। इस प्रकार के संगठन की रूपरेखा यहां और इसी समय प्रस्तुत नहीं की जा सकती किन्तु भावी कार्यक्रमों पर इस सम्मेलन में विचार-विनिमय होना चाहिए।

---

* हिन्दुस्तान टाइम्स विशेषांक के लिए विशेष रूप से लिखित।

मेरा विचार है कि एक ऐसा संस्थान स्थापित होना चाहिए जिसकी एक स्थायी समिति हो और जिसमें सारे देशों के प्रतिनिधि सम्मिलित हों, जो इस सम्मेलन में भाग ले रहे हैं। ये संस्थान न केवल समय-समय पर विभिन्न देशों में सम्मेलनों का आयोजन करें बल्कि ऐसे पुस्तकालयों की स्थापना भी करें जहां इन समस्त देशों का आधुनिक साहित्य एकत्रित किया जाए। यदि संभव हो तो एक मासिक अन्यथा एक त्रैमासिक पत्रिका संस्थान को प्रकाशित करनी चाहिए जिसमें उन समस्याओं पर विचार होना चाहिए जिनसे पूर्व के जन-साधारण दो-चार हैं और ये कार्य सहयोग और सहमति की भावना के अंतर्गत होना चाहिए।

हम सब इस बात से प्रसन्न हैं कि एशिया के जन-साधारण को एकता के सूत्र में बांधने के इस आंदोलन का सूत्रपात करने का अवसर भारत को प्राप्त हुआ है। परन्तु समय आ गया है जब आगे कदम बढ़ाने की आवश्यकता है। अब हमारी यह दुनिया आदर्शवादियों का स्वप्न मात्र नहीं है बल्कि विद्यमान यथार्थों का स्पष्ट वक्तव्य है। दूरी और समय मानव-एकता के उद्देश्यों के आधीन हो गए हैं। अतः इस एशियाई सम्मेलन को विश्व-सांस्कृतिक सम्मेलन की रूपरेखा निर्धारित करनी चाहिए जिसमें न केवल पूर्व के लोग बल्कि पश्चिम के लोग भी भाग ले सकें। मैं सम्मेलन के पथप्रदर्शकों और उनकी इस दृष्टि के आधार अराजनैतिक और पक्षपातरहित भावना को धन्यवाद देता हूं। इस प्रकार के सांस्कृतिक सम्मेलन में संकीर्ण राजनीति के लिए कोई स्थान नहीं है और न ही क्षुद्र सांप्रदायिक अथवा दलगत स्वार्थों के लिए कोई जगह है। मुझे कोई संदेह नहीं है कि यह सम्मेलन विराट मानवतावादी और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से प्रेरित होगा और इसमें सम्मिलित समस्त लोगों में सहमति और सहचर की भावना उत्पन्न करेगा।

हम उन सबके आभारी हैं जिन्होंने भारत का निमंत्रण स्वीकार किया है। वो लोग दूर-दूर से आए हैं और मुझे पूर्ण आशा है कि वो जब अपने देश लौट कर जायेंगे तो अपने साथ भारत वर्ष का मैत्री और सद्भावना का संदेश ले जाएंगे।

ईद का चांद

हमने एक ऐसी आधुनिक प्रणाली आविष्कृत की है जो इस बात को निःसंदेह बना देगी कि स
पर हमें सूचना मिल जाए और हमें इसका पूर्णरूपेण उपयोग करना चाहिए। भारत में हमें
ऐसा उपाय करना चाहिए कि ईद और रमज़ान की प्रथम तिथि का निर्धारण समान-रू
निर्विवाद हो जाए।

इस संबंध में जो कठिनाई है वो यह है कि धर्माचार्य अपनी संकीर्ण धुरी से निकलने
तत्पर नहीं हैं। इसके अतिरिक्त वायरलैस से मिलने वाली सूचना के "ठीक" होने के संबंध मे
उन्हें संदेह है। फिर भी हमें प्रयत्न करते रहना चाहिए। आशा की जाती है कि कुछ सम
लोग इन विचारों से सहमत होने लगेंगे।

(मौलाना ने यह नोट मोहम्मद माले के पत्र के उत्तर में १८ जुलाई १९५३ को लिखवाया था।)

भाग ५

जीवन की घटनाओं की अनुक्रमणिका

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के जीवन की घटनाओं की अनुक्रमणिका

मक्का में जन्म — १७ अगस्त, १८८८
बिस्मिल्लाह (विद्यारंभ समारोह) — १८९२
भारत आगमन — १८९८
कविता की रचना आरंभ — १८९८
माता का स्वर्गवास — १८९९
कलकत्ते से **नैरंग-ए-ख़याल**, मासिक पत्रिका निकाली — १८९९
विवाह — १९०० अथवा १९०१
साप्ताहिक **अल-मिस्बाह** निकाला — २२ जनवरी, १९०१
पुरातननम प्रकाशन **एलान-उल-हक़** — ५ जनवरी, १९०२
साप्ताहिक **ऐहसान–उल–अख़बार**, कलकत्ता, के सम्पादक — १९०२
दर्से निज़ामी (निज़ामी पाठ्यक्रम) को पूर्ण किया — १९०३
मासिक पत्रिका **खदंग-ए-नज़र**, लखनऊ, के उपसंपादक — मार्च, १९०३
एडवर्ड गज़ेट, शाहजहांपुर, के संपादक — १९०३
लिसान-उल-सिदूक़ पत्रिका निकाली — २० नवबर, १९०३
'अंजुमन हिमायत-उल-इस्लाम', लाहौर के वार्षिक अधिवेशन में भाग लिया — १ से ३ अप्रैल, १९०४
'अंजुमन हिमायत-उल-इस्लाम', लाहौर के वार्षिक अधिवेशन में भाग लिया और 'इस्लाम का भविष्य' विषय पर भाषण दिया — १९०५
लिसान-उल-सिदूक़ का अंतिम अंक आगरा के विख्यात मुफ़ीदे आम प्रेस में छपा — अप्रैल-मई, १९०५
इराक़ गए — १९०५
मासिक पत्रिका **अल-नदवा**, लखनऊ, के उपसंपादक — अक्तूबर, १९०५
अल-नदवा से प्रस्थान — मार्च, १९०६
प्रत्येक तीसरे दिन प्रकाशित **वकील**, अमृतसर, के सपादक — अप्रैल, १९०६
ज्येष्ठ भ्राता अबुनस्र यासीन आह का देहावसान — १९०६
वकील पत्रिका छोड़ कर कलकत्ता वापसी — नवंबर, १९०६
ढाका में मुस्लिम शिक्षा सम्मेलन के जलसे में भाग लिया। इसी जलसे में मुस्लिम लीग की स्थापना — दिसंबर, १९०६

साप्ताहिक **दारुल-सल्तनत**, कलकत्ता, के संपादक	— जनवरी, १९०७
वकील, अमृतसर, के संपादक पुनः नियुक्त	— अगस्त, १९०७
पिता के रुग्ण होने के कारण **वकील** से त्याग-पत्र	— अगस्त, १९०८
पिता का देहावसान	— १५ अगस्त, १९०
पश्चिमी एशिया और फ्रांस का पर्यटन	— १९०८-१९०९
साप्ताहिक **अल-हिलाल** निकाला	— १३ जुलाई, १९१
अल-हिलाल प्रेस से २००० रुपये की ज़मानत माँगी गई जो २३ सितंबर को जमा की गई	— १८ सितंबर, १९१
बंगाल सरकार द्वारा अल-हिलाल के १४ और २१ अक्तूबर के अंकों के एकीकृत अंक की ज़ब्ती	— अक्तूबर, १९१४
ज़मानत की ज़ब्ती और १०,००० रुपये की नई ज़मानत की माँग	— १६ नवंबर, १९१
ज़मानत न देने के कारण १८ नवंबर के अंक के प्रकाशन के पश्चात् **अल-हिलाल** का प्रकाशन बंद और साप्ताहिक **अल-बलाग़** का प्रकाशन आरंभ	— १२ नवंबर, १९१
सुरक्षा एक्ट, की धारा ३ के अंतर्गत चार दिन में कलकत्ता और बंगाल छोड़ने का बंगाल सरकार का आदेश। यह अवधि एक सप्ताह तक बढ़ाई गई। देहली, पंजाब और यू.पी. की सरकारें पहले ही अपने प्रांतों में प्रवेश पर प्रतिबंध लगा चुकी थीं। कलकत्ता से निष्कासन के कारण १७, २४ और ३१ मार्च के अंकों के प्रकाशन के पश्चात् **अल-बलाग़** बंद हो गया। राँची (बिहार) में आगमन और नगर के बाहर मोराबादी में निवास। कुछ दिनों के पश्चात् केन्द्रीय सरकार के आदेश के अन्तर्गत नज़रबंदी	— ७ अप्रैल, १९१६
तज़किरः (आत्मकथा) और 'जामआ-उल-शवाहिद फ़ी-दख़ूल-ए-ग़ैरमुस्लिम फ़ी मसाजिद'	— १९१९
रिहाई	— १ जनवरी, १९२०
बंगाल प्रांतीय ख़िलाफ़त कमेटी के अध्यक्ष के रूप में सरकार से असहयोग करने की जनता से अपील	— २८, २९ फ़रवरी, १
'मसलाए ख़िलाफ़त और जज़ीर-तुल-अरब' का लेखन जिसके अंग्रेज़ी और पश्तो अनुवाद क्रमशः बंबई और पेशावर से प्रकाशित। मिर्ज़ा अब्दुलक़ादिर बेग ने इसे अंग्रेज़ी में और मलिक सैदा ख़ाँ शानवरी ने पश्तो में अनुवाद किया।	— १९२०
अखिल भारतीय ख़िलाफ़त कांफ्रेंस के नागपुर अधिवेशन की अध्यक्षता। असहयोग आंदोलन के प्रचार-प्रसार के लिए अपने नियंत्रण में साप्ताहिक **पैग़ाम** निकाला।	— २३ सितंबर, १९२
आगरा में प्रांतीय ख़िलाफ़त कमेटी के अधिवेशन की अध्यक्षता	— २५ अक्तूबर, १९२

लाहौर में जमीअत-उल-उल्मा-ए-हिन्द के अधिवेशन की अध्यक्षता	— १८-२० नवंबर, १९२१
गिरफ्तारी और एक वर्ष का कारावास तथा प्रेसीडेंसी जेल, अलीपुर में बंदी	— १० दिसंबर, १९२१
इस मुकदमे में दिया गया वक्तव्य '**कौल-ए-फ़ैसल** के नाम से प्रसिद्ध है। इसका अरबी अनुवाद काहिरा में और तुर्की अनुवाद स्तंबोल में प्रकाशित हुआ। इसे मौलाना अब्दुर्रज़्ज़ाक मलीहाबादी ने अरबी में और **जहान-ए-इस्लाम**, स्तंबोल, के संपादक उमर रजा ने तुर्की में अनूदित किया।	१९२२
रिहाई।	— ६ जनवरी, १९२२
अरब देशों में भारतीय स्वतन्त्रता आंदोलन के प्रचार के लिए अपने नियन्त्रण में 'अल-जमीआ' नामक पखवाड़ा-पत्र अरबी भाषा में निकाला	— १ अप्रैल, १९२३
आल इंडिया कांग्रेस के विशेषाधिवेशन, दिल्ली, की अध्यक्षता।	— १५ सितंबर, १९२३
अखिल भारतीय खिलाफ़त कमेटी के कानपुर अधिवेशन की अध्यक्षता	— २९ दिसंबर, १९२५
अल-हिलाल का पुनः प्रकाशन	— १० जून, १९२७
९ दिसंबर १९२७ के अंक के प्रकाशन के पश्चात् **अल-हिलाल** बंद	— १९२७
मुस्लिम नेशनल पार्टी के अध्यक्ष	— २७ जुलाई, १९२९
आल इंडिया नेशनल कांग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष	— १९३०
गिरफ्तारी	— १९३१
तर्जुमान-उल-कुरान (कुरानानुवाद) प्रथम खंड	— सितंबर, १९३१
गिरफ्तारी	— १९३२
तर्जुमान-उल-कुरान खंड दो	— अप्रैल, १९३६
तर्जुमान-उल-कुरान खंड १ और **खंड २** सैयद अब्दुल लतीफ द्वारा अंग्रेज़ी में अनूदित जो भारत और पाकिस्तान में प्रकाशित हो चुका	— १९३६
आल इंडिया कांग्रेस कमेटी के स्थानापन्न अध्यक्ष	— १९३९
आल इंडिया नेशनल कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित, १९४६ तक इस पद पर आसीन	— १९४०
आल इंडिया कांग्रेस के रामगढ़ अधिवेशन की अध्यक्षता	— १९ मार्च, १९४०
गिरफ्तारी और दो वर्ष का कारावास तथा नैनी जेल में बंदी	— १९४०
रिहाई	— ४ दिसंबर, १९४१
क्रिप्स मिशन से वार्तालाप	— मार्च-अप्रैल १९४२
गिरफ़्तारी और अहमद नगर दुर्ग में नज़रबंदी	— ९ अगस्त, १९४२
कलकत्ते में पत्नी का स्वर्गवास	— ९ अप्रैल, १९४३

भोपाल में छोटी बहन हनीफ़ा बेगम आबरू का देहावसान	— जून, १९४३
अहमदनगर से बंकुरा जेल में स्थानांतरण	— अप्रैल, १९४५
रिहाई	— १५ जून, १९४५
शिमला कांफ्रेंस में सम्मिलित	— १६ जून, १९४५
गुबार-ए-ख़ातिर और **कारवान-ए-ख़्याल**	— १९४६
मंत्रिमडल मिशन से वार्तालाप	— अप्रैल-जून, १९४६
अस्थायी सरकार में शिक्षामंत्री के रूप में सम्मिलित	— १५ जनवरी, १९४७
स्वतन्त्र भारत की प्रथम सरकार में शिक्षामंत्री	— १५ अगस्त, १९४७
कांग्रेस संसदीय दल के उपनेता	— १९५१
प्रथम आम चुनाव में संसद सदस्य निर्वाचित शिक्षा, प्राकृतिक ससाधन और वैज्ञानिक अनुसंधान मंत्री	— १९५२
कांग्रेस संसदीय दल के उपनेता पुनः निर्वाचित	— १९५५
योरप और पश्चिम एशिया में शिष्टमंडल का नेतृत्व, दिल्ली में आयोजित ९वीं यूनेस्को कान्फ्रेंस की अध्यक्षता	— मई से जुलाई तक, १९५६
द्वितीय आम चुनाव में संसद सदस्य निर्वाचित और शिक्षा एवं वैज्ञानिक अनुसंधान के मंत्री पुनः नियुक्त	— १९५७
दिल्ली में आयोजित 'अंजुमन तरक्की-ए-उर्दू' में दिया गया अंतिम भाषण	— १५ फ़रवरी, १९५८
स्वर्गवास। जामा मस्जिद, दिल्ली के सामने वाले पार्क में दफन	— २२ फ़रवरी, १९५८

भाग ६

ग्रंथ सूची

मेरी तस्वीर के ये नक़्श ज़रा ग़ौर से देख
इस में इक दौर की तारीख़ नज़र आएगी

प्रस्तावना

मौलाना अबुल कलाम आजाद ने अपने जीवन काल में लगभग ८००० पुस्तकों के अपने निजी संग्रह को 'इंडियन काउंसिल फॉर कल्चरल रिलेशन्स' के पुस्तकालय को भेंट कर दिया था। इस संग्रह मे विभिन्न विषयों अर्थात् इतिहास, धर्म, भूगोल तथा साहित्य से सम्बन्धित मौलिक सूत्र एवं दुर्लभ सामग्री और पुस्तकें शामिल है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त काफी संख्या में अमूल्य पाण्डुलिपियाँ, मूल संस्मरण और सरकारी व अर्धसरकारी पत्राचार के मौलिक मसविदे मौजूद हैं। यह सब सामग्री शोध कार्य-रत विद्यार्थियों तथा बुद्धिजीवियों के लिए अत्यन्त मार्गदर्शी है और आई.सी.सी.आर. के पुस्तकालय मे उद्धरण तथा अध्ययन के लिए उपलब्ध है।

मौलाना आज़ाद एक व्यक्ति ही नहीं बल्कि अपने में एक संस्था समझे जाते थे। उनका व्यक्तित्व संपूर्ण था। उन्होंने जो कुछ कहा अथवा लिखा उसमे भाषण-कला और पत्रकारिता के नए आयाम स्थापित हुए।

मौलाना आज़ाद की लेखनी और शैली दोनो ही अनूठी थीं। उनके समस्त लेख, दर्शन-शास्त्र, धर्म-शास्त्र, साहित्य, राजनीति, इतिहास और भूगोल जैसे विभिन्न क्षेत्रो में महान साहित्यिक कृतियों का स्थान रखते हैं और कई राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दार्शनिकों और लेखकों ने अनगिनत पुस्तको और लेखों की रचना करके मौलाना आजाद के व्यक्तित्व को अमर बना दिया है।

यद्यपि मौलाना आज़ाद के सर्वसंपन्न व्यक्तित्व के साधारण तौर पर दूसरो की लेखनी को प्रखर किया है तथापि अब भी मौलाना से सम्बन्धित अध्ययन का विशाल क्षेत्र शोधको को अध्ययन के लिए प्रेरणा देता है। वास्तव मे मौलाना आजाद पर अधिक अध्ययन के हेतु बुद्धिजीवियो तथा विद्यार्थियों के मार्ग-दर्शन के लिए एक उपयुक्त मार्ग-दर्शक की अत्यन्त आवश्यकता है। इस मार्ग-दर्शक के अभाव को दूर करने की दृष्टि से काउंसिल ने यह निश्चय किया कि मौलाना आजाद पर एक संपूर्ण पुस्तक-सूची का संग्रह प्रकाशित किया जाए।

इस पुस्तक-सूची मे जो कुछ प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमे मौलाना आज़ाद के लेखों की संपूर्ण सूची और मौलाना आज़ाद पर दूसरे विशेषज्ञो का रचित व संकलित पुस्तको और लेखो की सूची शामिल की गई हैं।

इस सूची मे शामिल दूसरे भाग का प्रमुख उद्देश्य कम से कम उन समस्त महत्त्वपूर्ण पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों की सूची संकलित करना है जो पिछले ७५ वर्षो में प्रकाशित हुए और उसके माध्यम से अधिक शोध-अध्ययन, विचार-विमर्श, समीक्षा और सम्बन्धित विषयो पर एक भरपूर विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिए ठोस बुनियाद उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है।

मौलाना आज़ाद पर उपलब्ध सामग्री के सर्वेक्षण से विदित होता है कि "आज़ादियात" के विशेषज्ञों के प्रयासों का अधिकांश भाग उनके जीवन-परिचय और मौलाना की जीवन-घटनाओं

का विवरण है। विश्लेषणात्मक अध्ययन पर आधारित पुस्तकें—जिनमें मौलाना की विचारधारा को तीखी नज़र से जाँचा और परखा गया हो, बहुत कम हैं। मौलाना के समूचे कारनामों की तुलना में अब तक के गवेषणात्मक प्रयासों की संख्या बहुत कम हैं।

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में मौलाना के मूल्यांकन के लिए बहुत सी विस्तृत बौद्धिक एव साहित्यिक रचनाओं की आवश्यकता है।

यह सूचिका-ग्रंथ मौलाना के योगदान पर विस्तृत अध्ययन के लिए शोधनीय सामग्री उपलब्ध करने वाले महत्त्वपूर्ण माध्यम के रूप में पहला क़दम है। इस सूचिका-ग्रंथ में जहाँ तक सम्भव हो सका है, मौलाना पर लिखित सारे महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय ग्रन्थों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

संकलन

यह पुस्तक-सूची २ भागों में विभाजित है। पहले भाग के दो खंड 'क' और 'ख' हैं। पहले खंड में मौलाना आज़ाद द्वारा रचित पुस्तकें हैं और दूसरे खंड में उन पत्र पत्रिकाओं का उल्लेख है जिनके वह सम्पादक अथवा सहायक सम्पादक थे।

दूसरे भाग के भी 'क', 'ख' दो खंड हैं। पहले खंड अर्थात् 'क' में मौलाना आज़ाद पर रचित ग्रंथों की सूची है जबकि दूसरे खंड 'ख' में मौलाना आज़ाद पर लिखे गये वे लेख व संपादकीय शामिल हैं जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। पत्र-पत्रिकाओं के आज़ाद विशेषांकों का उल्लेख भी मिलता है।

पहले भाग के खंड 'क' में मौलाना आज़ाद की पुस्तकों को पूरी ग्रांथिक विवरण के साथ शब्दावली क्रम के अनुसार अंकित किया गया है। खंड 'ख' में उन पत्र-पत्रिकाओं को, जिनके मौलाना संपादक अथवा सहायक संपादक रहे, उनके नामों के अन्तर्गत शब्दानुक्रम से अंकित किया गया है।

दूसरे भाग के खंड 'क' में ग्रंथों का उल्लेख लेखक के नाम को शब्दानुक्रम से अंकित किया गया है।

खंड 'ख' में जो लेख तथा संपादकीय शामिल हैं उनको भी लेखक अथवा शीर्षक के अंतर्गत शब्दानुक्रम से प्रस्तुत किया गया है। हर लेख अथवा सम्पादकीय के लिए उस पुस्तक अथवा पत्रिका का उल्लेख उसके नाम, स्थान, अंक, तिथि और पृष्ठों के साथ दिया गया है, जिसमें वह प्रकाशित हुए हैं।

चूँकि इस पुस्तक में अंकित पुस्तक-संग्रह अरबी, फारसी, हिन्दी, सिंधी तथा उर्दू भाषाओं से ओत-प्रोत हैं अतएव हिन्दी के अलावा अन्य भाषाओं के संकेत के लिए प्रविष्टि के अंत में कोष्टक के बीच भाषा विशेष का संकेत कर दिया है।

गुलज़ार नक़वी
पाकीज़ा सुलतान

भाग १

मौलाना आज़ाद द्वारा रचित पुस्तकों की सूची

खंड 'क'

१. *अज़कार-ए-आज़ाद*

सम्पा० एस अब्बास हामी मद्रासी. लाहौर, कमरूद्दीन, nd. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद के लेखों का विवरण।"

२. *अज़ीम शख्सियतें*

लाहौर, इदारा-ए-तआरूफ़, nd. (उर्दू)

"कुछ प्रमुख व्यक्तियों पर मौलाना द्वारा लिखी जीवनियाँ।"

३. *अज़ीमत-व-दावत*

दिल्ली, नाज़ पब्लिशिंग हाऊस, nd. (उर्दू)

"इस्लाम और मुसलमान शासकों का इतिहास। उन उलेमा की भूमिका की विवेचना है जो अपने कालीन शासकों से प्रेरित 'फतवे' जारी करने पर मजबूर हुए और सुधारको के तर्कों पर जिन्होंने शासकों के विरुद्ध आवाज़ उठाई। यह पुस्तक कलकत्ता पब्लिक लायब्रेरी ने भी प्रकाशित की है. यह मौलाना की पुस्तक "तज़किरा" के कुछ पाठों पर आधारित है।"

४. *अबुल कलाम आज़ाद की कहानी खुद उनकी ज़बानी*

लाहौर, चट्टान पब्लि०, १९६०. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद की जीवनी जो उन्होंने १९२१ में अपनी नजरबन्दी के दिनों में अब्दुल रज्जाक को बयान किए।"

५. *अफ़साना-ए-हिज्र-ओ-विसाल*

लाहौर, अल-हिलाल बुक एजेंसी, १९३५. (उर्दू)

"पुस्तक इस्लाम के आधारभूत सिद्धांतों को रेखांकित करती है और बताया गया है कि मनुष्य को सीधे रास्ते की अनदेखी नहीं करनी चाहिए।"

६. *अबुल कलाम के अफ़साने*

सम्पा० अब्दुल गफ़्फ़ार शकील. अलीगढ़, सर सैयद बुक डिपो, १९६१. (उर्दू)

"विवरण : (१) मौलाना आज़ाद और अफ़साना निगारी (प्रस्तावना द्वारा संपादक) पृ० ...... (२) मुहब्बत पृ० ९-३६, (३) हकीक़त कहाँ है? पृ० ३७-४७, (४) हौलनाक रात, पृ० ४८-५७, (५) नेपोलियन पर दूसरा हमला, पृ० ५८-६२, (६) सौदा बिन्त अम्मारा, पृ० ६३-६७, (७) अर्बी बिन्त अल-हारिस, पृ० ६८-७३, (८) चिड़िया चिड़े की कहानी, पृ० ७४-९५, (९) शहीद-ए-रस्म, पृ० ९६-९९, (१०) क़िमार बाज़ पृ० १००-१०३, आदि।"

७. *अरमुग़ान-ए-आज़ाद*

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का कलाम और उनके इब्तिदाई मज़ामिन। सम्पा० अबु सलमान शाहजहाँपुरी, कराची, आज़ाद अकादमी, १९७२. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद की काव्य रचनाओं का संग्रह।"

८. *अम्र बिल-मारूफ़*

लाहौर, अलहिलाल बुक एजेंसी, १९४६. (उर्दू)

"हज़रत मुहम्मद साहेब के एक सहयोगी की जीवन-कथा।"

९. *अम्बिया-ए-कराम*

सम्पा० गुलाम रसूल मेह्र लाहौर, शेख़ गुलाम अली, १९७२. (उर्दू)

"इस्लाम के कुछ प्रमुख पैगम्बरों का जीवन परिचय तथा समकालीन घटनाओं का ऐतिहासिक विवरण।"

१०. *अल-जिहाद फ़ी सबील-अल्लाह*

मुरादाबाद, निज़ामिया खिलाफ़त स्टोर, nd. (उर्दू)

"धर्मयुद्ध जिहाद के महत्त्व को विस्तार के साथ बताया गया है और इस्लामी इतिहास के कई जिहादों की घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है।"

११. *अल-तबलीग*

कराची आज़ाद रिसर्च इंस्टिट्यूट nd. (उर्दू)

"पेश्वा, दिल्ली, १९३४ का रिप्रिंट। इस भाषण में मौलाना आज़ाद ने इस्लाम की तबलीग (प्रचार), उसके महत्त्व और आवश्यकता पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है।"

१२. *अल-दीन-व-अलसियासत*

बिजनौर, मलिक कुतुबखाना, nd. (उर्दू)

"धर्म और राजनीति के पारस्परिक संबंध पर इस्लामी दृष्टिकोण को प्रतिपादित किया गया है।"

१३. *अल-बेरूनी और जुग़राफ़िया-ए-आलम*

सम्पा० ज़ियाऊल हसनफारूकी तथा सैयद मसीह-उल-हसन। दिल्ली, डॉ० ज़ाकिर हुसैन इंस्टिट्यूट ऑफ इस्लामिक स्टडीज़, १९८८. (उर्दू)

"यात्री और विद्वान अलबेरूनी की जीवनी जिसने विश्व-भूगोल पर शोध कार्य किया।"

१४. *अल-सय्यदा फ़ातिमा बिन्त अब्दुल्ला*

(उर्दू)

१५. *अल-हरब फ़ी-अलकुरान*

कलकत्ता, अल-हिलाल, १९२२. (अरबी)

१६. *अल-हिलाल के तर्बासिरे*

सम्पा० लखनऊ, उ०प्र०, उर्दू अकादमी, १९८८ (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद के अखबार अलहिलाल में प्रकाशित सम्पादकियों का संग्रह।"

१७ *अल-हुर्रियत फ़ी-अलइस्लाम*

सम्पा० मुश्ताक़ अहमद. मेरठ, कौमी दारूल इशाअत, १९२१ (उर्दू)

"इस्लामी सरकार के लोकतांत्रिक ढाँचे और योरोपीय सरकारों के साथ तुलना की विशद टिप्पणी।"

१८. *असहाब-ए-केहफ़*

दिल्ली, सितारा-ए-हिन्द बुक डिपो, nd. (उर्दू)

"कुरान की एक घटना पर टिप्पणी।"

१९. *आज़ाद-की-तक़रीरें*

सम्पा० अनवर आरिफ़, दिल्ली, अदबी दुनिया, १९६१. (उर्दू)

"विभिन्न अवसरों पर की गई मौलाना की तकरीरों (भाषणों) का संग्रह।"

२०. *आज़ादी-ए-हिन्द*

सम्पा० रईस अहमद जाफ़री, लाहौर, हक बुक डिपो, १९५९. (उर्दू)

"स्वाधीनता-संग्राम के घटना-चक्रों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

२१. *आज़ादी की कहानी*

अनु० महेन्द्र चतुर्वेदी, बम्बई, ओरियन्ट लौंगमेंस, १९६५ (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद की पुस्तक इण्डिया विंस फ्रीडम का हिन्दी अनुवाद।"

२२. *इत्तिहाद-ए-इस्लामी*

मेरठ, कौमी दारूल इशाअत. nd. (उर्दू)

"एकता के विषय में मौलाना का एक विशेष भाषण। पाँच बार प्रकाशित हो चुका है।"

२३. *इदैन*

ईदुल फ़ित्र, ईदुल-अज़हा दिल्ली, जय्यद प्रैस, १९५६. (उर्दू)

"इस्लामी त्यौहारों, ईद और बक़्रईद के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है।"

२४. *इफादात-ए-आज़ाद*

मज़हबी और अदबी स्तफ़सरात के जवाबात। सम्पा० अबु सलमान शाहजहाँपुरी। कराची, इदारा-ए-तफ़नीफ़-औ-तहक़ीक़, १९८९ (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद के अख़बारों अलहिलाल और अल बलाग़ में प्रकाशित धर्म तथा उर्दू साहित्य की कई समस्याओं पर पाठकों के पूछे प्रश्नों के उत्तरों का संकलन।"

२५. *ईसाईयत का मसअला*

कराची, इदारा-ए-फ़रोग़-ए-अदब, १९६४. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद ने ईसाई धर्म की विचारधारा पर अपने विचार व्यक्त किए हैं।"

२६. *इमामुल हिन्द मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का फैसला और मालेर कोटला का निज़ा*

मालेर कोटला, अंजुमन-ए-एहले-हदीस, १९५४. (उर्दू)

"मालेर कोटला पंजाब में मस्जिद एहले-हदीस के इमाम की नियुक्ति पर विवाद हो गया था। इसके फैसले के लिए मौलाना से फ़तवा मांगा गया। इस विवाद का पूरा विवरण इस पुस्तक में है।"

२७. *इस्लाम और आज़ादी*

दिल्ली, साबरी पब्लिशर्स, १९५७. (उर्दू)

"आज़ादी और मानव-संसार के भाईचारे पर आधारित इस्लामी सिद्धान्तों का विवेचन किया गया।"

२८. *इस्लाम और नेशनलईज़्म*

लाहौर, अलबलाग़ बुक एजेन्सी, १९२९. (उर्दू)

"राष्ट्रीयता इस्लाम का एक मौलिक सिद्धान्त है। मौलाना ने बताया है कि इस्लाम राष्ट्रीयता के सिद्धान्त पर किस प्रकार कार्यशील है और यह किस प्रकार समकालीन आवश्यकता बन जाता है।"

२९. *इस्लाम और मसीहियत*

दिल्ली, ताज उर्दू एकेडेमी, १९६५. (उर्दू)

"कुरानी उद्धरण, हज़रत मुहम्मद के उद्‌गार और इस्लामी जीवनचर्या के सम्बन्ध में कुछ भ्रामक तर्कों को रद्द किया गया है। ईसाई मत के कुछ प्रचारकों ने इस्लामी शिक्षा पर अनुचित कुठाराघात किया था और इस्लाम तथा पैग़म्बर के बारे में संदेहात्मक विचार व्यक्त किए थे, ईसाई प्रचारकों की आलोचना का जवाब दिया गया है। वास्तव में यह अल-हिलाल में लेख की शक्ल में प्रकाशित हुआ।"

३०. *इस्लाम का नज़रिया-ए-जंग*

सम्पा० इब्नुल राय. लाहौर, बासत-ए-अदब, १९६५. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद के भाषणों का संग्रह। इसमें बताया गया है कि अन्याय और हिंसा के विरुद्ध युद्ध अथवा संघर्ष इस्लाम में उचित ठहराया गया है। इसमें उन्होंने कुरान के उदाहरणों और रसूल-ए-पाक के उद्‌गारों की सहायता से अपने दृष्टिकोण का औचित्य दिया है।"

३१. *इस्लामी मसाईल*

दिल्ली, शहज़ाद बुक डिपो, nd. (उर्दू)

"इस लेख में मौलाना ने सत्य और मिथ्या के दृष्टिकोण पर विस्तारपूर्वक बहस की है। उन्होंने कुरान के उद्धरणों को भी दिया है।"

३२. *इंतिख़ाब-ए-अलहिलाल*

लाहौर, अदबस्तान, nd. (उर्दू)

"अलहिलाल के लेखों का संग्रह। १९५८ और १९६१ में भी प्रकाशित हुआ।"

३३. *इंतिख़ाब-ए-तज़किरा*

सम्पा० महमूद इलाही। लखनऊ, उ०प्र० उर्दू अकादमी, १९८८. (उर्दू)

"मौलाना की पुस्तक तज़किरा का संकलन प्रस्तावना और नोटों सहित।"

३४. *इण्डिया विंस फ्रीडम*

सं० २ मद्रास, ओरियन्ट लोंगमैन्स, १९८८. (अंग्रेजी)

"हुमायूँ कबीर ने मौलाना आज़ाद का जीवन-चरित्र लिखा है जो ३० पृष्ठों की सामग्री को छोड़कर १९५८ में प्रकाशित किया गया। ३० वर्ष के उपरान्त १९८८ में पुस्तक का सम्पूर्ण मसविदा पुस्तक के आफ़सैट मुद्रण के साथ प्रकाशित हुआ।"

३५. *इंसानियत का मसअला*

कराची, इदारा-ए-फ़रोगे-अदब, १९६४. (उर्दू)

"ईसाई मत और उसकी शिक्षा पर मौलाना के विचारों का संग्रह।"

३६. *इंसानियत मौत के दरवाज़े पर*

लाहौर, शमीम बुक डिपो, १९५७. (उर्दू)

"सं० २, १९५८. कुछ इस्लामी आदिकालीन नेताओं का जीवन-परिचय, (१) उमर बिन अल-आस (२) हज्जाज़ बिन यूसुफ़ (३) हज़रत ख़नाब बिना अरवी (४) अब्दुल्ला बिन अली जीवन (५) अब्दुल्ला बिन जुबैर (६) उमर बिन अब्दुल अज़ीज़।"

३७. *उरूज-औ-ज़वाल का क़ुरानी दस्तूर*

लाहौर, बज़्म-ए-इशाअत, १९६४. (उर्दू)

"विवरणिका : (१) उम्मत-ए-मुस्लिमा, (२) हक़ीक़त-ए-इस्लाम, (३) वेहदत-ए-इजतिमाईआ, (४) मर्क़ज़े-क़ौमियत, (५) जुग़राफ़ि-ए-मर्क़ज़, (६) फ़िक्र-ए-वेहदत और फ़िक्र-ए-मर्कज़ियत, (७) उरूज-औ-ज़वाल का फ़ितरी उसूल (८) अज़्म-औ-इस्तिक़ामत, (९) तजदीद-औ-तासीर, (१०) कामयाबी की चार मंज़िलें।"

. *उम्मुल किताब : तफ़सीर-ए-सूरा-ए-फ़ातिहा*
लाहौर, मक्तबा-ए-एहबाब, nd. (उर्दू)
"कुरान की एक प्रमुख आयत की व्याख्या।"

. *एहरार-ए-इस्लाम*
लखनऊ, सिद्दीक़ बुक डिपो, nd. (उर्दू)

. *ऐलान-ए-हक़*
कलकत्ता, उस्मानिया प्रेस, १८९८. (उर्दू)
"चाँद देखने और फ़तबे पर मौलाना आज़ाद के वालिद मौलाना खैरूद्दीन ने मज़हबी विषय को चर्चा का विषय बनाया और मौलाना आज़ाद ने उसे सम्पादित किया।"

. *औलिया-अल्लाह व औलिया-उश-शैतान*
लाहौर, अलहिलाल बुक एजेंसी, १९३५. (उर्दू)
"गुण और अवगुण के बीच निरन्तर संघर्ष के विषय में कुरानी प्रसगो का विवेचन।"

. *औरतों की आज़ादी और फ़राईज़*
लाहौर, शमीम बुक डिपो, nd. (उर्दू)
"महिलाओं के कर्तव्य तथा समाज में उनके स्थान पर मौलाना की प्रतिक्रिया तथा मान्यताएं। महिला मानव की जन्मदाता भी है, वह संतानावृत्ति सुरक्षा और कार्य करती है। वह ऐसी है जो कुचली नहीं जा सकती।"

कारवान-ए-ख़्याल
सम्पा० मौहम्मद अब्दुल शाहिद ख़ाँ शेरवानी. बिजनौर, मदीना प्रेस, १९४६ (उर्दू)
"नवाब सद्रयार जंग हबीबुर्रहमान ख़ाँ शेरवानी को लिखे गए ४ सितम्बर १९४० से १२ नवम्बर १९४६ के दौरान ख़तों का संग्रह।"

किताबुल तज़किरा
सम्पा० अनु० मीर वली उद्दीन. हैदराबाद, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ओरियंटल रिसर्च इंस्टिट्यूट, १९६१. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद की पुस्तक तज़किरा जिसका अनुवाद बड़ी सुन्दर भाषा में आवश्यक हाशियों तथा विवरणों के साथ प्रस्तुत किया गया है।"

क़ुरान का क़ानून-ए-उरूज-औ-ज़वाल.
दिल्ली, दारूल इशाअत, १९६०. (उर्दू)
"इसमें इस्लाम के सिद्धान्तों, शिक्षा तथा मुसलमानों पर उसके प्रभाव का जायज़ा लिया गया है।"

क़ुर्बानी.
दिल्ली, महबूबुल-मताबै, nd. (उर्दू)
"फ़्रांसीसी लेखक विक्टर ह्यूगो के एक नाविल पर आधारित मौलाना आज़ाद का एक संक्षिप्त नाविल।"

क़ौल-ए-फ़ैसल.
कलकत्ता, अल-बलाग़ प्रेस, १९२२. (उर्दू)
"यह मौलाना आज़ाद का वह प्रसिद्ध वक्तव्य है जिसमें उन्होंने उप-महाद्वीप के स्वतन्त्रता-आन्दोलन का विवरण लिखा है। सार्वजनिक सभाओं और भाषणों पर प्रतिबन्ध के बावजूद

मौलाना आज़ाद ने खिलाफ़त और असहयोग आंदोलनों में देश के विभिन्न स्थानों पर भाषण किए। प्रमुख राष्ट्रीय नेतागण जेलों में भेज दिए गए, और मौलाना आज़ाद भी १९२१ में गिरफ्तार कर लिए। उन पर विद्रोह का आरोप लगाया गया। इस अवसर पर उन्होंने न्यायालय में अपना वक्तव्य दिया जो क़ौल-ए-फ़ैसल के नाम से प्रकाशित हुआ।"

५८. *खिलाफ़त और जज़ीरतुल अरब*

अनु० मिर्ज़ा अब्दुल क़ादिर बेग। बम्बई, सेंट्रल खिलाफत कमेटी, १९२०. (अंग्रेज़ी)

"मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने १८ फरवरी १९२० को बगाल प्रोविंशियल खिलाफ़त कान्फ्रेंस के अधिवेशन में भाषण दिया।"

५९. *खुतबा-ए-सदारत*

आल इण्डिया खिलाफत कान्फ्रेंस, कानपुर, १९२५. (उर्दू)

"आल इण्डिया खिलाफत कान्फ्रेंस के वार्षिक अधिवेशन, २४ दिसम्बर १९२५, कानपुर में मौलाना आज़ाद का अध्यक्षीय भाषण।"

६०. *खुतबा-ए-सदारत*

इण्डियन नेशनल कॉंग्रेस, खुसूसी इजलास, १५ सितम्बर १९२३, दिल्ली. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद का अध्यक्षीय भाषण।"

६१. *खुतबा-ए-सदारत*

इण्डियन नेशनल कॉंग्रेस रामगढ़ सैशन, १९४०. (उर्दू)

इण्डियन नेशनल कांग्रेस के ५३वें अधिवेशन, स्वागत समिति में मौलाना आज़ाद का अध्यक्षीय भाषण।

६२. *खुतबा-ए-सदारत : जमियत उलेमा-ए-हिंद, १९२१, लाहौर*

मेरठ क़ौमी दारुल इशाअत, १९२१. (उर्दू)

मौलाना आज़ाद का अप्रकाशित अध्यक्षीय भाषण। इसमें उन्होंने विदेशी शासन के विरुद्ध संघर्ष के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता की आवश्यकता पर ज़ोर दिया है।'

६३. *खुतबात-ए-अबुल कलाम आज़ाद*

लाहौर अल-मनार एकेडमी, nd (उर्दू)

विवरणिका

(१) भाषण, कलकत्ता, १९१४ (२) प्रोविंशियल खिलाफत कमेटी, आगरा. (३) जमियत उलेमा-ए-हिन्द लाहौर, १९२१ [illegible] (४) प्रोविंशियल खिलाफत कमेटी, बंगाल १९२० (५) जनरल सैशन, कलकत्ता, शहादत-ए-हुसैन, १९२१ (६) इण्डियन नेशनल कॉंग्रेस दिल्ली, १९२३ (७) इण्डियन खिलाफत कानफ्रेंस कानपुर, १९२५ (८) इण्डियन नेशनल कॉंग्रेस, रामगढ़, १९४०

६४. *खुतबात-ए-आज़ाद*

लाहौर अर्जुमन्द, nd. सम्पा० नसरुल्ला खाँ अज़ीज़ (उर्दू)

उपलब्ध सामग्री की विवरणिका

"प्रस्तावना—नसरुल्ला खां अज़ीज़, पृ० ४-८, खुतबात : इत्तिहाद-ए-इस्लामी, इजलास-ए-आम कलकत्ता, २३ अक्तूबर १९१४, पृ० ९-३५, सूबाई मजलिस-ए-खिलाफत आगरा २५ अक्तूबर १९२१, पृ० ३५-६८, (खुतबा-ए-तहरीरी, जमियतुल उलेमा हिन्द, लाहौर, १८ नवम्बर १९२१, खुतबा-ए-तक़रीरी, पृ० ६९-१४९), इजलास-ए-आम कलकत्ता, शहादत-ए-हुसैन पृ० २३१-२४१, इजलास-ए-खुसूसी, इण्डियन नेशनल कांग्रेस, दिल्ली १५

दिसम्बर, १९२३, पृ० २४५-३०७, सूबाई मजलिस-ए-ख़िलाफ़त-ए-कानफ्रेंस, कानपुर, २९ दिसम्बर, १९२५, पृ० ३३५-३६३, इस पुस्तक में १९४० तक के सारे महत्त्वपूर्ण खुतबे एक स्थान पर मिल सकते हैं।"

५५. *खुतबात-ए-आज़ाद.*

सम्पा० मालिक राम, नई दिल्ली, साहित्य अकादमी, १९७४. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद के भाषणों का संग्रह।"

५६ *खुतबात-ए-आज़ाद.*

दिल्ली, उर्दू किताब घर, १९५९. (उर्दू)

"विवरणिका :

(१) इत्तिहाद-ए-इस्लाम, २७ अक्टूबर १९२१, पृ० २-५, (२) ख़तबात-ए-मजलिस-ए-ख़िलाफ़त, २५ अक्टूबर १९२१, आगरा पृ० २८-५४, (३) खुतबा-ए-सदारत, बंगाल ख़िलाफ़त कानफ्रेंस, २८ व २९ फ़रवरी १९२०, पृ० ५५-१०६, (४) खुतबा-ए-सदारत, जमियत उलेमा-ए-हिन्द, नवम्बर १९२१, लाहौर, पृ० १०७-१२३, (५) खुतबा-ए-सदारत, आल इण्डिया ख़िलाफ़त कानफ्रेंस, २९ दिसंबर १९२५, कानपुर, पृ० १७२-१९२."

५७. *खुतबात-ए-सियासिया और मसाज़िद-ए-इस्लामिया.*

मेरठ, क़ौमी दारूल इशाअत, nd. (उर्दू)

"मौलाना ने हदीसों के उल्लेखों द्वारा सिद्ध किया है कि राजनीतिक समस्याएँ मरिजदों के खुतबों (भाषणों) द्वारा भी हल की जा सकती है। स्वराज प्रिंटिंग वर्क्स दिल्ली ने भी उसको प्रकाशित किया है।"

५८. *खुदा की हस्ती*

सम्पा० मुहम्मद रफ़ीक़ चौधरी। दिल्ली शाहीन बुक सेन्टर, १९८८ (उर्दू)

"इसमें मौलाना आज़ाद के धार्मिक विचारों, विशेष रूप से खुदा के अस्तित्व का विवरण है।"

५९. *गुबार-ए-ख़ातिर*

अनु० मदनलाल जैन। दिल्ली, साहित्य अकादमी, १९५९.

"मौलाना के उन पत्रों का संग्रह जो उन्होंने अहमदनगर के क़िले में अपनी गिरफ़्तारी के दौरान १९४२-१९४५ की अवधि में लिखे।"

६०. *गुबार-ए-ख़ातिर*

सम्पा० मालिक राम. नई दिल्ली, साहित्य अकादमी, १९६७. (उर्दू)

"उन पत्रों का संग्रह जो अगस्त १९४२ से जून १९४५ तक की अवधि में मौलाना ने अहमदनगर किले में अपनी नज़रबन्दी के ज़माने में लिखे थे। यह पत्र उन्होंने नवाब सद्र-यार जंग (हबीबुर्रहमान ख़ाँ शेरवानी) को लिखे जो कभी संबोधित को प्राप्त नहीं हुए।"

६१. *चन्द औराक़-ए-मुक़द्दम्मा-ए-क़ुरान*

कलकत्ता, अलबलाग़ प्रेस, nd. (उर्दू)

"ये पृष्ठ अलबलाग़ प्रेस से प्रकाशित हुए किंतु तर्जुमानुल क़ुरान में शामिल होने से रह गए थे। ये मौलाना आज़ाद के निजी संग्रह से उपलब्ध हुए हैं जिनको भारतीय सांस्कृतिक सहयोग परिषद् को भेंट कर दिए थे।"

६२. *जामे-उल-शवाहिद फ़ी दख़ूल ग़ैरूल मुस्लिम फ़ी उलमसाजिद*

दिल्ली, मकतबा-ए-माहौल, १९६०. (उर्दू)

"इस पुस्तक में मस्जिद में ग़ैर मुसलमानों के प्रवेश के बारे में विचार किया गया है। इसमें क़ुरान के उद्धरणों और हदीसों के द्वारा बताया गया है कि यदि मज़हब के प्रचार और इस्लाम के प्रसार के निमित गैर-मुस्लिमों का इस्लामी इबादत खानों में प्रवेश करना अनिवार्य हो जाए तो पाबन्दी आवश्यक नहीं है। इस संक्षिप्त लेख से हदीस और फ़िक़ा के बारे में मौलाना की शैक्षिक क्षमता का पता चलता है।"

६३. *जिहाद और इस्लाम*

नई दिल्ली, साहित्य अकादमी, १९७४. (उर्दू)

"मौलाना ने जिहाद (धार्मिक युद्ध), उसकी परिभाषा और महत्त्व पर अपने विचार व्यक्त किए हैं। यह विचारधारा क़ुरान तथा इस्लामी इतिहास के बारे में मौलाना की मालूमात का खुला सुबूत है।"

६४. *जुलक़रनैन*

लाहौर, शमीम बुक डिपो, nd.

"तर्जुमान-उल-क़ुरान में अंकित एक ऐतिहासिक घटना का उल्लेख।"

६५. *जुलक़रनैन या कौरवश-ए-कबीर*

अनु० बोस्तानी बरहरी. तहरीन, १३३९ A.H. (फ़ारसी)

"मौलाना की प्रसिद्ध पुस्तक तरजुमान-उल-क़ुरान के लेख सूरा-ए-कहफ़ के जुलक़रनैन का फ़ारसी अनुवाद।"

६६. *तक़रीज़, सरोद-ए-ज़िन्दगी.*

दिल्ली, नाज़ पब्लिशिंग हाऊस, १९३४. (उर्दू)

"असगर गोंडवी के काव्य-संग्रह पर मौलाना आज़ाद ने प्रस्तावना-लेख लिखा है।"

६७. *तक़रीर बामुक़ाम मिर्ज़ापुर स्क़ूअेर.*

१ जुलाई १९२१. (अप्रकाशित). (उर्दू)

"मौलाना ने यह भाषण मिर्ज़ापुर स्कूअेर कलकत्ता में १ जुलाई १९२१ को की थी। इस में दो अभि-भाषण एक साथ सजिल्द हैं। पहला अभिभाषण उन्होंने १ जुलाई को और दूसरा अभिभाषण २१ जुलाई को दिया था। पी०सी० चटर्जी ने दोनों का अंग्रेजी में अनुवाद किया है। पहले अभिभाषण में ३ व्यक्तियों के विरुद्ध विरोध प्रकट किया गया है दूसरे भाषण में ख़िलाफ़त आन्दोलन का परिचय है। इन दोनों भाषणों पर मौलाना को गिरफ़्तार कर लिया गया।"

६८. *तज़किरा*

सम्पा० फ़ज़ल-उद्दीन अहमद. लाहौर, अनारकली किताबघर, १९१९. (उर्दू)

"पुस्तक में मौलाना आज़ाद ने अपने वंश के प्रमुख सदस्यों की जीवनी के साथ-साथ इस्लाम के विषय में प्रमाणिक टिप्पणियां लिखी हैं।"

६९. *तज़किरा*

सम्पा० मालिक राम. दिल्ली, साहित्य अकादमी, १९८५. (उर्दू)

"इसमें मौलाना के परिवार के कई व्यक्तियों की जीवनी है। यह इतिहास के विषय की पुस्तक है। यह न केवल जीवनी है बल्कि धर्म पर भी अहम दस्तावेज है। इस पुस्तक का सबसे पहला संस्करण मिर्ज़ा फ़ज़लुद्दीन अहमद ने अल-बलाग़ प्रेस कलकत्ता से १९१९ से प्रकाशित किया था। मकतबा मेरी लायब्रेरी और किताब महल लाहौर ने भी रिप्रिन्ट प्रकाशित किया।"

७०. *तफ़सीर-ए-पारा अलफ़ लाम मीम.*

लाहौर, शमीम बुक डिपो, १९५८. (उर्दू)

"क़ुरान के पहले अध्याय की व्याख्या जो मौलाना के तर्जुमानुल क़ुरान से उद्धरित है।"

७१. *तफ़सीर-ए-पारा-ए-तिलकर्रसूल.*
लाहौर, शमीम बुक डिपो, nd. (उर्दू)
"कुरान के तीसरे अध्याय का उर्दू अनुवाद, तर्जुमानुल कुरान में से लिया गया।"

७२. *तफ़सीर-ए-पारा-ए-लक्तनालू*
लाहौर, शमीम बुक डिपो, nd. (उर्दू)
"कुरान के चौथे पारे (अध्याय) का उर्दू अनुवाद, जो कि तर्जुमानुल कुरान से लिया गया है।"

७३. *तफ़सीर-ए-पारा-ए-लायू हिब्बुल्ला.*
लाहौर, शमीम बुक डिपो, nd. (उर्दू)
"कुरान के छठे अध्याय की व्याख्या जो कि तर्जुमानुल कुरान से ली गयी है।"

७४. *तफ़सीर-ए-पारा-ए-वलमोहसिनात*
लाहौर, शमीम बुक डिपो, nd. (उर्दू)
"कुरान के पाँचवे पारा का उर्दू अनुवाद जो कि मौलाना के तर्जुमानुल कुरान से लिया गया."

७५. *तफ़सीर-ए-पारा-ए-वाइज़ा-समीऊ*
लाहौर, शमीम बुक डिपो, nd. (उर्दू)
"कुरान के सातवें पारे (अध्याय) का उर्दू अनुवाद, तर्जुमानुल कुरान से लिया गया है।"

७६. *तफ़सीर-ए-पारा-ए-सैकूल.*
लाहौर, शमीम बुक डिपो, nd. (उर्दू)
"कुरान के दूसरे अध्याय का उर्दू अनुवाद जो मौलाना आज़ाद की पुस्तक 'तर्जुमान-उल-कुरान' से लिया गया है।"

७७. *तबररुकात-ए-आज़ाद.*
सम्पा० गुलाम रसूल मेह. हैदराबाद, अस्मानिया बुक डिपो, १९६९. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद के ९७ पत्रों और ८ लेखों का संग्रह। यह लेख धर्म, राजनीति, इतिहास, शिक्षा और सुधार के पहलूओं को समेटे हुए हैं।"

७८. *तरजुमानुल कुरान*
अनु० सैय्यद अब्दुल लतीफ़. खण्ड २ : अलबक्रा टू अल इंफ़िआल. बम्बई, एशिया, १९६७. (अंग्रेज़ी)
"कुरान के आठवें अध्याय का अँग्रेज़ी अनुवाद. मौलाना के तर्जुमान-उल-कुरान के पहले तथा दूसरे सम्करणों की भूमिकाओं का अनुवाद भी शामिल है।"

७९. *तरजुमानुल कुरान*
सम्पा० मालिक राम. नई दिल्ली, साहित्य अकादमी, nd. ४ खंड. (उर्दू)
"मौलाना की क़ुरानी तफ़सीर ४ खण्डों में डॉ० ज़ाकिर हुसैन ने इसकी प्रस्तावना लिखी है। खण्ड १ (१९६४), खण्ड २ (१९६६), खण्ड ३ (१९६८), खण्ड ४ (१९७०)।"

८०. *तरीक़ा-ए-हज़.*
दिल्ली, ताज पब्लिशिंग हाऊस, १९६६. (उर्दू)
"पुस्तक में हज़ के महत्त्व और उसकी कार्यविधि पर प्रकाश डाला गया है।"

८१. *तरबीयत-ए-असकरी. और कुरान-ए-हकीम.*
लाहौर, शमीम बुक डिपो, nd. (उर्दू)

८२. *तंज़ियाते-आज़ाद*

दिल्ली, ताज पब्लिशिंग हाऊस, nd. (उर्दू)

"अलहिलाल तथा अल-बलाग़ में प्रकाशित कुछ लेखों का संग्रह। यह पुस्तक विशेष रूप से मौलाना आज़ाद के लेखों में व्यंग्य की पहचान कराई गई है। यह पुस्तक नया किताब घर लाहौर से १९६३ में प्रकाशित हो चुकी है।"

८३. *तसव्वुरात-ए-क़ुरान*

सम्पा० सैय्यद अब्दुल लतीफ़. दिल्ली, नाज़ पब्लिशिंग हाऊस, nd. (उर्दू)

"क़ुरान का वास्तविक चित्रण और क़ुरान की मौलिक बातों से बहस की गई है।"

८४. *तसरीहात-ए-आज़ाद*

दिल्ली, ताज उर्दू अकादमी, nd. (उर्दू)

"अलहिलाल के प्रकाशन के दौरान मौलाना के पास मुसलमानों और हिन्दुओं के बहुत से धार्मिक तथा राजनैतिक मसलों पर प्रश्न आते थे। मौलाना ने इन समस्याओं पर जो उत्तर दिए वह इस किताब में है।"

८५. *तहरीक-ए-आज़ादी*

दिल्ली, किताब ख़ाना, nd. (उर्दू)

"राजनीतिक और धार्मिक पहलूओं पर लिखे गए लेखों, विशेष रूप से स्वाधीनता संग्राम के इतिहास का संग्रह। यह पुस्तक पहले भी चमन बुक डिपो, दिल्ली १९५८ में और मकतबा-ए-माहौल लाहौर १९५९ में प्रकाशित कर चुके हैं।"

८६. *तहरीक-ए-नज़्मे-जमाअत.*

सम्पा० अबु सलमान शाहजहाँपुरी. लाहौर, नज़ीर संस पब्लिशर्स, १९७८. (उर्दू)

८७. *ताज़ा मज़ामिन-ए-अबुल कलाम आज़ाद.*

सम्पा० मौहम्मद मुशताक अहमद. मेरठ, क़ौमी दारूल इशाअत, १९२१. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद के कई लेखों का संग्रह।"

८८. *तारीख़ी मक़ालात.*

सम्पा० ख़लीक़ अहमद निज़ामी. दिल्ली, नदवतुल मुसन्नफ़ीन, १३८५ AH (१९६६) (उर्दू)

"मौलाना आजाद के लेखों का संकलन।"

८९. *तालीमी "तर्के-मवालात" का मक़सद.*

दिल्ली, स्वराज प्रिंटिंग वर्क्स, १९२०. (उर्दू)

९०. *तौहीद-औ-शहादत.*

बम्बई, बुक सेन्टर, १९६६. (उर्दू)

"अलहिलाल और अलबलाग़ में प्रकाशित लेखों का संग्रह।"

९१. *दर्स-ए-वफ़ा.*

दिल्ली, उस्मानिया क़ुतुब खाना, nd. (उर्दू)

"कहानियों का संग्रह।"

९२. *दास्तान-ए-कर्बला*

सम्पा० मुहम्मद अब्दुर्रहमान सईद. कराची, नफ़ीस अकादमी, १९५६. (उर्दू)

"कर्बला के मैदान में हज़रत इमाम हुसैन और उनके परिवार के सदस्यों की शहादत की घटना पर प्रकाश डाला गया है।"

९३. *दावत-ए-अमल*

मेरठ, क़ौमी दारूल इशाअत, १९२०. (उर्दू)

"अल हिलाल १ जुलाई १९१४ में प्रकाशित लेख। यह स्वराज प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली ने भी प्रकाशित किया है।"

९४. *दावत-ए-हक़*

दिल्ली, किताब ख़ाना, nd. (उर्दू)

"अब्बासी ख़लीफ़ा (शासक) मामूनुल रशीद ने क़ुरान के सूत्रों का विचार प्रस्तुत किया। इस विचारधारा के अनुसार क़ुरान अलौकिक पुस्तक नहीं है। उसने इस विचारधारा को धार्मिक उलेमा और बग़दाद की जनता पर भी थोपना चाहा। मक्का के शेख़ अब्दुल अज़ीज़ अल-कनानी ने इसके बारे में सुना तो उसने बग़दाद के जन-मानस को ख़लीफ़ा की डिक्टेटरशिप से छुटकारा दिलाने का निर्णय किया। वह बग़दाद चला गया जहाँ उसने 'मुअतिज़ला' की विचारधारा की खुलकर निन्दा की। शेख़ को इस विचारधारा के वरिष्ठ विद्वानों के साथ 'धार्मिक वाद-विवाद' के लिए एक विशेष गोष्ठी में बुलाया गया। इस वाद-विवाद में शेख़ अब्दुल अज़ीज को सफ़लता मिली। इस घटना का विवरण इस पुस्तक में मौजूद है।"

९५. *पर्दा क़ैद की अलामत है या आज़ादी की ज़मानत?*

"पर्दा जो मुसलमान महिलाओं के लिए अनिवार्य है, पर मौलाना आज़ाद के विचार।"

९६. *पेश-लफ्ज : ममनवियात-ए-मीर बाख़्ते मीर।*

सम्पा० रामबाबू सक्सेना. दिल्ली, धूमीमल धरमदास, १९५६. (उर्दू)

९७. *पेश लफ़्ज़ पार्मो*

एक यूनानी नाटक द्वारा एस्कि लिंस (३७३ BC.) अनु० आसफ अली सम्पा० ख़्वाजा अहमद फ़ारूकी (उर्दू)

"मौ० आज़ाद द्वारा प्रस्तावना रचित।"

९८. *पार्लियामानी तक़रीर*

नई दिल्ली, लोक सभा सैक्रेट्रियट, १९५४. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद तथा कुछ और नेताओं द्वारा देश की साम्प्रदायिक परिस्थिति पर संसद में भाषणों का संकलन।"

९९. *प्रेसिडेंशियल एड्रैस,*

इण्डियन नेशनल कॉंग्रेस, ८३ सैशन, रामगढ़, १९४०. (अँग्रेज़ी)

"मौलाना आज़ाद के उर्दू भाषण का अँग्रेज़ी भाषण।"

१००. *प्रेसिडेंशियल एड्रैस,*

स्पेशल सैशन आफ़ दि इण्डियन नेशनल कॉंग्रेस हैल्ड ऐट दिल्ली इन सितम्बर १९२३. अलीगढ़, जामिया मिल्लिया प्रैस, १९२३. (अँग्रेज़ी)

"कॉंग्रेस के एक विशेष अधिवेशन सम्पन्न दिल्ली, १५ सितम्बर १९२३ में मौलाना आज़ाद के अध्यक्षीय भाषण का अँग्रेजी मुसविदा। उन्होंने स्वाधीनता संग्राम को अधिक सक्रिय बनाने के लिए रणनीति का प्रारूप बनाया। उन्होंने इस भाषण में हिन्दू संगठन के विरुद्ध विचार व्यक्त किए और हिन्दी मुस्लिम एकता पर ज़ोर दिया। इस अधिवेशन में सी०आर० दास, हकीम अजमल ख़ाँ, मोती लाल नेहरू, सी०राजगोपालाचार्य, सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद आदि ने भाग लिया।"

१०१. *फ़लसफ़ा :*

उसूल-औ-मुबादि की रोशनी में. अनु० मोहम्मद वारिस कामिल. दिल्ली, न्यू ताज पब्लिशर्स, nd. (उर्दू)

"डॉ० एस० राधाकृष्णन की पुस्तक "History of Philosophy : Eastern & Western" के उर्दू अनुवाद पर मौलाना आज़ाद की प्रस्तावना। इसमें मौलाना आज़ाद पर जवाहरलाल नेहरू का एक लेख भी शामिल है।"

१०२. *फ़ैसला-ए-मुक़द्दमा-ए-जामा मस्जिद, कलकत्ता.*

कलकत्ता, ट्रस्टीज़ जामा मस्जिद, nd. (उर्दू)

"नाखुदा मस्जिद कलकत्ता के वक़्फ़ की आर्थिक अनियमितताओं का मामला पेश किया गया। अन्ततः यह विवाद कलकत्ता हाई कोर्ट से ख़ारिज हुआ और मौलाना के सामने अन्तिम निर्णय के लिए सामने लाया गया।"

१०३. *बाक़ियात-ए-तर्जुमानुलक़ुरान*

सम्पा० गुलाम रसूल मह्र. दिल्ली, इशाअत-उल-किताब, १९६२. (उर्दू)

"क़ुरान के अवतरणों का अनुवाद, व्याख्या और टिप्पणी जो तर्जुमानुल क़ुरान के खण्ड ३ में दिए गए हैं। कहा जाता है कि यह सम्पूर्ण अनुवाद और व्याख्या मौलाना के मौलिक विचारों तथा लेखों पर आधारित है।"

१०४. *बॉयकाट*

मेरठ, क़ौमी दारूल इशाअत, १९२१. (उर्दू)

१०५. *बुनियादी तसव्वुरात-ए-क़ुरान.*

अनु० सैयद अब्दुल लतीफ़. हैदराबाद, एकेडेमी ऑफ़ इस्लामिक स्टडीज़, १९६०. (उर्दू)

" Basic Concepts of the Quran"" का उर्दू अनुवाद। इसमें मौलाना ने क़ुरान के बारे में अपने विचारों का संक्षिप्त विवरण दिया है।"

१०६. बेसिक कॉमेप्टम ऑफ़ दि क़ुरान.

अनु० सैयद अब्दुल लतीफ़. हैदराबाद, एकेडेमी ऑफ़ इस्लामिक स्टडीज़, १९५८. (अप्रकाशित) (अंग्रेज़ी)

"इसमें मौलाना के क़ुरान सम्बन्धी विचारों को संकलित किया गया है। 'सूरत-ए-फ़ातिहा' के संदर्भ में क़ुरानी अध्ययन के लिए इसमें सम्पूर्ण प्रस्तावना भी है।"

१०७. *रद्दे-मिर्ज़ाईअत.*

लाहौर, क़ुतुबख़ाना-ए-दावते इस्लाम, १९३७.

१०८. *(रिसाला) अजीमत-औ-दावत*

कलकत्ता, पब्लिक लायब्रेरी nd. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद की प्रसिद्ध पुस्तक 'तज़किरा' के कुछ पृष्ठों को नाज़ पब्लिशिंग हाऊस ने भी प्रकाशित किया है।"

१०९. *रसूल-ए-अरबी.*

लाहौर, मक्तबा अज़मत, nd. (उर्दू)

"इस्लाम के महान पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद साहब की पवित्र जीवनी और श्रेष्ठ चरित्र का अध्ययन।"

११०. *रसूल-ए-रहमत : सिरत-ए-तैयबा पर मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के मक़ालात।*

सम्पा० गुलाम रसूल मह. दिल्ली, एतिक़ाद, १९८२. (उर्दू)

"अंतिम पैगम्बर मुहम्मद रसूल उल्ला की पवित्र जीवनी पर लेखों का संग्रह।"

१११. *नक़्शए-ए-आज़ाद.*

सम्पा० गुलाम रुसूल मह. लाहौर, किताब मंज़िल, १९५८. (उर्दू)

"गुलाम रुसूल मेहर के नाम मौलाना के ख़तों का संग्रह और मिर्ज़ा ग़ालिब पर मौलाना के विचार."

११२. *नवादिर-ए-अबुल कलाम आज़ाद.*

सम्पा० ज़हीर अहमद ख़ाँ, अलीगढ़, सर सैयद बुक डिपो, १९६२. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद के कुछ लेखों का संग्रह।"

११३. *निगारिशात-ए-आज़ाद.*

दिल्ली, न्यूताज आफ़िस, १९६०. (उर्दू)

"धर्म, इस्लाम का इतिहास और नीति आदि विषयो पर लिखे लेखों का संग्रह।"

११४. *नेशनल तहरीक.*

(उर्दू)

"१९३९ के दौरान लिखा हुआ अप्रकाशित मुसविदा जो इण्डियन कोंसिल फार कल्चरल रिलेशन्स के पुस्तकालय में उपलब्ध है।"

११५. *विलादत-ए-नबवी.*

दिल्ली, चमन बुक डिपो, १९६२. (उर्दू)

"पुस्तक में आख़िरी पैगम्बर के जन्म का महत्त्व और उस पावन धरती, जो कि उस समय में पिछड़े क्षेत्रों मे थी, की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बयान की गई है। वह पूरे विश्व के लिए कल्याणकारी थे।"

११६. *मकातिब-ए-अबुल कलाम.*

लाहौर, अदबिस्तान, nd. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद के पत्रों का संग्रह।"

११७. *मकातिब-ए-अबुल कलाम आज़ाद.*

सम्पा० अबु सलमान शाहजहाँपुरी करांची, उर्दू एकेडेमी, १९६८. (उर्दू)

"१९०० से १९५७ के दौरान लिखे मौलाना के पत्रों का संग्रह।"

११८. *मक़ालात-ए-अलहिलाल.*

लाहौर, अदबिस्तान, nd. (उर्दू)

"मौलाना के लेखों का संग्रह जो समय-समय से अल-हिलाल में प्रकाशित हुए। इदारा-ए-इशाअतुल क़ुरान दिल्ली में रिप्रिंट प्रकाशित किया।"

११९. *मक़ालात-ए-आज़ाद.*

सम्पा० अब्दुल्ला बट्ट. लाहौर, क़ौमी किताबखाना, १९४४. (उर्दू)

"मौलाना के विभिन्न लेखों का संग्रह।"

१२०. *मक़ालात-ए-अबुलकलाम आज़ाद.*

दिल्ली, चमन बुक डिपो, nd. (उर्दू)

"मौलाना के लेखों का संग्रह जिसमें उन्होंने मुसलमानों की स्वतन्त्रता, उनके दायित्व और धार्मिक मान्यताओं के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये हैं। १९५७ में दारूल इशाअत कराची ने उसका रिप्रिंट प्रकाशित किया।"

१२१. *मकालिमात-ए-अबुलकलाम आज़ाद.*
लाहौर, मकतबा-ए-एहबाब, nd. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद के साहित्यिक तथा धार्मिक लेखों का संग्रह और अलहिलाल के पाठकों के पत्रों के प्रत्योत्तर लेख शामिल हैं।"

१२२. *मक़ाम-ए-जमाल-उद्-दीन अफ़ग़ानी.*
(उर्दू)
"मुस्लिम विद्वान जमालुद्दीन अफ़ग़ानी की जीवनी के अलावा मुस्लिम संसार के समकालीन हालात का नक्शा।"

१२३. *मज़ामीन-ए-अबुल कलाम.*
कराची, दारूल इशाअत, nd. (उर्दू)
"मौलाना के कई लेखों का संग्रह।"

१२४. *मज़ामीन-ए-अबुल कलाम आजाद*
२ खण्ड. दिल्ली, हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाऊस, १९४४. (उर्दू)
खण्ड १ : सम्पा० सिफ़रिश हुसैन.
खण्ड २ : बद्रुल हसन
"विभिन्न विषयों विशेषतः इस्लामी दर्शन तथा इतिहास और उर्दू साहित्य के विषयों पर मौलाना आज़ाद के लेखों का संकलन।"

१२५. *मज़ामीन-ए-अलबलाग़*
सम्पा० महमूदुल हसन सिद्दीक़ी. दिल्ली, हिन्दुस्तान पब्लिशिंग हाऊस, १९४९. (उर्दू)
"अल बलाग़ में प्रकाशित लेखों का संग्रह। आईना-ए-अदब में १९८१ में भी रिप्रिंट प्रकाशित हो चुका है।"

१२६. *मज़ामीन-ए-अलहिलाल.*
सम्पा० मुहम्मद रफ़ीक़. दिल्ली, इदारा-ए-इशाअतुल कुरान, nd. (उर्दू)
"अल-हिलाल में प्रकाशित लेखों का संग्रह। यह अखबार मौलाना ने १९१२ में कलकत्ता से निकाला था। यही लेख अदबिस्तान लाहौर ने भी प्रकाशित किए हैं।"

१२७. *मज़ामीन-ए-आज़ाद*
सम्पा० अब्दुल्ला बट्ट. लाहौर, क़ौमी कुतुबख़ाना, १९४४.
"मौलाना के लेखों का एक संग्रह।"

१२८. *मज़ामीन-ए-लिसान-उल-सिद्क़*
सम्पा० अब्दुल क़वी दिसनवी. लखनऊ, नसीम बुक डिपो, १९६७. (उर्दू)
"मौलाना के सबसे पहले अख़बार लिसान-उल-सिद्क़ (जो कलकत्ता से १९०३ में जारी हुआ) में प्रकाशित लेखों का संग्रह। इन लेखों की शैली और भाषा के चटख़ारे ने न केवल पाठकों को बल्कि मौलाना आज़ाद के समकालीन लेखकों को भी प्रभावित किया।"

१२९. *मजमूआ-ए-मज़ामीन अबुल कलाम आज़ाद.*
सम्पा० मुश्ताक़ अहमद. मेरठ, क़ौमी दारूल इशाअत, nd. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद के लेखों का संग्रह।"

१३०. *मलफ़ूज़ात-ए-आज़ाद.*
सम्पा० मुहम्मद अजमल ख़ाँ. दिल्ली, हाली पब्लिशिंग हाऊस, १९५९. (उर्दू)
"इस्लाम धर्म की रोशनी में दिए गए कुछेक प्रश्नों के उत्तरों का संग्रह।"

१३१. *मसअला-ए-ख़िलाफ़त*
दिल्ली, हाली पब्लिशिंग हाऊस, १९६१. (उर्दू)
"प्रांतीय ख़िलाफ़त कानफ्रेंस का अध्यक्षीय भाषण, यह समस्या ख़िलाफ़त पर विशद चर्चा को आमंत्रण देती है। इसमें ख़िलाफ़त की परिभाषा, इतिहास और पृष्ठभूमि को चर्चा का विषय बनाया गया है। ख़िलाफ़त पर शोध करने के लिए आवश्यक है।"

१३२. *मार्टरडम आफ़ हुसैन.*
अनु० मुहम्मद इक़बाल सिद्दीकी. दिल्ली, नूर पब्लि० १९८५. (अंग्रेज़ी)
"हज़रत इमाम हुसैन के बलिदान की घटना और कर्बला की दूसरी घटनाओं का मार्मिक विवरण।"

१३३. *मुसलमान और काँग्रेस.*
लाहौर, आज़ाद बुक डिपो, nd. (उर्दू)
"मुसलमानों का काँग्रेस में शामिल होने की समस्या पर मौलाना के विचार और प्रतिक्रिया।"

१३४. *मुसलमान औरत.*
लाहौर, एम० सनाउल्ला ख़ाँ, १९५६. (उर्दू)
"फ़रीद वाजिद आफ़ंदी की अरबी पुस्तक 'अल-मिरातुल मुसलिया" का उर्दू अनुवाद. लेखक ने इस पुस्तक में मिश्र के वर्तमान समाज में महिलाओं की दशा का जायज़ा लिया है। यह अनुवाद मौलाना की साहित्यिक क्षमता का श्रेष्ठ नमूना है और अनुवाद पर मौलिकता का संदेह होता है।"

१३५. *मेरा अक़ीदा.*
सम्पा० गुलाम रसूल मह. कराची, मक्तबा-ए-माहौल, १९५९. (उर्दू)
"कई पत्रों का संग्रह जिनमें मौलाना ने तरजुमान्-उल-कुरान के पहले खण्ड के पहले प्रकाशन के बाद मौलाना के विश्वास तथा श्रद्धा के बारे में मुसलमानों में संदोहों और शंकाओं को दूर करने के सिलसिले में स्पष्टीकरण निहित लेख लिखे।"

१३६. *मौलाना अबुल क्लाम आज़ाद का पैग़ाम.*
दिल्ली, उर्दू अकादमी, १९८५. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद का एक भाषण"

१३७. *मौलाना अबुल क्लाम आज़ाद की तारीख़ी खुत्बा.*
दिल्ली, उर्दू अकादमी, १९८५. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद ने देश के विभाजन (१९४७) के अवसर पर जामा मस्जिद दिल्ली में एक ऐतिहासिक भाषण दियाा के नाम नौ (९) पत्रों और संबोधित के उत्तरों का संग्रह।"

१३९. *मौलाना अबुल क्लाम आज़ाद का गैर-मतबुआ क्लाम.*
सम्पा० अबु सलमान शाहजहाँपुरी, कराची, १९६६ (उर्दू)
"मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का मौलिक अप्रकाशित काव्य संग्रह।"

१४०. *मौलाना आज़ाद का नज़रिया-ए-सहाफ़त.*
सम्पा० कुतुबुल्ला. लखनऊ, उ०प्र० उर्दू अकादमी, १९८८. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद की शैली पत्रकारिता और दृष्टिकोण पर रोशनी डाली गई है।"

१४१. *शहीद-ए-कर्बला.*
बिजनौर, कुतुब ख़ाना नई जन्तरी, १९३०. (उर्दू)
"मौलाना ने इस्लामी इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना, शहादत-ए-कर्बला का अध्ययन किया है जिसमें हज़रत इमाम हुसैन और उनके रिश्तेदारों की आहुति का उल्लेख किया गया है।"

१४२. *शाहराह-ए-मक़सूद :*
सियासत-ए-हिन्द में मुसलमानों के लिए राहे-अमल. दिल्ली, जैयद बर्क़ी प्रैस, nd. (उर्दू)
"पहला संस्करण, कलकत्ता, अलहिलाल, १९१२."

१४३. *शख़्सियत-ए-ज़ुलक़रनैन अल-मुज़किरा फ़ी-उल-क़ुरान.*
बग़दाद, दारूल बसरी, nd. (अरबी)
"तर्जुमान-उल-क़ुरान के कुछ अंशों का अरबी अनुवाद जिसमें ज़ुलक़रनैन के चरित्र का चित्रण किया गया है। ज़ुलकरनैन एक सफ़ल शासक समझा जाता था जिसने हारूत और मारुत के अत्याचारों से जनता को छुड़ाया. उलेमा में इस चरित्र के बारे में मतभेद पाये जाते हैं। मौलाना ने क़ुरान के तर्जुमान में उसके व्यक्तित्व की पहचान कराई है।"

१४४. *स्पीच एट मिर्ज़ापुर आन १ एण्ड १५ जुलाई १९२१.*
(अप्रकाशित) (अंग्रेज़ी)
"मौलाना आज़ाद ने पहली और पन्द्रह जुलाई १९२१ को कलकत्ता के मिर्जापुर स्कूअर के मैदान में भाषण दिये थे।"

१४५. *स्पीच बामुक़ाम मिर्ज़ापुर स्कूएर, १ जुलाई १९२१.*
(अप्रकाशित) (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद ने असहयोग आन्दोलन के दौरान कलकत्ता में इस स्थान पर भाषण दिया।"

१४६. *स्पीचेज़ आफ़ मौलाना अबुल कलाम आज़ाद*
१९३९, १९४१, १९४२, १९४३, १९४५, १९५७. (अप्रकाशित) (अंग्रेज़ी)

१४७. *स्पीचेज़ आफ़ मौलाना अबुल कलाम*
खंड १, ३ दिसम्बर १९३९, ८ जुलाई १९४६, कलकत्ता, नेशनल लायब्रेरी, nd. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद के वे भाषण तथा वक्तव्य जो कि अमृत बाज़ार पत्रिका, कलकत्ता में प्रकाशित हुए।"

१४८. *स्पीचेज़ आफ़ मौलाना अबुल कलाम आज़ाद,*
खण्ड २, १९४६-४८, अप्रकाशित. (अंग्रेज़ी)
"मौलाना आज़ाद के अमृत बाज़ार पत्रिका में प्रकाशित भाषण और वक्तव्य।"

१४९. *स्पीचेज़, इनओगूरल एड्रेसेज़ एंड प्रेसिडेंशियल एड्रेसेज़, १९५५-५८.*
(अंग्रेज़ी). (अप्रकाशित)
"विवरणिका : (१) स्पीचेज, लेईंग आफ़ दि फ़ॉऊंडेशन स्टोन आफ़ दि नेशनल म्यूज़िम, नई दिल्ली, १२ मई १९५५, ५ पृ०, (२) इनओगूरल एड्रेस, यूनेस्को सेमिनार ऑन डेव्लपमेंट आफ़ पब्लिक लायब्रेरिज़ इन एशिया, नई दिल्ली, ६ अक्तूबर १९५५, ६ पृ०, (३) एड्रेस, सेकेण्ड इण्टर यूनिवर्सिटी फ़ेस्टिवल, २३ अक्तूबर १९५५, नई दिल्ली, ८ पृ०, (४) प्रेसिडेंशियल एडवाईज़री बोर्ड आफ़ एजूकेशन, नई दिल्ली, १४ जनवरी १९५६, ११ पृ०, (५) प्रेसिडेंशियल एड्रेस, सेकण्ड कॉन्फ्रेंस आफ़ दि इण्डियन नेशनल कमीशन फ़ार यूनेस्को, ६ फ़रवरी १९५६, नई दिल्ली, ८ पृ०, (६) वेलकम एड्रेस टू देएर इम्पीरियल मजेस्टीज़ दि शहनशाह एण्ड दि एम्प्रेस आफ़ ईरान, नई दिल्ली, दि नाईनटीनथ, फ़रवरी, १९५६, ३ पृ०, (७) एड्रेस—नाईन्थ सेशन आफ़ दि जनरल कानप्रेंस आफ़ यूनेस्को, ५ नवम्बर १९५६, १२ पृ०, (८) कनक्लूडिंग एड्रेस, नाइन्थ सेशन आफ़ दि जनरल कानफ्रेंस आफ़ यूनेस्को, ३ पृ०, (९) प्रेसिडेंशियल एड्रेस, २४थ मीटिंग आफ़ दि सेन्ट्रल एडवाईज़री बोर्ड आफ़ एजूकेशन, नई दिल्ली, १६ जनवरी, १९५७, ७ पृ०, (१०) स्पीच, १०थ मीटिंग आफ़ दि आल इण्डिया कांसिंल फ़ार टेकनिकल एजूकेश्न, २२ फ़रवरी १९५७, नई दिल्ली, ४ पृ०,

(११) एड्रेस, स्टेट एजूकेशन मिनिस्टर्स कानफ्रेंस, नई दिल्ली, २० सितम्बर १९५७, ७ पृ०, (१२) वेलकम एड्रेस, फोर्थ इण्टर यूनिवर्सिटी यूथ फेस्टिवल, १ नवम्बर १९५७, नई दिल्ली, ३ पृ०, (१३) प्रेसिडेंशियल एड्रेस, २५थ मीटिंग आफ़ दि सेंट्रल एडवाईज़री बोर्ड आफ़ एजूकेशन, नई दिल्ली, ७ फरवरी १९५८, १० पृ०, (१४) प्रेसिडेंशियल एड्रेस, जनरल एसेम्बली मीटिंग आफ़ दि इण्डियन कॉसिल फ़ार कल्चरल रिलेशन्स, १४ फ़रवरी १९५८, ६ पृ०।"

१५०. *स्पीचेज़ बाई मौलाना आज़ाद.*

२ खंड. नई दिल्ली, पब्लिकेशन डिवीज़न, १९५६. (अंग्रेज़ी)

"इन भाषणों का अंग्रेज़ी अनुवाद सैयद अब्दुल लतीफ़ ने किया। यह एशिया पब्लिशिंग हाऊस से १९६६-६७ से प्रकाशित किया और यही हैदराबाद से १९७८ में प्रकाशित हुआ है।"

१५१. *स्प्रिट आफ़ इस्लाम : ऐ समरी आफ़ दि कमेंट्री आफ़ मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद ऑन अल-फातेहा*

सम्पा० आशफ़ाक हुसैन. बम्बई, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, १९५८. (अंग्रेज़ी)

"क़ुरान-ए-करीम का पहला अध्याय। क़ुरान के बहुत से अनुवादों तथा व्याख्यों का अध्ययन करने के बाद सम्पादक अशफ़ाक़ हुसैन ने मौलाना की व्याख्या की बड़ी प्रशंसा की है। इसमें वह क़ुरान के पहले अध्याय, 'सूरत-ए-अलफ़ातिहा' का निचोड़ है, जो एक वन्दना है।"

१५२. *सदा-ए-रफ़अत.*

सम्पा० मिर्ज़ा जाँबाज़. दिल्ली, आज़ाद अकादमी, nd. (उर्दू)

"मौलाना आज़ादी के धार्मिक एतिहासिक और साहित्यिक लेखों का संग्रह जो उनकी असीम विद्वता और निर्मल शैली का श्रेष्ठ नमूना है। यह पुस्तक मलिक पब्लिशर्स लायलपुर से भी प्रकाशित हो चुकी है।"

१५३. *सदा-ए-हक़*

सम्पा० मसूदुल हसन. दिल्ली, हाली पब्लिशिंग हाऊस, nd. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद के भाषणों का संग्रह जो उन्होंने जीवन के विभिन्न पहलूओं पर धार्मिक प्रकाश में विभिन्न स्थानों पर दिए थे।"

१५४. *सभापति के भाषण*

रामगढ़, कॉंग्रेस कमेटी, nd.

"इण्डियन नेशनल कॉंग्रेस के अधिवेशन, रामगढ़, सम्पन्न १९४० के अवसर दिए गए मौलाना आज़ाद के अध्यक्षीय भाषण का हिन्दी अनुवाद।"

१५५. *सरमद-ए-शहीद*

लाहौर, मलिक मुहम्मद उद्दीन, nd. (उर्दू)

"एक लेख, सरमद के सम्बन्ध में है जो औरंगज़ेब के समय में एक वरिष्ठ सूफ़ी थे। सरमद को बादशाह और उसकी कट्टरपंथी उलेमा-मण्डली के आदेश पर फाँसी दे दी गई थी। यह पुस्तक तनवीर पब्लिशर्स लखनऊ ने भी प्रकाशित की है।"

१५६. *सुबहे-उम्मीद*

सम्पा० हाफ़िज़ फ़ैयाज़ अहमद. दिल्ली, संगम किताब घर, १९५९. (उर्दू)

"मौलाना की कुछ तहरीरों का संग्रह है।"

१५७. *सौरात-उल-हिन्द अल-सियासिया.*

क़ाहिरा, मतबाउत मनार, १९२३. (अरबी)

"कलकत्ता कोर्ट के सामने मौलाना आज़ाद के भाषण का अरबी अनुवाद।"

१५८. *हक़ीक़तुल-सलात*

बनारस, दारुल कुतुब, nd. (उर्दू)

"एक अभिभाषण जो मौलाना आज़ाद ने इस्लाम की प्राथमिक प्रणाली-नमाज़ के विषय में किया था।"

१५९. *हज़रत यूसुफ़ अलेहस्सलाम*

दिल्ली, चमन बुक डिपो, nd. (उर्दू)

"एक पैग़म्बर की जीवनी और तत्कालीन घटनाएँ।"

१६०. *हमारी आज़ादी :*

एक तारीख़ जो आपबीती भी है। अनु मुहम्मद मुजीब. बम्बई, ओरियन्ट लोंगमेंस, १९६१. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद की पुस्तक 'इण्डिया विंस फ्रीडम' का उर्दू अनुवाद।"

१६१. *ज़िक्रा*

१९२५. (उर्दू)

"हज़रत मुहम्मद साहेब की जीवनी।"

१६२. *हिन्दुस्तान पर हमला और मुसलमानों के फ़राईज़*

मेरठ, क़ौमी दारुल इशाअल १९२१. (उर्दू)

पत्र-पत्रिकाएँ
मौलाना आज़ाद द्वारा संपादित अथवा सहयोग प्रदत्त

खंड 'ख'

१६३ *अल-जामिया.*
(कलकत्ता) (१९२३/२४)
"मौलाना अब्दुल रज़्ज़ाक मलिहाबादी के सहयोग से।"

१६४. *अल-बलाग़* (कलकत्ता) १९१५/१६

१६५. *अल-नदवा* (लखनऊ) १९०५/०६

१६६. *अल-मिसबाह.* (कलकत्ता) १९००

१६७. *अल-हिलाल* (कलकत्ता) १९१२/१४

१६८. *अल-हिलाल* (सानी) १९२७

१६९. *एहसनुल अख़बार.* (कलकत्ता) १९०७

१७०. *ख़दंग-ए-नज़र* (लखनऊ) १९००

१७१. *दारुल सलतनत* (कलकत्ता) १९०७

१७२. *पैग़ाम* (कलकत्ता) १९२१

१७३. *पैघाम.* (कलकत्ता) १९२७

१७४. *लिसानुल सिद्क़* (कलकत्ता) १९०३/०५

१७५. *नैरंग-ए-आलम* (कलकत्ता) १८९९

१७६. *वकील.* (अमृतसर) १९०६/०८

भाग २

मौलाना आज़ाद पर रचित पुस्तकें

खंड 'क'

१७७. **अजमत अतल्लाह मलिहाबादी**
सवानेह-ए-हयात
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद दिल्ली, अन्सारी प्रेस, १९४०, उर्दू
"मौलाना की जीवनी तथा उनके लेखों तथा भाषणों का संकलन।"

१७८. **अज़ीज़ (के. के.)**
दी इन्डियन ख़िलाफ़त मूवमेंट : १९१५–१९३३. कराची, पाक पब्लिशर्स, १९७२. (अंग्रेज़ी)

१७९. **अबु सलमान शाहजहाँपुरी.**
अबुल कलाम आज़ाद बाहैसियत मुफ़स्सिर-व-मोहद्दिस.
कराचीं, इदारा-ए-तसनीफ़-व-तहक़ीक, १९८४. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद की इस्लाम के विषय पर विचित्र पकड़ से बहस करती है। इस क्षेत्र में मौलाना के स्थान का निश्चय करती है।"

१८०. **अबु सलमान शाहजहाँपुरी.**
अबुल कलाम व अब्दुल माजिद : अदबी माअर्का.
कराचीं, इदारा-ए-तसनीफ़-औ-तहक़ीक, १९८७. (उर्दू)
"उर्दू में शब्दों तथा मुहाविरों के उपयुक्त प्रयोग पर मौलाना आज़ाद और मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी में एक साहित्यिक वाद-विवाद हुआ था जो अल-हिलाल तथा अलबलाग़ में १९१३ में प्रकाशित हुआ था। इसी साहित्यिक वाद-विवाद की समालोचना पुस्तक में है।"

१८१. **अबु सलमान शाहजहाँपुरी.**
उर्दू की तरक्की में मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का हिस्सा
कराची, इदारा-ए-तसनीफ़-व-तहक़ीक, nd. (उर्दू)
"दो विषयों पर लिखा गया है :
(१) मौलाना का अदबी योगदान और
(२) उर्दू ज़बानों-अदब की प्रगति में मौलाना का योगदान।"

१८२. **अबु सलमान शाहजहाँपुरी.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद. :
असलूब. कराची, मकतबा-ए-असलूब, १९८६. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद के व्यक्तित्व और उनकी साहित्यिक धार्मिक और राजनीतिक रचनाओं पर भारत और पाक के सुप्रसिद्ध लेखकों के लेखों का संकलन।"

१८३. **अबु सलमान शाहजहाँपुरी.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और उनके मआसिरीन
(उर्दू)
"मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का उनके समकालीन विद्वानों तथा नेताओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन।"

१८४. **अबु सलमान अलहिन्दी.**
इमामुल हिन्द.
कराचीं, मकतबा-ए-असलूब, १९६२. (उर्दू)
"मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के जीवन और कृतित्व का विस्तारपूर्वक अध्ययन करती है। अबुल सलमान शाहजहाँपुरी के नाम में भी प्रविष्टियाँ उपलब्ध हैं।"

१८५. **अबु सलमान शाहजहाँपुरी.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद
लाहौर, np. १९६७. (उर्दू)
"जीवन-परिचय"

१८६. **अबुल हसन अली नदवी.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद (उर्दू)
"पुस्तक पुराने चराग़, भाग २, लखनऊ, मक्तबा-ए-फ़िर्दोस, १९८६ से लिया गया है।"

१८७. **अब्दुल क़वी दसनवी.**
अबुल कलाम आज़ाद.
दिल्ली, साहित्य अकेडमी, १९८७. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद की एक जीवनी"

१८८. **अब्दुल क़वी दसनवी.**
मुताअला-ए-ग़ुबार-ए-ख़ातिर.
नई दिल्ली, मक्तबा जामिया, १९८१. (उर्दू)
"मौलाना द्वारा लिखित पत्रों की व्याख्या, पृष्ठभूमि और बौद्धिक मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने अपने पत्रों में प्रमुख लेखकों, जैसे ग़ालिब, सरसैयद, हाली और शिबली के उल्लेख भी है।"

१८९. **अब्दुल ग़फ़्फ़ार (क़ाज़ी मुहम्मद)**
आसार-ए-अबुल कलाम आज़ाद.
नफ़स्याती मुताअला. दिल्ली, आज़ाद किताब घर, १९६३. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद का जीवन-परिचय।"

१९०. **अब्दुल रज़्ज़ाक़ मलीहाबादी.**
ज़िक्र-ए-आज़ाद : मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की रिफ़ाक़त में अड़तीस साल.
कलकत्ता, दफ़्तर आज़ाद हिन्द, १९६०. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद के जीवन तथा कार्यों के सम्बन्ध में लेखक के विचार।"

१९१. **अब्दुल रहमान सईद, सम्पा०.**
दास्ताने-करबला.
कराचीं, नफ़ीस एकेडमी, १९५६. (उर्दू)
"करबला की घटना पर मौलाना आज़ाद के विचार।"

१९२. **अब्दुल माजिद दरियाबादी.**
उर्दू का अदीब-ए-आज़म :
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का हुस्न-ए-इंशा और मुरक़्क़ा-ए-सीरत पर एक नज़र। कराची, इदारा-ए-तसनीफ़-औ-तालीफ़, १९८६. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद की जीवनी और लेखक के साथ उनका पत्राचार। पुस्तक में लेखक की मौलाना के बारे में कुछ लेख भी शामिल हैं जो 'सिदूक़-ए-जदीद' और दूसरी पत्रिकाओं में भी शामिल हैं।"

१९३ **अब्दुल मुग़नी.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद. ज़हन-औ-किरदार.
नई दिल्ली, अंजुमन तरक्की-ए-उर्दू, १९८९. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद की जीवनी और उनके विचार, विशेष रूप से उनके धार्मिक विचारों और चरित्र के साथ-साथ क़ुरान की व्याख्या की गई है।"

१९४. **अब्दुल मुनअम अल-नामिर.**
अबुल कलाम आज़ाद
२ खण्ड. क़ाहिरा, अल-मिश्र अल-मजलिस अल-नशनून; अल इस्लामिया, १९७३. (उर्दू)

१९५. **अब्दुल वदूद, सम्पा०.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : तहरीक-ए-आज़ादी व यकजहती.
दिल्ली, किताब वाला, १९८३. (उर्दू)

१९६. **अब्दुल वहीद खाँ.**
तक़सीम-ए-हिन्द.
लाहौर, मकतबा ऐवाने-अदब, १९५९. (उर्दू)

"यह पुस्तक मौलाना आज़ाद की पुस्तक "हमारी आज़ादी" के उत्तर में लिखी गई है। लेखक ने स्वतन्त्रता संग्राम में जिनहा की भूमिका पर बल दिया है।

१९७. **अब्दहू (जी रसूल).**
एजूकेशनल आईडियाज़ आफ़ मौलाना अबुल कलाम आज़ाद.
नई दिल्ली, स्ट्रलिंग पब्लि०, १९७३. (अंग्रेज़ी)

"मौलाना आज़ाद के शैक्षिक दृष्टिकोण और धर्म पर आधारित पारम्परिक पद्धति तथा विज्ञान व तकनीक पर आधारित नवीन धाराओं के बीच समन्वय की विशेष धारणा का विशद अध्ययन।"

१९८. **अय्यर (सुब्रामनिया).**
रोल आफ़ मौलाना अबुल कलाम आज़ाद इन इण्डियन पालिटिक्स.
हैदराबाद, अबुल कलाम आज़ाद ओरियन्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट, १९६८. (अंग्रेज़ी)

१९९. **अर्श मल्सियानी.**
अबुल कलाम आज़ाद.
नई दिल्ली, पब्लिकेशन्स डिवीज़न, १९७६. (अंग्रेज़ी)

"मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का जीवन-चरित्र।"

२००. **अर्श मल्सियानी.**
अबुल कलाम आज़ाद.
सवानेह-हयात. नई दिल्ली, पब्लिकेशन्स डिवीज़न, १९७४. (उर्दू)

अबुल कलाम आज़ाद की जीवनी।"

२०१. **असद अला। (सैयद)**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद.
नई दिल्ली, चिल्ड्रन बुक सोसाईटी, १९७६.

"मौलाना आज़ाद की जीवनी बच्चों के अध्ययन के लिए।"

२०२. **अंसारी (असरथिन याहिया)**
मौलाना आज़ाद एक सियासी डायरी.
धूलिया, आलिया पब्लि०, १९८२. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद का जीवन चरित्र तथा विचारों का विवरण तथा भारत की कुछेक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओं का उल्लेख।"

२०३. **अहमद अमीन.**
ज़ईम्मा अलहस्लाह फिऊल-असर अल-हदीस.
बेरुत, दारूउल-किताब अलजदीद. nd. (अरबी)

२०४. **अहमद हसन कमाल**
मौलाना अबुल क्लाम आज़ाद ने बर्रे-सगीर पाक-औ-हिन्द-औ-बंगलादेश के बारे में क्या कहा था?
मुलतान, मकतबा अफकार-ऐ-नौ, १९७३. (उर्दू)
"उपमहाद्वीप के बारे में मौलाना के विचार।"

२०५. **आज़ाद (जगन्नाथ).**
अबुल कलाम आज़ाद.
लखनऊ, इदारा-ए-फ़रोगे-उर्दू, १९५८. (उर्दू)
"जीवनी"

२०६. **इमदाद साबरी.**
इमामुल हिन्द मौलाना अबुल कलाम आज़ाद
कराचीं, इदारा-ए-तसनीफ़-व-तहक़ीक, १९८६. (उर्दू)
"मौलाना इमदाद साबरी ने, जो कि मौलाना आज़ाद के निकट सहयोगी थे, मौलाना आज़ाद की जीवनी लिखी है। इसमें उन्होंने मौलाना की विद्वता, बुद्धिजीवी दृष्टिकोण और उनके लेखों की प्रशंसा की है।"

२०७. **इसलाम अली.**
मोलाना आज़ाद की शख्सियत.
लाहौर, अदबीयात, १९६४. (उर्दू)
"जीवनी"

२०८. **उमरी (मौहम्मद शुऐब).**
इस्लामी एहकाम-औ-फ़िकाह में तमींम मौलाना आज़ाद की नज़र में.
बगलूर, np., nd.
"इस्लामी क़ानून पर मौलाना का स्पष्टीकरण।"

२०९. **उस्मानी (मसूदुल हसन).**
अबुल कलाम आज़ाद : एहवाल-औ-आसार.
लखनऊ, मौलाना आज़ाद मैमोरियल एकेडेमी, १९७७. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद के व्यक्तित्व के विभिन्न पहलूओं पर प्रकाश डाला गया है।"

२१०. **कबीर (हुमायूँ), सम्पा०.**
अबुल कलाम आज़ाद.
नई दिल्ली, पब्लि० डिवीज़न, १९५८.
"मौलाना आजाद का अध्ययन।"

२११. **कबीर (हुमायूँ), सम्पा०.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : ए मेमोरियल वालियोम.
बम्बई, एशिया पब्लि० हाऊस, १९५९. (अंग्रेज़ी)

"विवरण :

१. नेहरु : दि पासिंग आफ़ ए ग्रट मैन, पृ० १-४.
२. राधा कृष्णन : दि सर्च एण्ड दि अटेनमेंट, पृ० ५-७.
३. मशीगनन : माई मीटिंगज़ विद मौलाना आज़ाद, पृ० २७-२९.
४. कृपलाणी : दि वॉईस आफ़ रीज़न, पृ० ३०-३६.
५. सैयद महमूद : ए रेसप्लैंडेंट पर्सनल्टी, पृ० ३७-५१.
६. हबीब : दि रेवोल्यूश्नरी मौलाना, पृ० ७९-१००.
७. अब्दुल लतीफ़ : एन अनफ़िनिश्ड मास्टर पीस, पृ० ११६-१३३.
८. मुजीब : दि तज़किरा : ए बायोग्राफ़ी इन सिम्बलस्, पृ० १३१-१५२.
९. फ़ैज़ी : दि रिइन्टरप्रीटेशन आफ़ इस्लाम्, पृ० १५३-१८१.
१०. मैक्डोनल्ड : मौलाना आज़ाद एण्ड दि स्पैरोज़, पृ० १८२-१८९.
११. राजागोपालाचर्य . टलैमिक एरर, पृ० १९४-१९५.
१२. चागला : दि कांस्टिट्यूशन आफ़ इण्डिया, पृ० १९६-२००.
१३. ताराचन्द : इण्डिया एण्ड दि वैस्ट, पृ० २११-२४०. आदि."

२१२. **कबीर (हुमायूँ), सम्पा०.**
मौलाना आज़ाद : ए होमेज.
दिल्ली, पब्लि० डिवीज़न, १९५८. (अंग्रेज़ी)

"मौलाना आज़ाद की जीवनी और योगदान पर लेखों का संग्रह, श्रद्धांजलि सहित जो कि मौलाना की ७०वीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में संसार भर के बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों ने उनको भेंट की।"

२१३. **क़ासिमी (अख़लाक़ हुसैन).**
मौलाना आज़ाद की क़ुरानी बसीरत.
लाहौर, सुन्नी पब्लि०, डिवीज़न, १९८८. (उर्दू)

"पुस्तक में मौलाना आज़ाद के धार्मिक विचारों तथा फ़िक़ह और शरियत के बारे में स्पष्टीकरण को पेश किया गया है।"

२१४. **कुमार (एच० एल०).**
अपोसिल आफ़ यूनीटी : बायोग्राफिकल स्टडी आफ़ मौलाना अबुल कलाम आज़ाद.
लाहौर, हीरो पब्लि०, १९४४. (अंग्रेज़ी).

"स्कूली बच्चों के लिए मौलाना आज़ाद की संक्षिप्त जीवनी।"

२१५. **कैसर जमाल.**
मौलाना आज़ाद के कारनामे.
लखनऊ, करीम बुक डिपो, १९४५. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद का जीवन चित्रण तथा उनके विचार।"

२१६. **ख़लीक़ अंजुम, सम्पा०.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : शख़्सियत और कारनामे.
दिल्ली, उर्दू अकादमी, १९८६. (उर्दू)

"उर्दू अकादमी दिल्ली ने २५-२७ अक्तूबर १९८५ को ख़लीक़ अंजुम की अध्यक्षता में मौलाना अबुल कलाम आज़ाद पर एक सेमिनार कराया था। भाग लेने वाले विद्वानों ने मौलाना के निजी हालात के साथ साथ उनकी पुस्तकों पर आलोचनात्मक लेखों का विवरण भी दिया है।"

२१७. **ख़ालिदी (मोहम्मद यूनुस).**
रूह-ए-आज़ाद.
लखनऊ, अबुल कलाम अकादमी, १९६०. (उर्दू)

२१८. **ख़ालिद, तरमी.**
यादगार-ए-आज़ाद.
लाहौर, np. १९०५. (उर्दू)
"हिन्द और पाक के कवियों द्वारा काव्य श्रद्धाँजली।"

२१९. **ख़ालिदी (मौहम्मद यूनुस).**
नकश-ए-अबुल कलाम आज़ाद.
लखनऊ, मौलाना आज़ाद मैमोरियल कमेटी, १९७८. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद के भाषणों और लेखों का संकलन।"

२२०. **ख़ुदा बख़्श ओरियन्टल पब्लिक लायब्रेरी (पटना), सम्पा०.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की याद में।
पटना, सम्पादक, १९८८.
"ख़ुदा बख़्श ओरियन्टल पब्लिक लायब्रेरी, पटना, द्वारा मौलाना आज़ाद के जीवन तथा कारनामों पर एक पुस्तक।"

२२१. **गाँधी (राज मोहन).**
ऐट लाईव्ज़. :
ऐ स्टडी आफ़ दि हिन्दू मुस्लिम-एनकाऊँटर. नई दिल्ली, रोली बुक्स इण्टरनेशनल, १९८६. (अंग्रेजी).
"मौलाना का जीवन चरित्र।"

२२२. **गुफ़रान अहमद.**
अबुल कलाम आज़ाद.
दिल्ली, फ़ैज़ान बुक सप्लायर्स, १९८५. (उर्दू)
"बच्चों के लिये मौलाना की जीवन कथा।"

२२३. **डुगलास (इयान हेण्डरसन).**
अबुल कलाम आज़ाद. : इन इंटैलेकच्यूअल एंड रिलीजियस बायग्राफ़ी.
सम्पा० गैल मिनोट एण्ड क्रिस्चियन डब्लू ट्राल. दिल्ली, आक्सफर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, १९८८ (अंग्रेज़ी).
"पुस्तक में मौलाना आज़ाद के प्रारंभिक हालात उनके धार्मिक विचार, मानसिक परिवर्तन, राजनीतिक गतिविधियाँ और राष्ट्रीय नेता के रूप में स्वतन्त्रता आन्दोलन में उनके योगदान का उल्लेख है। उनकी जीवनी को तीन भागों में विभाजित किया गया है। १८८८-१९१०, १९११-१९२२ और १९२३-१९५८."

२२४. **डेसाई (महादेव).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : ए बायोग्राफ़िकल मैमायर. सं० २.
आगरा, शिवलाल अग्रवाल, १९४६. (अंग्रेज़ी).
"मौलाना आज़ाद का जीवन-चरित्र। महादेव देसाई स्वाधीनता संग्राम में मौलाना के निकट सहयोगी थे।"

२२५. **चोपड़ा (पी० एन०).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : अन-फुलफिलड ड्रिम्ज़.
नई दिल्ली, इन्टर-प्रिन्ट, १९९० (अंग्रेज़ी).
"मौलाना आज़ाद की जीवनी और स्वाधीनता संग्राम में उनकी भूमिका।"

२२६. **जावेद वशिष्ठ, सम्पा०.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद फ़िक्र व नज़र के आईने में.
फ़रीदाबाद, हरियाणा उर्दू अकादमी, १९८७. (उर्दू)
"मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की जन्म शताब्दि समारोह पर हरियाणा-उर्दू अकादमी ने एक सेमिनार १० मार्च १९८७ को नूह (मेवात) में आयोजित किया था। मौलाना के धार्मिक, राजनीतिक और साहित्यिक ग्रंथों के विभिन्न पहलूओं को विशेषतः उनके चरित्र तथा विचारों को उजागर किया गया है। यासीन मेओ डिगरी कालेज़ नूह के एक मुशायरे की रिपोर्ट भी अन्त में अंकित है।"

२२७. **ज़ैदी (अली जव्वाद), सम्पा०.**
अनवार-ए-अबुल कलाम.
श्रीनगर, जश्न-ए-काश्मीर कमेटी, १९५९. (उर्दू)
"एक सप्ताह के सेमिनार का आयोजन जश्ने बहार-ए-काश्मीर ने १९५८ में किया था। इस में मौलाना की धार्मिक, राजनीतिक, एतिहासिक और शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकों पर लेख पढ़े गए। सेमिनार की रिपोर्ट भी साथ में प्रकाशित की गई है।"

२२८. **झा (विमल जगदीश).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद.
इलाहाबाद, चित्री हितकारी पुस्तक मेला, १९४०.
"विद्यालयों के छात्रों के लिए मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की हिन्दी में जीवनी।"

२२९. **ताराचंद.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद इन हिस्ट्री आफ़ दी फ्रीडम मूवमेण्ट.
खंड ३. नई दिल्ली, पब्लि० डिवीजन, १९७२. (अंग्रेज़ी)
"मौलाना आज़ाद का स्वतन्त्रता आन्दोलन में जो रोल रहा है, उसका अध्ययन किया गया है।"

२३०. **पन्नी (शेर बहादुर).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : मौलाना आज़ाद की शख़्सियत, सीरत और अफ़कार का मुताअला.
कराची, इदारा-ए-तसनीफ़-औ-तहक़ीक़, १९८६. (उर्दू)
"यह पुस्तक उनके निजी आज़ाद-अनुशीलन पर आधारित है। कुछ एतिहासिक ख़ुतबे जैसे रामगढ़ का ख़ुतबा (१९४०), जामा मस्जिद दिल्ली का ख़ुतबा (१९४७) और पार्लियामेंट का ख़ुतबा (१९५४) अन्त में शामिल है।"

२३१. **फ़ज़लुल हक़ ख़ैराबादी. सम्पा० मौ० अब्दुल शाहिद ख़ाँ शेरवानी.**
अल-सौरात अल-हिन्दिया.
बिजनौर, अख़बार मदीना, १९४७. (अरबी).
"क़ौल-ए-फ़ैसल का अरबी में अनुवाद, जिसमें स्वाधीनता संग्राम के हालात का जायज़ा लिया गया है।"

२३२. **फ़ारूकी (आई एच आज़ाद).**
दी तर्जुमानुल कुरान.
नई दिल्ली, विकास, १९८२. (अंग्रेज़ी).
"कुरान के अध्ययन के लिए मौलाना के नज़रियात का आलोचनात्मक जायज़ा पेश किया गया है।"

२३३. **फ़ारूकी (बुरहान अहमद).**
दि मुज्जदीज़ कन्सैप्शन आफ़ तौहीद.
लाहौर, अशरफ़, १९४०. (अंग्रेज़ी).

२३४. **फ़ारूकी (मौ० अब्दुर्रज़्ज़ाक़).**
अबुल कलाम आज़ाद के तालीमी तसव्वुरात.
गुलबर्गा, अंजुमन-ए-हयात-नौ, १९८५. (उर्दू)
"मौलाना का शिक्षाविद के रूप में अवलोकन किया गया है।"

२३५. **फ़िदा हुसैन.**
इमामुल हिन्द मौलाना अबुल कलाम आज़ाद.
इलाहाबाद, फ़िदा हुसैन खाँ, १९५८. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद की जीवनी।"

२३६. **बज़्मी (अबुसईद).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद तनक़ीद और तबसिरे की निगाह में.
दिल्ली, नाज़ पब्लिशिंग हाऊस, १९४०. (उर्दू)
"मौलाना के व्यक्तित्व और उनके कारनामों का विवेचनात्मक उल्लेख। इक़बाल एकेडेमी लाहौर ने भी प्रकाशित किया।"

२३७. **बट्ट (अब्दुल्ला), सम्पा०.**
अबुल कलाम आज़ाद.
लाहौर, क़ौमी कुतबखाना, १९४३. (उर्दू)
"मौलाना की साहित्यिक राजनैतिक और धार्मिक गतिविधियों के बारे में प्रमुख लेखकों के निबन्धों का संकलन।"

२३८. **बट्ट (अब्दुल्ला), सम्पा०.**
आस्पेक्टस आफ़ मौलाना अबुल कलाम आज़ाद.
कराची, इदारा-ए-तसनीफ़-औ-तहक़ीक़, nd. (अंग्रेजी).
"मौलाना आज़ाद के निकट सहयोगियों पंडित नेहरू, अरूणा आसिफ़ अली, महादेव डेसाई और राजगोपालाचार्य ने उनके जीवन पर प्रकाश डाला है। अन्त में इन लेखकों की जीवनी भी है।"

२३९. **बेदार (आबिद रज़ा).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद.
रामपुर, इंस्टिट्यूशन आफ़ ओरियंटल रिसर्च, १९६८. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद के जीवन तथा उनके विचारों का विश्लेषण। पुस्तक में उनके संग्रहों का विस्तार के साथ मूल्याकन भी है।"

२४०. **बाल जेन (जे० एम० एस०).**
माड़न उर्दू कुरान.

इन्टरप्रीटेशन, १८६०-१९६०. लिडिन, ब्रील, १९६१ (अंग्रेज़ी).

"मौलाना की पुस्तक तर्जुमान ऊल क़ुरान की समालोचना।"

२४१. **भट्टाचार्य (शान्ति रंजन), सम्पा०.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के पासपोर्ट की खुफ़िया फाईल.
नई दिल्ली, अन्जुमन तरक्की-उर्दू, १९८७. (उर्दू)

"पुस्तक में मौलाना का जीवन परिचय और उनकी पुस्तक 'हमारी आज़ादी' के अंश दिये गये हैं।

२४२. **रज़ीउद्दीन अहमद.**
नक़द-ए-अबुल कलाम.
त्रुपति, श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, १९६८. (उर्दू).

"मौलाना आज़ाद का विस्तृत अध्ययन। इसमें लेखक ने मौलाना की तुलना मीर तक़ीमीर, मिर्ज़ागालिब, सर सैय्यद अहमद ख़ाँ और सर मुहम्मद इक़बाल के साथ की है।"

२४३. **राजपूत (ए बी).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद.
लाहौर, लोईन प्रेस, १९४६. (अंग्रेज़ी).

"मौलाना आज़ाद का जीवन-परिचय जिसमें लेखक ने मौलाना की तुलना सीज़र और पाल से की है जो वर्तमान युग और भविष्य के पुरुष समझते जाते हैं।"

२४४. **रियाज़ुल करीम, सम्पा०.**
मुस्लिम्स एण्ड दी काँग्रेस.
कलकत्ता, बिरेन्द्र लायब्रेरी, १९४१. (अंग्रेज़ी).

२४५. **रुख़साना जलाली (के).**
अबुल कलाम आज़ाद : परिचय व सन्देश.
लखनऊ, मौलाना आज़ाद मेमोरियल अकादमी, १९८०.

"विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए मौलाना आज़ाद का जीवन-चरित्र।"

२४६. **रे (एमेलेण्डो).**
इन कंसिमटैंसीज़ इन आज़ाद.
हावडा, बंगावर्ती ग्रंथालय, १९६८. (अंग्रेज़ी).

"मौलाना और उनके जीवन सम्बन्धी विचारों की समालोचना।"

२४७ **नवाती देव.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद.
हैदराबाद सिन्ध, क़ौमी साहित्य दल, nd. (सिन्धी)

"सिन्धी भाषा में मौलाना आज़ाद की जीवनी।"

२४८. **निज़ामी (ख़लीक़ अहमद).**
मौलाना आज़ाद अलबम.
दिल्ली, इदारा-ए-अदबियात-ए-दिल्ली, १९८८. (उर्दू/अंग्रेज़ी).

"मौलाना की शताब्दी समारोह पर एक चित्र-संग्रह प्रकाशित किया गया। यह चित्रों फोटो, स्कोचों, डायग्रामों और मौलाना के उद्गारों तथा लेखों, अन्य लेखकों के लेखों से उद्धरित अवतरणों का सुन्दर संग्रह है।"

२४९. **निज़ामी (ज़फ़र अहमद).**
मौलाना आज़ाद की कहानी.
नई दिल्ली, मक्तबा पयाम-ए-तालीम, १९८८. (उर्दू).
"बच्चों के लिए मौलाना आज़ाद की जीवनी।"

२५०. **मदनी (हुसैन अहमद).**
नक्श-ए-हयात.
२ खण्ड देवबन्द, मक्तबा-ए-दीनियात, १९३३-५३.
"प्रथम खण्ड (१९३३) और द्वितीय खण्ड (१९५३) में पृथक् रूप से मौलाना आज़ाद के व्यक्तित्व तथा कारनामों का उल्लेख।"

२५१. **मसीह-उल-हसन (सैय्यद).**
हवाशी-ए-अबुल कलाम आज़ाद.
दिल्ली, उर्दू अकादमी, १९८८.
"मौलाना आज़ाद के पुस्तकालय की पुस्तकों पर मौलाना आज़ाद के क़लम से टिप्पणियाँ. यह पुस्तकें अरबी, अंग्रेज़ी, फ़ारसी तथा उर्दू की हैं। यह पुस्तकें आज़ाद भवन लायब्रेरी में सुरक्षित मौलाना के निजी ग्रंथ-कोश के अन्तर्गत मौजूद है। उन्हीं पर मौलाना के हाशियों का जायज़ा लिया गया है। सारी सामग्री विषय-शीर्षकों जैसे दर्शन व धर्म, साहित्य व सम्स्मरण, इतिहास व भूगोल में विभाजित है। हर शीर्षक में सम्बन्धित पुस्तक का विवरण, उसकी भूमिका, पृष्ठभूमि और विशेष भागों पर मौलाना का हाशिया पुस्तक के कोने में अंकित है।"

२५२ **मंज़ूर अहमद (मलिकज़ादा).**
गुबारे ख़ातिर का तंक़ीदी मुताअला.
लखनऊ, मक्तबा दीन-औ-अदब, १९७६. (उर्दू).
"मौलाना आज़ाद की पुस्तक का साहित्यिक विश्लेषण।"

२५३. **मंज़ूर अहमद (मलिकज़ादा).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद अलहिलाल के आईने में.
लखनऊ, np. १९७२. (उर्दू).
"अलहिलाल में मौलाना आज़ाद के लेखों तथा सम्पादकीयों पर टिप्पणी।"

२५४. **मंज़ूर अहमद (मलिकज़ादा).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : फ़िक्र-औ-फ़न.
लखनऊ, नसीम बुक डिपो, १९६९. (उर्दू)
"मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की जीवनी और उनके साहित्यिक कृतियों पर समालोचना. १९७८ में रिप्रिन्ट प्रकाशित हुआ।"

२५५. **मालिक राम.**
तज़किरा-ए-मआसिरीन.
४ खण्ड. नई दिल्ली, मक्तबा-ए-जामिया, १९७२-१९७८. (उर्दू)

२५६. **मिनोट (गैल).**
दी ख़िलाफ़त मूवमेंट.
न्यूयार्क, कोलम्बिया प्रेस, १९८२. (अंग्रेज़ी).
"ख़िलाफ़त आन्दोलन में मौलाना आज़ाद की भूमिका का विवरण।"

२५७. **मुईन शाकिर.**
ख़िलाफ़त टू पार्टीशन.
नई दिल्ली, कलमकार प्रकाशन, १९७० (अंग्रेज़ी).
"खिलाफ़त आन्दोलन से लेकर देश के विभाजन तक की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का अध्ययन, मौलाना आज़ाद सहित।"

२५८. **मुजीब (मौ०).**
दी तज़किरा : ऐ बायोग्राफ़ी सिम्बलस इन आज़ाद मैमोरियल वालियोम.
सम्पा० हुमायूँ-कबीर, बम्बई ऐशिया, १९५९. (अंग्रेज़ी).

२५९. **मुशीर-उल-हक़.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, ए रिवोल्यूशनरी आलिम इन मौलाना आज़ाद.
१८थ डैथ एनीवर्सरी, २२ फरवरी १९७६. लखनऊ, मौलाना आज़ाद मेमोरियल एकेडेमी, १९७६. (अंग्रेज़ी)
"एक प्रगतिशील बुद्धिजीवी की हैसियत से मौलाना आज़ाद का तनक़ीदी मुताअला।"

२६०. **शाहिद (एम० ए०).**
मौलाना आज़ाद और उनके नाक़िद.
कराची, माड्न पब्लि., १९८१. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद के विषय में लिखी हुई पुस्तकों का मूल्यांकन।"

२६१. **शैदा रिवाड़वी (अब्दुल रहमान).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की सरग़र्म ज़िंदगी का मुरक़्क़ा.
मेरठ, कुतुब खारा सईदिया, १९४०.
"मौलाना आज़ाद के व्यक्तित्व का चित्रण।"

२६२. **सईद अहमद अकबराबादी.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : सरित-औ-शख़्सियत और इल्मी-औ-अमली कारनामे.
सम्पा० अबु सलमान शाहजहाँपुरी. कराची, इदारा-ए-तसनीफ़-औ-तहक़ीक, १९८६. (उर्दू)
"एक जीवन-चरित्र और ४ अन्य लेखों में प्रसिद्ध साहित्यकारों ने मौलाना के विभिन्न पहलूओं पर प्रकाश डाला है।"

२६३. **सालिक (अब्दुल मजीद).**
ग्रोथ आफ़ मुस्लिम जरनलइज़्म : इन ए हिस्ट्री आफ दि फ्रीडम मूवमेन्ट.
ख़० ३, भाग २. कराची, पाकिस्तान हिस्टारिकल सोसाईटी, १९६३. (अंग्रेज़ी)
"मौलाना आज़ाद पत्रकार के रूप में।"

२६४. **सालिक (अब्दुल मजीद).**
याराने-कुहन.
लाहौर, मतबूआत-ए-चट्टान, १९५५. (उर्दू)

२६५. *सिपासनामा.*
अबुल कलाम आज़ाद वज़ीर-ए-तालीमात, हुकूमत-ए-हिन्द, हैदराबाद, दायरातुल मुआरिफ़, १९५२. (उर्दू)
"एक प्रशंसानिहित लेख।"

२६६. **सिद्दीकी (अतीक), सम्पा०.**
आईना-ए-अबुल क्लाम आज़ाद : मजमूआ-ए-मक़ालात.
दिल्ली, अंजुमन-ए-तरक़्क़ी-ए-उर्दू, १९७६. (उर्दू)
"यह मौलाना आज़ाद के व्यक्तित्व पर प्रमुख साहित्यकारों तथा नेताओं के लेखों का संग्रह है। अन्त में मौलाना साहेब के लेखों का संकलन भी शामिल है।"

२६७. **सैयदेन (के जी).**
दि ह्यूमनिस्ट ट्रैडीशन इन इण्डियन एजूकेशनल थाट.
बम्बई, एशिया पब्लि० हाऊस, १९६६. (अंग्रेज़ी).
"मौलाना आज़ाद के शिक्षा सम्बन्धी विचारों पर आलोचनात्मक दृष्टि।"

२६८. **सैय्यदेन (के जी).**
मौलाना आज़ाद्स कंट्रीब्यूशन टू एजूकेशन.
बड़ौदा, महाराज सियाजी राव यूनिवर्सिटी, १९६१. (अंग्रेज़ी).
"मौलाना पर दो भाषण : (१) एजूकेशनल सिस्टम और (२) पालीसीज़ एण्ड प्रोग्राम्स। दोनों महाराजा सियाजी राव मेमोरियल लेकचरज़ के अन्तर्गत दिए गए।"

२६९. **हसन मुहम्मद पहलवान.**
अबुल कलाम आज़ाद.
हैदराबाद, मक्तबा-ए-इत्तिहाद-औ-तरक़्क़ी, १९५८. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद का संक्षिप्त जीवन-विवरण।"

२७०. **हार्डी (पीटर).**
पार्टनर्स इन फ्रीडम एण्ड ट्रयू मुस्लिम्स : दी पोलिटिकल थॉटस आफ़ सम मुस्लिम स्कालर्स इन ब्रिटिश इण्डिया, १९१२-१९४७.
................, स्केण्डीनेविया इंस्टिट्यूट आफ़ लिटरेचर, १९७१. (अंग्रेज़ी).
"मौलाना आज़ाद की राजनीतिक तथा राष्ट्रीय सेवाओं का उल्लेख।"

२७१. **हुमायूँ कबीर, सम्पा०.**
मौलाना अबुल क्लाम आज़ाद : ए मेमोरियल वालियोम.
बम्बई, एशिया, १९५९. (अंग्रेज़ी)
"यह पुस्तक मौलाना आज़ाद को श्रद्धांजलि है। १९५७ में ११ नवम्बर १९५८ को मौलाना की ७०वीं वर्षगाँठ मनाने के लिए एक कमेटी बनाई गई थी। यह निश्चय किया गया कि एक पुस्तक मौलाना पर प्रकाशित की जाए और उनको एक सार्वजनिक सभा में भेंट किया जाए। मौलाना फ़रवरी १९५८ में देहान्त कर गए। प्रशस्ति खंड के बजाए मौलाना आज़ाद की प्रथम पुण्य स्मृति पर यह स्मारिका भेंट की गई।"

२७२. **हैन (अर्नेस्ट एच).**
मौलाना अबुल क्लाम आज़ाद्स कॉन्सेप्ट्स आफ़ रिलीजन एण्ड रिलीजियम ब्लीफ़ एकार्डिंग टू हिज़ तरजुमानुल क़ुरान. (अंग्रेज़ी).
"अप्रकाशित प्रति, एस टी एम थेसिस, मॉन्ट्रियल, मैकगिल यूनिवर्सिटी प्रेस, १९६५"

पत्र-पत्रिकाओं में मौलाना के विषय में प्रकाशित लेखों का विवरण

खंड 'ख'

२७३. **अख़लाक़ हुसैन क़ास्मी.**
वहिए नबूअत के तसव्वुर में : सर सैयद और मौलाना आजाद का इख़्तिलाफ.
बुर्हान (दिल्ली), १००(३), सितम्बर १९८७. पृ० १७७-१८०. (उर्दू)
"तर्जुमानुल क़ुरान पर लेखक की टिप्पणी। इसमें मौलाना आज़ाद और सर सैयद अहमद ख़ाँ के मतभेद पर विचार किया गया है।"

२७४. **अब्दुल क़वी दिसनवी.**
मौलाना अबुल क्लाम आज़ाद और हफ़तावार पैग़ाम.
आजकल (दिल्ली), ४३(५), दिसम्बर १९८५. पृ० ५०-५८. (उर्दू)
"मौलाना पत्रकार के रूप में और उनका पत्र पैग़ाम"

२७५. **अब्दुल्ला (यू०).**
दि आज़ाद पेपर्स—मिस्ट्री अन-रिवील्ड.
हिन्दू, (दिल्ली), २७ नवम्बर, १९८८. (अंग्रेज़ी)
"मौलाना की पुस्तक इण्डिया विंस फ्रिडम, प्रकाशन १९८८ के पूर्ण मसविदे पर विस्तृत जानकारी।"

२७६ **अब्दुल्ला (यू).**
गुबारे खातिर और कारवान-ए-ख़याल.
बुरहान, ४४(४), अप्रैल १९६०, पृ० २२९-२५६. (उर्दू).
"मौलाना आज़ाद की दो पुस्तकों पर समीक्षा।"

२७७. **अब्दुल लतीफ आजमी.**
अबुल कलाम आज़ाद : तारीख़ी गलतियाँ,
आजकल (दिल्ली), ४६(३) अक्टूबर १९८७, पृ० १५-१८-२३ (उर्दू)
"अब्दुल क़वी दसनवी की पुस्तक अबुल कलाम आजाद पर तबसिरा।"

२७८. **अब्दुल लतीफ आजमी.**
मौलाना अबुल क्लाम आज़ाद.
जामिया (दिल्ली), ८०(३), मार्च १९८३. पृ० ३०-३४. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद के व्यक्तित्व का मूल्यांकन।"

२७९. **अब्दुल लतीफ आजमी.**
मौलाना आज़ाद का सद-साला यौम-ए-पैदाईश.
हमारी ज़बान (दिल्ली), ४६(४२), १ नवम्बर १९८७, ८ पृ० (उर्दू)
"मौलाना की शैली पर विचार-व्यक्ति और उन मुद्दों की ओर संकेत जिनपर अभी शोध करने की आवश्यकता है।"

२८०. **अब्दुल लतीफ आज़मी.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और सैयद सुलैमान नदवी के बाहिमी ताल्लुकात उनके खुतूत की रोशनी में.
जामिया (दिल्ली), ४९(६), दिसम्बर १९६३. पृ० ३१४-३२९ (उर्दू)

२८१. **अब्दुल लतीफ आज़मी.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद पर बेबुनियाद इल्ज़ामात.
ज़बान-औ-अदब (पटना), १२(२), अप्रैल-जून १९८६. पृ० २४-४६ (उर्दू)
"निसार अहमद फ़ारूकी के लेख प्रकाशित हमारी ज़बान (दिल्ली) १५ अप्रैल १९८६ के उत्तर में।"

२८२. *अबुल कलाम आज़ाद बर्थ सेंटीनरी सैलीबरेशन ऑन नवम्बर ११. इण्डियन एक्सप्रेस* (दिल्ली), ६ दिसम्बर १९८८. (अंग्रेज़ी).
"११ नवम्बर को विज्ञान भवन में आज़ाद के जन्म की शताब्दि आयोजित करने के सम्बन्ध मे एक प्रैस नोट।"

२८३. **अबुल हसन अली नदवी.**
मौलाना आज़ाद.
क़ौमी आवाज (दिल्ली), २१ फ़रवरी १९८८, एक पृष्ठ (उर्दू)
"लेखक ने मौलाना आज़ाद के साथ अपने सम्पर्क का उल्लेख किया है और मौलाना के व्यक्तित्व, चरित्र और साहित्यिक स्तर पर अपने विचार व्यक्त किए हैं।"

२८४ **अबु सलमान शाहजहाँपुरी.**
अल-हिलाल (कलकत्ता) तारीख़ी खसाईस व मक़ासिद और फ़न की रोशनी में.
जामिया (दिल्ली), ५८(२), फ़रवरी १९८८, पृ० १००-११४. (उर्दू)
"अखबार अलहिलाल के प्रकाशन का उद्देश्य तथा इतिहास।"

२८५. **अबु सलमान शाहजहाँपुरी.**
नुकूश-ए-इमामुल हिन्द : मौलाना अबुल कलाम आज़ाद पाकिस्तान मे.
उर्दू-अदब (दिल्ली), १९६४. पृ० १४३-१५९. (उर्दू)
"लेखक ने बताया है कि विभाजन के बाद मौलाना आज़ाद के महत्त्व का अनुमान पाकिस्तान में बिल्कुल नहीं था किन्तु १९६४ में जब मौलाना के बारे में कई लेख प्रकाशित हुए तो पाकिस्तान में उनकी विद्वता की पहचान हो गई।"

२८६. **अबु सलमान शाहजहाँपुरी.**
नुकूश-ए-इमामुल हिन्द और रिसाले.
उर्दू अदब (दिल्ली), १९६७. पृ० ५-३२. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद पर शोधकार्य के लिए एक महत्त्वपूर्ण सूत्र।"

२८७. **अबु सलमान शाहजहाँपुरी.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद.
निदा-ए-मिल्लत (लखनऊ) ४२(४२), पहली नवम्बर १९८७ (उर्दू), पृ० ३-४
"मौलाना आज़ाद की पत्रकारिक जिन्दगी पर प्रकाश।"

२८८. **अबु सलमान शाहजहाँपुरी.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद पर पहली किताब.

मआरिफ़ (आज़मगढ़), ९९(४), अप्रैल १९६७, पृ० २०५-२९५. (उर्दू)

"इमामुल अहरार और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद पर तबसिरा।"

२८९. **अबु सलमान शाहजहाँपुरी.**
हिन्दुस्तान में तारीख़-औ-दावत-ए-इस्लाम का एक बाब.
मौलाना आज़ाद और तहरीक-ए-नज़्म-ए-जमाअत. बुर्हान (दिल्ली), ६५(३), सितम्बर १९७०, पृ० १५३-१७७. (उर्दू)

"लेखक ने मौलाना की इस्लाम विशेषतः राष्ट्रीय एकता और नेतृत्व की एकता की शिक्षा के संदर्भ से अध्ययन किया है।"

२९०. *अलजमियत (दिल्ली) (दैनिक) (उर्दू).*
४ दिसम्बर १९५८.

"आज़ाद विशेषांक।"

२९१. **(अलवी (तौसीफ़).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : एक एहद आफ़रीन शख़्सियत.
कौमी आवाज़ (दिल्ली) ५ जनवरी, १९८९. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद का विवेचनात्मक अध्ययन।"

२९२. *आजकल (दिल्ली) (मासिक) (उर्दू).*
१७(१), अगस्त १९५८.

"अबुल कलाम नम्बर।"

२९३. *आजकल (दिल्ली) (मासिक) (उर्दू).*
४७(७), नवम्बर १९८८.

"मौलाना आज़ाद नम्बर।"

२९४. **आज़ाद (जगन्नाथ).**
मौलाना आज़ाद का शैरी ज़ौक.
क़ौमी राज, १३(१४), १० दिसम्बर १९८६, पृ० १८-३१. (उर्दू)

"मौलाना के साहित्यिक चरित्र और काव्य-अभिरुचि के सम्बन्ध में लिखा गया एक लेख। विभिन्न उद्धरणों तथा सूत्रों द्वारा अपने दृष्टिकोण की पुष्टि की गई है।"

२९५. **आलम (एम).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : एक हमागीर शख़्सियत.
दिल्ली (दिल्ली), अप्रैल-सितम्बर १९८८. पृ० १२-१३. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद का जीवन-चरित्र।"

२९६. *आर. वी. राजीव लाऊड आज़ादस् रोल.*
ट्रिब्यून (चंडीगढ़), १३ नवम्बर १९८८. (अंग्रेज़ी).

"विज्ञान भवन में मौलाना आज़ाद की जन्म शताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में श्री वेंकटरमन और श्री राजीव गांधी ने अपने भाषणो में मौलाना आज़ाद को एक महान धर्मनिरपेक्ष बताया था। उसकी अख़बारी रिपोर्ट।"

२९७ **इक़बाल मसूद.**
पार्टिशनिंग .प्रॉब्लेम : पर्सनल व्यूपुआँइट.
इण्डियन एक्सप्रैस (दिल्ली), २७ नवम्बर १९८८. (अंग्रेज़ी).

"ब्रिटिश सरकार के घिनावने रोल के कारण देश के बटवारे को अनिवार्य परिस्थितियों पर टिप्पणी।"

२९८. **इण्डिया टूडे (नई दिल्ली).**
आज़ाद पेपर्स पेनफ़ुल डिसक्लोजर्स : एक्सट्रेक्ट्स.
नई दिल्ली, इण्डिया टूडे, १९८८. (अंग्रेज़ी).
"पत्रिका इण्डिया टूडे, १५ नवम्बर १९८८, पृ० १०२-१०८, में मौलाना आज़ाद के विवादास्पद ३० पृष्ठों पर तीव्र आलोचना।"

२९९. **इण्डियन एक्सप्रैस.**
बर्थ सेंटिनरी सैलीबरेशन ऑन नवम्बर ११
इण्डियन एक्सप्रैस (दिल्ली), ६ नवम्बर, १९८८ (अंग्रेज़ी)
"११ नवम्बर, को विज्ञान भवन में मौलाना की जन्म शताब्दि समारोह रिपोर्ट।"

३००. **इण्डियन एक्सप्रैस.**
क्रिटिकल रेफ़्रेंस आफ़ पटेल इन आज़ाद पेपर्स.
इण्डियन एक्सप्रैस (दिल्ली), २४ अक्तूबर, १९८८. (अंग्रेज़ी).
"राबिन्द्रनाथ राय, हुमायूँ कबीर के स्टाफ़ में थे और उनका दावा था कि उन्होंने ही इण्डिया विंस फ्रीडम के मसविदे को टाईप किया था। प्रेस को एक इण्टरव्यू देते हुए उन्होंने तीस पृष्ठों के रहस्योद्घाटन करने की कोशिश की।"

३०१. **इण्डियन एक्सप्रैस.**
गर्वमेण्ट आस्कड् टू टेक ओवर आज़ादस् बर्थ प्लेस.
इण्डियन एक्सप्रेस (दिल्ली), २५ नवम्बर १९८८. (अंग्रेज़ी).
"संमत्सदस्यों ने मौलाना आज़ाद के जन्म-स्थान पर संदेह व्यक्त किया और इसकी मांग की गई कि उसको राष्ट्रीय स्मारक घोषित किया जाए तथा उसको सरकार अपने अधिकार में ले ले।"

३०२. **इण्डियन एक्सप्रैस.**
लीग बिडट् सली कॉंग्रेस इमेज.
इण्डियन एक्सप्रैस (दिल्ली), ७ नवम्बर १९८८. (अंग्रेज़ी).
"इण्डिया विंस फ्रीडम में तीस पृष्ठों के प्रकाशन के संदर्भ में।"

३०३. **इण्डियन एक्सप्रैस.**
मौलाना आज़ाद एस्से कम्पीटीशन.
इण्डियन एक्सप्रैस (दिल्ली), ११ नवम्बर १९८८. (अंग्रेज़ी).
"आई सी सी आर के तत्वावधान में मौलाना आज़ाद लेखों के कम्पीटीशन के सिलसिले मे घोषण की रिपोर्ट।"

३०४. **इण्डियन एक्सप्रैस.**
रिमार्कस् अगेंम्ट नेहरू इन आज़ादस् पेपर्स.
इण्डियन एक्सप्रैस (दिल्ली), २५ अक्तूबर १९८८. (अंग्रेज़ी).
"विवादस्पद ३० पृष्ठों के बारे में प्रकाशक की विज्ञप्ति।"

३०५. **इण्डियन एक्सप्रैस.**
नेहरुज़ स्टेट्मेंटस् कंट्रीब्यूटेड टू पार्टीशन.
इण्डियन एक्सप्रैस, (दिल्ली), १५ नवम्बर १९८८, (अंग्रेज़ी).

३०६ **इंजीनियर (असग़र अली).**
थियोलोजिकल क्रिएटिविटी आफ़ अबुल कलाम आज़ाद.
इण्डियन लिट्रेचर (दिल्ली), ३१(४), जुलाई-अगस्त १९८८, पृ० १७-२९. (अंग्रेज़ी)
"मौलाना आजाद की वर्षगाँठ मनाने के लिए साहित्य अकादमी ने अगस्त १९८८ मे एक सेमिनार किया था। इस सेमिनार का यह लेख है। लेखक ने इस में मौलाना की धार्मिक विचारधारा को उजागर करने की कोशिश की है।"

३०७ **इस्लाही (ज़ियाउद्दीन).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और क़ौमी जद्दोजहद.
मआरिफ़ (आज़मगढ़), १४३(४), अप्रैल १९८९, पृ० ३०२-३१४ (उर्दू).
"स्वतन्त्रता संग्राम में मौलाना आज़ाद के योगदान की चर्चा।"

३०८. *उर्दू अदब*
(अलीगढ़) (क्यू) (उर्दू), ८/१९८९
"आजाद नम्बर।"

३०९. **उम्मीद अदीबी.**
इमामुल हिन्द मौलाना अबुल कलाम आज़ाद.
क़ौमी राज (बमबई). ९(२४), २५ दिसम्बर १९८२, पृ० १२-१६, (उर्दू)
"मौलाना आजाद की जीवनी।"

३१० **उस्मानी (नज्म जावेद).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद.
क़ौमी आवाज, (दिल्ली), २० नवम्बर १९८८ (उर्दू)
"भारतीय राजनीति में मौलाना आज़ाद के प्रमुख योगदान पर विस्तारपूर्वक टिप्पणी।"

३११. *ऐवान-ए-उर्दू.*
(दिल्ली) (मासिक) (उर्दू) ३(८), १९८८,
"आज़ाद विशेषांक।"

३१२ **कमाली (एस० ए०).**
अबुल कलाम आज़ादस् कमेंट्री ऑन दि क़ुरान.
मुस्लिम वर्ल्ड (हर्टफोर्ड, यू०एस०ए०) ४९(१), जनवरी १९५९, पृ० ५-१८. (अंग्रेज़ी).
"मौलाना की व्याख्या तर्जुमानुल क़ुरान का विवेचनात्मक अध्ययन।"

३१३ **कृष्ण कांत.**
व्हैन मौलाना आजाद चाईड टू दी महात्मा.
दिल्ली, रिकार्डर (दिल्ली), ९(६), अगस्त १९६८, पृ० ४-६. (अंग्रेज़ी).
"इसमे मौलाना आजाद और महात्मा गांधी के मतभेदों का उल्लेख है। महात्मा गांधी के दूसरे सहयोगियो के साथ भी मौलाना के मतभेद थे। सुधीरघोष ने अपनी पुस्तक गांधीज़ एमीसरी में लिखा है कि मौलाना ने केबिनेट मिशन मे कॉग्रेस मुसलमानों के प्रतिनिधित्व के सिलसिले में जो भी लिखा है, वह गाधी की अनुमति के बिना था।"

३१४ **क़ुतुबुल्ला.**
मौलाना आज़ाद अकादमी.
क़ौमी आवाज (दिल्ली), २१ फ़रवरी १९८८ पृ० ३. (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद के संग्रहों की प्रशंसा और आज़ाद मेमोरियल अकादमी के उद्घाटन की सूचना।"

३१५. **क़ौमी आवाज़**
ऐवान-ए-उर्दू का आज़ाद नम्बर.
क़ौमी आवाज़ (दिल्ली), ६ अप्रैल १९८८. (उर्दू).
"आज़ाद नम्बर पर एक समीक्षा।"

३१६. **क़ैसर (मौ० यूसुफ़).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और भोपाल.
आजकल (दिल्ली), दिसम्बर १९५८. (उर्दू)

३१७. **क़ौमी आवाज़.**
तीस सफ़हात की इशाअत खुद मौलाना आज़ाद की हिदायत पर रोकी गई थी.
क़ौमी आवाज़ (दिल्ली), २५ अक्तूबर १९८८. (उर्दू).
"राय का वक्तव्य, जिसमें कहा गया था कि ३० पृष्ठों का प्रकाशन रोक दिया जाए, यह स्वय मौलाना आज़ाद का निर्णय था।"

३१८. **क़ौमी आवाज़.**
सर बामुहर पैकिटों मे मौलाना आज़ाद के ३० सफ़ाहात ग़ायब.
हुमायूँ कबीर ने आज़ाद मुसव्वदे में तग़य्युर-औ-तबाद्दुल करके नया मुसव्वदा तैयार किया था। जनता दौर में चरण सिंह की हिदायत पर रद्दो बदल की गई थी। क़ौमी आवाज़ (दिल्ली), १७ नवम्बर १९८८ (उर्दू)
"इंडिया विंस फ्रीडम के ३० पृष्ठों के प्रकाशन के बारे में कुछ तथ्यों का रहस्योद्घाटन।"

३१९. **खालिद महमूद.**
मौलाना आज़ाद बाहैसियत सहाफ़ी.
निदा-ए-मिल्लत (लखनऊ) ४३(१८), १५ मई १९८८, पृ० २१-२२. (उर्दू)
"मौलाना के प्रारम्भिक जीवन की घटनाएँ विशेष रूप से उनके पत्रकार-जीवन का उल्लेख है।"

३२०. **गुफ़रान अहमद.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद.
सबरस, ४४(३), मार्च १९८४, पृ० २५-३१. (उर्दू)
"मौलाना के व्यक्तित्व पर आलोचनात्मक लेख। पं० जवाहरलाल नेहरु तथा गुलाम रसूल मेह्र के विचारों पर इस में टिप्पणी शामिल है। सुबह-ए-उम्मीद के मार्च के अंक में यह पुनः प्रकाशित हो चुका है।"

३२१. **गोपाल सिंह.**
एन अनसीमली कंट्रोवर्सी.
हिन्दुस्तान टाइम्स (दिल्ली), २० नवम्बर १९८८. (अंग्रेज़ी).
"मौलाना आज़ाद की पुस्तक इण्डिया विंस फ्रीडम के तीस पृष्ठों के वर्तमान प्रकाशन पर गतिरोध की टीका।"

३२२. चट्टान *(लाहौर).*
(साप्ताहिक) (उर्दू) १८, १५ फरवरी १९६५.
"आज़ाद नम्बर।"

३२३. **जनसत्ता.**
७ नवम्बर को रहस्य खुलेगा.
नवभारत टाइम्स (दिल्ली) २५ अक्टूबर १९८८.
"एक समाचार, ३० पृष्ठ, ७ नवम्बर १९८८ को प्रकाशित किए जाएँगे।"

३२४. **ज़की एम क़ासिम.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और उर्दू.
क़ौमी आवाज़ (दिल्ली), २४ फरवरी १९८६, पृ० ३-६. (उर्दू).
'उर्दू भाषा के समर्थन में मौलाना के प्रयासों की प्रशंसा।"

३२५. *जमहूर (अलीगढ़).*
(पाक्षिक) (उर्दू) ५ और ६. १६ फरवरी १९६०. (१५ अंक एक मास में प्रकाशित)
"आज़ाद नम्बर।"

३२६ **ज़ाकिर हुसैन.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : एक हमागीर शख़्सियत.
जामिया (दिल्ली), ८५(२), फरवरी १९८८. पृ० ११-१४. (उर्दू).
"मौलाना आज़ाद के साथ अपने सहयोग की घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है।"

३२७. *जामिया (दिल्ली).*
(मासिक) (उर्दू) ४८(३), मार्च १९६३.
"आज़ाद नम्बर।"

३२८. **जौहर (जे एस).**
तक़सीम का ज़िम्मेदार कौन?
क़ौमी आवाज़ (दिल्ली), २९ नवम्बर १९८८. (उर्दू)
"लेखक ने इण्डिया विन्स फ्रीडम की शंकाओं से बहस की है और बताया है कि देश का बटवारा अनिवार्य था जिसकी तमाम जिम्मेवारी ब्रिटिश सरकार की है।"

३२९. **टाइम्स आफ इण्डिया.**
मौलानाज़ मज़ार.
टाइम्स आफ इण्डिया (दिल्ली), २७ अक्टूबर १९८८. (अंग्रेज़ी).
"मूर्तिकार हबीबुर्रहमान ने जामा मस्जिद के निकट स्थित मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के मज़ार की खस्ता हालत देखकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की।"

३३०. **टाइम्स आफ इण्डिया.**
चैम्पियण्ड यूनीटी :
टाइम्स आफ इण्डिया (दिल्ली) १५ नवम्बर १९८८. (अंग्रेज़ी).
"मौलाना आज़ाद की शताब्दि के उपलक्ष्य में विज्ञान भवन के उद्घाटन समारोह की प्रेस रिपोर्टें।"

३३१. **दत्ता (अनुराधा).**
दि आज़ाद पेपर्स
इलस्ट्रेटिड वीकली. (बम्बई), ६-१३ मार्च १९८८. पृ० ८-१७. (अंग्रेज़ी).
"लेखक ने मौलाना आज़ाद के तीस पृष्ठों के तीव्र विवाद पर विचार व्यक्त किए हैं।"

३३२. **दत्ता (वी० एन०).**
आज़ाद : फ़ाइनल लुक एट फ़ाईनल फ़ेस.

ट्रिब्यून (चण्डीगढ़), २७ नवम्बर १९८८ (अंग्रेज़ी).

"मौलाना के सम्बन्ध में विस्तृत लेख का तीसरा भाग। पिछले भाग ३१ जुलाई और ७ अगस्त के ट्रिब्यून में प्रकाशित हुए थे। यह लेख इण्डिया विंस फ्रीडम के बारे में विवाद पर प्रकाश डालते हैं।"

३३३. **दत्ता (वी० एन०).**
आज़ाद पेपर्स : टाइम्स आफ इण्डिया (दिल्ली).
२४ अक्तूबर १९८८. (अंग्रेज़ी).

"इण्डिया विंस फ्रीडम के लेखक के बारे में अपनी शंकाएँ व्यक्त की है। इस लेख मे लेखक ने अपनी शंकाओं तथा निष्कर्षों का औचित्य प्रस्तुत किया है।"

३३४. **दत्ता (वी० एन०).**
इवेण्टस् लीडींग टू पार्टिशन.
टाइम्स आफ इण्डिया. १२ और २१ दिसम्बर १९८८. (अंग्रेज़ी).

३३५. **दत्ता (वी० एन०).**
तीस सफ़हात का फैसला खुद आज़ाद का.
प्रताप (दिल्ली), २५ अक्तूबर १९८८.

"पुस्तक इण्डिया विंस फ्रीडम के तीस पृष्ठों के प्रकाशन के लिए निर्णय के सम्बन्ध में एक वक्तव्य।"

३३६. *पंद्रहवी सदी*
(दिल्ली) (मासिक) (उर्दू) ९(१), जनवरी १९८९.

"आज़ाद नम्बर।"

३३७. **प्रताप.**
तीस सफ़हात की इशाअत मौलाना ने नहीं रोकी थी.
प्रताप (दिल्ली), २७ अक्तूबर १९८८ (उर्दू)

"मौलाना आज़ाद के निजी सचिव एन० एम० मसूद का स्पष्टीकरण।"

३३८. **प्रताप.**
मौलाना आज़ाद की किताब उर्दू से तर्जुमा नहीं बल्कि ओरिजीनल थी.
प्रताप (दिल्ली), २५ अक्तूबर १९८८. (उर्दू)

"इण्डिया विंस फ्रीडम में तीस साल बाद तीस पृष्ठ के शामिल करने पर राय का प्रेस इण्टरव्यू।"

३३९. **प्रताप.**
मौलाना कितने सच्चे थे और कितने...... ?
प्रताप (दिल्ली), २४-२८ नवम्बर १९८८. (उर्दू)

"ताज़ा रहस्योद्‌घाटनों की रोशनी में मौलाना आज़ाद के बारे में एक अख़बार विशेष की राय।"

३४०. **प्रताप.**
मौलाना के इल्ज़ामात.
प्रताप (दिल्ली), १२ नवम्बर १९८८. (उर्दू).

"इण्डिया विंस फ्रीडम के तीस पृष्ठों के विषय पर अख़बार का सम्पादकीय लेख।"

३४१ **फ़ख़ुद्दीन आरिफ़.**
कौमी एकता के अलम्बरदार मौलाना अबुल कलाम आज़ाद.
जबान-औ-अदब (पटना), १३(१), जनवरी-मार्च १९८७. पृ० १३-१६. (उर्दू)

३४२ **फ्रेंक (यट सोबर).**
ए रिपोर्ट बाइ पार्वती मेनन.
फ्रंटलाईन (मद्रास) ५(५), ५-१८ मार्च १९८८. पृ० ११६-१२०. (अंग्रेज़ी)
"मौलाना आजाद की विवादपूर्ण पुस्तक इण्डिया।"

३४३ **फ्रंट लाईन.**
आज़ाद्स पेपर्स, ट्रबल्ड लैगेसी.
फ्रंटलाईन (मद्रास), ५(५), ५-१८ मार्च १९८८, पृ ११३-११६ (अंग्रेजी).
"मौलाना आजाद की आत्म-कथा के विवादस्पद पृष्ठों पर हसन सुरूर की रिपोर्ट।"

३४४. **फारूकी (इमादुल हसन आज़ाद).**
अल्लामा इकबाल और मौलाना आज़ाद. : खुतबात और तर्जुमानुल कुरान की रोशनी मे
जामिया (दिल्ली), ८५(२), फरवरी १९८८. पृ० ७७-९७.
"इकबाल तथा आज़ाद का दार्शनिक के रूप मे एक तुलनात्मक अध्ययन और उनके भाषणों तथा तर्जुमानुल कुरान की रोशनी मे इस्लाम के दोनों विद्वानों की तुलना।"

३४५ **फारूकी (ख़्वाजा अहमद).**
हज़रत मौलाना अबुल कलाम आज़ाद.
मुब्बसिर, ९(९), अगस्त १९८१. पृ० ९-१७. (उर्दू)
"मौलाना की विद्वता तथा दानिशवरी के सम्बन्ध में एक लेख।"

३४६ **फारूकी (ज़ियाऊल हसन).**
शज़्रात : मौलाना आजाद.
जामिया (दिल्ली), ८३(२), फरवरी १९८६, पृ० ३-६. (उर्दू)
"इस लेख मे मौलाना की साहित्यिक सेवाओं और भारतीय इतिहास में उनकी भूमिका के साथ-साथ मौलाना के विचार भी शामिल हैं।"

३४७ **फारूकी (ज़ियाऊल हसन).**
अफ़कार-ए-आज़ाद की मानवियत : आज़ाद हिन्द के मुसलमानों के लिए
इस्लाम और अस्र-ए-जदीद (दिल्ली), १८(१), जनवरी १९८६, पृ० ५-१२. (उर्दू)
"मुसलमानो का दर्शन-अध्ययन जो लेखक के अनुसार आज भी मुस्लिम समुदाय के लिए अनुकरणीय है। यह लेख जामिया के फरवरी ८६ अंक तथा फरवरी १९८८ के अंकों में प्रकाशित हो चुका है।"

३४८. **फारूकी (निसार अहमद).**
मौलाना आज़ाद का ख़ानदानी पस-मंज़र.
हमारी ज़बान (दिल्ली), ४०(१०), १० अप्रैल १९८६, पृ० १-३. (उर्दू)
"मौलाना के पारिवारिक हालात तथा पूर्वजों का शजरा।"

३४९ **फारूकी (निसार अहमद).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : एक दानिशवर.
क़ौमी आवाज़ (दिल्ली), १६ नवम्बर १९८८. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद के जीवन तथा साहित्यिक उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण।"

३५०. *बरनी डाऊट्स आज़ादस् आथरशिप.*
हिन्दुस्तान टाईम्स, (दिल्ली), २८ नवम्बर १९८८. (अंग्रेज़ी).
"ईरान सोसाईटी के तत्वावधान में आयोजित मौलाना आज़ाद जन्म शताब्दि समारोह की उदघाटन सभा मे दिए गए श्री एस० एम० एच० बरनी, अध्यक्ष, अल्पसंख्यक आयोग के अभिभाषण की प्रेस रिपोर्ट।"

३५१ **मज़हर हसन.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद.
आवाज़ (दिल्ली) १६ नवम्बर १९८६, पृष्ठ ११. (उर्दू)
"राष्ट्रीय एकता, जीवनोद्देश्य और शैक्षिक सिद्धान्तों की सफलता में मौलाना के प्रयासों पर लेख मे बहस की गई है।"

३५२. **मलकानी (के० आर०).**
हू इज टू बिलेम फ़ार पार्टीशन?
इण्डियन एक्सप्रैम (दिल्ली), २० नवम्बर १९८८ (अंग्रेज़ी).
"नेहरु पर लगाए गए आरोपों का विवेचन और उन उलझे हालात का वक्तव्य जिनके नतीजे मे देश का बटवारा हुआ।"

३५३ **मलिक हफ़ीज़.**
अबुल कलाम आज़ाद थ्योरी आफ़ नेशनलइज़्म.
मुस्मिल वर्ल्ड (हार्टफोर्ड, यू०एस०ए०), ५३(१), जनवरी १९६३, पृ० ३३-४० (अंग्रेजी)

३५४ **मसीह-उल-हसन.**
मौलाना आज़ाद के क़लमी हवाशी ज़ेर-ए-मुताअला किताबों पर.
इस्लाम और अस्र-ए-जदीद (दिल्ली), २ जुलाई १९७४, पृ० ६२-७०. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद की अध्ययन-आधीन पुस्तकों पर टिप्पणियाँ।"

३५५ **मसूद (एम० एन०).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के सेक्रेट्री
कौमी आवाज (दिल्ली), ८(१०६), १७ अप्रैल १९८८, पृ० १२ (उर्दू).
"शताब्दि समारोह के लिए तैयार की जानेवाली डाकूमेन्ट्री फिल्म को मौलाना आजाद के निजी सचिव एम० एन० मसूद द्वारा दिया हुआ इन्टरव्यू।"

३५६ **माथुर (गिरीश).**
दि मैसेज आफ़ मौलाना.
लिक (दिल्ली), २८ फ़रवरी १९८८, ८९ (अंग्रेज़ी).
"लेखक ने बताया है कि हमारी स्वाधीनता की लड़ाई किस प्रकार समाप्त हुई और देश के बटवारे के क्या हालात थे।"

३५७ **मालिक राम.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : पहले बीस साल.
तहरीर, २(१), १९६८, पृ० ७५-९७. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद के जीवन के प्रारंभिक बीस वर्षों के हालात।"

३५८ *माहौल (कराची).*
(साप्ताहिक) (उर्दू) ६(१७), १८ सितम्बर १९६०,
"आज़ाद नम्बर।"

३५९. **मुईन शाकिर.**
गुबारे-ख़ातिर में मौलाना आज़ाद की शख़्सियत.
आवाज़ (दिल्ली), ४८(१२), १६ जून १९८३, पृ० ११-१३. (उर्दू)
"मौलाना की पुस्तक समीक्षा।"

३६०. **मुखोपाध्याय (नीलांगन).**
आज़ाद मज़ार रिमेंस नैगलेक्टेड.
संडे मेल, (दिल्ली), ३० अक्टूबर १९८८. (अंग्रेज़ी)
"मौलाना आज़ाद के मज़ार के शिल्पकार हबीबउर्रहमान ने मज़ार की दुदर्शा को १५ वर्ष के उपरान्त देखने पर यह लेख लिखा।"

३६१. **मुशीर-उल-हसन.**
दि मुस्लिमस् मास कोंटैक्ट कैम्पेन: एन अटैम्पट एट पोलिटिकल मोबीलाईज़ेशन.
इकोनोमिक्स एण्ड पोलिटीकल वीकली (बम्बई), २१(५२), २७ दिसम्बर १९८६, पृ० २२-३-८२. (अंग्रेज़ी).

३६२. *मुआरिफ़ (आज़मगढ़).*
(मासिक) (उर्दू) १९५३.
"अबुल कलाम आज़ाद।"

३६३. **मआरिफ़.**
शज़रात.
मआरिफ़ (आजमगढ़), १९ नवम्बर १९८८, (उर्दू).
"मआरिफ़ द्वारा एक सम्पादकीय में १९८८ की जन्म-शताब्दि समारोहों का सर्वेक्षण और मौलाना आज़ाद को श्रद्धांजली।"

३६४. **मेह्र (गुलाम रसूल).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : मेह्र के खुतूत शेरवानी के नाम.
जामिया (दिल्ली) (२) फ़रवरी १९२८. (उर्दू)
"गुलाम रसूल मेह्र और शेरवानी के बीच मौलाना आज़ाद के सिलसिले में खत्तो-किताबत।"

३६५. **मेसीनो (लियो).**
मौलाना आज़ाद से मेरी मुलाक़ात.
जामिया (दिल्ली), ८५(२), फ़रवरी १९८८, पृ० १५-१७. (उर्दू)
"लियो मेसीनो एशियाई भाषा का फ्रांसीसी विद्वान था और वह सूफ़ीमत का लब्ध प्रतिष्ठित विद्वान भी था। मौलाना आज़ाद पर उसके विचार तथा संस्मरण।"

३६६. **मोहम्मद हसन.**
अबुल कलाम आज़ाद और हम.
कौमी आवाज़ (दिल्ली), ८(१०८), ९ अप्रैल १९८८, पृ० ३. (उर्दू)
"जीवन के प्रति अपेक्षित और क्रयायोग्य मौलाना के दृष्टिकोण और सिद्धान्तों का विवेचनात्मक अध्ययन।"

३६७. **रफीउल्ला.**
इस्लामी क़ानून मौलाना आज़ाद की नज़र में.
बुर्हान (दिल्ली), २(४५) अगस्त १९६०, पृ० ११७-१२२. (उर्दू).
"शरियत और कानून के बीच जो भेद है और मौलाना का दृष्टिकोण बयान किया गया है।"

३६८. **रशीदुद्दीन खाँ.**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद (१९५८-८८).
मेनस्ट्रम (दिल्ली), वार्षिक, ८, अक्तूबर १९८८, पृ० ३७-३८ और १८० (अंग्रेज़ी).
"मौलाना आज़ाद के जीवन-चित्रण में ४ मुख्य पहलूओं को दर्शाया गया है। (१) हिन्दु-मुस्लिम एकता (२) खिलाफ़त आन्दोलन (३) असहयोग आन्दोलन तथा (४) एक मिली जुली राष्ट्रीयता मुसलमानों की ज़िम्मेदारी।"

३६९. **रिज़वी (खुर्शीद मुस्तफ़ा).**
मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की सियासी बसीरत.
क़ौमी आवाज (दिल्ली), विशेषांक, १८ सितम्बर १९८८ (उर्दू).
"इस लेख में मौलाना आज़ाद द्वारा स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने और उनके कारनामों का विवरण है।"

३७०. **नक़वी (गुलजार अहमद).**
इस्लाम और नेशनलईज़्म : मेकिंग आफ़ मौलाना.
पैट्रयोट (दिल्ली), १५ नवम्बर १९५९. (अंग्रेज़ी).
"मौलाना आज़ाद के व्यक्तित्व में इस्लामी और राष्ट्रीय विचारों का समन्वय।"

३७१. **नक़वी (गुलज़ार अहमद).**
मौलाना आज़ाद की इंतिज़ामी सलाहियत.
पन्द्रहवीं सदी (दिल्ली), १(१९), जनवरी १९८९, पृ० २३-२४. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद की प्रशासनिक क्षमता को उजागर किया गया है।"

३७२. **नवभारत टाईम्स.**
७ नवम्बर को रहस्य खुलेगा.
नवभारत टाइम्स (दिल्ली), २५ अक्तूबर १९८८,
"एक समाचार : ३० पृष्ठ ६ नवम्बर १९८८ को प्रकाशित किए जाएँगे।"

३७३. *नया दौर (लखनऊ).*
(मासिक) (उर्दू) (विशेषांक) १४, १५ अगस्त १९५९.
"आज़ाद खुसूसी नम्बर।"

३७४. *नई दुनिया (दिल्ली).*
(दैनिक) (उर्दू), २५ नवम्बर १९५८.
"इमामुलहिन्द नम्बर।"

३७५. **निशात याहिया.**
मौलाना आज़ाद का मुताअला-ए-कलामतुल शौरा.
हमारी ज़बान (दिल्ली), ४५(१३), १ अप्रैल १९८६, ७ पृ० (उर्दू).
"लेखक ने मौलाना आज़ाद की काव्य प्रशंसा के साथ-साथ उनकी स्मरणशक्ति की तारीफ़ की है।"

३७६. **नेशनल हैरल्ड.**
आज़ाद क्रिटीकल आफ़ नेहरू टू
नेशनल हैरल्ड् (दिल्ली), २५ अक्तूबर १९८८. (अंग्रेज़ी).
"ओरियन्ट लोंगमैंस का वक्तव्य जो कि इस पुस्तक (इण्डिया विन्स फ़्रीडम) के प्रकाशक हैं।"

३७७. **नेशनल हैरल्ड.**
आजाद क्रिटीकल टू नेहरू
नेशनल हैरल्ड् (दिल्ली), २५ अक्तूबर १९८८. (अंग्रेज़ी).

३७८ **नेशनल हैरल्ड.**
आज़ाद एम्बाडीड सैक्यूलरइंज्म.
नेशनल हैरल्ड (दिल्ली), १२ नवम्बर १९८८. (अंग्रेज़ी).

३७९. **वत्स (उपेन्द्र).**
दुख की बात में मज़ा.
नवभारत टाईम्स (दिल्ली) २५ नवम्बर १९८८.
"मौलाना आज़ाद की पुस्तक इण्डिया विंस फ्रीडम पर एक नज़र, एक समीक्षा।"

३८० **शर्मा (शंकर दयाल).**
मौलाना आज़ाद—ज़हानत का सम्बा.
क़ौमी आवाज (दिल्ली), ८ फ़रवरी १९८९, (उर्दू).
"अमुख पुस्तक के विमोचन के अवसर पर उपराष्ट्रपति के भाषण का सारांश।"

३८१. **शहाबुद्दीन दसनवी.**
अंजुमन-ए-इस्लाम तहरीक.
आजकल (दिल्ली), अक्तूबर १९८१, पृ० १५-२२. (उर्दू).

३८२ **शाहराह (दिल्ली).**
(मासिक) (उर्दू).
फरवरी-मार्च १९५९.
"आजाद नम्बर।"

३८३ **शेख (एम एच).**
मौलाना आज़ाद, सफ़े-अव्वल के सियासतदाँ.
क़ौमी राज़. (बम्बई), २८ दिसम्बर १९८६, पृ० ७३-७८. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद के योगदान का अध्ययन।"

३८४. **शेरवानी (रियाजुर्रहमान).**
मौलाना आज़ाद की अदबी हैसियत का तजज़िया.
अलीगढ़ मैगज़ीन (अलीगढ़), १९५९, पृ० १०४-११८, (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद के साहित्यिक योगदान पर रोशनी।"

३८५. **स्टेट्समैन.**
पटेल टर्नड़ अगेंस्ट गाँधीजी : आज़ाद.
स्टेट्समैन (दिल्ली), ८ नवम्बर १९८८. (अंग्रेज़ी).
"इण्डिया विंस फ्रीडम के तीस पृष्ठों वाली सामग्री के प्रकाशन के सम्बन्ध में रिपोर्ट।"

३८६ **सबा (हैदराबाद).**
(मासिक) (उर्दू).
५(३ और ४), १९५९.
"आज़ाद नम्बर।"

३८७. **सबाहउद्दीन उमर.**
मौलाना आज़ाद को रूस्वा करने की साज़िश
हमारी ज़बान (दिल्ली), ४७(६), ८ फरवरी १९८८. पृ० ३. (उर्दू).
"मलिकज़ादा मंजूर अहमद की दो पुस्तकों की तीव्र आलोचना।"

३८८. **सिद्दिक़ी (अतीक़).**
अल-हिलाल का इण्डेक्स.
उर्दू-अदब (दिल्ली) १९६१, पृ० १३३-१७८.
"अल-हिलाल का विस्तृत अध्ययन। अल-हिलाल के अंको की सूचि भी शामिल है।"

३८९. **सिद्दीक़ी (इशरत अली).**
मौलाना आज़ाद : तारीखी शख़्सियत.
कौमी आवाज़ (दिल्ली), २० नवम्बर १९८८. (उर्दू)

३९०. **सिद्दीक़ी (रशीद अहमद).**
मौलाना अबुल कलाम मरहूम.
अलीगढ़, मैगज़ीन (अलीगढ़) १९५९, पृ० १-१४. (उर्दू)
"एक जीवनी।"

३९१. *सुबह (दिल्ली).*
(क्यू) (उर्दू)
"मौलाना अबुल कलाम आज़ाद नम्बर।"

३९२. **सुरूर (ए.ए).**
लिट्रेरी कंट्रीब्यूशन आफ़ मौलाना आज़ाद
इण्डियन लिट्रेचर (दिल्ली) ३०(४), जुलाई-अगस्त १९८८, पृ० ५-१६. (अंग्रेज़ी)
"मौलाना आज़ाद की जन्मशताब्दि समारोह मनाने के लिए साहित्य अकादमी ने अगस्त १९८८ मे एक सेमिनार कराया था। इस लेख में मौलाना के प्रारंभिक लेखों के अलावा, उनके भाषणों का संकलन भी किया गया है।"

३९३. **सुलेमान साबिर.**
मौलाना आज़ाद : शख़्सियत, अदब और सहाफत.
क़ौमी आवाज़ (दिल्ली), ५ मार्च १९८६, पृ० ३. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद की साहित्यिक तथा पत्रकारिक सेवाओं का उल्लेख।"

३९४. **हसन नजमी.**
मौलाना आज़ाद पर सह-रोज़ा सेमिनार.
हमारी ज़बान (दिल्ली), ४४(२२), १५ नवम्बर १९८०, पृ० ८-१०.
"उर्दू अकादमी दिल्ली के तत्त्वावधान में सम्पन्न ३ दिवसीय सेमिनार।"

३९५. **हसीन अमीन.**
मौलाना आज़ाद और लखनऊ का ख़मीरा.
क़ौमी आवाज़ (दिल्ली), (४३), २१ फ़रवरी १९८८, ३ पृ०. (उर्दू)
"मौलाना आज़ाद का प्रिय शौक पान चबाना था। इस लेख में यही बताया गया है।"

३९६. **हसीन अमीन.**
हिस्टोरियन रिफ़्यूट्स आज़ाद्स कंटैंशन.

हिन्दुस्तान टाईम्स, १५ नवम्बर १९८८. (अंग्रेज़ी)

"इण्डिया विंस फ़्रीडम के ३० पृष्ठों के बारे में अख़बारी रिपोर्ट।"

३९७. **हिन्दुस्तान टाइम्स.**
लीग स्प्रैड लाईन्स आज़ाद.

हिन्दुस्तान टाईम्स (दिल्ली), ७ नवम्बर १९८८. (अंग्रेज़ी).

"पुस्तक इण्डिया विंस फ्रीडम के दूसरे संस्करण के प्रकाशन की रिपोर्ट विवादस्पद तीस पृष्ठों सहित।"

३९८. **हिन्दुस्तान टाइम्स.**
हिस्टोरियन रिफ़्यूट्स आज़ाद कन्टेंशन.

हिन्दुस्तान टाईम्स (दिल्ली), १५ नवम्बर १९८८. (अंग्रेज़ी).

"विवादपूर्ण ३० पृष्ठों के सम्बन्ध में एक समाचार।"

३९९. *सुब्ह (देहली)*
(त्रिमासिक) (उर्दू)

४००. *उर्दू अदब*
(त्रिमासिक) (उर्दू)
आज़ाद विशेषांक, भाग ८, १९५९.